उत्तर प्रदेश : सोलहवीं शताब्दी

डा० गजेंद्रप्रसाद मिश्र

देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला—२५

उत्तर प्रदेश : सोलहवीं शताब्दी

डा० राजेंद्रप्रसाद सिंह

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

माला का परिचय

जोधपुर के स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसाद जी मुंसिफ इतिहास और विशेषतः मुसलिम काल के भारतीय इतिहास के बहुत बड़े ज्ञाता और प्रेमी थे तथा राजकीय सेवा के कामों से वे जितना समय बचाते थे, वह सब वे इतिहास का अध्ययन और खोज करने अथवा ऐतिहासिक ग्रंथ लिखने मे ही लगाते थे। हिंदी मे उन्होने अनेक उपयोगी ऐतिहासिक ग्रंथ लिखे हैं जिनका हिंदी संसार ने अच्छा आदर किया है।

श्रीयुत मुंशी देवीप्रसाद की बहुत दिनों से यह इच्छा थी कि हिंदी में ऐतिहासिक पुस्तको के प्रकाशन की विशेष रूप से व्यवस्था की जाय। इस कार्य के लिये उन्होने ता० २१ जून, १९१८ को ३,५०० रु० अंकित मूल्य और १०,८०० रु० मूल्य के बंबई बंक लि० के सात हिस्से सभा को प्रदान किए थे और आदेश किया था कि इनकी आय से उनके नाम से सभा एक ऐतिहासिक पुस्तकमाला प्रकाशित करे। उसी के अनुसार सभा यह 'देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला' प्रकाशित कर रही है। पीछे से जब बंबई बंक अन्यान्य दोनों प्रेसीडेंसी बंको के साथ संमिलित होकर इंपीरियल बंक के रूप में परिणत हो गया, तब सभा ने बंबई बंक के हिस्सों के बदले मे इंपीरियल बंक के चौदह हिस्से, जिनके मूल्य का एक निश्चित अंश चुका दिया गया है, और खरीद लिए और यह पुस्तकमाला उन्ही से होनेवाली तथा स्वयं अपनी पुस्तको की बिक्री से होनेवाली आय से चल रही है। मुंशी देवीप्रसाद का यह दानपत्र नागरीप्रचारिणी सभा, काशी के २६वें वार्षिक विवरण में प्रकाशित हुआ है।

———

प्रकाशकीय

जोधपुर निवासी स्वर्गीय श्री देवीप्रसाद जी मुंसिफ बड़े ही विद्यानुरागी विद्वान् थे। इतिहास उन्हे विशेष प्रिय था और उसके विभिन्न पक्षों पर उन्होने अनेक शोधपूर्ण निबंधो और ग्रंथो की रचना की थी। सुयोग्य विद्वानों द्वारा प्रणीत ऐतिहासिक ग्रंथो के प्रकाशनार्थ ही उन्होने स० १९५७ वि० में सभा मे इस ग्रंथमाला की स्थापना कराई थी जिसमे अब तक २४ ग्रंथ प्रकाशित हो चुके है। काशी हिंदू विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डा० श्री राजेंद्रप्रसाद सिह द्वारा प्रणीत ग्रंथ 'उत्तर प्रदेश : सोलहवी शताब्दी' इस ग्रंथमाला मे प्रकाशित होनेवाला २५वाँ ग्रंथ है।

विद्वान् लेखक के शोधप्रबंध का यह परिमार्जित रूप है। संपूर्ण ग्रंथ एकादश अध्यायो मे विभक्त है जिसमे राजनैतिक तथा भौगोलिक स्थिति से आरंभ करके बाबर, हुमायूं, शेरशाह और अकबर के राजत्वकाल का विशद विवेचन है। शासन व्यवस्था, राजस्व व्यवस्था, विधि एव न्याय व्यवस्था, सैनिक संगठन, पुलिस व्यवस्था, सामाजिक दशा, धार्मिक दशा, उद्योग व्यापार, शिक्षा एवं साहित्य तथा लोककल्याण विषयक विवेचन पृथक् पृथक् अध्यायों मे विवृत है। आनुषंगिक पक्षो का समावेश तथा कथनो की पुष्टि मे प्रामाणिक ग्रथो के आधार पादटिप्पणियो मे देकर उनका समर्थन विद्वान् लेखक ने किया है। यह ग्रंथ १६वी शती में (वर्तमान) उत्तर प्रदेश की सांगोपांग जानकारी देता है। आशा है राष्ट्रप्रेमी जन इसे उसी ललक से अपनाएँगे जिससे इसका प्रणयन हुआ है।

ना० प्र० सभा, काशी :
मकर सक्रांति, स० २०४२

सुधाकर पांडेय
प्रधान मत्री

समर्पण
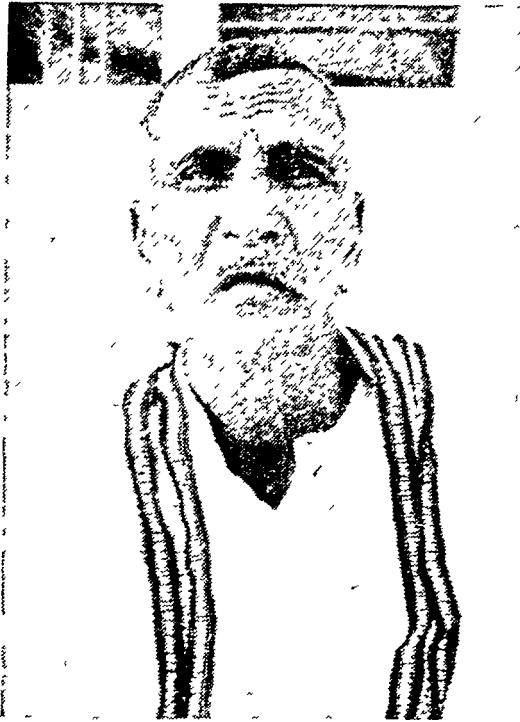
पूज्य पिता स्व० सूबेदार सिंह जी की
पुण्यस्मृति को सादर

प्राक्कथन

भारतीय इतिहास मे उत्तर प्रदेश की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण रही है। उत्तर प्रदेश का प्राचीन तथा आधुनिक काल इतिहासकारो के ध्यान को जहाँ आकृष्ट करने मे सफल रहा है, वही मध्ययुगीन उत्तर प्रदेश के इतिहास के प्रति इतिहासकार उदासीन रहे है। इसका प्रमुख कारण यह था कि अधिकाश शोधकर्ताओ का ध्यान दिल्ली सल्तनत तथा मुगल साम्राज्य के इतिहास पर केद्रित था। मुस्लिम शासन की राजधानी दिल्ली तथा आगरा के निकटस्थ होने के कारण इस क्षेत्र पर शासको की इतनी कडी दृष्टि थी जिसके परिणामस्वरूप हिंदू जमीदारो के उग्र प्रतिरोध के बावजूद भी मालवा, गुजरात, खानदेश, अहमदनगर, गोलकुडा बीजापुर आदि जैसे स्वतत्र राजवंश का उदय इस क्षेत्र मे सभव नही हो सका। मुगलकाल मे उत्तर प्रदेश के रूप मे कोई क्षेत्र नही था, उत्तर प्रदेश आधुनिक काल का नामकरण है। इस क्षेत्र के अंतर्गत इलाहाबाद, आगरा, तथा अवध जैसे सूबो का उल्लेख मिलता है परंतु मुगल साम्राज्य के इतिहास मे इस क्षेत्र का सर्वाधिक योगदान रहा है। अतः आधुनिक उत्तर प्रदेश की सीमाओ के अतर्गत सोलहवीं सदी के मुगल कालीन इतिहास का वर्णन है।

स्वतत्र राजवश के अभाव मे साम्राज्य विस्तार के लिये स्थानीय शासको से सघर्ष के लिये कोई संभावना ही नही थी। फिर भी उत्तर प्रदेश सोलहवी सदी के शासको की राजनैतिक गतिविधियो का रंगमंच था, इस विशाल रगमत्र पर खडे होकर उन लोगो ने मुगल साम्राज्य के विस्तार मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इस क्षेत्र के अधिकार पर ही उनका भाग्य तथा उनके साम्राज्य का उत्थान पतन निर्भर करता था। इस क्षेत्र के महत्व को ध्यान मे रखकर ही बाबर, हुमायूँ तथा अकबर ने विरोधी तत्वो का समूल नाश करने का सफल प्रयास किया। मुगल साम्राज्य के सस्थापक बाबर ने इटावा, कोलू (अलीगढ), कन्नोज तथा अवध के अफगानो के प्रभाव को समाप्त किया। दौरा के युद्ध मे हुमायूँ ने अफगान शक्ति की रीढ़ तोड़ने में सफलता प्राप्त की। १५४० में

कन्नौज अथवा बिलग्राम के निर्णायिक संघर्ष ने हुमायूँ की पराजय तथा राजपद के परित्याग का मार्ग प्रशस्त कर दिया। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि दिल्ली तथा आगरे की राजगद्दी का अस्तित्व उत्तर प्रदेश के अधिकार पर ही निर्भर करता था। सम्राट् अकबर इस तथ्य से भली भाँति अवगत था, अतः उसने जौनपुर, कडा तथा मानिकपुर के उजबेगों के प्रतिरोध को पूर्ण रूप से समाप्त करने का सफल प्रयास किया।

सोलहवी सदी में उत्तर प्रदेश तत्कालीन शासन व्यवस्था के लिये एक प्रयोगशाला था, जहाँ शासकों ने अपनी शासन नीतियो का सफल परीक्षण करके उसका प्रयोग साम्राज्य के अन्य भागो मे किया। मुगल साम्राज्य की शासन प्रणाली का बीज इस भाग मे अकुरित हुआ और एक विशाल वृक्ष की शाखाओ के रूप मे साम्राज्य के अन्य भागो मे विकसित हुआ। अतः शासन व्यवस्था के क्षेत्र मे उत्तर प्रदेश ने एक नवीन पृष्ठभूमि तैयार करने मे सफल अभिनय किया।

सोलहवी सदी मे उत्तर प्रदेश समन्वयवादी व्यक्तियो का एक आदर्शमय सामाजिक रंगमंच था। इस क्षेत्र की हिंदू जनता ने मुस्लिम सभ्यता को समझने तथा अपनाने की ग्राह्य शक्ति का अद्भुत परिचय दिया। सौहार्दपूर्ण वातावरण का सृजन तथा मुगलकालीन संस्कृति का विकास हिंदू-मुस्लिम-सहयोग का परिणाम है। इस काल में विकसित वास्तु एवं ललितकला, हिंदी-फारसी-साहित्य पर प्रत्येक भारतीय गर्व का अनुभव करता है। इस प्रकार उत्तर प्रदेश मुगल संस्कृति की जननी है। इसका विकास मुगल साम्राज्य के अन्य भागो मे हुआ। वास्तुकला तथा ललितकला अपने आपमें एक गभीर विषय है। पर्सी ब्राउन, सर जान मार्शल, फर्ग्युसन तथा हैवेल जैसे पाश्चात्य विद्वानों ने इसपर अत्यधिक प्रकाश डाला है। मेरे लिये इस विषय की चर्चा सूर्य को दीपक दिखाना होता।

सोलहवी सदी में सौहार्दपूर्ण धार्मिक वातावरण के निर्माण मे उत्तर प्रदेश की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण रही हे। रामानद, कबीर, जैसे समाज सुधारको तथा सूफी संतों के सतत प्रयास के परिणामस्वरूप धार्मिक रूढिवादिता तथा धर्माधता के युग का अंत हुआ। इन लोगो ने अल्लाह, राम, रहीम तथा केशव को एकेश्वर सिद्ध करके हिंदू-इस्लाम के धार्मिक सिद्धातो में एकत्व को प्रमाणित किया। उत्तर प्रदेश के इस सौहार्दपूर्ण

वातावरण ने मुगल शासको को धर्मांधता तथा रूढिवादिता के आवरण का परित्याग करने के लिये विवश कर दिया। महान् मुगल सम्राट् अकबर ने दीन इलाही के माध्यम से सपूर्ण प्रजा के लिये एक राष्ट्रीय धर्म चलाने का क्रांतिकारी कदम उठाया।

इस प्रकार सोलहवी सदी मे उत्तर प्रदेश का इतिहास न केवल तत्कालीन सम्राटो के व्यक्तित्व को प्रतिविंबित करता है, अपितु वह मुगलकालीन प्रशासनिक व्यवस्था, सामाजिक तथा धार्मिक दशा का प्रकाशस्रोत रहा है। सीमाओ के अतर्गत मैने उपर्युक्त विषयो का यथावश्यक उल्लेख करने का प्रयास किया है।

प्रस्तुत ग्रंथ की रचना का एकमात्र श्रेय आदरणीय भाई साहब कल्पनाथ सिंह को है। उन्होने जटिल समस्याओ के समुचित समाधान में महत्वपूर्ण सहयोग एव निर्देशन दिया। उपयुक्त शब्दों के अभाव मे प्रेरणास्रोत भइया जी के प्रति कृतज्ञता की अभिव्यक्ति प्रगाढ हार्दिक भावनाओ द्वारा करता हूँ। इस पुस्तक की रचना मे मेरे समस्त परिवार का योगदान रहा है। उन्हे मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। मैं श्री सुधाकर पाडेय जी (एम०पी०) के प्रति विशेष आभारी हूँ, जिन्होने न केवल पुस्तक के प्रकाशन प्रस्ताव को बड़ी तत्परता से स्वीकार किया, बल्कि अपने बहुमूल्य अनुभव तथा विचारों से प्रस्तुत ग्रथ को अत्यधिक उपयोगी बनाने मे सहायता प्रदान की। श्री रामअवध मिश्र को ग्रथ के त्वरित मुद्रण मे उनके सहयोग तथा सद्भावना के लिये हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

इतिहास विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय
मकरसक्राति, स० २०४२ वि०
(१४ जनवरी, १९८६)

राजेन्द्र प्रसाद सिंह

संक्षिप्त-रूप-सारिणी

अ० या०	– अहमद यादगार ' तारीख-ए-सलातीन-ए-अफगाना।
आईन	– आईन-ए-अकबरी-अबुल फजल।
अली रईस	– ट्रैवेल्स ऐंड ऐडवेंचर्स।
अ० ना०	– अकबरनामा—अबुल फजल।
ए० एस०	– एनेअल० ऐनुअल रिपोर्ट स।
ए० एस० बी०	– एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल।
ए० एस० आर०	– रिपोर्ट्स आफ ए० एस० इंडिया।
बदाऊनी०	– तारीख-ए-बदाऊनी अथवा मुतखब-उत्-तवारीख-अब्दुल कादिर।
बर्नियर	ट्रैवेल्स इन मोगल एंपायर।
बी० एम० कैटलाग	– क्वायंस आफ मोगल एंपरर्स आफ हिंदुस्तान इन द बी० एम०।
ई० और डी०	– एच० एम० इलियट और प्रो० जान डाउसन : हिस्ट्री आफ इंडिया।
ई० एच० आई०	– विंसेट ए० स्मिथ : दि अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया।
फिरिश्ता०	– मुहम्मद कासिम हिंदू शाह फिरिश्ता : तारीख-ए-फिरिश्ता।
जहाँगीर, आर० बी०	– द० रोजर्स और एच० बेवरिज : तुजुक-ए-जहाँगीरी अथवा जहाँगीर के संस्मरण।
जौहर	– जौहर : तजकिरात उल वाकियात या तारीख-ए-हुमायूँ।
मेकलगन	– ई० डी० मेकलगन : जेसुइट मिशस टु दि एंपरर अकबर।
मनूची०	– स्तोरिया दो मोगोर, या मुगल भारत।
ग्लेडविन०	– हिस्ट्री आफ हिंदोस्तान।
इर्विन आर्मी अथवा इर्विन	– विलियम इर्विन : दि आर्मी आफ दि इंडियन मोगल्स

जे० ए०एस०बी० – जर्नल आफ दि एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल ।

टेरी० – रेवरेंड टेरी, संपा० : ए वायेज टु ईस्ट इंडिया ।

टामस० – ई० टामस : क्रानिकल्स आफ पठान किंग्स आफ डेल्ही तथा रेवेन्यू रिसोर्सेज आफ मोगल पावर ।

फान नोएर० – काउंट फान नोएर : दि एम्परर अकबर ।

शेख फैजी० – शेख फैजी : वाकियात ।

———

विषयसूची

प्रथम अध्याय

उत्तर प्रदेश की राजनैतिक स्थिति

उत्तर प्रदेश की भौगोलिक स्थिति

प्राचीन युग से आधुनिक युग तक भारतीय इतिहास के परिवेश में उत्तर प्रदेश का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। उत्तर प्रदेश आधुनिक युग का नामकरण है। प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथ रामायण, महाभारत तथा अन्य स्रोतों मे इसका उल्लेख नही मिलता है। प्रारभ मे इस भाग में कोशल[1] तथा काशी राज्य थे। पूर्व मध्य युग में यह भाग चौहान तथा गहढवालो के शासनातर्गत रहा है।[2] मुस्लिम शासन की स्थापना के वाद आधुनिक उत्तर प्रदेश का अधिकाश भाग दोआव के नाम से प्रचलित रहा है। मुगल शासनकाल मे इस भाग का अधिकाश भाग कई सूबो में विभक्त था।[3]

उत्तर प्रदेश, उत्तर भारत के मध्य मे स्थित और प्राचीनकाल मे इसे मध्य देश कहा जाता था, क्योकि इसकी स्थिति उत्तर मे हिमालय, दक्षिण मे सतपुड़ा तथा विध्य पर्वत के वीच है। आज भी इसके उत्तरी भाग को कुमायू तथा शेष भाग को गंगा का मैदान कहते हैं।[4] १८३६ मे आधुनिक उत्तर प्रदेश को दो खडो मे विभक्त किया गया था—नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेस तथा प्रावीस आफ अवध।[5] १८७७ मे इन दोनो प्रातो का एकीकरण कर दिया गया। १९०२ मे इसका पुनः नामकरण 'यूनाइटेड प्रावीसेस आफ आगरा एण्ड अवध' के रूप मे हुआ।[6] उत्तर प्रदेश का नामकरण स्वतंत्र

---

१. विशुद्धानद पाठक—हिस्ट्री आफ कौशल, वाराणसी, १९६३, पृ० ४४-४५।

२. वही, पृ० ५१।

३. ईश्वरीप्रसाद—'ए शार्ट हिस्ट्री आफ मुस्लिम रूल इन इंडिया', इलाहावाद, १९६५, पृ० ४०८।

४. ओमप्रकाश सिंह—कल्चरर ज्योग्राफी आफ उत्तर प्रदेश, अक १८, भाग २, मार्च १९७३, पृ० १३६।

५. वही, पृ० १३६।

६. वही, पृ० १३६।

भारत की देन है और यही एक ऐसा प्रदेश है, जिस पर १९५६ में राज्यों के पुनर्संगठन का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा है। यह भाग दक्षिण, पूर्व, पश्चिम मे मध्य प्रदेश, विहार, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, दिल्ली तथा राजस्थान से घिरा हुआ है। उत्तर में इसकी सीमा नेपाल तथा चीन से मिली है।

बाबर

सोलहवी सदी के प्रारंभ मे वाबर के आक्रमण के समय भारत अनेक राज्यों मे विभक्त था। दिल्ली सुलतानो के निर्बल, अयोग्य होने से विभिन्न प्रांतों के प्रातपतियो ने दिल्ली साम्राज्य से अपने सबध विच्छेद करके अपने-अपने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिये थे। वाबर ने लिखा है कि—'भारत की राजधानी दिल्ली है। सुल्तान शिहाउद्दीन गौरी के समय से सुल्तान फीरोजशाह तक हिंदुस्तान का अधिकाश भाग दिल्ली के वादशाह के अधीन था। जब मैने इस देश को जीता तो यहाँ पाँच मुसलमान और दो काफिर शासको का राज्य था। यो तो पहाडी और जगली प्रदेशों मे अनेक छोटे-छोटे राजा और रईस थे, परतु वडे और प्रधान ये पाँच ही थे।'[1]

दिल्ली

पंद्रहवी सदी के अंतिम भाग मे दिल्ली के राज्य सिंहासन पर ऐसे अयोग्य, निर्बल और असफल सुल्तानो का राज्य रहा, जिसकी सीमा दिल्ली और उसके सीमावर्ती क्षेत्रो तक ही थी। वावर के अभियानो के समय भारत मे कोई दृढ केंद्रीय साम्राज्य नही था। दिल्ली सुल्तानो की परंपरा मे इब्राहीम लोदी अतिम शासक था। उसका राज्य दिल्ली, आगरा, जौनपुर बयाना, चदेरी तथा विहार के एक भाग तक सीमित था। यह स्वभाव से अत्यत उग्र, संदेहात्मक, हठी और जिद्दी होने से तथा अपने अमीरों और सरदारो से दुर्व्यवहार करने से अधिक अलोकप्रिय हो गया था। इसके सामतो और सरदारो ने विरुद्ध होकर विद्रोह प्रारंभ कर दिये थे तथा उसे पदच्युत करने का षड्यंत्र करने लगे थे।

बाबर ने इब्राहीम लोदी के युद्ध के प्रसंग मे लिखा है कि 'हिंदुस्तान में यह प्रथा है कि ऐसे महान संकटों के अवसर पर, धन देकर इच्छानुसार सेना भरती कर ली जाती है और वह हिंदी कहलाते हैं।'[2]

---

१. वावरनामा, पृ० १६४-६६, (बेवरिज)।

२. बाबरनामा, पृ० १५४।

पाँच राज्यों मे एक राज्य अफगानों का था, जिसमें राजधानी सम्मिलित थी और जो वहराह से विहार तक फैला हुआ था। सुल्तान वहलोल लोदी और उसके लड़के सुल्तान सिकंदर ने दिल्ली और जौनपुर दोनों को जीतकर एक राज्य वना लिया था।'[1]

एलफिंस्टन कहता है कि 'वावर ने अपनी 'तुजक' या 'वाकियात' में जो हिंदुस्तान के वारे मे वर्णन किया है, वैसा ग्रथ एशिया मे नही है, यह वास्तविक ऐतिहासिक ग्रथ है। वावर जिन देशो मे गया, उसने उनका और उनके दृश्य, जलवायु, पैदावार, कला, वाणिज्य और व्यवसाय का पूरा और सही वर्णन किया है।'[2]

इतने पर भी आश्चर्य की वात है कि मुगल भारत के किसी इतिहासकार ने सोल्हवी शताब्दी मे इस देश का वर्णन उस राजवंश के सस्थापक की आत्म जीवनी मे दिए हुए सजीव चित्रो से आरंभ नही किया है।[3]

राजनीतिक दशा

उत्तर प्रदेश मे राजनीतिक एकता का अभाव था। दिल्ली के सुल्तान की केंद्रीय सत्ता, जिसके अधीन सव माने जाते थे, क्षीण हो गई थी। दिल्ली सल्तनत मे अराजकता और अव्यवस्था व्याप्त थी। स्वयं सुल्तान भी जिद्दी, हठी और प्रतिभाहीन था। उस समय ऐसी दृढ शक्तिशाली केंद्रीय सत्ता और संगठित प्रशासन प्रणाली नही थी जो विदेशी आक्रमणकारी वावर को परास्त कर खदेड़ दे।

दिल्ली राज्य जो भारत की राजनीति का केंद्र था, अहमद यादगार लिखता है कि 'इब्राहिम लोदी अपने वाप की गद्दी पर वैठा तो वहुत से सरकारो को पता लगा कि वादशाह के स्वभाव मे स्थिरता नही है, तव उन्होने विरोध का झडा खडा कर दिया।[4] उसने अपने अभियान के कारण अपनी जाति को विरोधी वना दिया। आरंभ मे ही अर्थात् १५१७ मे उसके एक भाई को जौनपुर मे वादशाह घोषित कर दिया गया। वारह:

---

१. वावरनामा, पृ० २२८।

२. एलफिस्टन, हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० ४३८।

३. वही, पृ० ४४२।

५. इलियट तथा डाउसन, भाग ५, पृ० १४।

महीने मे उसको दवाया गया और इब्राहीम ने चुपके से उसको मरवा दिया। अपने दूसरे भाइयो को भी आजन्म कैदखाने मे डलवा दिया। कितनो ही को केवल शंका होने के कारण ही मार डाला। कुछ चुपके से मरवा दिए गए और कुछ को कैद मे डाल दिया गया।

पानीपत के युद्ध के पूर्व उसने दरवेश मुहम्मद सारवान से स्पष्ट शब्दों मे कह दिया कि इब्राहीम तथा उजवेगो की तुलना असभव है, कारण कि इब्राहीम ने अभी तक कोई भी अनुशासन युक्त युद्ध नही किया।[1] बावर ने अपनी सैन्य-सचालन की योग्यता का पूरा परिचय राणासागा के युद्ध मे किया। अफगानो पर विश्वास न होने के कारण उसने उन्हे पहले ही अपनी सेना से पृथक करके दूर भेज दिया। केवल उन्ही अफगानो को अपने साथ रखा, जिन पर उसे पूर्ण विश्वास था।[2] सभी लोगो के निराश होने के बावजूद भी उसने अपनी आशा नही छोडी और परिस्थिति के पूर्णरूप से प्रतिकूल होने पर भी दृढता पूर्वक युद्ध किया। सीकरी के पास जल प्रबंध को पूर्णरूप से ध्यान मे रखकर रणक्षेत्र के लिये स्थान चुनना,[3] मेवात मे लूट-मार का आदेश देना,[4] मदिर स्थान का त्याग[5] मुसलमानों को तमगा नामक कर से मुक्त करना[6] और रणक्षेत्र से न भागने की शपथ लेना[7] उसकी दूरदर्शिता एव धैर्य का बहुत बडा प्रमाण है।

बावर को सबसे अधिक अपने तोपखानो एवं बंदूको पर विश्वास था। "रशब्रुक विलियम्स' ने लिखा है कि 'अगर किसी एक साधन से हिंदुस्तान को जीतने मे बावर को सहायता मिली तो वह साधन उसका तोपखाना था।'[8]

एक बार उस्ताद अली कुली ने तोप तैयार कर ली तो बावर उससे पत्थर चलाने का दृश्य देखने स्वयं पहुँचा।[9] अली कुली बराबर उन्नत तोपें बनाने का प्रयत्न किया करता था।[10] अन्य तोपो की परीक्षा तथा

---

१. बावरनामा, पृ० १५४। २. वही पृ० २२६।
३. बावरनामा, पृ० २२७। ४. वही, पृ० २३०।
५. वही, पृ० २३०-३४। ६. वही, पृ० २३१।
७. वही, पृ० २३४-३५। ८. रशब्रुक विलियम्स, पृ० १११।
९. बावरनामा, पृ० २२६। १०. वही, पृ० २६२।

पत्थर चलाने के दृश्य को देखने के लिये, जब भी बाबर को अवसर मिलता तो वह पहुँच जाता था।[१] तोप चलाने के लिये उचित व्यवस्था हेतु मुहसिलो तथा बेलदारो की नियुक्ति का उसने कई स्थानो पर उल्लेख किया है।[२]

पानीपत का युद्ध

नवबर सन् १५२५ मे अपनी सबसे बडी सेना साथ लेकर बाबर ने अंतिम बार सीमा पार करके भारत मे प्रवेश किया। स्यालकोट बाबर के हाथ से निकल गया था। उसके भारत स्थित सब सेनापति लाहौर मे इकट्ठे हो गए थे, लेकिन अकेले दौलत खा के साथ ही रणभूमि मे चालीस हजार से कम सैनिक नही थे। इब्राहीम लोदी एक लाख सेना के साथ उससे भिड़ंत करनेवाला था। उसके साथ बहुत से जगी हाथी भी थे।

बाबर के दिखाई देते ही दौलत खा की सेना तितर-बितर हो गई। बाबर ने उसका कुछ भी नही किया, परतु धोखादेही के लिये उसको बहुत बुरा भला कहा।[३]

२६ फरवरी सन् १५२६ को हुमायूँ ने प्रथम बार युद्ध मे प्रसिद्धि प्राप्त की। उसने शाही सेना के अग्रभाग से मोर्चा लिया। इब्राहीम दिल्ली से और बाबर सरहिंद से और अम्बाले से कूच करते हुए आ रहे थे। १ अप्रैल को फिर बाबर के सैनिको का सुल्तान की अश्वसेना से युद्ध हुआ और उसको चकनाचूर कर दिया। १२ अप्रैल से १९ अप्रैल तक अर्थात् पूरे पूरे सप्ताह तक दोनो सेनाएँ पानीपत के साथ एक दूसरे के समुख खडी रही।

एक ओर निराशापूर्ण साहस था और कुछ वैज्ञानिक युद्ध के साधन। दूसरी ओर, मध्यकालीन हथियार बद सैनिक थे, जिनमे भाला चलाने वालो की और तीर चलाने वालो की भरमार थी। उनके झुड के झुड अव्यवस्थित रूप से मूर्खतापूर्ण धक्को के साथ आगे बढते जा रहे थे।[४]

---

१. बाबरनामा, पृ० २६६-६७। २. वही, पृ० २२९, ३६, ६५।
३. बाबरनामा, पृ० १४५-४६।
४. कीन, हिस्ट्री आफ इडिया, १, पृ० ७६।

१६ अप्रैल को वावर के आदमियो ने आक्रमण किया, परतु वह असफल रहा ।

२० अप्रैल को वावर की सेना में यह डर फैल गया कि, हिंदुस्तानी सेना उनसे वहुत अधिक है ।

२१ अप्रैल को शाही सेना का साहस वढा क्योकि शत्रु की विधि प्रभावोत्पादक नही थी । इससे शाही सेना आगे वढी । सेना की संख्या वहुत अधिक थी तथा फैली हुई थी । इसलिये उसको एकाएक पास पास आना पडा । वावर की सेना एक जगह ठसी हुई थी । इसका सामना करने के लिये जव शाही सेना अपने ढग से जमने लगी तो हार गई तथा तितर-वितर हो गई ।

वावर सेना संचालन मे वडा निपुण था । उसने अपनी सेना तत्काल तुलगमा विधि से जमाई और साथ ही तोपखाने से आग वरसाना शुरू किया ।[1] मुगलो ने हिंदुस्तानियों को चारो ओर से आक्रमण करके भगा दिया तथा वहुतो को मार डाला । ऐसा युद्ध न कभी लडा गया था, और न ही सिपाहियो ने कभी इतनी अच्छी तरह से साथ ही दिया था । साथ ही न किसी युद्ध मे इतनी ईमानदारी से विजय ही हुई थी ।

एक भाले की लवाई के वरावर जव सूर्य ऊँचा आ गया तो युद्ध शुरू हुआ और दोपहर तक चलता रहा । तव शत्रु विलकुल हार गया और भगदड़ मच गई । मेरे लोग विजयी हुए और उल्लास से भर गए । भगवान की दया और कृपा से यह कठिन कार्य मेरे लिये आसान हो गया और वह शक्तिशाली सेना आधे दिन के अंदर मिट्टी मे मिल गई ।[2]

इब्राहीम लोदी रणभूमि में धराशाई हो गया । उसके साथ ही ग्वालियर के हिंदू राजा 'विक्रम' ने भी वीरगति प्राप्त की । वह समझता था कि देश दोनो का है, इसलिए उसकी रक्षा के लिये सुल्तान का साथ दिया ।[3]

जहाँ सुल्तान धराशायी हुआ था वहाँ पर मुर्दो की गिनती हुई तो छह हजार थी । रणभूमि के विभिन्न भागो मे पंद्रह-सोलह हजार आदमी मारे

---

१. लेनपुल, पृ० ५७, रशवुक विलियम्स, ४, पृ० १२-१३ ।
२. वावरनामा, पृ० २१६ । ३. कीन, पृ० ८१ ।

गए थे। आगरे पहुंचने पर हिंदुस्तान के निवासियों से हमको मालूम हुआ कि लगभग चालीस हजार आदमी युद्ध मे काम आए।[1]

'इस बडे प्रयास के बाद देश का एक बादशाह समाप्त हुआ और दूसरा सिंहासन पर बैठा।'[2]

दिल्ली के अफगानो के लिये पानीपत का युद्ध सर्वनाशक था। इससे उनके राज्य का अंत हो गया और उनकी शक्ति भी नष्ट हो गई।[3]

पानीपत के युद्ध से बाबर की भारतीय विजय के दूसरे प्रकरण का अंत हुआ।

'इब्राहीम लोदी' मे तो व्यक्तिगत साहस की तो कमी नही थी, परंतु 'बाबर' के मतानुसार वह अनुभवहीन नवयुवक था। वह सेना संचालन सावधानी से नही कर सकता था। बिना व्यवस्था के कूच करता था, रुकने या हटने का भी उसका कोई तरीका नही था। वह आगे की बात सोचे बिना ही युद्ध मे कूद पडता था।

दो सप्ताह तक दोनो सेनाएँ एक दूसरे के संमुख पड़ी रही, जिससे बाबर को लाभ हुआ और उसके सैनिको मे फिर आत्मविश्वास आ गया।

दिल्ली की सेना ने बहुत जल्दी-जल्दी कूच किया था और विश्राम लिये बिना ही पानीपत आ पहुँची थी। सेना रुकी हुई भी नही थी। स्थिति के अनुसार इसको पुनर्व्यवस्थित होना नही आता था। जब एकदम व्यवस्था का यत्न किया गया तो उस भारी सेना मे नितांत गड़बड़ी मच गई।

उधर बाबर अनुभवी और निपुण सेनानायक था। उसके सैनिक बड़े पक्के और सधे हुए वीर थे। जब युद्ध शुरू हुआ तो उसके आदमियो को काफी डर था, लेकिन उनके बादशाह के शास्त्रविज्ञान और युद्धकौशल के कारण उनमे फिर आत्मविश्वास आ गया और साहस का संचार होने लगा।[4]

---

१. इलियट एंड डाउसन, ओ० पी० सीट, ४, पृ० २५५।

२. कीन, पृ० ५१। ३. लेनपुल, पृ० १६६।

४. लेनपुल, पृ० १६७।

• इब्राहीम के सैनिक हाथी और उसकी बडी सेना से उसका पक्ष सबल नही निर्बल हो गया था। बाबर ने घुडसवारो और तोपखानो को वैज्ञानिक ढंग से मिलाया था। इब्राहीम की सेना इसका सामना करने के लिये उपयुक्त नही थी। तोपखाने का प्रयोग भारतवर्ष मे सबसे पहले बाबर ने किया था।[1]

विजय के बाद बाबर ने फौरन हुमायूँ को ख्वाजाकला के साथ आगरे को रवाना किया और एक दूसरी पार्टी को दिल्ली के किले और कोष पर अधिकार करने के लिये भेजा। शुक्रवार, २७ अप्रैल को दिल्ली मे उसके नाम का खुतबा पढा गया।[2]

अपनी प्रधान के साथ कूच करके बाबर ने दिल्ली के सामने जमुना के दूसरे किनारे पर डेरे डाले। बृहस्पतिवार, २८ रजब (१० मई) को तीसरे पहर नमाज के बाद आगरे मे प्रवेश किया और सुल्तान इब्राहीम के महल मे ठहरा। यहाँ बाबर ने हुमायू से अनेक कोष प्राप्त किए, जिनमें कोहनूरहीरा भी था। इसका मूल्य इतना था कि 'सारे ससार' के आधे दिन का खर्चा उससे चल सकता था।[3] शुरू मे अपने पुत्र की सेवाओ से प्रसन्न होकर पिता ने 'हीरा' हुमायू को ही दे दिया, इसके साथ २० हजार पौड अर्थात् सत्तर लाख दाम के लागत की चीजे भी उसको दी। 'सात लाख की आमदनी का एक परगना इब्राहीम की मा को बख्शीश मे दिया। इसी प्रकार उसके अमीरो को भी परगने दिए गए। अपने माल असबाब के साथ उसको एक महल रहने के लिये दिया जो आगरे से एक कोस की दूरी पर स्थित था।'[4]

बाबर के प्रत्येक बेग को लगभग छह लाख से दस लाख दाम तक अर्थात् सत्रह सौ से अट्ठाइस सौ पौड तक मिले। लूट के माल मे से प्रत्येक सैनिक को भी अपना भाग मिला। बख्शीश देते समय व्यापारी और सेना के दूसरे साथियो को नही भुलाया। यहाँ तक कि जो उस समय अनुपस्थित थे उनको भी याद रखा। फरगना, खुरासान, काशगर और

---

१. बाबरनामा, पृ० १५३-५८। २. वही, पृ० २१०।

३. इलियट एण्ड डाउसन, ओ० पी० सीट, ४, पृ० २५७।

४. इलियट एण्ड डाउसन, ओ० पी० सीट, ४, पृ० २५८।

ईरान में जो बाबर के मित्र थे, उनको सोना, चाँदी, कपड़े, जेवर और गिरफ्तार किए हुए दास भेंट किए गए। इससे उन लोगों को बड़ा अचंम्भा हुआ। हैरात, समरकंद, मक्का और मदीना के साधुओं को भी भेंट भेजी गई। काबुल मे प्रत्येक स्त्री और पुरुष को चाहे वह युवा हो या वृद्ध, दास हो या स्वतंत्र, एक चाँदी का सिक्का इनाम में मिला जो इस विजय का स्मारक था। जो कुछ धन बचा वह सेना और प्रबंध के खर्च के लिये राजधानी के खजाने मे सुरक्षित रखा गया।[1]

अफगान लोग

बाबर ने लिखा है कि 'जब मैं आगरा पहुँचा तो मेरे आदमियों में और वहाँ के निवासियो मे परस्पर गहरी शत्रुता थी। इस प्रदेश के किसान और सैनिक मेरे आदमियों के पास नहीं आते थे, बल्कि उनको देखकर भाग जाया करते थे। फिर दिल्ली और आगरे के अतिरिक्त दूसरे स्थानों के लोगो ने जगह जगह छोटे-छोटे दुर्ग बना लिए थे और सबके शासकों ने आत्मरक्षा का प्रबंध कर लिया और मेरा आदेश मानने से इकार किया। गगा से दूसरी तरफ का सारा प्रदेश जो कन्नौज कहलाता था, वह नासिर खा लोहानी और मारूफ फरमूली के अधीन था।[2] इन लोगों मे कितने ही, दूसरे अमीर भी शामिल थे, जो इब्राहीम की मृत्यु से दो वर्ष पहले से ही खुल्लम-खुल्ला विद्रोह किया करते थे।

मैंने इन सब शत्रुओ को धीरे-धीरे परास्त किया तथा अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

अपने कोप का विभाग करने के बाद मेरे पास समय नहीं था कि विभिन्न परगनो की रक्षा के करने के लिये और उन पर कब्जा करने के लिये मैं उपयुक्त आदमी भेजू। मुख्य कारण था, उस साल असाधारण गर्मी पड़ रही थी, जिस कारण बाबर के बहुत से आदमी मर गए। इस कारण बहुत से लोग अपने देश को जाने की इच्छा व्यक्ति की, लेकिन बाबर ने अपनी ओजस्वी बातो के कारण सबको फिर रुकने को मजबूर कर दिया।[3] जाने की बात उसके

1. लेनपुल, पृ० १६६-६७।
2. इलियट एण्ड डाउसन, ओ० पी० सीट, ४, पृष्ठ ५४८-४९।
3. बाबरनामा, पृ० २०४, (बेवरिज)

सैनिक तथा अधिकारी शायद इस कारण कह रहे थे, क्योंकि इसके बहुत पहले महमूद गजनवी आदि बादशाहो ने केवल धन के कारण आक्रमण किया था। हिंदुस्तान तथा खुरासान विजय के बाद भी वह गजनी को ही अपनी राजधानी बनाए रहे।[1] अपना मनोरथ पूरा करने मे हमने अपनी आयु खपा दी है। अब जो कुछ हमने जीता है, उसको छोडकर निराशा और पराजय के चिह्नो के साथ वापस काबुल भागना उचित नही है। जो मेरा मित्र है उसको चाहिए कि अब ऐसा प्रस्ताव कभी न करे। लेकिन आप लोगो में यदि कोई ऐसा व्यक्ति है जो यहाँ ठहरने को तैयार नही है और वापस जाना ही चाहता है तो वह चला जाय। ऐसा उचित प्रस्ताव करने के बाद असंतुष्ट लोग अनिच्छा से भी राज द्रोहात्मक विचार छोड़ने के लिये आवश्यकता समझ कर विवश हो गए।

अफगानो का दमन स्थगित करना पडा, क्योंकि एक अधिक प्रबल शत्रु सामने खड़ा था।

विद्रोहियों का दमन

उत्तर प्रदेश मे अफगानों की शक्ति, पानीपत के बाद बिल्कुल टूट गई थी। फिर भी कुछ स्थानो पर उनका प्रभाव था। अब बाबर ने बचे हुए उच्च कर्मचारियो को देश पर अधिकार करने के लिये नियुक्त किया। उनको छोटी-छोटी सेनाएँ देकर विभिन्न दिशाओ मे भेजा। इन छोटी-छोटी टुकड़ियो ने बडे ही उत्साह के साथ लड़ाइया लडी। वे जानते थे कि इससे उनका भाग्य उदय होगा और साथ ही उनके स्वामी की विजय का विस्तार भी होगा।[2]

हुमायूँ ने संभल, जौनपुर, गाजीपुर, और काल्पी जीत लिए। मोहम्मद-अली जगजंग ने खीरी छीन लिया। मेहदी ख्वाजा ने इटावे को दबा लिया। सुल्तान मोहम्मद दुलदारी ने कन्नौज पर अधिकार जमाया और कोल (दोआब) के शेख गुरेन को वचन दिया गया कि उसकी रक्षा की जायगी, जिससे वह बाबर के पक्ष मे हो गया।[3]

---

१. बाबरनामा, पृ० २६।   २. रशब्रुक विलियम्स, पृ० १८२।
३. लेनपुल, पृ० १८२।

'लोदी बादशाह के एक बहुत बड़े हाकिम शेख बयाजीद को अवध में लगभग एक करोड रुपए की जागीर दे दी गई। लोहानी और फारमूली सरदारो ने पहले सुल्तान महमूद का साथ दिया था, परंतु जब बाबर की सेना इकट्ठी हुई तो वे डर कर तितर-बितर हो गए। हसन खां मेवाती 'खनुवा' के मैदान मे काम आया।[1]

अफगान विद्रोही

२ फरवरी, सन् १५२८ को बाबर उन अफगान विद्रोहियो का दमन करने के लिये रवाना हुआ जो बिहार से दोआब की तरफ बढ आए थे और जिन्होने शमसाबाद को छीन कर कन्नौज के दुर्ग से शाही सेना को निकाल भगाया था।[2] जब बाबर निकट आया तो शत्रु गंगा पार करके उसका मार्ग रोकने के लिये दूसरे किनारे पर जा इकट्ठा हुए। २७ फरवरी को बादशाह इस बडी नदी पर जा पहुँचा और १३ मार्च तक उसने इस चौडी पर पुल बनवा लिया। विद्रोहियो को भगा दिया और अवध तक उनका पीछा किया। इसके बाद बाबर बरसात काटने के लिये आगरे आ गया।

इस प्रकार एक-एक करके बाबर के सभी शत्रु पराजित हो गए तथा इसने एक सुदृढ साम्राज्य की स्थापना की और अपनी मुराद को पूरा किया।[3]

---

१ इलियट एण्ड डाउसन, ४, पृ० २७३-७४।

२. वही, पृ० २८१। ३. लेनपुल, पृ० १९२।

हुमायूँ

मुहम्मद हुमायूँ बादशाह गाजी का जन्म ५ मार्च, १५०८ ई० (३ जीकाद ९१३ हि०) को काबुल के किले मे हुआ था।[१] वह ३० दिसंबर सन् १५३० ई० को बाबर की मृत्यु के चार दिन बाद तेईस वर्ष की अवस्था मे आगरे की गद्दी पर बैठा।[२] २९ दिसंबर १५३० ई० को शुक्रवार के दिन आगरा की जामा मस्जिद मे उसके नाम का खुतबा पढ़ा गया तथा सभी लोगो की प्रसन्नता, हर्ष एव उल्लास मे वृद्धि हुई। सिक्को को उनके शुभ नाम से शोभा प्राप्त हुई।[३] राजकर्मचारियो ने अपनी राजभक्ति प्रकट की। सरदारो और अफसरो के साथ बड़ा कृपापूर्ण व्यवहार हुआ। बाबर के समय मे जिन लोगो को जो मनसब और पद प्राप्त थे, उनकी पुष्टि हुई। शाही कृपा के कारण सब लोगो को सुख और संतोष हुआ।[४]

उत्तराधिकार की रक्षा के लिये संघर्ष

राजनीतिक स्थिति

बाबर से हुमायूँ को कई प्रदेश मिले थे। इनमे कोई मेल नही था और न सबके हित एक थे। बाबर ने अपने जीवन मे इनको मिलाने का प्रयत्न किया था। हिंदुस्तान की भूमि मे उसकी जड अभी गहरी नही हो सकी थी।[५] गुजरात, मालवा, बंगाल आदि उसके राज्य मे नही मिल पाए थे। राजपूताने के कई शासक डर तो गए थे, परंतु उनका दमन नही हुआ था। दूर दूर के हिस्सों मे मुगलो की शक्ति को केवल यो ही नाम मात्र के लिये मानते थे।[६]

अफगान लोग

बहुत से अफगान अफसरों के पास बड़ी बडी जागीरे थी। ये लोग इस बात को नही भूले थे कि अफगान कुछ ही वर्ष पहले दिल्ली के बादशाह

---

१. इलियट एण्ड डाउसन, ५, पृ० ११८। २. वही, पृ० १२१।
३. वही, पृ० १३१। ४ वही, पृ० १८७-८८।
५. मेलीसन, अकबर, पृ० ४९।
६. डा० एस० के० बनर्जी, हुमायू, पृ० २९-३४।

थे। सुल्तान महमूद लोदी वंश का सदस्य था। जब सुल्तान महमूद लोदी विहार में पहुँचा तो विद्रोह के लिये उसको सब सामग्री तैयार मिली। हुमायूँ को उत्तराधिकार मे हिंदुस्तान का केवल आठवाँ भाग मिला था, लेकिन इस भाग में भी उसके विरोधी मौजूद थे और वहाँ विद्रोह हुआ करते थे।[1]

महमूद लोदी इब्राहीम का भाई था। वावर ने इसको खदेड़ भगाया था, परतु उसका पूरा दमन नही हुआ था। सब बडे बडे अफगान उसका साथ देते थे। वावर ने इनको विहार के पूर्वी इलाको मे भगा तो दिया था, परंतु ये लोग उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे और चाहते थे कि वापस जाकर अपना खोया हुआ राज्य फिर प्राप्त कर ले।

शेर खां सूर

अफगान दल मे यह सवसे योग्य और महत्वाकांक्षी माना जाता था। अपना काम बनाने के लिये यह किसी भी सिद्धात की चिता नही करता था। 'शेरशाह' ने स्वयं ही कहा है 'यदि भाग्य मेरा साथ दे तो मैं इन मुगलो को हिंदुस्तान से बाहर निकाल सकता हूँ। वे युद्ध मे हमसे आगे वढे हुए नही है। हमारे हाथ से शक्ति इसलिये खिसक गई है कि हम लोगो मे फूट है। मैं मुगलो मे रह चुका हूँ और मैंने उनके व्यवहार को देखा है। मुझे मालूम है कि उन लोगो मे व्यवस्था और अनुशासन की कमी है। जो लोग उनका नेतृत्व करने का दावा करते है, वे अपने कुल और पद के घमड मे चूर रहते हैं और निरीक्षण कार्य की उपेक्षा करते है। इन लोगो ने सब कार्य अफसरो के हाथ मे छोड रखा है। इनपर वे अंधे होकर विश्वास करते है। अधीन अधिकारी अनेक मामलो मे भ्रष्टाचार और अनाचार करते हैं। वे अपने लाभ के पीछे दौड़ते है। वे सिपाही और नागरिक को एक ही समझते हैं और शत्रु या मित्र मे भी कोई अंतर नही मानते हैं।[2]

हुमायूँ की सेना राष्ट्रीय सेना नही थी। न उनकी एक भाषा थी, न उनका एक देश। यह साहसी लोगो का एक लश्कर था, जिनमे चगताई, उजवेग, मुगल, ईरानी, अफगानी और हिंदुस्तानी सब शामिल थे। यह

१. लेनपुल, मेडिवल इंडिया, पृ० २१९-२९।
२. कोन : दी टर्क्स इन इंडिया, पृ० ९५।

वास्तव में क्रांति का युग था। सब राज्यो मे ईरान, समरकंद, बुखारा, हिसार, वल्ख और हिंदुस्तान मे राजसिंहासन लडने मरने वालों के साथ मे या ऐसे ही लोगो के वशजो के हाथ मे था। ऐसी परिस्थित मे हजारों ऐसे उपद्रव हो सकते थे, जिनके कारण प्रपच और दलवन्दी की आग धीमे धीमे सुलगती हुई महा ज्वाला का रूप धारण कर ले।[१]

कालिंजर विजय

बादशाह ने स्वय ५-६ मास उपरात कालिंजर के किले की विजय हेतु प्रस्थान किया।[२] यहाँ के राजा ने स्वामिभक्ति प्रकट की थी और तख्त के सहायताओ मे समिलित हो गया।[३]

जौनपुर तथा आस पास के इलाकों पर विजय

उन दिनो सुलतान सिकंदर लोदी के लड़के, सुल्तान महमूद ने बीबन और बायजीद की सहायता से तथा अफगान सरदारो की सहायता से विरोध का झडा खडा कर दिया था और जौनपुर तथा उसके पास के इलाको पर अपना अधिकार कर लिया था। अब हुमायूँ ने इसका दमन करने के लिए कूच किया और उस पर विजय प्राप्त करके आगरा लौट आया।[४]

युद्ध के वाद हुमायूँ ने खूब खर्च किया। इस प्रकार के ठाठ से बाबर भी अपरिचित नही[५], परतु हुमायूँ का कोष तो पहले ही खाली हो चुका था। इसलिए ऐसा अपव्यय उसके लिये उचित नही था। रशब्रुक विलियम्स ने लिखा है कि हुमायूँ के सवध मे वही पुरानी कहानी शुरू हो गई, अर्थात् आर्थिक ह्रास और उसके साथ क्रांति, प्रपंच और राजवंश का अंत।[६] इस अवसर पर हुमायूँ ने जो धन लगाया, यही अपव्ययता का लक्षण था।

---

१. एर्सकिन, पृ० २-४।
२. डिस्ट्रीक्ट गजेटियर्स, बांदा, २१, १९०९, पृ० २३४।
३. इलियट एण्ड डाउसन, ५ पृ० १८९। एर्सकिन, २, पृ० ९, एस० के० बनर्जी, हुमायूं, पृ० ३४-३६।
४. इलियट एण्ड डाउसन, ४, पृ० ३५०।
५. अहमद यादगार, इलियट एण्ड डाउसन, ५, पृ० ४०।
६. रशब्रुक विलियम्स, पृ० १६२।

यह वादशाह की पाँचवीं भूल थी कि जीते हुए प्रांतो को सूवेदारो में बाँट दिया। निजामुद्दीन अहमद का कहना है कि हुमायूँ वादशाह आगरे मे एक वर्ष तक विलास करता रहा।[१]

इसी अर्से में गुजरात और मालवा उसके हाथ से जाते रहे।[२] वहादुरशाह ड्यू से पुर्तगाली लोगो से सहायता लेकर फिर अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त कर लिया।[३] मालवा और गुजरात वडी लडाई के वाद जीते हुए थे, लेकिन वहुत आसानी से हाथ से निकल गए।[४]

हुमायूँ ने अपने भाइयो के प्रति वडी दया दिखाई, परंतु यह वुद्धिमत्ता का कार्य नही था और इसी से उसका विनाश हुआ।[५]

शेरखाँ के साथ संघर्ष

१५३१ के अत मे शेरखाँ ने दक्षिण विहार पर अधिकार कर लिया था और विहार के पास चुनार का किला जीत लिया था।[६] उस साल वहादुरशाह पर चढाई करने के पूर्व, परतु दौरा मे महमूद लोदी को हराने के वाद, हुमायूँ का शेरखाँ से पहली वार मुकाविला हुआ था।[७]

शेरखाँ ने वड़ी चालाकी से कार्य किया, वह अत मे हुमायूँ की शर्तो को स्वीकार कर लिया। शर्त इस प्रकार की थी 'मैं चुनार शेरखाँ को सुपुर्द कर दूंगा, परतु शर्त यह है कि वह जलाल खा को मेरे साथ भेज दे।[८]

हुमायूँ ने यह वात उस परिस्थिति मे मानी कि उस समाचार के पूर्व वहादुर शाह को दिल्ली पर आक्रमण के समाचार उसे मिले थे।[९]

शेरखाँ ने इसी अर्से मे समय का फायदा उठाया और सुल्तान महमूद की राजधानी वंगाल पर आक्रमण कर दिया। सुल्तान ने जव गौड़ के किले मे शरण ली तो शेरशाह ने घेरा डाल दिया।

---

१. व्रिग्स, २, पृ० ८३ (फरिश्ता)। २. लेनपुल, पृ० २२६।
३. एस० के० वनर्जी, हुमायूँ, पृ० १३५-३६।
४. व्रिग्ज, २, पृ० ८३ (फरिश्ता)।
५. इलियट एण्ड डाउसन, ५, पृ० १९९।
६. डा० कानून गो, शेरशाह, पृ० ७३।
७. अवुलफजल, अकवरनामा, १, पृ० ३२८ (वेवरिज)।
८. डा० कानूनगो, शेरशाह, पृ० ७७। ९. एर्सकिन, पृ० १२।

हुमायूँ अगली बार बिहार की ओर रवाना हुआ। जब वह चुनार[1] पहुँचा तो अपने सहयोगियों से परामर्श किया कि पहले चुनार पर आक्रमण किया जाय या गौड़ पर।

जब तक हुमायूँ के हाथ में चुनार आया तब तक शेरखाँ का गौड पर अधिकार हो गया था[2]। इसी समय लगभग उसने बड़ी युक्ति के साथ रोहतास पर भी अधिकार कर लिया था।[3] शेरखाँ ने भगवान को धन्यवाद दिया तथा कहा कि चुनार का किला इसके सामने कुछ भी नही है। जितना गौड़ को जीतने पर खुशी नही हुई, कही रोहतास गढ को जीतने पर हुई है।

चौसा का युद्ध

तीन महीने तक दोनो सेनाएँ एक दूसरे के सामने डटी रही, परतु २६ जून, १५३५ को कुछ ही क्षणो में, शेरखाँ ने मुगल सेना को खदेड़ भगाया। सेना मे इतनी गडवड़ी मच गई कि हुमायूँ अपने परिवार को भी नही निकाल सका।[4] एक भिश्ती ने अपनी मश्क के द्वारा बादशाह की जान बचाई और नदी को पार कराया।[5]

कन्नौज या बिलग्राम की लड़ाई

जब दोनो ने अपनी अपनी व्यवस्था अच्छी प्रकार से कर ली तो अपनी सेना को जमाकर शेरशाह ने अफगानो से कहा 'मैंने भरसक यत्न करके आप लोगो को इकट्ठा किया है तथा जो कुछ भी हो सका है, मैने आप लोगों के लिये किया है। यह परीक्षा का दिन है जो लड़ाई में वीरता का कार्य करेगा, मैं उसे उसके साथियो से ऊपर बढ़ा दूँगा। सब लोगो ने यह निश्चय किया कि स्वामी भक्ति प्रकट करने का दिन आया है।[6]

---

१. डा० एस० के० बनर्जी, हुमायूँ, पृ० २१०।
२. इलियट एंड डाउसन, ५, पृ० ११२।
३. वही, पृ० ३५७-४६२। ४. एलफिस्टन, पृ ४५५, नोट १०।
५. ब्रिग्स, २, पृ० ८८ (फरिश्ता)।
६. एस० के० बनर्जी, हुमायूँ, पृ० २४३-४६।

सेनाओ मे दोनो तरफ से दो लाख से कम आदमी नही थे।[१] इस लडाई मे चगताई लोग हार गए। रणभूमि मे शत्रु या मित्र कोई भी घायल नही हुआ। एक भी वदूक नही चली। सब गाड़ियाँ बेकार हो गईं।

अब्बास खॉ ने लिखा है कि 'वादशाह हुमायूं एक जगह युद्ध भूमि में पर्वत की तरह खड़ा रहा। लेकिन जव देखा कि अलौकिक व्यक्ति उसके विरुद्ध लड़ रहे हैं तो उसने समझा कि यह ईश्वर का कार्य है। वह रण-भूमि छोड दिया तथा आगरे की तरफ चला गया।[२]

वादशाह भाग कर लाहौर चला गया। जव शत्रु वहाँ भी आ गए तो वह तत्काल लाहौर चला गया।[३]

वादशाह उस रक्त रजित भँवर से सुरक्षित लौट आया लेकिन उसकी अधिकाश सेना गंगा मे डूव गई।[४]

फरिश्ता ने कहा 'हुमायूं ने अपने भाइयो से कहा कि सव मिलकर शत्रु को हराएँ, इसके अतिरिक्त कोई उपाय नही है। परंतु इन दलीलो का भाइयो पर कोई प्रभाव नही पडा। क्योकि यह सव स्वार्थ के कारण अंधे हो गए थे।[५]

वहुत कुछ सलाह करने के वाद मिर्जा हैदरवेग को एक दल के साथ काश्मीर रवाना किया और उसके पीछे ख्वाजा कला वेग को भेजा।[६] अव नौशहर और कला वेग स्यालकोट पहुँचे तो वादशाह को सूचना मिली कि शेरशाह ने सुल्तानपुर के पास नदी (विग्राह) पार कर ली है और कुछ ही कोस के फासले पर है। तव बादशाह ने लाहौर की नदी पार कर ली।

मिर्जा कामरान ने वादशाह को जो सहायता का वचन दिया था, उसका पालन नही किया था, परतु अव उसने उचित समझा कि वादशाह

---

१. एर्सकिन पृ० ५४१।

२. इलियट एंड डाउसन, ५, पृ० १४४।

३. हिस्ट्री आफ इण्डिया, एलफिस्टन, पृ० ५४०, नोट, वनर्जी, हुमायूं पृ० २५८-५९। ४. इलियट एंड डाउसन, ५, पृ० २०५।

५. ब्रिग्स, २, पृ० ८६-८७ (फरिश्ता), वनर्जी, हुमायूं पृ० २५३-५६।

६. इलियट एड डाउसन, ५, पृ० २०६।

केसाथ साथ वह वहरा चला जाय।[1] वहरा में जाकर मिर्जा कामरान और मिर्जा असकरी ने हुमायूं का साथ छोड़ दिया और ख्वाजा कला वेग के साथ काबुल पहुँच गया। यह अक्तूबर सन् १५४७ के अंत मे हुआ।

पुनर्विजय का आरंभ

इस समय काबुल कामरान के अधिकार में था। गजनी पर हिंदाल का अधिकार था और कंधार असकरी के अधीन था। कामरान ने सुलेमान मिर्जा को, जिसको वहाँ वावर ने नियुक्त किया था, हरा कर वदलशा या दक्षिण वैक्ट्रिया भी जीत लिया था। उत्तरी वैक्ट्रिया और वल्ख उजवेगो के हाथ मे थे। इस समय शेरशाह जीवित था, इस कारण हिंदुस्तान पर आक्रमण करने की कोई आशा नही थी।[2]

तीन महीने के घेरे के वाद कंधार के किले पर अधिकार हो गया। वैरम खाँ को दूत वनाकर कामरान के पास भेजा गया। वहाँ वह कामरान, हिंदाल और दूसरे लोगो से मिला। कामरान ने भी अपना दूत यदि सभव हो, तो सधि की शर्तें तय करने के लिये भेजा। लेकिन मिर्जा असकरी का विचार था कि अव भी लड़ाई चलती रहे। अत में मिर्जा असकरी की पराजय हुई और वह कैद कर लिया गया।[3]

राज्य प्राप्ति और मृत्यु (१५५५-५६)

कुछ समय वाद यह खबर आई कि सुल्तान सलीम खाँ मर गया और अफगानो मे झगडे हो रहे हैं।[4]

उस समय दिल्ली सिकदर अफगान के हाथ में थी। उसने वावर खाँ और हैवत खाँ के नायकत्व मे ३०,००० आदमियो को सरहिंद की तरफ भेजा क्योकि हुमायूं युद्ध करने के लिये चल दिया था। ऐसा इसलिए किया गया कि हुमायूं के अग्र भाग का सामना किया जाय। चगताई सेनाएँ जालंधर मे इकट्ठी हुईं। यद्यपि शत्रु की सेना वहुत वड़ी थी और उनकी स्वय की संख्या वहुत अल्प थी, फिर भी वह लड़ने

---

१. अवुल फजल, अकबरनामा, १, पृ० २०५।

२. एलफिस्टन, पृ० ४६६।

३. वही, पृ० ४७१।

४. वही, पृ० ४७२।

को तैयार हो गई। आगे बढकर सतलज को पार किया. सूर्य डूबा ही था कि लडाई शुरू हो गई।

हुमायूँ की मृत्यु

तारीख ८ रवी-उल-अव्वल की सायंकाल को वादशाह अपने पुस्तकालय की छत पर चढ़ा तथा वहाँ कुछ देर खडा रहा। जव वह नीचे उतर रहा था तो मौअज्जिन ने नमाज की अजान दी। वादशाह भक्तिपूर्वक सीढी पर बैठ गया लेकिन जव उठने लगा तो उसका पैर फिसल गया और वह सीढियों से लुढककर जमीन पर आ गिरा। उसके सेवकों को बडा धक्का लगा और वे वादशाह को अचेत अवस्था मे महल में ले गए। शाही हकीमों ने सव कुछ किया लेकिन निष्फल हुआ तथा वादशाह २४ जनवरी, सन् १५५६ को मृत्यु की गोद मे चला गया। उसके मृत्यु की तारीख इस पक्ति से निकलती है—'हुमायूँ वादशाह अज वम उफ्तद।'

वादशाह को मृत्यु से कुछ समय पहले इसका कुछ आभास था क्योकि वह वडी भावुकता के साथ आँखो मे आँसू भर कर ये पक्तियाँ दोहराया करता था—

'ऐ खुदा तू अपनी अपार दयालुता से मुझे अपना ले,
तो अपने अस्तित्व के ज्ञान के सवंध मे मुझे अपना भागीदार वना ले,
जीवन के दुख और चिंताओ से मेरा हृदय खड-खंड हो गया है,
तेरा वदनसीव दीवाना (प्रेमी) तुझे वुलाता है,
मुझे मुक्ति प्रदान कर।'[1]

---

१. एर्सकिन, पृ० ५३५, हुमायूँ।

शेरशाह

शेरशाह के पूर्वज

शेर खाँ सूर अफगानो के कबीले का एक व्यक्ति था। उसका पहले का नाम फरीद,[1] इब्न हसन इब्न इबराहीम शेरा खेन था। इब्राहीम सर्वदा घोडो का व्यापार करता था किंतु व्यापारियों के समूह मे उसे कोई समान प्राप्त न था।

शेरशाह ने कहा कि "मुझे अफसोस है कि मेरे हाथ मे शक्ति उस समय आई जब मेरा जीवन समाप्त होने वाला था।"

"तैमूर वश के लिये यह दुर्लभ सौभाग्य की बात थी कि उन्होने अपने जीते हुए राज्य को अत मे पुनः प्राप्त किया जिसे शेरशाह अफगान ने जो एक माना हुआ मौलिक प्रबधकर्ता था, दृढ कर दिया था। उसने अनजाने ही मुगलोके लिये एक ऐसा शासन यंत्र खडा कर दिया, जो बादशाह की शान के नये आदर्शों को खडा करने के लिये आवश्यक था, जिसको बाद मे उन्होंने निबाहा और जो स्वय मुगल अपने लिये नही कर सकते थे।"[2]

प्रोफेसर रशब्रुक विलियम्स ने लिखा है कि जिस प्रकार हुमायूं के प्रथम शासन की घटनाओ का शेरशाह की उन्नति के साथ गहरा संबध है, उसी प्रकार हुमायूं की राज्य प्राप्ति के साथ शेरशाह के वंशजों की विपत्तियो का गहरा सबध है। दोनों से हमें एक ही उपदेश मिलता है कि प्रशासकीय योग्यता की घातक अक्षमता अक्षुण्ण रूप मे पिता से पुत्र को नही मिलती।

शेरशाह के प्रथम जीवनी लेखक 'अब्बास' ने तारीख-ए-शेरशाही में लिखा है कि "शेरशाह का जन्म बहलूल के जीवन काल में हुआ

---

1. अब्बास खाँ शैरवानी, तारीखे-शेरशाही, डा० परमात्माशरण की हस्तलिपि, पृ० ६-११, इलाहाबाद विश्वविद्यालय की हस्तलिपि, पृ० ७–११, अलीगढ विश्वविद्यालय की हस्तलिपि, पृ० ६–१०, इलियट; बाडलीएन लायब्रेरी, न० ३७१।
2. रशब्रुक विलियम्स, पृ० १५२।

था।[१] शेरशाह सुल्तान का डा० कानूनगो के अनुसार 'सन् १४८६ होना चाहिए।[२]' शेरशाह का दादा इब्राहीम खाँ सूर अपने पुत्र हसन खाँ के साथ, जो शेरशाह का पिता था, अफगानिस्तान से हिंदुस्तान आया था।[३] ये लोग बेजवाडा के परगने में बस गए थे। बाद में हिसार-फिरोजा के जमाल खाँ सारंगखानी ने इब्राहीम को ५० घोड़े का सरदार बना दिया और इसके लिये उसको नारनोल के परगने में गाँव प्रदान कर दिए।' बाद मे इब्राहीम की मृत्यु के बाद अपने पिता की जागीर हसन खाँ को कई और गाँवो के साथ मिल गई।

जब सिकदर लोदी ने जमाल खाँ को जौनपुर भेजा तो वह शेरशाह के पिता को अपने साथ ले गया क्योंकि वह हसन खाँ की सेवा मे बहुत सतुष्ट था और उसने सहसराम, बनारस के पास हाजीपुर और टांडा के परगने, ५०० घोडो की सरदारी मे जागीर दिए।[४]

होनहार बचपन, सन् १५०१—

हसन खाँ के आठ पुत्र थे, फरीद खाँ और निजाम खाँ एक अफगानी माँ से उत्पन्न हुए थे। अपने पिता से नाराज होकर वह जौनपुर गया तथा जमाल खाँ के समक्ष उपस्थित हुआ।[५] जिस समय वह जौनपुर गया उसकी अवस्था १५ साल की थी। हसन खाँ अपनी और माँ के वश मे आकर ऐसा किया था, इस कारण कल्पना की जा सकती है कि फरीद और उसकी माता को कितना कष्ट हुआ होगा क्योंकि उस समय कुलीन पत्नी सामने कहे बैठ नही सकती थी[६]। लेकिन हसन खाँ दासियो से भी शादी

१. हस्तलिखित प्रति अब्बास, पृ० १२, हस्तलिखित प्रति माञ्जन एफ. २०४ बी०।
२. इलियट एड डाउसन, ४. पृ० ३०५।
३. वही, पृ० ३०८।
४. हस्तलिखित प्रति अब्बास, पृ० १६।
५. वही पृ० १७।
   इलियट, हस्तलिखित प्रति, ४, पृ० ४११, निजामुद्दीन (फारसी मूल २३३), फरिश्ता (मूल ३२१) सरन, स्टडीज इन मेडिवल हिस्ट्री, पृ० ३२-३३।
६. इलियट एण्ड डाउसन, ४, पृ० ३१७।

किया था। जौनपुर जाकर फरीद बडे बडे लोगो की जीवनियाँ तथा अच्छे अच्छे ग्रंथो का अध्ययन किया। अब उसमें इतिहास-प्रेम और पुराने शासकों की जीवनियाँ पढने मे रुचि थी।

कुछ वर्ष बाद[1] ऐसा हुआ कि हसन खाँ, जमाल खाँ के पास आया क्योंकि उसके रिश्तेदारो ने फरीद को निकाल देने पर उसको बुरा भला कहा था। उन्होने यह भी कहा कि चाहे फरीद की उम्र अभी बहुत छोटी है लेकिन ऐसा मालूम होता है कि वह भविष्य मे बहुत बड़ा आदमी बनेगा। उसने इतनी योग्यता प्राप्त कर ली है कि अगर हसन खाँ उसके सुपुर्द एक परगना कर दे तो उसका काम और अपना कर्तव्य पालन वह बहुत अच्छी तरह से करेगा।

शेरखाँ और मुगल (१५२७-२८)

जौनपुर के गवर्नर सुलतान जुनैद बरलास की सहायता से शेरखाँ को आगरे में बाबर के पास नौकरी मिल गई।[2] वहाँ दरबार मे नियुक्ति हो जाने पर वह कुछ अर्से तक मुगलो मे रहा और चन्देरी के घेरे के समय वह मुगल सेना मे था। वहाँ उसने उनकी सैनिक व्यवस्था, उनके सरदारो का चरित्र और उनकी शासन व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त किया। वह अफगानों से कहा करता था 'अगर भाग्य और समृद्धि ने मेरा साथ दिया तो मै मुगलो को हिंदुस्तान से बहुत आसानी से निकाल दूंगा।' बाबर भी इससे बडा प्रभावित था तथा कहा करता था कि शाही चिह्न इसके मस्तक पर नजर आते है।

पहला कदम (सन् १५२९)

शेरखाँ इतना होशियार था कि जो कुछ उसने मुगलो मे रहकर देखा, उसके महत्व को वह भूलने वाला नही था। इसलिये वह प्रथम अवसर प्राप्त होते ही बाबर के डेरे से चल दिया।[3] उसने कहा 'न तो मुझे मुगलो मे कोई विश्वास है और न उनको मुझमे। इसलिए मुझे सुल्तान मोहम्मद खा के पास जाना चाहिए।[4] जब सुल्तान मोहम्मद मर गया

---

१. कानूनगो, शेरशाह और उसका समय, पृ० ८।

२. कानूनगो, शेरशाह, पृ० ३४।

३. कानूनगो, शेरशाह, पृ० ४४, ५२, ५३। ४. वही, पृ० ५८-५९।

तो (अक्टूवर, सन् १५२६ के लगभग) विहार और उसके अधीन इलाकों मे शेरखाँ उसके लडके जलाल खाँ का नायव वन गया।

इसके वाद सन् १५३० ई० में शेरखाँ ने चुनार का महल दुर्ग छीन लिया। देशों को हडपने में यह उसका सबसे पहला कदम था। इस घटना के विषय मे अब्वास सवीनी ने लिखा है[1] कि इब्राहीम लोदी ने चुनार का किला ताज खाँ सारंगखानी के सुपुर्द करके शाही खजाना वहाँ जमा किया था। ताज खाँ अपनी स्त्री लाड मलिका में प्रेमासक्त था जो वडी बुद्धिमती स्त्री थी। एक दिन ताज खाँ के सवसे वड़े लडके ने, जो दूसरी पत्नी से था, लाड मलिका को तलवार से जख्मी कर दिया, लेकिन घाव वहुत गहरा नही लगा। ताज खाँ वहुत नाराज हुआ तथा तलवार लेकर मारने को दौड़ा, लेकिन लड़का वाप की ही तलवार से उसकी जान ले लिया।

इस घटना के वाद शेरशाह ने चालाकी से लाड मलिका से संवंध स्थापित किया और उससे विवाह कर लिया।[2] शादी करने के वाद इसे वाहुल्य संपत्ति प्राप्त हुई।

हुमायूँ के साथ पहली मुठभेड़ (सन् १५३१)

हुमायूँ ने एक वडी सेना तैयार करके हिंदू वेग के सरक्षण मे चुनार विजय के लिये भेजा। चार महीने तक घेरा चलता ही रहा (किले का) और अत मे शेर खाँ ने अधीनता स्वीकार कर ली और अपने लडके कुतुव खाँ को वादशाह की सेवा मे भेजकर संधि कर ली।[3]

विवश होकर उसने आज्ञा पालन शुरू कर दिया था और अपने लडके को शाही खिदमत मे भेज दिया था। लेकिन अभी साँप घायल ही हुआ था मरा नही था, और इससे अनुमान होता था कि भविष्य में विपत्ति आने वाली है। हुमायूँ जव काल्पनिक सुख की नीद सो रहा था तव इसने पुनः धक्के से संभल कर वल प्राप्त कर लिया। अव हुमायूँ और शेरखाँ के वीच आजन्म शत्रुता का वीज जम गया।[4]

---

१. इलियट एंड डाउसन, पृ० ३४३-४६।

२. कानूनगो, शेरशाह, पृ० ७१।

३. वही, पृ० ७६-७७।

४. वही, पृ० ७८।

कन्नौज और बिलग्राम के वाद (सन् १५४०-४२)

जव शेरशाह मुगलों के विपय में निश्चित हो गया तो उसने सुजात खाँ को, जिसको इसने विहार और रोहतास का फौजदार वनाया था, लिखा कि ग्वालियर के किले को घेर लिया जाय, फरमान मिलते ही सुजात खाँ ने ग्वालियर को घेर लिया कन्नौज से शेरशाह ने वरमाजिद गुर को एक वडी सेना देकर भेजा लेकिन उसको निर्देश किया कि हुमायूं वादशाह के साथ लड़ाई शुरू न करे।[1] दूसरी फौज उसने नासिर खाँ की अध्यक्षता में संभल की ओर भेजी। कन्नौज के आस-पास के प्रदेश मे शांति स्थापित करके वह स्वय आगरे की ओर रवाना हो गया।

जव शेरशाह आगरे पहुँचा तो वादशाह वहाँ नही टिक सका तथा लाहौर की ओर भाग गया। इससे शेरशाह वहुत अप्रसन्न हुआ और वरमाजिद को वुरा भला कहा। आगरा पहुँचकर वह वहाँ कुछ दिन टिका लेकिन खवास खॉ और वरमाजिद गुर को एक वड़ी सेना देकर लाहौर की ओर वादशाह का पीछा करने के लिये भेजा।[2]

दिल्ली पहुँचने पर संभल नगर के मुख्य लोग और निवासी आए तथा उन्होने शिकायत की कि नासिर खाँ ने उनका दमन किया है तथा कई प्रकार से उन्हे यातनाएँ दी है। इसलिये शेरखाँ ने ईसा खा को, जो वीर और न्यायी था, उधर भेजा और नासिर खाँ को उसके अधीन कर दिया। इसके वाद शेरशाह ने शाति की साँस ली और कहा कि 'अव दिल्ली से लखनऊ तक के प्रदेश के विषय मे मुझे कोई चिंता नही है।'[3]

मुगलो की सेना के एक भाग का, जो वादशाह को छोड़कर कावुल की ओर कूच कर रहा था, खवास खाँ से मुकाविला हो गया और वह लड़ने के लिये ज्यादा ताकतवर न होकर, अपने झंडे और नक्कारे छोड़कर भाग गए। ये सव चीजे खवास खाँ के हाथ मे आ गईं और अफगान सेना उस स्थान से वापस शेरशाह के पास आ गई।

---

१. कानूनगो, पृ० ३६९-७०।

२. वही, पृ० ३७३।

३. कानूनगो, पृ० ३७८।

शेरशाह के उत्तराधिकारी

सलीम इस्लामशाह के अतिरिक्त शेष बादशाहों का कोई महत्व नहीं है। ये लोग केवल ऐसे प्रतिद्वद्वी थे, जो शेरशाह की बादशाहत के टुकडों के वास्ते आपस मे लड़ते रहे। मुगल साम्राज्य के इतिहास पर उनका कोई प्रभाव नही पड़ा। 'कीन' ने लिखा है कि 'निरंकुश शासन का यह सबसे अधिक दुर्भाग्य है कि उत्तम शासक के बाद योग्य उत्तराधिकारी होने का निश्चय नही रहता।' शेरशाह के बाद ऐसे लोगो के हाथ में बादशाहत आई जिनको जन्म से शक्ति मिली थी, पुरुषार्थ से नही। शेरशाह ने कहा था कि 'अफगानो का राज्य फूट के कारण नष्ट हुआ है।' जब शक्तिशाली बादशाह नही रहा तो अफगान सरदारों में फिर फूट उत्पन्न हो गई। सलीम का साधारण राज्यकाल प्रपंचो और निष्फल झगडों में व्यतीत हुआ और जब नवंबर सन् १५५४ मे उसकी मृत्यु हो गई तो उसके पुत्र की हत्या कर दी गई और परस्पर लडने लगे, जिसका परिणाम यह हुआ कि 'हेमू' नामक एक हिंदू के हाथ मे सारी शक्ति आ गई।'[1]

सलीम शाह सूर

शेख अब्दुल्ला ने 'तारीख-ए-दाऊदी' में लिखा है कि 'अकबर शाही मे लिखा हुआ है कि जब कालिंजर मे शेरशाह का जीवन समाप्त हो गया तो सरदारो ने देखा कि शेरशाह का ज्येष्ठ पुत्र अकिल खाँ (रणथंभौर से) जल्दी नही आ सकेगा और रियायत को शासक की आवश्यकता थी, इसलिये उन्होने जलाल खॉ के पास नरीवा (भाटा प्रात) में था, एक आदमी भेजा। वह पॉच दिन मे कालिंजर पहुँचा। सरदारो की सहायता से २५ मई, सन् १५४२ को वह राजसिंहासन पर बैठा दिया गया। उसने इस्लाम शाह की उपाधि धारण की और उसकी मुहर पर निम्न-लिखित मुहर खुदवाया गया।

'भगवान की कृपा से ससार सुखी हो गया है
क्योकि शेरशाह सूर का पुत्र इस्लाम शाह राजा बन गया है।'[2]

१. कीन, १, पृ० ६६।

२. ब्रिग्स, २, पृ० १२६-१२७ (फरिश्ता), इलियट एड डाउसन, ४, पृ० ४७८-८६, नोट १।

गद्दी पर बैठने के बाद शेरशाह के बनाए हुए नियमो के विषय में पूछताछ करने के बाद उसने कुछ को तो उसी रूप में रहने दिया, कुछ छोड़ दिए और कुछ को काट-छाँट कर अपने विचारो के अनुकूल बना लिया। एल्फिस्टन ने लिखा है कि अपने पिता की भाँति वह भी सुधारक था, परतु कानून के विषय मे नही, इमारतें बनाने के विषय मे।'[1] दूसरे लेखक उसके नियमो को मूर्खता के नियम मानते है जिसका निर्माण इसलिये किया गया था कि उसके पिता की नीति को बदल दिया जाय और वह स्वय एक बडा व्यवस्थापक माना जाय। इस्लाम शाह संसार को यह बतलाना चाहता था कि वह खुद भी 'कमाल कर सकता है।'[2] सलीम शाह, अपराध करनेवालों को कठोर से कठोर दड देता था जिससे की दूसरो को सीख मिले।[3]

अब्दुल्ला ने लिखा है कि 'इस्लाम शाह ठाठ बाट की दृष्टि से अपने पिता से मिलता जुलता था और उसी की भाँति उसमे विजय और राज्य की अभिलाषा थी। राज्य सिंहासन पर बैठते ही दो महीने का वेतन नकद दिलाया।[4] 'शेरशाह के कुछ सरदारो को ग्लानि हुई कि कुछ नियम ऐसे बनाए गए हैं जिनसे उनकी प्रतिष्ठा कम हो गई है। इस कारण इस्लाम के प्रति उनका अच्छा भाव नही रहा। उधर इस्लाम शाह भी उन लोगो पर सदेह करता था, जिसके परिणाम स्वरूप बादशाह और बड़े बड़े सरदारो के पारस्परिक संबंधो में अब बहुत बड़ा अंतर आ गया।'[5] परतु वह अपने शासनकाल के अतिम समय मे उसने लोगो के साथ उदारता एव दया का व्यवहार किया।[6]

जो भी विद्रोह हुआ सलीम शाह ने बडी शक्ति के साथ उसे कुचल दिया।[7] सलीम ने घोषणा की थी कि 'उत्तराधिकार से राज्य किसी

---

१. एलफिस्टन, पृ० ४५६।

२. इलियट एड डाउसन, ४, पृ० ४८० नोट २, वुल्जले हेग · कैम्ब्रीज हिस्ट्री आफ इडिया ४, पृ० ६३।

३. वही, ४, पृ० ४८६-८७। ४. वही, पृ० ४८६।

५. वही, पृ० ४७६-८०। ६. इलियट एंड डाउसन, ४, पृ० ४८५।

७. इलियट एड डाउसन, पृ० ४९६।

को नही मिलता है। राज्य उसका है जो इसको तलवार के बल से लेता है।[1]

नवंबर, सन् १५५४ ई० को उसके प्राण पखेरू उड़ गए तथा उसके शव को ग्वालियर से सहसराम लाया गया और पिता के पास ही उसको भी दफना दिया गया।[2]

फीरोज शाह सूर

फरिश्ता ने लिखा है कि 'सलीम शाह की मृत्यु के बाद उसका लडका फिरोज, जिसकी अवस्था बारह वर्ष की थी, उत्तराधिकारी बना, लेकिन तीन दिन ही गद्दी पर रहा कि निजाम खाँ सूर (शेरशाह का भाई)[3] के लडके मुबारिख खाँ ने राजकुमार को चुपके से मार दिया और महमूद शाह आदिल की उपाधि धारण करके गद्दी पर बैठा। सलीम का यह साला था। पहले इसका खर्च राज्य के द्वारा वहन करना पड़ता था।[4] महदवी आदोलन के कारण यह ज्यादा दिन तक टिक नही सका तथा इसका भी विनाश हो गया।[5]

एलफिस्टन ने लिखा है कि 'उसका चरित्र ऐसा नही था कि उसके कारनामो को भुलाया जा सके। उसकी अयोग्यता और दुर्व्यसन के कारण लोग उससे घृणा करते थे।[6] यह अपव्यय को भूल से उदारता समझता था। इस कारण अपना राजकोष खोलकर सब प्रकार के लोगों पर खर्च कर दिया। जब उसके पास कुछ नही रह गया तो सरदारो की जागीर छीनने लगा।[7] ये जागीरे छीन करके उन्हे देने लगा, जो इसके कृपा पात्र थे।[8]

---

१. इलियट एंड डाउसन, पृ० ४८७।

२. वही, पृ० ५०४-५।

३. कानूनगो, शेरशाह, पृ० ९६।

४. ब्रिग्स, २, पृ० १४१-४२ (फरिश्ता)।

५. टाइटस, इंडियन इस्लाम, पृ० १०६-०९।

६. एलफिस्टन, पृ० ४६०।

७. ब्रिग्स, २, पृ० १४४ (फरिश्ता)।

८. एलफिस्टन, पृ० ४६१।

अपनी रियाया की दृष्टि में बादशाह दिन प्रतिदिन घृणित होने लगा और सरकार का सारा काम ठप्प सा हो गया।[1]

इब्राहीम खाँ सूर

ऐसी परिस्थिति मे स्वार्थी लोग अपने अपने स्वार्थ मे लग गए। 'ताज खाँ किरानी' ने स्पष्ट घोषणा कर दी 'दरबार का हाल इतना बिगड चुका है कि मैं स्वयं अपने भाग्य की परीक्षा करना चाहता हूँ।' जब यह विद्रोह कर दिया तो बादशाह ने स्वयं विवश होकर उसका पीछा करने के लिये चुनार की ओर बढा। इस अवसर का लाभ उठाकर बादशाह के चचेरे भाई और साले इब्राहीम खाँ ने, बहुत बड़ी सेना तैयार की और दिल्ली पर अधिकार जमा लिया। जब ऐसा हुआ तो बादशाह ने पूर्वी प्रदेशों को लेकर संतुष्टी प्रकट की, जबकि इब्राहीम खाँ ने पश्चिमी प्रदेशों पर अपना अधिकार कर लिया।[2]

सिकंदर शाह सूर

इब्राहीम खाँ ज्यो ही गद्दी पर बैठा शेरशाह का दूसरा भतीजा शाहजादा अहमद खाँ ने अन्य सरदारो की सहायता से, वह इब्राहीम खाँ को परास्त किया तथा वह सभल की ओर चला गया। परंतु इस सुख का थोड़े समय तक ही आनद ले सका क्योकि हुमायूँ ने अपने खोये हुए राज्य के लिये दूसरा सघर्ष किया। यह पराजित हुआ और शिवालिक की पहाडियो मे जा घुसा तथा वहाँ से निकाल भगाए जाने पर बंगाल में शरण ली। बंगाल मे थोडे समय तक रहने के बाद इसकी मृत्यु हो गई।[3]

इस प्रकार सूर साम्राज्य का बहुत थोड़े ही समय मे विनाश हो गया।

हुमायूँ के प्रति शेरशाह की नीति

एक तरफ मुगल साम्राज्य का पतन हुआ तथा हुमायूँ का निर्वासन और दूसरी तरफ मुगल साम्राज्य की नीव पर सूर अफगानो ने एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना की।[4] चौसा तथा कन्नौज के युद्धो मे

---

१. ब्रिग्स, २, पृ० १४५ (फरिश्ता)। २. वही, पृ० १४७-४८।
३. ब्रिग्स, २, पृ० १५३।
४. डा० कानूनगो, शेरशाह पृ० ३३१-३२।

हुमायूं को पराजित करने के पश्चात् शेरशाह पूर्ण रूप से भारत का शासक बन गया। उत्तरी भारत को एक सूत्र मे बांध दिया और संगठित सुव्यवस्थित शासन प्रणाली की भी स्थापना की।[1] शासनकर्ता के रूप में शेरशाह का महत्वपूर्ण स्थान है।

हुमायूं के पलायन के बाद शेरशाह को अपने साम्राज्य को संगठित करने का अवसर मिला। जब तक शेरशाह जीवित रहा। हुमायूं अपनी ही समस्याओ मे व्यस्त रहा तथा सूर साम्राज्य पर आक्रमण करने का उसे न अवसर मिला न सुविधा ही।[2]

इस्लाम शाह तथा हुमायूँ

दुर्भाग्यवश शेरशाह अधिक दिनो तक जीवित न रह सका। कालिंजर के दुर्ग के निकट अत्यंत आकस्मिक परिस्थितियो मे उसकी मृत्यु हो गई। (२२ मई १५४५ ई०)। शेरशाह की मृत्यु के पश्चात् उसका दूसरा लडका जलाल खाँ इस्लाम शाह के नाम से गद्दी पर बैठा। यह योग्य पिता का योग्य उत्तराधिकारी था।[3]

हुमायूं के प्रति इस्लाम शाह ने शेरशाह की ही तरह आक्रमणकारी नीति नही अपनाई। कामरान के सहायता माँगने के लिये आने पर भी उसने उसे सहायता देना उचित नही समझा। उसकी नीति सतर्कता तथा सीमा रक्षा की थी।[4]

इस्लाम शाह की गति ने हुमायूं को आश्चर्यचकित कर दिया। जब तक इस्लाम शाह जीवित रहा, हुमायूं को भारत पर आक्रमण करने का साहस नही हुआ।[5]

---

१. डा० कानूनगो, शेरशाह, पृ० ३४७-४१५, शरन, दि प्राविंसियल गवर्नमेंट आफ दि मुगल्स, पृ० ४६-६० तथा १६१-६४, तथा १६१-६४, ए० एल० श्रीवास्तव, शेरशाह एंड हिज सक्सेसर्स, पृ० ५६-६१।

२. इलियट तथा डाउसन, ५, पृ० ४७१।

३. वही, पृ० ४८६-८८, ए० एल० श्रीवास्तव, पृ० ११५-१८, राय, एक्सेसर्स आफ शेरशाह, पृ० ५४-६०

४. राय, पृ० ६३-६४।

५. राय, सक्सेसर्स आफ शेरशाह, पृ० १०-२६, त्रिपाठी, राइज़ एंड फाल, पृ० १४३-५२, तारीखे दाऊदी, इलियट एंड डाउसन, ४, पृ० ५०१-५०३।

सूर साम्राज्य का विघटन

लगभग ९ वर्ष शासन करने के पश्चात् ३० अक्टूबर १५५३ ई० को भगंदर की बीमारी से इस्लाम शाह की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के पश्चात उसका १२ वर्षीय पुत्र फिरोज गद्दी पर बैठा, किंतु उसका शासन अधिक दिन नही रहा। उसके मामा और चाचा मुबारिज खाँ ने उसे मार डाला और स्वय मुहम्मद आदिल शाह के नाम से गद्दी पर बैठा। मुहम्मद आदिल शाह के राजत्व काल (१५५३-५७) में सूर साम्राज्य का विघटन हो गया।[1]

शेरशाह जिस राष्ट्रीय भावना को जागृत किया था वह समाप्त हो गई। अफगान अमीरो की दबी वासनाएँ तथा महत्वाकांक्षाएँ पुनः जागृत हो गईं।[2] एक अच्छे गायक के अतिरिक्त उसमे अन्य कोई भी गुण नही थे। सौभाग्य से उसके हिंदू अधिकारी हेमू ने उसकी बड़ी सहायता की। हेमू अपनी योग्यता से धीरे धीरे बढ़ते बढते एक अत्यंत शक्तिशाली तथा वास्तविक शासनकर्ता बन गया।[3]

आदिल शाह ने अफगान नेताओं के विरुद्ध इस्लाम शाह की नीति का अनुशरण किया। उसने नये अमीरो को प्रोत्साहित किया तथा पुराने अमीरो को जिनसे उसे भय था, दबाने का प्रयत्न किया।[4]

ग्वालियर मे जागीर वितरण के समय दरबार में ही तलवारे चल चल गई। आदिल शाह ने कन्नौज की जागीर शाह मुहम्मद फरमूली से लेकर सरमस्त खाँ सारवानी को दे दी। इससे फरमूली बहुत नाराज हुआ। फरमूली के पुत्र सिकंदर ने दरबार मे सरमस्त को मार डाला। वह स्वयं मारा गया और आदिल शाह को जनानखाने मे भाग कर अपने प्राण बचाने पड़े।[5] इस घटना के पश्चात् हालत तेजी से बिगड़ने लगी। ताज खाँ फर्रानी ने विद्रोह किया। आदिल शाह ने छिबरामऊ मे उसे

---

१. डा० कानूनगो, शेरशाह, पृ० ४२५-२६।
२. इलियट एंड डाउसन, ४, पृ० ५११।
३. राय, पृ० ३७।
४. इलियट तथा डाउसन, पृ० ५१३।
५. राय, सक्सेसर्स आफ शेरशाह, पृ० ६५-६६।

पराजित किया। वहाँ से भाग कर ताज खाँ चुनार गया, जहाँ हेमू ने उसे पुनः पराजित किया तथा बंगाल की सीमा तक भगा दिया।[1]

आदिल शाह ने इबराहीम खाँ को बंदी बनाना चाहा लेकिन उसकी पत्नी को पता चल गया, इस कारण उसने अपने पति को चुनार के किले से भागने मे सहायता की। इबराहीम बयाना भाग गया, आदिल शाह ने उसके विरुद्ध ईसा खाँ नियाजी को भेजा लेकिन वह पराजित हुआ। इस सफलता के कारण वह काफी उत्साहित हुआ और आगे बढ़कर दिल्ली पर अधिकार कर लिया और इबराहीम शाह की उपाधि धारण की तथा अपने को सुल्तान घोषित किया। उसने आगरे पर भी अधिकार कर लिया। इस प्रकार दिल्ली तथा आगरा आदिलशाह के हाथ से निकल गया।[2]

इस प्रकार की हालत को देखकर अन्य गवर्नर तथा अमीर विद्रोह कर दिए और अपने को स्वतत्र सम्राट घोपित कर दिए।[3] धीरे धीरे सूर वश का चिराग बुझ गया।

---

१. वही, पृ० ६६।

२. काम्मिसारियट, हिस्ट्री आफ गुजरात, पृ० ४१४।

३. डा० कानूनगो, शेरशाह, पृ० ४२६।

अकबर

अकबर भारत के लिये एक विदेशी था। उसकी शिराओं में एक बूंद भी भारतीय रक्त नही था।[1] पितृपक्ष से वह मालों के 'तेमरलेन'— मध्य एशियाई तुर्क महान अमीर तैमूर के वशानुक्रम मे सातवी पीढी मे जन्मा था।[2] उसकी पूर्वजा, बाबर की माता तेरहवी सदी के मंगोल एशियाई 'आतंक' चगेज खाँ के द्वितीय पुत्र चगताई से उत्पन्न मंगोलों के महान खान युनुस खाँ की पुत्री थी।[3] तुर्कों की विशेष शाखा, जिससे अकबर के पूर्वज संबंधित थे।[4] मध्य एशिया के तुर्की कबीलो का रक्त मंगोलो के रक्त से यथेष्ट भाषा में घुल मिल गया था। अकबर के पुत्र जहाँगीर ने चगेज की प्रथाओ तथा तैमूर के विनियमो दोनो ही के पालन मे गौरव अनुभव कर इस संबध को मान्यता प्रदान की थी।[5] अकबर मंगोल या मोगल की अपेक्षा तुर्क कही अधिक था, और उसकी माता ईरानी थी। इस प्रकार अकबर का चरित्र, जहाँ तक वह आनुवंशिकता पर निर्भर था, वस्तुतः समीपस्थ पूर्वजो मे सचरित, तीन स्पप्ट अभारतीय अर्थात् तुर्क या तुर्की, मंगोल या मोगल तथा फारसी अथवा ईरानी रक्तांशो का परिणाम था। उसके दरबार मे व्यवहृत शिष्टाचार और प्रथाएँ तुर्की, मंगोल और ईरानी इन तीनो ही स्रोतो से व्युत्पन्न थी।[6]

अकबर का जन्म (१४ सावन, ६४६ हि०), जो बृहस्पतिवार २३ नवंबर, १५४२ को हुआ था।[7] हुमायूं के पास अपने पुत्र की जन्म खुशी

---

१. हैवल, इंडियन आर्किटेक्चर, १६१३, पृ० १६२।

२. रास, जे० एंड प्रोसी०, ए० एस० बी०, १६१० एक्स्ट्रा नबर, पृ० ४।

३. कमेंटेरियस, पृ० ६२५-६५६।

४. इंसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, ११वा सं० इलियट, तुर्क, पृ० २३।

५. जहाँगीर, तुजुक-ए-जहाँगीरी (आर० बी०, १) पृ० ६८, ७६।

६. ईलियट, तुर्क, पृ० २७-४७२।

७. अकबरनामा, १ (अनु०), पृ० ३८१।

मनाने के लिये कुछ भी नही था। अपने पुत्र के जन्म पर केवल शिवनी (मुकुट की) आप लोगों को देने मे, समर्थ हूँ। आशा करता हूँ कि एक दिन उसकी ख्याति समस्त ससार मे वैसे व्याप्त होगी जैसे कि यह सुगंध इस समय इस कोष्ठ मे व्याप्त हो रही है।[1] यह समझ कर कि हमीदा बानो बेगम अब यात्रा करने योग्य होगी, शिशु सहित उसे अमरकोट से लाने के लिये दूत भेजा गया। राह मे पड़ाव करती विश्राम पूर्वक यात्रा संपन्न कर वह बीसवी रमजान को अकबर के जन्म के पैंतीसवे दिन २८ दिसंबर को सुरक्षित शिविर पहुँची। हुमायूँ को तब पहली बार अपने पुत्र को गोद मे लेने का सुख प्राप्त हुआ। जून के अपने शिविर में वह ११ जुलाई, १५४३ तक रहा, फिर वह अपने खोये हुए सिंहासन की खोज में प्रयत्नशील हुआ।[2]

अकबर का राज्यारोहण शुक्रवार, २ रबी हि० ९६३ को हुआ जो १४ फरवरी १५५६ के तुल्याक है।[3] उत्तराधिकार ग्रहण करने की घोषणा दिल्ली से ११ फरवरी को की गई थी, कालानोर में राज्यारोहण के तीन दिन पूर्व।[4]

राज्यारोहण के तीन दिन बाद आयोजित राज्याभिषेक दरबार में तत्काल उपस्थित होने की आज्ञा का द्रोहात्मक उल्लंघन करने के कारण शाह अबुल माली को बंदी बनाने के लिये संरक्षक को विवश होना पड़ा।[5]

राजनीतिक स्थिति

जब अकबर कलानोर मे तख्त पर बैठा तो यह नही कहा जा सकता कि उसके पास कोई था। बैरम खाँ के नेतृत्व में जो छोटी सी सेना थी,

१. वही, पृ० ३८९।

२. अकबरनामा पृ० ३९०-९१।

३. कामेंटारियस, पृ० १५८, ऐनुअल प्रोग्रेस रिपोर्ट (मुहम्मडन) ऑफ ए० एस० एनसर्कल फॉर १९१०-११, पृ० १९, एनु०, रिय० ए० ए० एस० इंडिया (१९०७-०८), पृ० ३१-३२, ई० और डा० ५, पृ० २४७।

४. अकबरनामा, १, (अनु०), पृ० ६५८।

५. बेवरिज, पृ० १७२।

उसका कुछ डगमगाता हुआ सा अधिकार पंजाब के कुछ जिलों पर था और वह सेना भी ऐसी नही थी जिसपर पूरा विश्वास किया जा सके।[1]

अकबर को वास्तव मे सम्राट बनने के लिये यह सिद्ध करना था कि वह दूसरे उम्मीदवारो की अपेक्षा अधिक योग्य है और कम से कम उसको अपने पिता का खोया हुआ राज्य तो पुनः प्राप्त करना ही था।[2]

शेरशाह के उत्तराधिकारियों मे अभी सिकंदर सूर का दमन करना था। महमूद शाह अदली अभी जीवित था और उसका हिंदू सेनापति हेमू अपने नाम मात्र के स्वामी से भी अधिक शक्तिशाली हो गया था।[3]

निजामुद्दीन अहमद कहता है कि "इस शासन के प्रारभिक दिनो की मुख्य घटनाओ मे शाह अबुल माली का बलवा भी एक था। स्वर्गीय सम्राट इसकी ओर बहुत झुका हुआ था, जिससे उसका अभिमान बढ़ गया था, उसमे धृष्टता बढ गई थी और वह अनुचित रूप से व्यवहार करने लगा था।[4] खानखाना (बैरम खाँ) ने उसको गिरफ्तार किया और उसको मारने ही वाला था कि अकबर ने उस पर दया की और कहा कि उसके राज्य के आरंभ में ही एक सैय्यद के वशज का खून नही होना चाहिए, विशेषकर उसका कोई अपराध सिद्ध नही है। इसलिये अकबर ने उसको पहलवान कलगज (कोतवाल) के सुपुर्द किया और लाहौर भेज दिया। अबुल मआली हिरासत से भाग निकला परंतु फिर पकड़ा गया और उसको बदी बनाकर बयाने के दुर्ग मे भेज दिया गया।[5]

निजामुद्दीन आगे लिखता है कि 'जब तक सिकदर मैदान मे खड़ा रहा तब तक सम्राट के अफसर उसको गिरफ्तार नही कर सके, यद्यपि उन्होने अपनी संपूर्ण सेनाएँ सिकंदर के विरुद्ध भेज दी। शाही सेनाओ ने

---

१. श्री राम शर्मा, भारत मे मुगल साम्राज्य, अनु०, पृ० १६८, स्मिथ, पृ० ३०।
२. ई० और डा०, ५, पृ० ६४।
३. श्री राम शर्मा, पृ० १६६, ई० और डा०, ५, पृ० ६४-६५।
४. स्मिथ, पृ० ३१
५. ईलियट एंड डाउसन, ५, पृ० २४८, आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इंडिया पृ० ३३१-३२।

शिवालिक पर्वतों के पास अफगानों का सामना किया और विजय प्राप्त की, जिसके लिये अकबर ने उनकी बड़ी प्रशंसा की।'[1] इस हार के बाद सिकंदर मैदान में डटा रहा लेकिन अंत में अति विवश होकर उसने अपने लड़के अब्दुर्रहमान को शिवालिक पहाड़ियों में स्थित 'मानकोट' से अकबर बादशाह के पास भेजा और कहलाया कि मैंने अनेक अपराध किए है, इसलिये दरबार में उपस्थित होने का मुझे साहस नही होता, मेरे पास कुछ दुर्लभ चीजें हैं जिनको मैं संधि भेट के रूप में भेजता हूँ। मैं चाहता हूँ कि मुझे बंगाल लौट जाने की इजाजत मिल जाय जिससे मैं निवृत्त होकर अपना जीवन व्यतीत करूँ। अकबर ने उसकी सब प्रार्थना स्वीकार कर ली और बंगाल जाने की इजाजत दे दी।[2]

सम्राट के सामने मिर्जा सुलेमान की समस्या थी जिसके जिम्मे बदख्शां था, वह हुमायूँ की मृत्यु के तुरंत बाद काबुल पर आक्रमण कर दिया, लेकिन मुनीम खाँ के प्रयत्न के कारण वह वापस बदख्शा चला गया।[3]

तारदी बेग जो हुमायूँ के समय मे प्रसिद्ध सरदारो में गिना जाता था, उसी सप्ताह में, जिसमे सम्राट की मृत्यु हुई थी, अकबर के नाम का खुतबा पढवाया। ख्वाजा सुलतान अली वजीर और मीरा मुंशी ने जो उस समय मीर-ए-अर्ज और मीर-ए-माल भी था देहली मे गड़बड नही होने दी और मेवात तथा दूसरे परगनो पर भी जो हाल ही में बादशाह के हाथ मे आए थे नियंत्रण बनाए रखा।[4] लेकिन इन सब सेवाओं के बावजूद भी तारदी बेग को स्वामिभक्ति के कारण अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा।[5]

परिस्थिति ऐसी थी कि हेमू दिल्ली की ओर बढा और तारदीबेग को हराकर राजधानी से निकाल दिया। हुमायूँ की मृत्यु का समाचार

---

१. निजामुद्दीन अहमद, तारीख-ए-दाऊदी (अनु०), पृ० २६३-६४।
२. ईलियट एड डाउसन, ४, पृ०, ५०८, स्मिथ, पृ० ४०, एल्फिंस्टन, पृ० ४९६, नोट ४।
३. ई० और डा०, ५, पृ० २४९-५०।
४. वही, पृ० २४८-४९, स्मिथ, पृ० ३८-३९।
५. श्री राम शर्मा, पृ० १७१, स्मिथ, पृ० ३३।

सुनकर महमूद शाह अदली हेमू को पंजाब की ओर रवाना किया था। ग्वालियर की विजय के उपरात इस सेनापति ने आगरे को घेर लिया और उसको जीतकर दिल्ली की ओर रवाना हुआ। गवर्नर तारदीवेग घबडा गया और आस पास के मुगल सरदारों से सहायता के लिये प्रार्थना की। हेमू ने उसपर इतनी द्रुतगति से हमला किया कि वह खेत छोड़कर भाग निकलने के लिये विवश हो गया। मुगलो के दाये पार्श्व के पैर उखड गए, सब सैनिको मे भगदड मच गई और दिल्ली नगर ने आत्मसमर्पण कर दिया। तारदीवेग ने सारे इलाके को शत्रु के लिये छोड, भाग कर सरहिंद चला गया। बैरम खाँ ने तारदीवेग को दिल्ली छोड, जहाँ वह अपनी रक्षा कर सकता था, भाग जाने के अपराध में पकड कर मरवा दिया। बैरम खाँ का कहना था कि ऐसे अवसर पर यदि नरमी से काम लिया गया तो परिणाम भयकर होगा। इस समय मुगलो के लिये यदि कोई आशा थी तो वह यह थी कि प्रत्येक व्यक्ति भरसक प्रयास करे। सम्राट ने विवश होकर इस दड का अनुमोदन किया। इस घटना के कारण, परिणाम यह हुआ कि चगताई अफसर जो अपने आपको कैकुबाद और केकोस के बराबर समझते थे, अब बैरम खाँ की आज्ञा मानने लगे और बडी शाति के साथ उसके अधीन हो गए।'[1]

विसेंट ए० स्मिथ लिखता है कि 'यह दड विना मुकदमा चलाए दिया गया था, परंतु यह आवश्यक था और मूलरूप से न्यायसगत था।[2] इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यदि तारदीवेग खाँ को दंड नही दिया जाता तो अकबर का जीवन और राज्य दोनो नष्ट हो जाते।[3]

पानीपत का युद्ध

५ नवबर १५५६ ई० को, हेमू का तोपखाना जो आगे भेज दिया गया था, अकबर की सेना के अग्र दल द्वारा प्रारभिक मुठभेड में पकड़ लिया गया था, किंतु इस क्षति के बाद भी, हिंदू सेनापति की सैन्य शक्ति अत्यधिक थी।[4] प्राचीन हिंदू परिपाटी के अनुसार वह अपनी १५०० गज

१. ब्रिग्स, २, पृ० १८६-८७।

२. आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इडिया, पृ० ३४३।

३. अकबर, पृ० ३६।

४. स्मिथ, महान मुगल अकबर (अनु०), पृ० ३४।

सेना पर विशेष भरोसा रखता था। दोनो सेनाएँ तीन-तीन भागो मे विभाजित हो गईं। ५ नवंबर को हेमू शत्रु सेना के दक्षिण और पार्श्वों मे गड़बड मचाने में सफल हुआ और अपनी विजय को निश्चित करने के लिये उसने अपने समस्त 'पर्वताकार हाथियो' का शत्रु के मध्य भाग पर जिसका नायकत्व खान जमा कर रहा था, प्रयुक्त कर दिया।[1] सभवतः विजय उसी की होती, किंतु आकस्मिक घटनावश एक तीर उसकी आँख मे आ लगी, जिसने उसका मगज छेदकर अचेत कर दिया। भारतीय सेना अपने नेता के क्षय पर जिसके जीवन पर उसका वेतन निर्भर था, युद्ध क्षेत्र मे नही टिक सकी। हेमू की सेना तुरंत ही विभिन्न दिशाओं मे तितर बितर हो गई और उसने प्रतिरोध का फिर कोई प्रयत्न नही किया।[2]

हेमू का वध

बैरम खाँ चाहता था कि अकबर काफिर के सहारक की पदवी अर्जित करे। अकबर ने अपने अभिभावक की आज्ञा का पालन किया और अपनी शमशीर से हेमू की गर्दन पर प्रहार किया। पास में खडे व्यक्तियो ने भी अपनी तलवारों से रक्त सिक्त शव पर वार किए। पानीपत के युद्ध के समय अकबर धर्मसंस्कारहीन बालक था, मात्र मनोरंजन के अनुरक्त, और उसे परिपक्व प्रौढ मनुष्य की भावनाओ का श्रेय नही देना चाहिए।[3]

दिल्ली और आगरा पर अधिकार

पराजित सेना का प्रबल रूप से पीछा करने पर विजेताओ ने आगामी दिवस, बिना विश्राम किए सीधे दिल्ली के लिये कूच कर दिया, जिसने अकबर के लिये अपने द्वार खोल दिए। अकबर ने राजसी ठाट से नगर मे प्रवेश किया। आगरा भी उसके अधिकार मे आ गया। तत्सामयिक वीभत्स प्रथा के अनुसार हत व्यक्तियो के सिरो का स्तंभ निर्माण किया गया। हेमू के परिवार सहित विशाल खजाना हाथ लगा। हेमू के वृद्ध पिता का वध कर दिया गया।[4]

---

१. वही, पृ० ३४-३५, अकबरनामा, १ (अनु०), पृ० २४१।

२. ईलियट एड डाउसन, ५, पृ० ५९-६०।

३. ईलियट एड डाउसन, ५, पृ० ६६, दिलात, पृ० १४-८१, जे० आर० ए० एस०, १९१६, पृ० ५८७।

४. अबुलफजल, अकबरनामा, १ (अनु०), पृ० २६६, स्मिथ पृ० ३५।

सूर वंश का अंत

अकबर प्राय: एक महीने तक दिल्ली मे रहा। अपने प्रतिद्वंदी सिकंदर सूर के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही पूर्ण करने के लिये वह दिसवर के आरंभ से सरहिंद लौट गया। सरहिंद से वैरम खाँ और उसके अधिराट् शत्रु का पीछा करते हुए लाहौर की ओर अग्रसर हुए। अंतत: मई १५५६ मे सिकदर ने दीर्घकाल तक घेरा सहन करने के वाद मानकोट दुर्ग मे जो निचली शृखलाओ में स्थित है और अव रामकोट कहलाता है, आत्मसमर्पण कर दिया। उससे शत्रुता शून्य व्यवहार किया गया और उसे खरीद तथा विहार जागीर रूप मे प्रदान किए गए।[1]

१५५७ ई० मे मुहम्मद शाह आदिल का वध हो चुका था और इब्राहीम खाँ सघर्ष छोड चुका था। इस प्रकार सूरवंश का तूफानी अस्तित्व समाप्त हुआ। अव अकवर अपने प्रतिद्वंदियो के गत्यावरोध की चिंता से मुक्त हो राज्य को सगठित करने के लिये स्वतत्र हो गया।[2]

शाहजादा सलीम द्वारा विद्रोह की तैयारी

१५९१ में जव सम्राट उदर शूल से पीडित हुआ था, उसने यह संदेह व्यक्त कर दिया था कि शाहजादा सलीम ने उसे विष दिलवाया था।[3] शाहजादा, जो तव इकतीस वर्ष का था, व्याकुल था कि उसके पिता के शासन को पहले ही चालीस वर्ष व्यतीत हो चुके थे और उसके सुदृढ़ स्वास्थ्य से प्रतीत होता था कि उसके जीवन का अंत अभी अनिश्चित रूप से दूर था। सत्ता को प्राप्त करने के लिये, बलात साम्राज्य के सिंहासन को हस्तगत करने का सकल्प किया, भले ही उसके पिता के लिये उसका परिणाम कुछ ही होता। उस समय शाहजादा अजमेर में निवास कर रहा था।[4]

---

१. जर्नल पंजाव हिस्ट० सोसा०, ३, पृ० ११९-२३, अकवरनामा, २, पृ० ९१, रेवर्टी, पृ० ५९२, (नोट्स)।

२. स्मिथ, पृ० ३६, फिरिश्ता, २, पृ० १८१।

३. वदायूनी, २ (अनु०). पृ० ३९०।

४. स्मिथ, पृ० ३२०।

शाहवाज खाँ कंबू, जो अजमेर प्रांत के प्रशासन मे सलीम की सहायतार्थ नियुक्त किया गया था १६०० मे मृत्यु को प्राप्त हुआ, संभवतः प्रायः वर्ष के मध्य मे ।[1]

मृत अमीर, यद्यपि अपनी उदारता और मुक्त रूप से व्यय करने के लिये विख्यात था, अपने पीछे अतुल धन छोड़ गया, जिसे सलीम ने तुरंत ही हथिया लिया। इस प्रकार उसने निर्धारित राजद्रोह के लिये धन प्राप्त किया ।[2]

सलीम का खुला विद्रोह

१६०० ई० मे, सलीम को उसके साले राजा मानसिंह ने बंगाली विद्रोहियो के विरुद्ध अग्रसर होने का परामर्श दिया और एक इतिहासकार के अनुसार उसने शाहजादे को यहाँ तक परामर्श दिया कि वह पूर्वी प्रातों पर अधिकार स्थापित कर ले। यदि मानसिंह ने वास्तव मे यह सलाह दी थी, तो यह इसलिये ही होगी कि जिससे सलीम रास्ते से हट जाय और सिंहासन के लिये खुसरू का मार्ग साफ हो जाय ।[3] किंतु सलीम, जो यह नही चाहता या कि दूरस्थ प्रदेश मे उपस्थित रहकर वह अपने ही भविष्य को सकटमय कर दे, निश्चय किया कि वह इलाहाबाद से दूर नही हटेगा, जहाँ उसके पक्ष के लोग थे। उसे राजधानी और साम्राज्य के प्रधान राजकोपय नगर, आगरा, पर अधिकार करने की आशा थी, जहाँ पर मुसलमान दुर्ग के तहखानों में संभवतः नकद एक करोड़ पचास लाख पाउड से कम धन संचित नही था। सलीम जुनाई में नगर से कुछ मील दूर यमुना पार की, वह सावधानी से अपनी मातामही से साक्षात्कार करने से कतरा गया, जो उससे भेंट करने के लिय बाहर आई थी तथा विद्रोह करने से मना करने के लिये, लेकिन सलीम ने कुछ नही सुनी। इलाहाबाद पहुँचने पर सलीम ने बिहार की लगान हथिया लिया, जो तीस लाख रुपये

---

१ बदायूँनी, २ (अनु०), पृ० ३९३-९४।

२. दिलात, पृ० ७१९७-२०६, स्मिथ, पृ० ३२०-२१।

३. स्टुवर्ट, हिस्ट्री आफ बंगाल (संस्क०, १८१३), पृ० १८९, स्मिथ, पृ० ३२२, ई० और डा० ६ पृ० ९८, अकबरनामा, २ (अनु०), पृ० ९८।

से अधिक की थी, उसने कालपी से हाजीपुर तक विस्तृत अनेकों प्रांतो और जिलों पर अधिकार स्थापित कर लिया और उन्हे जागीर रूप में अपने प्रमुख सहायको मे बाँट दिया। कुतुबुद्दीन कोकल तारा को विहार मिला, अल्लाह वेग को जौनपुर मे नियुक्त किया गया इत्यादि। यह सब कार्य स्पष्ट रूप से विद्रोह के सूचक थे।[1]

सलीम का राजपथ ग्रहण करना

१६०१ ई० में अक्वर के दकन छोड़ने पर, आगरा आगमन के समय उसे मालूम हुआ कि सलीम ३०,००० अश्वारोही सेना के साथ आगरा की ओर अग्रसर हो रहा था और यह कि वास्तव मे वह इटावा तक बढ़ आया था, राजधानी से प्राय ७३ मील दूर। सम्राट ने अपने पुत्र को इलाहाबाद लौट जाने की आज्ञा देते हुए उसे तुरंत डॉट और धमकी का पत्र लिखा। सलीम ने पूर्वी प्रातो की नियुक्ति के संबंध मे कोई ध्यान नही दिया, किंतु इलाहाबाद लौट जाने की आवश्यकता को उसने स्वीकार कर लिया, जहाँ उसने खुले रूप से राज्यासन ग्रहण कर अपने को स्वतत्र शासक घोषित कर दिया।[2]

मिर्जाओं का उपद्रव

जब सम्राट लाहौर मे ठहरा हुआ था तो आगरे से मुनीम खानखाना का पत्र आया जिसमे लिखा था कि मोहम्मद सुलतान मिर्जा और उलूगमिर्जा के पुत्रों--इब्राहीम हुसेन मिर्जा, मोहम्मद हुसेन मिर्जा और शाह मिर्जा ने जिनको सभल की सरकार में जागीर मिली हुई है, विद्रोह कर दिया है।[3] जब खानखाना देहली तक कूच करता हुआ आया और उसे उसके आगमन की सूचना मिली तो वे माडू की ओर भाग गए।[4]

---

१. अक्वरनामा, २ (अनु०), पृ० ६६, ई० और डा०, ६, पृ० ६६, आईन, १ (अनु०), पृ० ३४, टिप्प, ३५४।

२. ग्लेडविन, पृ० ६, दुजारिक, ३, पृ० ११८, स्मिथ, पृ० ३२३।

३. श्री राम शर्मा, भारत मे मुगल राज्य (अनु०), पृ० १६५।
मिर्जा लोग अकवर के दूर के रिश्तेदार थे। इनके पूर्वजो पर वावर और हुमायूँ ने वडी मेहरवानियाँ की थी। इनमे से प्रत्येक को अकवर ने उपयुक्त जागीरे दी थी और उन सवको अमीन पद प्रदान

खान जमां का दमन

आसफ खाँ को हुक्म दिया गया कि मजनू खाँ के साथ मानिकपुर की ओर रवाना हो जाय और वहाँ अधीन प्रदेशों को सुरक्षित करे। इसी समय यह भी खबर मिली कि अली कुली खाँ, बहादुर खाँ और सिकंदर खाँ ने अपना वचन भंग करके बलवा कर दिया है और मिर्जा मोहम्मद हकीम के नाम से खुतबा पढ़ा है।[१] इसके बाद सम्राट ने उनके वकील मिर्जामिराक रिजवी को खानबाकी खाँ की हिरासत में दे दिया और पंजाब का शासन मीर मोहम्मद खाँ को सौंपकर १२ रमजान ९७४ हि० तदनुसार २२ मार्च सन् १५६७ को वह आगरा की ओर रवाना हुआ।[२]

आगरा आने पर बादशाह को सूचना मिली कि खानजमां ने कन्नौज से चार कोस की दूरी पर स्थित शेरगढ के किले को घेर रखा है। उन्नीस दिन बाद नगर को खानखाना के सुपुर्द करके सोमवार २३ शव्वाल ९७४ हि० को सम्राट जौनपुर की ओर रवाना हुआ। जब वह साकेत के परगने में पहुँचा तो अलीकुली खाँ भागकर अपने के पास मानिकपुर चला गया।[३] जब बादशाह रायबरेली के परगने में पहुँचा तो उसको मालूम हुआ कि (ग्वालियर) की ओर बढ़ने के उद्देश्य से विद्रोहियो ने गंगा पार कर ली है। तब बादशाह ने अपने डेरे को कड़ा की ओर भेज दिया और फिर कूच कर मानिकपुर के नाव घाट के पास जा पहुँचा और १५०० आदमियो के साथ नदी पार किया।[४] आसफ खाँ और मजनू खाँ आगे बढते जा रहे थे

किया था। ये सदैव सम्राट की सेवा किया करते थे। जब जौनपुर की लड़ाई से सम्राट वापस आया तो वे लोग अपनी जागीरो मे चले गए और संभल मे रहने लगे, परंतु जब सम्राट मिर्जा मोहम्मद हकीम के विद्रोह को दमन करने के लिये लाहौर चला गया तो उन्होंने विद्रोह कर दिया। (ई० और डा०, ५, पृ० ३१५ १६)।

४. स्मिथ, महान मुगल अकबर (अनु०), पृ० ६९।

१. अकबरनामा, २, (अनु०), पृ० ३५९।

२. श्रीराम शर्मा, पृ० १९५, स्मिथ, पृ० ७१।

३. अकबरनामा, २, (अनु०) पृ० ३६०-६१।

४. ईलियट एंड डाउसन, ५ पृ० ३१९-२०, स्मिथ, पृ० ७२।

और शत्रु के विपय मे खवर भेज रहे थे। शत्रु ने सोचा कि युद्ध का सा प्रदर्शन केवल आसफ खाँ तथा मजनू खाँ ही आगे वढते हुए कर रहे है। उनको यह विश्वास नही था कि सम्राट उनके इतने पास था।[1]

रविवार पहली जिल हिज्जा को वादशाह ने युद्ध के लिये सेनाएँ सजाई तथा मध्य भाग का स्वय नेतृत्व किया। आसफ खाँ और उसके सव अतका दाहिनी ओर थे तथा मजनू खाँ और अमीर लोग वाई ओर थे।[2] शत्रुओं को पूरी तरह पता लग गया कि वादशाह वढता आ रहा है तो वे मृत्यु का आलिगन करने को तैयार हो गए। लड़ाई का परिणाम सम्राट के पक्ष मे रहा। थोड़ी देर वाद अली कुली खाँ (खान जमाँ) का सिर काट कर सैनिको ने वादशाह को भेंट किया। वादशाह ने घोडे से उतर कर विजय प्राप्ति के लिये ईश्वर को धन्यवाद किया।[3] यह युद्ध 'मानकरवाल' नामक गाँव के पास हुआ था जो जौसी और प्रवास के अधीन था। इसका आधुनिक नाम इलाहावाद है। पर युद्ध तारीख पहली जिल हिज्जा ९७४ को हुई थी।[4]

इसके वाद सम्राट वनारस की ओर रवाना हुआ। अली कुली खाँ के प्रत्येक अनुयायी का जिसने सम्राट की अधीनता स्वीकार की, क्षमा प्रदान कर दिया गया।[5] वनारस से वादशाह जौनपुर की ओर गया और उसके समीप तीन दिन तक ठहरा। फिर कर्रा मानिकपुर के किले में पहुँच कर उसने तीन दिन विश्राम किया और मुनीम खाँ को वुलाया। जव वह आया तो खानखाना सम्राट के दरवार मे उपस्थित हुआ और उसको अली कुली खाँ और वहादुर खाँ की जागीरे जो जौनपुर और

---

१. अकवरनामा, २ (अनु०) पृ० ३६६।
२. वही, २, (अनु०), पृ० ३६६-६७।
३. वही, पृ० ३६८, श्री राम शर्मा, पृ० १९०।
४. स्मिथ, पृ० ७१, श्रीराम शर्मा पृ० १९७।
५. अकवरनामा, २ (अनु०) पृ० ३८१-८२, ईलियट एंड डाउसन, ५, पृ० ३२४-२५।

बनारस में थीं, सब दे दी गईं।[1] इसके अतिरिक्त चौसा के घाट तक चुनार का दुर्ग और जमानियाँ भी उसके सुपुर्द कर दिया गया। इसके बाद बादशाह ने वापस कूच किया और ९७५ हि० के मोहर्रम में वापस आगरा आ गया।[2]

---

१. ईलियट एंड डाउसन, ५, पृ० ३४९-५१, स्मिथ, पृ० ७२।

२. अकबरनामा, २, (अनु०) पृ० ३८७-८९।

द्वितीय अध्याय

शासन व्यवस्था

शासन व्यवस्था

केंद्रीय शासन

प्राचीन भारत मे सम्राट को बड़ा ही श्रेष्ठ माना जाता था और वह विशेष संमानों और अधिकारो का उपभोग करता था। जनसाधारण उसमे देवत्व की प्रतिष्ठा करता था, इसलिये उसके शरीर को पवित्र और अवध्य समझा जाता था। सम्राट् का पद एक प्रकार की पवित्र थाती समझी जाती थी और यह धारणा थी कि एक सम्राट् को अपना सारा समय प्रजा की भलाई मे ही लगाना चाहिए।[1] 'मनु' के अनुसार सम्राट् का सर्वप्रमुख कर्तव्य यह है कि वह प्रजा की रक्षा करे। उसका यह कार्य 'किसी भी वडे से वडे यज्ञ के समान है और सुख तथा समृद्धि को वढानेवाला है।' सम्राट के हाथो मे वड़ी शक्तियाँ केंद्रित रहती थी। वह साम्राज्य की कार्यकारिणी का सर्वप्रमुख अधिकारी, राज्य का प्रधान, राज्य की सेनाओ का सर्वोच्च सेनापति और न्यायाधीश होता था। इतना ही नही उसे राज्य से सवधित वातो पर विचार विमर्श का निर्देशन करना पडता था, प्रशासकीय योजनाओ पर दृष्टि रखनी पडती थी और वित्त तथा राजस्व पर नियंत्रण रखना पडता था। उसे अन्य प्रशासकीय विभागो और विशेषकर गुप्तचर विभाग से वरावर सपर्क वनाए रखना पडता था। वैसे राज्य की शक्ति और उसके पद की प्रतिष्ठा सबंधी धारणाएँ अलग अलग युगो और अलग अलग स्थानो में विभिन्न रही हैं, लेकिन फिर भी प्राचीन राजनीति शास्त्र के लेखको ने राजाओं के विशेषकर उनके कुछ कर्तव्यो का उल्लेख किया है, जिनको कि पालन करने की आशा की जाती थी। ये कर्तव्य और कार्य दिन और रात्रि मे इस प्रकार विभाजित किए गए है[2]—

---

१. मनुस्मृति, ७, पृ० १३९-४०।

२. मनुस्मृति, ७ पृ० १४५-२२६, पृ० ३०३-१२, कौटिल्य, पृ० ३६-३९। जैसा मेगस्थनीज सम्राट चंद्रगुप्त के वारे मे लिखता है कि उसके महलो के द्वार सदैव खुले रहते थे और उसका सारा समय अपनी

दिन में

(१) राज्य के हिसाब किताब और सुरक्षा संबंधी कार्यों का विवरण सुनना।

(२) प्रजाजनों की शिकायतो और प्रार्थना पत्रों पर विचार करना।

(३) स्नान, भोजन और अध्ययन।

(४) राजस्व और अन्य विभागो की देखरेख करना।

(५) परिषद् के विचारविमर्श मे शामिल होना और गुप्तचरों की गुप्त खबरो से निबटना।

(६) मनोरंजन और राज्य कार्यों पर वार्ता करना।

(७) राज्य के सेनाओ का निरीक्षण करना, और

(८) प्रधान सेनापति से सैनिक मामलों पर विचार विमर्श करना।

रात्रि में

(१) गुप्तचरो से भेंट करना।

(२) स्नान, भोजन और अध्ययन।

(३) रनिवास प्रवेश और शयन।

(४) धर्म-ग्रंथों पर और अपने कर्तव्यो पर चिंतन।

(५) मंत्रियो से मंत्रणा करना, गुप्तचरों को निर्देश देना।

(६) पारिवारिक कर्तव्यो को पूरा करना और धार्मिक अनुष्ठानों तथा उत्सवों मे भाग लेना।

प्रजा के लिये ही था। यह हो सकता है कि सभी राजा, उपभोक्ता दैनिक कार्यक्रम को पूर्ण रूप से न अपना पाते हो, लेकिन इसके उतके सामान्य कर्तव्यो की जानकारी अवश्य हो जाती है और उनके दैनिक जीवन और कार्यो पर प्रकाश पड़ता है। कौटिल्य ने सम्राट के लिये एक विशेप निर्देशन यह भी दिया था कि 'उसके प्रजाजनो के सुख मे ही उसका सुख निहित है और उनकी भलाई में ही उसकी भलाई है। उसे वह अच्छा नही समझना चाहिये, जो कि उसे अच्छा लगता है, वल्कि उसे वही अच्छा समझना चाहिये जो कि उसके प्रजाजन अच्छा समझते हो (कौटिल्य, पृ० ४१-४३)।

एक सम्राट के लिये यह भी आवश्यक बताया गया था कि उसे सदैव ही प्रजा को उपलब्ध करना चाहिए और प्रजा की शिकायतो और उसकी भलाई के बारे मे अपने समीप के अधिकारियो तक पर पूर्ण रूप से निर्भर नही रहना चाहिए।

राजा के हाथो मे सभी शक्तियाँ केंद्रित हो जाने का अर्थ यह नही था कि वह पूर्ण अत्याचारी ही बन जाय। उसकी स्वेच्छाचारिता पर धर्म तथा सभा और समिति अकुश रखती थी।[1] फिर उसे जनमत का ध्यान रखना पडता था। राजा को नम्र और विनीत होना आवश्यक बताया गया था और उसके लिये आत्मनियंत्रण एव आत्म संतुलन बनाए रखना और अपने भावावेशों तथा इच्छाओ पर नियत्रण रखना भी नितात आवश्यक था। इसी प्रकार उसे विलास प्रियता, लोभ और क्रोध से भी दूर रहना जरूरी था। 'रात्रि के अतिम पहर मे उसे शैय्या त्याग देनी पडती थी और धार्मिक कृत्यो से निवृत्त होकर फिर अपने दैनिक कार्यों में लग जाना पड़ता था।' संक्षेप मे, प्राचीन काल के हिंदू राजा को बहुत ही कठोर जीवन बिताना पडता था।[2]

दिल्ली के सुल्तान

दिल्ली के सुल्तान मुसलमान थे, अतएव उन्हे न केवल अपने दैनिक जीवन मे, बल्कि सल्तनत के शासन मे भी कुरान के नियमो का पालन करना पडता था। हिंदू राजा की तरह एक सुल्तान के हाथो मे भी शासन की सभी शक्तियाँ केंद्रित होती थी। वह सल्तनत की सेनाओं का प्रधान सेनापति शर के नियमों की व्याख्या करने वाला, कार्यकारिणी का प्रमुख और सर्वोच्च न्यायाधिकारी होता था। मुसलमान न्यायशास्त्रियो ने उसके लिये निम्नलिखित कर्तव्य निर्धारित किए थे :—

(१) इस्लाम की रक्षा।

(२) अपने प्रजाजनो के झगडो का निपटारा।

---

१. मनुस्मृति, ७, पृ० १४-२४।

२. वही, पृ० ३७-५२, कौटिल्य, पृ० ११-१२।

(३) इस्लामी प्रदेश की सुरक्षा, यात्रियों के लिये राजपथों और मार्गों का निर्माण।

(४) अपराध संहिता के नियमो का पालन और उन्हे कार्यान्वित करवाना।

(५) मुस्लिम प्रदेश की सीमाओं की सुरक्षा।

(६) काफिरो (गैर मुसलमानो) के विरुद्ध जिहाद छेड़ना।

(७) कर और चुगियाँ वसूल करना।

(८) राज्य कोष से लोगों को वजीफे देना।

(९) अपने सार्वजनिक और कानूनी कार्यो मे सहायता देने के लिये अधिकारियो की नियुक्ति करना।

(१०) सार्वजनिक कार्यो की और प्रजा की स्थिति की व्यक्तिगत जानकारी रखना।[१]

मुगलशासन

विजेता की दृष्टि से बाबर एक महान साम्राज्य निर्माता है। परंतु विजय द्वारा किसी राज्य पर अधिक दिन तक अधिकार नही रखा जा सकता। यह 'अफगान' शासन अवस्था मे कई सुधार किया, तो भी यह कहना सभव नही है कि उसने विजित भाग का सतोपजनक प्रबंध कर लिया था। उसने अफगानो के दुर्वल पंचायती राज्यतंत्र के स्थान पर दैवी शक्ति पर आधारित निरंकुश बादशाहत की स्थापना की।[२]

मुगल सम्राट शासन का प्रधान और असीम शक्ति सम्पन्न होता था। उसकी राज्य शक्ति पर किसी प्रकार का नियंत्रण नही था, और न उससे सामान्य अधिकारो की माँग ही की जा सकती थी। राजा कोई गलती नही कर सकता। इस युग में यह सिद्धात पूर्वा सत्य हो रहा था। मुगल सम्राट की आज्ञा सर्वोच्च थी। यदि कोई उसका विरोध करता तो कुचल

---

१. सुलूक-उल-मुलूक, एक १९ ए, नोह सिपिहर, एफ ७२६ ए और बी, फतवा-ए-जहाँदारी, हबीब (अंग्रेजी अनुवाद), पृ० ३-४८ एडमिनिस्ट्रेशन आफ दि सल्तनत आफ देहली, पृ० ४०-४९।

२. बाबर, बाबरनामा (अनु० बेवारिज), पृ० ८१।

दिया जाता था। राज्य की समस्त राज्य-शक्ति उसी मे केंद्रित थी। साम्राज्य का प्रधान होने के साथ-साथ वह सेना का प्रधान सेनापति तथा न्याय का प्रमुख न्यायाधीश भी होता था। उसकी इच्छा सर्वमान्य थी। वह किसी भी कानून को परिवर्तित कर सकता था। यद्यपि शासन-कार्य में वह मन्त्रियों से परामर्श करता था, परंतु उसका निर्णय अतिम एवं सर्व-मान्य था। उसके अधिकारों के ऊपर कोई भी प्रश्न नहीं कर सकता था।[1]

इतनी शक्ति रहते हुए भी मुगल सरकार पूर्णतया निरकुश नही थी, क्योकि न तो उसने प्रजा पर अत्याचार किए, और न प्रजा के हितों का मर्दन ही किया। वह जनता की इच्छाओ का आदर करते और अपने कार्यों को इस ढग से संपादित करते थे जिससे प्रजा मे उसके प्रति विश्वास की भावना उत्पन्न हो सके। सभी मुगल सम्राटों ने प्रजा के हित का ध्यान रखा। सभी ने प्रजा के हित को अपना प्रधान कर्तव्य समझा। अत. मुगल वादशाहो को स्वेच्छाचारी उदार शासक कह सकते है।

मंत्रिपरिषद

चंद्रगुप्त मौर्य के प्रधान मंत्री चाणक्य ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'अर्थ-शास्त्र' मे लिखा है कि—'राजा रूपी रथ एक पहिए के द्वारा नही चल सकता। इसलिये दूसरे पहिए के रूप मे उसे मंत्रियो की आवश्यकता होती

---

१. स्मिथ, अकबर दि ग्रेट, भा० १, पृ० ६२, ६३, ७८।

वावर की आत्मकथा से यह स्पष्ट है कि जव वह दिसम्बर १५२५ ई० में भारत विजय के लिये अपने अंतिम अभियान पर चला तो उसे इब्राहीम लोदी के अधीन पजाव के शक्तिशाली सूवेदार दौलत खाँ लोदी के विरोध का सामना करना पड़ा था। इसी प्रकार जव हुमायूँ ने वहादुर शाह को पराजित कर (१५३६ ई०) मे अपने भाई अस्करी को गुजरात का सूवेदार नियुक्त किया था। वावर, हुमायूँ और शेरशाह, वल्कि अकवर के राज्यकाल के प्रथम वर्ष मे भी वे अधिकांश प्रादेशिक और प्रशासकीय क्षेत्र सही अर्थो मे प्रात न होकर केवल वड़े-वडे जिले ही मात्र थे। फिर भी शेरशाह ने पजाव, मालवा और अजमेर जैसे प्रांतों मे काफी शक्तिशाली सूवेदार रख छोडा था—(स्मिथ अकवर दि ग्रेट, पृ० ६१, ६४, ७६)।

है ।'[1] यह कथन पूर्ण रूप से सत्य एवं सही है । सम्राट कितना ही निरंकुश क्यो न हो, वह मंत्रियो की सहायता के बिना शासन कार्य को सुचारु रूप से नही चला सकता । राजा को अनेक कार्य संपादित करने पड़ते है जो बिना मंत्रियो की सहायता के नही हो सकते ।[2]

बाबर तथा हुमायूं के साम्राज्य के राजनीतिक विभाजन का पूर्ण ज्ञान प्राप्त नही है । बाबर ने अपनी आत्मकथा मे भीरा तथा बिहार के बीच तीस सरकारो तथा जमीदारियों का उल्लेख किया है ।[3] हुमायूं के शासन के प्रथम काल मे सदाचित् बाबर के काल का ही विभाजन चलता रहा ।[4]

यह मिलती-जुलती व्यवस्था का प्रबंध किया । स्थानीय शासन के लिये उसने जिन व्यक्तियों की नियुक्ति की उनको आतरिक शासन मे प्रायः पहले की ही तरह स्वतंत्रता रही और सेना का अधिकाश भाग उन्ही स्थानीय अधिकारियो के सरक्षण मे रहा । बाबर उन कर्मचारियो पर व्यापक नियंत्रण नही रख सका । उन पर विश्वास करता था । इसी विश्वास के कारण उसने अपने उत्तराधिकारी का भी कार्य कठिन बना दिया ।[5]

हुमायूं को अपने द्वितीय राजत्व काल में, उसे शेरशाह द्वारा संगठित राज्य प्राप्त हुआ । उसके उत्तराधिकारियो के पारस्परिक वैमनस्यता के कारण इसका सगठन हिल गया था, परतु उसका ढाचा मौजूद था, जिस पर अकबर ने एक सुसंगठित शासन की नीव डाली ।[6]

द्वितीय राजत्व के पश्चात् हुमायूं अपने साम्राज्य को सुव्यवस्थित करना चाहता था तथा उसके मस्तिष्क मे इसके लिये एक योजना भी थी ।[7] अबुल फजल ने लिखा है कि 'हुमायूं कई स्थानो पर शासन का केंद्र

---

१. चाणक्य, अर्थशास्त्र, पृ० २८२ ।

२. अबुल फजल, अकबर नामा, भा० ३ (अनु०), पृ० २८२, परमात्मा शरण, प्राविन्सयल गवर्नमेंट, पृ० ७० ।

३. परमात्माशरण पृ० ४६-४७, त्रिपाठी–सम एस्पेकट्स,ऑफ मुस्लिम ऐडमिनिस्ट्रेशन पृ० १६६–६७ । मोरलैण्ड, एगरेरियनसिस्टम आफ मुस्लिम इंडिया, पृ० ७६ ।

४. परमात्मा शरण, पृ० ५१ ।

५. अबुल फजल, आईन भा० १, (अनु०) पृ० २१० ।

६. अबुल फजल, अकबरनामा, भा० १, पृ० ३५२ (अनु०) ।

७. वही पृ० ३५६, ५७।

स्थापित करना चाहता था। उसका स्वप्न उसकी असामयिक मृत्यु के कारण पूरा न हो सका।' वह दिल्ली, आगरा, जौनपुर, कन्नौज आदि स्थानों मे योग्य तथा अनुभवी अमीरो को नियुक्त कर उनके अधीन उन स्थानों पर एक सेना भी रखना चाहता था। वह स्वयं अपने साथ १२,००० अश्वारोहियो से अधिक नही रखना चाहता था। परमात्माशरण ने लिखा है कि 'हुमायूँ की कल्पना, कल्पना ही बनकर रह गई, क्योंकि उसकी असामयिक मृत्यु के कारण पूरा न हो सका।[१]

हुमायूँ मे न प्रशासकीय संगठन की योग्यता और न इसके लिये उसे समय प्राप्त हुआ। इस कारण शासन सगठन की संस्थाओं मे वह कोई परिवर्तन कर सका।[२] मुगलो के आने के पश्चात् वजीर (प्रधान मंत्री) का महत्व बढ गया। बाबर के समय मे निजामुद्दीन खलीफा उसका शक्तिशाली वजीर था।[३] यह परम्परा हुमायूँ के समय मे बनी रही। ये वजीर केवल शासन के लिये उत्तरदायी नही थे, वरन् ये सेना-नायक भी थे तथा युद्ध मे भी भाग लेते थे। इस तरह सैनिक तथा नागरिक शासन का विभाजन नही था।[४] उवेश मुहम्मद के बाद अन्य किसी अमीर को यह स्थान नही प्राप्त हुआ।[५] हुमायूँ के निष्कासन काल मे जब कराचा बेग का खजानादार से झगड़ा हुआ तो हुमायूँ ने वजीर का पक्ष नही लिया था।[६]

हुमायूँ ने राज्य के संपूर्ण कार्यो को चार तत्वों के आधार पर चार विभागो मे विभाजित किया।[७]

प्रथम आतशी (अग्नि), दूसरा हवाई (हवा), तीसरा आबी (जल), चौथा खाकी (मिट्टी)। प्रत्येक विभाग का एक वजीर नियुक्त

---

१. परमात्माशरण, प्राविंशियल गवर्नमेट आफ दि मुगल्स, पृ० ४७।
२ परमात्माशरण, प्राविन्शियल गवर्नमेट आफ दि मुगल्स, पृ० ४६।
३. बाबर, बाबरनामा, (अनु० बेव्रिज), पृ० ८३।
४. इब्नहसन, दि सेंट्रल स्ट्रक्चर आफ दि मुगल एम्पायर, पृ० १२०।
५. बनर्जी, हुमायूँ, भा० २, पृ० ३४३।
६. हबीबुस्सियर, कानूने हुमायूँनी, (अनु० बेनीप्रसाद), पृ० ३५-३६।
७. वही, पृ० ३७।

किया गया। आतशी विभाग का वजीर अमीदुलमुल्क था। यह तोपखाना, अस्त्र-शस्त्र तथा युद्ध से संबंधित सामग्रियों इत्यादि का प्रबंधक था।[१] लुत्फुल्लाह हवाई विभाग का वजीर था।[२] सम्राट के वस्त्र, भोजनालय, पशुशाला तथा ऊँट इत्यादि, इस विभाग मे आते थे। आबी विभाग शराब, शरबत, नहरों इत्यादि की देखभाल करता था। यह विभाग ख्वाजा हुसैन के अधीन थे।[३] खाकी विभाग कृषि, भवन, खालसा भूमि, कोष इत्यादि की देख भाल करता था।[४]

प्रत्येक विभाग के लिये एक एक प्रमुख अमीर नियुक्त किया जाता था।[५] शासन का यह विभाजन पूर्णतया अवैज्ञानिक था। नहर विभाग कृषि के अंतर्गत होना चाहिए था, किंतु वह शराब के विभाग मे लगा हुआ था। आश्चर्य है कि मनोरंजन से संबंधित व्यक्ति शासन, उत्पादन, कृषि, निर्माण, तोपखाना इत्यादि की देख भाल करता था।[६]

शेरशाह का शासन प्रबंध बहुत दिनो से वाद विवाद का विषय बना हुआ है। मध्यकालीन भारतीय इतिहास के अध्येता शेरशाह को मुख्य रूप से एक सैनिक गौण रूप से साधारण योग्यता का शासन प्रबंधक मानते थे। ऐर्स्किन के अनुसार[७] 'शेरशाह मे एक सफल सैनिक शौर्य वीर की अपेक्षा, शासन व्यवस्थापक और प्रजा पालक के गुण कही अधिक विद्यमान थे।'

प्रो० कानूनगो[८] ने लिखा है कि 'अफगानो मे वह सबसे बडा शासक था और सैनिक प्रतिभा भी उसमे अधिक थी।' उसकी प्रबंध व्यवस्था और

---

१. फरिश्ता, पृ० २१३, ब्रिग्स, भा० २, पृ० ७१।
२. बेनीप्रसाद, कानूने हुमायूँनी पृ० ८०, अकबरनामा, भा० १, पृ०३६१।
३. बेनीप्रसाद, कानूने हुमायूँनी पृ० ८३।
४. अर्सकिन, भा० २, पृ० ५३३-३४।
५. कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भा० ४, पृ० ५१।
६. फरिश्ता, फा०, पृ० २१४, ब्रिग्स, भा० २, पृ० ७२।
७. ऐर्स्किन, भा० २, पृ० ६७, अकबरनामा, भा० १, पृ० ३६१-६२।
८. डा० कानूनगो, शेरशाह, पृ० ५५-५६, कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भा० ४, पृ० ५५-५७।

उसके परिणामों को ध्यान से देखा जाय तो विदित होता है कि उस अराजकता के युग मे उसने कितना बडा काम किया था।[1]

अपने शासको के विपरीत, वह एक प्रजावत्सल्य शासक था जो शासनाधिकार को प्रजा की भलाई के लिये काम मे लाता था। फिर भी शासन नीति और दीवानी तथा फौजदारी संचालन शक्तियाँ उसी के हाथ मे केंद्रित थी।[2]

अबुल फजल[3] ने लिखा है कि 'शेरशाह ने अलाउद्दीन खिलजी की कुछ योजनाएँ जारी की थी और इनका वर्णन उसने तारीख-ए-फीरोज शाही में पढा था। परतु ऐसा कहना शेरशाह की राजनीतिक मौलिकता के प्रति अन्याय है।[4] उसने अपनी प्रबध व्यवस्था या सैनिक व्यवस्था पिछले शासको से ली हो, परंतु उसके आश्चर्यजनक शासन मे एक ऐसी भावना थी, जो उसकी अमर कीर्ति का आधार है। इतने विशाल साम्राज्य की देख भाल मंत्रियो की सहायता के बिना एक ही व्यक्ति द्वारा असंभव था। इस कारण सल्तनत काल को व्यवस्था के आधार पर चार मत्री विभाग करने पड़े।[5]

(१) दीवाने वजारत।

(२) दीवाने आरिज।

(३) दीवाने रसालत।

(४) दीवाने इशा।

दीवाने वजारत को प्रमुख वजीर ही कहा जा सकता है। यह वित्त और लगान का मत्री था और इसलिये साम्राज्य का आय और व्यय सबंधी प्रबंध इसी की देख रेख मे होता था।[6]

---

१. डा० कानूनगो, पृ० ६८।
२. वही, पृ० ५८-५९।
३. अकबरनामा, भा० १, पृ० ३६७।
४. कानूनगो, पृ० ३५१।
५. मेमोयर्स आफ दि रेसेज आफ दि नार्थ वैस्टर्न प्रांविसेज, भा० २ पृ० ९७, डा० कानूनगो।
६. मेमोयर्स आफ दि रेसेज आफ दि नार्थ वैस्टर्न प्राविसेज, भा० २, पृ० ९९, डा० कानूनगो।

दीवाने आरिज को आधुनिक सेना सचिव के समकक्ष ही समझना चाहिए। यह सेना का प्रधान सेनापति नही होता था, किंतु उसकी भर्ती, इसके संगठन और इसके नियंत्रण का कार्य उसी के सुपुर्द था।[1]

दीवाने मोहतासिब अथवा दीवाने रसालत को विदेश मंत्री कहा जा सकता है। विदेशो से आने वाले और यहाँ से जाने वाले दूत और राजदूतों से निकट सपर्क रखना इसका प्रमुख कर्तव्य था। कूटनीतिक पत्र-व्यवहार भी इसे ही संभालना होता था और कभी कभी दान पुण्य का विभाग भी इसी को सभालना पड़ता था।[2]

दीवाने इशा को शाही घोषणाओ एवं आज्ञा आदेश को लिखना पड़ता था। गवर्नरो तथा स्थानीय अधिकारियो से भी पत्र व्यवहार करना, इसका काम था और सरकारी रेकार्डो की व्यवस्था भी इसी को करनी पडती थी।[3]

दूसरे अन्य विभाग, जिनकी गणना मत्रियों मे या मंत्रियों के ममान की जाती थी, दीवाने काजा और दीवाने वरीद थे। प्रमुख काजी, दीवाने राजा का अधिकारी होता था। वारीद ममालिक गुप्तचर विभाग का प्रधान होता था और प्रत्येक महत्वपूर्ण घटना वा समाचार वादशाह तक पहुँचाना इसी का कार्य था। इसके नीचे संवाद लेखकों और गुप्तचरो का दल रहता था, जिन्हे नगरो, वाजारों और अन्य महत्वपूर्ण वस्तियो मे तैनात कर दिया जाता था। शाही डाक ले जाने के लिये विभिन्न स्यानो पर हरकारो का प्रवंध भी इसी को करना पडना था।[4]

राजमहल की देख भाल करने के लिये एक अलग मंत्री था तथा इसकी मर्यादा भी काफी थी, क्योकि सम्राट के सवसे नजदीक यही था।[5]

शेरशाह के उत्तराधिकारियो ने प्राय. इसी का अनुशरण किया, लेकिन उनमे सूझ-वूझ की महान कमी थी, जिस कारण इसके लगाए हुए वृक्ष की जड़ जल्द ही समाप्त हो गई।[6]

---

१. मेमोयर्स आफ दि रेसेज आफ दि नार्थ वैस्टर्न प्राविंसेज, पृ० १०१।
२. वही, पृ० १०४।
३. वही, पृ० १०५-१०६, सरकार, मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृ० १९-२०।
४. डा० कानूनगो, शेरशाह, पृ० १०७। ५. वही, पृ० १०८।
६. सरकार, मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृ० २७।

अकबर के राज्य-काल मे केंद्रीय शासन के अंतर्गत सरकार के मुख्य विभाग निम्नलिखित थे।[1]

(१) माल (भूमिकर) विभाग --यह बडे दीवान के अतर्गत था।

(२) शाही-महल, यह खान-ए-सामा के अधीन था।

(३) सेना का वेतन और लेखा (हिसाब-किताब) महकमा—इसका अधिकारी शाही बख्शी होता था।

(४) कानून: फौजदारी और दीवानी—इसका अधिकारी प्रधान काजी कहलाता था।

(५) धर्म व खैरात—यह सदर-ए-सुदूर के अधीन था।

(६) लोक चरित्र नियत्रण—इसका अधिकारी मुहतासिब कहलाता था।

(७) तोपखाना—इसका अधिकारी मीर-अतिश या दरोगा-ए-तोप-खाना कहलाता था।

(८) डाक चौकी और खबर विभाग—इसका अधिकारी दारोगा-ए-डाक-चौकी कहलाता था।

अनेक कारखाने थे, जिन्हे विभाग नही कहा जा सकता और प्रत्येक का अधिकारी दरोगा कहलाता था। इनमे से अधिकाश खान-ए-सामां के अधीन थे।[2]

सम्राट के बाद साम्राज्य का सबसे बडा अधिकारी वजीर या वकील कहलाता था। अन्य मत्री इसके अधीन कार्य करते थे। अबुल फजल के अनुसार 'दीवान राज्य कोष की देखभाल करना और आय व्यय का निरीक्षण करता था। सभी राजकीय आदेशो को कार्यान्वित करने से पूर्व इसके दफ्तर मे उसका रिकार्ड रखना पडता था, राज्य की समस्त लगान व्यवस्था उसके अधीन थी।[3] इसके अतिरिक्त वह दीवान भी था तथा इस कारण माल-विभाग का सबसे बडा अधिकारी था। मुगल

१. एस० आर० शर्मा : मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृ० ४१, सरकार, पृ० ५१।

२. सरकार, मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृ० १७-१८।

३. अबुलफजल, अकबरनामा, भा० १ (अनु०), पृ० २९१।

सरकार के दूसरे अधिकारियो की भाँति उससे भी आशा की जाती जाती थी कि सेना का संचालन कर सके और छोटी चढाइयों के समय वह वास्तव में सेनाध्यक्ष का काम करता था। परतु उसको सम्राट की सेवा मे रहना पडता था, इस कारण अधिक अर्से तक यह कार्य नही कर सकता था। वास्तव में आरंभ में तो वजीर का काम प्रशासनिक ही था और प्रधान सेना-संचालन तो वह केवल कभी कभी करता था और साम्राज्य क्षणिता का द्योतक था।[1]

दीवान के पश्चात् दूसरा महत्वपूर्ण स्थान वख्शी या तनख्वाह देनेवाले का था। सब तरह के अफसरो की वास्तव मे नियुक्ति के समय सैनिक अधिकारी माना जाता था, जिसकी रकम उसके अधीन सैनिक-दल के अनुसार तय होती थी। जिसको वख्शी चुकाता था। इसे मन-सवदारो की विल पास कराकर अपने पास रखने होते थे। इस प्रकार से वह, 'ए-मास्टर-जनरल' कहलाता था।[2]

राजधानी मे हथियार, हाथी और जंगी नाव के निरीक्षक इसके अधीन कार्य करते थे। यही युद्ध की योजनाएँ आदि वनाता था, परंतु कभी-कभी इसकी प्रतिष्ठा कम हो जाती थी, क्योकि युद्ध के समय वादशाह सेना का प्रधान होता था।[3] एस० आर० शर्मा के अनुसार केवल युद्ध के समय को छोड कर इसकी प्रतिष्टा मे कभी भी कमी नही आती थी क्योकि युद्ध के समय सम्राट ही सव कुछ होता था।[4]

खान-ए-सामा अथवा उच्च कार्याध्यक्ष इस कारण कहा जाता था कि वह सम्राट के घरेलू विभाग का प्रधान था। मनूची ने लिखा है कि 'घरेलू विभाग का छोटा या वडा खर्च इस अधिकारी की देख रेख मे होता था।[5]

सदर-उस-सुदूर अथवा प्रधान सदर के नाम से जाना जाता था। यह प्रधान न्यायाधीश, दातव्य विभाग का प्रधान, शिक्षा मत्री और शाही

---

१. सरकार, पृ० २२-२३, एस० आर० शर्मा, पृ० ४५।
२. स्मिथ, अकबर दि ग्रेट, भा० १, पृ० ४७, ४६, ५३।
३. स्मिथ, अकवर दि ग्रेट, भा० १, पृ० ६३।
४. एस० आर० शर्मा, मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृ० ४७।
५. सरकार, पृ० २६ नोट।

शिक्षा का अध्यक्ष होता था। लेकिन न्याय विभाग मे उसका कार्य सदर की अपेक्षा प्रधान काजी का अधिक था।[1]

काजी के अधिकार असीम होते थे और उसकी प्रतिष्ठा बहुत बडी होती थी। मुगलकालीन न्याय विभाग मे भ्रष्टाचार अधिक बढ गया था और काजी अपने अधिकारो का दुरुपयोग किया करते थे। उसके विभाग के विषय मे सर यदुनाथ सरकार ने लिखा है कि 'मुगलों मे जितने भी काजी थे उनमे से कुछ प्रतिष्ठित अपवादो को छोडकर सभी घुसखोर थे।[2]

यह अधिकारी प्रधान प्रशासनिक न्यायाधीश तथा धार्मिक लोगो, विद्वानों और मुल्लाओं के निर्वाह के लिये सम्राट या राजकुमारों की ओर से दान की हुई जमीन व दानो का निरीक्षक भी था। यह देखना उसका कर्तव्य था कि इस प्रकार दिए हुए रुपए का सदुपयोग हो। दान के लिये आए हुए प्रार्थना पत्र की छान बीन भी यही अधिकारी करता था। इसके साथ ही साथ पवित्र अवसरो पर सम्राट द्वारा दिया हुआ दान यही करता था।[3]

स्मिथ ने लिखा है कि 'विरोधी धार्मिक विश्वास के लिये वह प्राण दंड तक दे सकता था। सदर का पद बडा लाभदायक था, इसपर वह घूस और गबन से माला माल हो सकता था।[4]

काजी-उल-कजात अथवा प्रधान न्यायाधीश भी कहते थे। यह अधिकारी शाही डेरे का काजी भी कहलाता था और यही साम्राज्य के विभिन्न भागो मे स्थानीय काजियो को नियुक्त करता था।[5]

मुहतसिक अथवा लोकचरित्र के नियंत्रण के नाम से जाना जाता था। धर्म निरपेक्ष और धार्मिक दोनों ही प्रकार का कार्य मुहतासिव करता था। वह बाजार नियंत्रण का कार्य करता था। इसके अतिरिक्त शहर या बाजार की सफाई आदि का कार्य इसी के नियंत्रण मे था। मौलिक नैतिक

---

१. एस० आर० शर्मा, पृ० ५०। २. सरकार, पृ० २७।

३. सरकार, मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृ० २८।

४. स्मिथ, अकबर दि ग्रेट, भा० १ पृ० ८१-८२।

५. कानून गो, शेरशाह, पृ० ६३-६४।

सिद्धांतो को इसी के द्वारा जनता तक पहुँचाया जाता था।[1] एस० आर० शर्मा ने लिखा है कि 'इसका कार्य खींची हुई शराब तथा जौ की शराब, भाँग और मादक द्रव्यों का पीना, जूये का खेलना तथा कुछ विशेष प्रकार के मैथुनों को रोकना था। यह उन मुसलमानों को दंड देता था जो इस्लाम धर्म के विरुद्ध विचार रखते थे या पैगंबर में अविश्वास रखते थे और पाँच बार नमाज और रोजाओं का त्याग कर देते थे।'[2]

इस अधिकारी का कर्तव्य यह देखना था कि नगरों में किसी प्रकार की कुव्यवस्था न हो, अगर हो, तो पहले एक बार चेतावनी देना, इसके बाद न मानने पर कड़ी से कड़ी सजा देना। इसके लिये मुखियाओं की नियुक्ति की गई थी, जो छोटी बड़ी सब बातों को सूबेदार तक पहुँचाता था और सूबेदार के द्वारा इसके यहाँ पहुँचती थी।'[3]

सूचना लेखकों की नियुक्ति मीर बख्शी की सिफारिश पर बादशाह द्वारा होती थी। इसका कार्यकाल सामान्यतः पाँच वर्ष के लिये होता था।[4] यह अगर गलत रिपोर्ट भेजता था तो इसे कठोर से कठोर दंड दिया जाता था।[5]

अकबर के केंद्रीय शासन प्रणाली की भूरि-भूरि प्रशंसा विदेशियों ने भी की है। फादर मान्सरेट ने लिखा है 'बादशाह का सरकार के अधिकार एवं न्याय के कार्यों की ओर विशेष ध्यान था। यदि कोई कर्मचारी त्रुटि या दुर्व्यवहार करता पाया जाता था तो उसे वह बड़ी गंभीरता से देखता था। वह अपराधी को कठोर दंड देता था। मुख्य जल्लाद के पास दंड देने के लिये अनेक भयानक अस्त्र थे पर उनसे सत्यता मे किसी को दंडित नही किया जाता था। वे केवल जनता को भयभीत करने के लिये थे।[6]

---

१. स्मिथ, पृ० ८४, लेनपुल, मिडीवियल इंडिया, पृ० ४०७।
२. एस० आर० शर्मा, पृ० ५१-५२।
३. सरकार, मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृ० ३०-३१, एस० आर० शर्मा, पृ० ५४।
४. स्मिथ, अकबर दि ग्रेट, भा० १, पृ० ८३।
५. वही, पृ० ८५-८६।
६. एस० आर० शर्मा, पृ० ५५-५६, लेनपुल, मिडिवियल इंडिया, पृ० ४०८।

अकबर के केंद्रीय शासन की एक और विशेषता थी कि इसके द्वारा सभी श्रेणी के प्रजा जनों के लिये समान अवसर खोल दिए गए थे। राज्य-पदों पर नियुक्ति करते समय हिंदू मुसलमानो मे भेद नही किया जाता था और यदि विदेशी योग्य होते थे, तो उनको भी वचित नही किया जाता था।[1]

प्रांतीय शासन

भारत मे प्राचीन काल से प्रात राजनीतिक और प्रशासकीय इकाइयों के रूप मे वर्तमान थे। सम्राट चद्रगुप्त मौर्य (३१४-२० ई० पूर्व) का साम्राज्य कई प्रातो मे विभाजित था और प्रत्येक प्रात का अलग अलग प्रातपति होता था। प्रातपति को शासन मे सहायता देने के लिये सभवतः उप प्रात पति होता था।[2] अशोक के राज्यकाल (१७३-२३६ ई० पू०) में मौर्य साम्राज्य को चार वड़े वडे भागो मे विभाजितकर दिया गया था। इन प्रातो मे अलग अलग एक प्रात पति सा होता था, जिसे प्रादेशिक कहते थे।[3] यह प्रांतो और प्रात पतियो द्वारा शासन की प्रणाली गुप्तकाल तक ही नही चली वल्कि भारतीय इतिहास के पूरे प्राचीन युग मे वरावर वनी रही। गुप्त सम्राटो के काल मे प्रातो को भुक्ति और प्रातपतियो को उपारिक कहा जाता था। मौर्य काल की ही तरह गुप्त काल मे भी कभी कभी राजवशीय राजकुमार ही उपरिक नियुक्त किए जाते थे।[4] हर्षवर्धन का साम्राज्य भी प्रातो या भुक्तियो मे विभाजित था।[5] प्रतिहार साम्राज्य (७३०-१०२७ ई०) मे ये भुक्तियाँ शक्तिशाली प्रातपतियो के अधीन थी।[6] यह विवादग्रस्त है कि 'प्रातपति समान शक्तियो, विशेष अधिकारो और सत्ता का उपयोग करते थे या नही।[7]

---

१. स्मिथ भा० १, पृ० ६१ ६२, लेनपुल, पृ० ४०८-०६, डा० कानून पृ० ६७।
२. दि एज आफ इपीरियल यूनिटी, पृ० ६२-६३।
३. दि एज आफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ७६।
४. दि क्लासिकल एज, पृ० ३४५। ५. वही, पृ० ३४६।
६. दि एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० २३६।
७. वही, पृ० २३१, दि क्लासिकल एज, पृ० ३५१-३५२।

दिल्ली सल्तनत के काल (१२०६-१५२६ ई०) में भी मुस्लिम शासन के अंतर्गत जो भू भाग आता था वह इतना विशाल था कि उस पूरे पर दिल्ली से ही कुशलतापूर्वक शासन नही किया जा सकता था। इस कारण सल्तनत काल मे भी प्रात तथा प्रातपति को इन सुल्तानों ने प्रातपतियों द्वारा शासन की यह प्रथा हिंदुओ से विरासत में तो पाई ही थी, फिर यह बात भी थी कि उन्होने भारत के बाहर खलीफाओ के प्रदेशो मे जो शासन व्यवस्था चल रही थी उसी को भारत मे स्थापित विभाजन पर आधारित थी। मुस्लिम न्याय शास्त्रियों के अनुसार मुख्य रूप से वे प्रांतपति दो प्रकार के होते थे। एक तो वे जो जिनकी नियुक्ति सुल्तान स्वयं करता था और जिनकी शक्तियाँ सीमित होती थी और दूसरे वे जिन्होने बलपूर्वक काफी प्रदेश हस्तगत कर लिया होता था और जिन्हे दिल्ली अर्द्धस्वतंत्र शासक मान लेते थे। इस द्वितीय श्रेणी मे बड़े-बड़े राज्यों के हिंदू शासक भी रखे जा सकते है, जिनके राज्य तो छीने नही जा सके थे, किंतु जिन्होने सुल्तानों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। सल्तनत काल के शुरू के मुसलमान सुल्तान अपनी प्रशासकीय आवश्यकता और सुविधा का खयाल कर पराजित हिंदू राजाओ के राज्यों को दिल्ली सल्तनत के प्रात बना देते थे और उनकी राजधानियों को ही इन प्रांतो की राजधानी बनी रहने देते थे।[1]

पूरे सल्तनत काल मे (१२०६–१५२६) मुक्तियो (सूबेदारों) के काम मुख्य रूप से एक ही थे। ये काम निम्नलिखित होते थे[2] :—

१. उदाहरण के लिये, बयाना, जौनपुर, बदायूँ और स्वतंत्र हिंदूराजाओं की राजधानियाँ थी। फिर जब ये राज्य जीत कर सल्तनत के प्रांत बना दिए गए तब भी इन नगरो को इन प्रदेशो की राजधानियाँ बने रहने दिया गया। (एच० सी० राय, डायनेस्टिक हिस्ट्री आफ नार्दर्न इण्डिया, भा० १, पृ० ५०४-५३३, ५५४, ५७४, इंडियन ऐंटिक्वेरी, भाग २४, पृ० १७६, हबीबुल्ला, फाउंडेशन आफ मुस्लिम रूल इन इंडिया, पृ० ६४। डा० परमात्माशरण का यह कथन ठीक नही है कि बयाना, बदायूं, जौनपुर और कड़ा कोई पहले के हिंदू राज्य नही थे, बल्कि इन्हे सुल्तानो ने सैनिक सुरक्षा और शासन की सुविधा के लिये प्रांत बना दिया था (इलियट, भा० ४, पृ० ३७६)।

२. ताज-उल-मासिर, फोलियो, १४४ बी–१४८ बी, इंशाये माहरू, पत्र १ और ६१, कुरेशी, पृ० १६८।

(१) प्रांत की कार्यकारिणी के प्रमुख के रूप में कार्य करना।

(२) कानूनो और राज नियमो का पालन कराना।

(३) उलेमाओ को संरक्षण देना और सेना तथा शासन के अधिकारियो पर नजर रखना।

(४) कृषि को प्रोत्साहन देना, संपन्नता मे वृद्धि करना और प्रजा का भार हल्का करना।

(५) न्याय करना और निर्बल को शक्तिशाली के शोषण और अत्याचार से बचाना।

(६) न्यायालय के फैसलो को कार्यान्वित करवाना।

(७) मृत्यु दड न देना।

(८) राज पथों की रक्षा कर, उद्योग-धंधो और व्यापार को प्रोत्साहन देना।

सल्तनत काल के सूबेदार अपने अपने क्षेत्रो में लगभग पूर्ण स्वेच्छाचारी शक्तियो का उपभोग करते थे। सूबेदारो की शक्तियाँ सम्राट पर आधारित होती (सम्राट की योग्यता और अयोग्यता पर आधारित) थी। साहिबे दीवान वैसे तो सूबेदार के ही अधीन होता था पर वह स्वेच्छाचारी सत्ता पर एक प्रकार का अकुश भी रखता था। प्रातीय काजी के सिवाय, प्रायः सभी अधिकारियो की नियुक्ति सूबेदार स्वय करता था। काजी प्रात की न्याय-व्यवस्था का प्रमुख होता वही धार्मिक व्यक्तियो और संस्थानो आदि के अनुदानो को वितरित करता था और प्रात के दीवानी तथा फौजदारी के मुकदमों को निपटाता था।

बाबर तथा हुमायूं के समय में सूबो की कोई व्यवस्था नही थी। हुमायूं ने यह कार्य करने के लिये सोचा था लेकिन परेशानियो के कारण न कर सका। एस० आर० शर्मा ने लिखा है कि 'अकबर के पूर्व मुगल राज्य मे कोई प्रांतीय शासन नही था। अकबर के शासन काल मे १५ सूबे थे, जिनकी संख्या जहाँगीर के समय मे १७ तक और औरंगजेब के समय में २१ तक पहुँच गई।[१]

१. एन० आर० शर्मा, पृ० ५५-५६।

अकबर के शासन काल के प्रारंभ मे कुछ प्रांतों के उल्लेख मिलते है ।[1]

बाबर ने अफगानो के दुर्बल पंचायती राजतंत्र के स्थान पर दैवी शक्ति पर आधारित निरंकुश बादशाहत की स्थापना की। यह राजा तथा अध्यक्षो के बीच मे एक प्रधान मंत्री रखा ।[2]

हुमायूँ पूरब की ओर बढने की योजना दृढ कर रहा था। वह नव-विजित राज्य के शासन मे कुछ नये प्रयोग करने के मनसूबे बना रहा था। इसी समय एक दिन उसकी मृत्यु ने उसे अपने पास बुला लिया। लेनपुल

---

१. स्मिथ, अकबर दि ग्रेट, भा० १, पृ० २३ ।

१५६१ ई० मे मिर्जा शर्फ उद्दीन नागौर से अजमेर तक के प्रदेश के सूबेदार के पद पर काम कर रहा था (स्मिथ—अकबर दि ग्रेट, भा० १, पृ० ६२, ६३, ७८)।

मेंहदी कासिम खाँ के भानजे हुसेन खाँ को दिसम्बर १५५७ ई० मे लाहौर का सूबेदार नियुक्त किया गया था (स्मिथ, पृ० ३५)।

१५६१ ई० में पीर मुहम्मद मालवा का सूबेदार बनाया गया था और उसकी मृत्यु के पश्चात् अब्दुल्ला खाँ उजबेक वहाँ का सूबेदार हुआ था (स्मिथ; पृ० ६१, ६७, ६८)।

आसफ खाँ, १५६४ ई० मे गोडवाने का सूबेदार हुआ और उसके विद्रोह के पश्चात् मेंहदी कासिम खाँ सूबेदार बना (स्मिथ, पृ० ९३ १०५)।

अतका खाँ का पुत्र मीर मुहम्मद खाँ १५६७ ई० में सारे पंजाब का सूबेदार नियुक्त किया गया था, (स्मिथ, पृ० १२२)।

मुनीम खाँ को अगस्त १५७४ ई० मे बिहार का सूबेदार बनाया गया था और फिर बगाल सुपुर्द कर दिया गया था (स्मिथ, पृ० १४७)।

अकबर ने अपने धाय के भाई मिर्जा अजीज कोका को गुजरात का सूबेदार बनाया था (अकबर नामा, भा० ३, पृ० २३१)।

शाह कुली महराम को १५७८ ई० मे पंजाब की सूबेदारी से हटा दिया गया था और उसके स्थान पर सईद खाँ को नियुक्त किया गया था (स्मिथ, पृ० २४७)।

२. लेनपुल, मिडिवल इंडिया, पृ० ४०२ ।

ने लिखा है कि "वह जीवन भर लुढकता ही रहा और लुढककर ही उसने प्राण गँवाए।"[1]

हुमायूँ की मृत्यु प्रथम राज्यारोहण के २५ वर्ष बाद हुई। यदि वह संपूर्ण समय भारत के सम्राट् की हैसियत से बिता सकता तो तैमूरी राजवंश की सत्ता काफी दृढ हो जाती लेकिन यह सब न करने के लिये वह स्वयं उत्तरदायी है।[2]

डाक परिवहन की एक योजना अवश्य चालू की गई, परंतु उसके अतिरिक्त और किसीप्रकार का सुधार जो नाम लेने लायक हो, करने का विचार भी न किया गया। हुमायूँ ने प्रशासन की एक योजना अवश्य बनाई, तथा एक दूरदर्शी और मेल मिलाप की नीति शुरू की।[3] यह नीति पूर्ववर्ती मुसलमान शासको से भिन्न थी, परंतु उसने इसे अपने राज्य-काल के दूसरे चरण में चालू की, जबकि विधाता ने उसे अपनी योजना को कार्यान्वित करने के पहले ही इस संसार से उठा लिया।[4] राज्य-काल के प्रथम चरण मे जब कुछ सफलता प्राप्त की जा सकती थी वह या तो बहुत सुस्त रहा या अपनी मूर्खताओ से बुलाई उलझनो में अत्यधिक उलझा रहा।[5]

इस प्रकार राजतंत्र के नये आदर्श की स्थापना मे प्रथम दो मुगलों के योगदान प्रायः नही के समान थे। तुर्की सरदारो की संख्या स्वभावतः बहुत कम थी, अतः बहुत से प्रातो और जिलो मे पुराने अफगान अधिकारियों को कार्य भार सौंपना ही पड़ा। परंतु वे हरदम अपनी खोई हुई आजादी के बारे मे चिंतित रहते थे।[6] स्थानीय सूबेदार और सरदार पहले ही की तरह मुक्त और आजाद रहे। केंद्रीय शासन ने कोई ऐसी

---

१. लेनपुल, मिडिवल इंडिया पृ० ४११, बनर्जी, पृ० ३३१।
२. एस० के० बनर्जी, भा० २, पृ० ३४३।
३. मा० उ०, भा० १, पृ० ६६३।
४ स्टिवर्ट, जौहर, पृ० ११२-१५, अर्सकिन, भा० २, पृ० ५२०-२३।
५. अर्सकिन, भा० २, पृ० ५२७, मा० उ०, भा० १, पृ० ६११।
६. मेमायर्स आफ बाबर, भा० २, ५२८, बदायूँनी भा० १, पृ० ३३७।

योजना न बनाई, जिससे उसके आदेशो का पालन हो, और वह उक्त अमीरो की निगरानी कर उनकी कार्यवाहियो पर नियंत्रण रख सके। इस प्रकार कहा जा सकता है कि बाबर और उसके पुत्र की निर्माणकारी उपलब्धि बेसूद थी।[१]

इस दिशा मे शेरशाह और उसके पुत्र इस्लाम शाह का योगदान कही अधिक उत्कृष्ट और वास्तविक था। शेरशाह ने अफगान राजतंत्र के सिद्धात मे कोई रूपांतर अथवा परिवर्तन न किया, बल्कि इसके विपरीत उसे खुली मान्यता दी। परंतु उसने शासन पद्धति मे नई जान फूंकी, और सपूर्ण प्रणाली की काया ही पलट दी। उसने लगभग सभी विभागों मे उन्नति और सुधार किए और पूर्ववर्ती सुल्तानो की अयोग्यता के कारण उत्पन्न खराबियों और भ्रष्टाचार को समाप्त कर दिया।[२]

शेरशाह ने शासन पद्धति को उन्नत और परिपूर्ण करके उसने अफगान सरदारों की उद्दंडता को बहुत ही घटा दिया। यदि उनमे से कोई भी अपने कर्तव्य पालन मे जरा भी चूकता, तो तुरंत ही उसे कठोर ताड़ना मिलती। कर्तव्यो, चूक अथवा उसके प्रति उपेक्षा अथवा अन्याय को न तो सहन किया जाता था और न क्षमा।[३]

शेरशाह ने अफगान सरदारो को दबाकर आज्ञाकारी बना दिया, और व्यवहार में उनका दर्जा घटाकर सूबेदारो और जागीरदारो की हैसियत पर ले आया। इस कारण जन-समुदाय समृद्ध हुआ। अफगान राजतंत्र के मूल सिद्धात मे परिवर्तन करने की तनिक भी कोशिश न की।[४]

इस्लाम शाह ने एकभिन्न नीति अपनाई। जैसे ही वह राज-सिहासन पर दृढता से जम गया, उसने इन अफगान सरदारो की, जो राज-सिहासन पर प्राय: हावी होने लगे थे, शक्तियो को कुचलने मे कड़े कदम उठाए।[५]

---

१. परमात्माशरण, पृ० १४३।
२. वही, पृ० १४३।
३. वही, पृ० १४३-४४।
४. अब्बास, पृ० ११३, इलियट, भा० ४, पृ० ३७६-७७।
५. इलियट, भा ४, पृ० ५०४, बदायूंनी, भा० १, पृ० ३८५।

इस्लाम शाह ने पिता द्वारा जमाई हुई प्रशंसनीय प्रशासन पद्धति को और आगे बढ़ाने के भी प्रयत्न किए, और कदाचित् कुछ विभागों में उसे स्पष्ट सफलता भी प्राप्त हुई।[1]

शेरशाह ने पुराने प्रातो को ही बनाए रखा तथा प्रातो की सीमाओं मे कोई फेर-बदल नही किया।[2] इस विषय मे डा० कानूनगो ने लिखा है कि "शेरशाह ने प्रातो को मिटाकर अपने समस्त साम्राज्य का एक नये प्रकार से विभाजन किया, एक निर्मूल कल्पना मात्र है। उसके प्रांतो अथवा सरकारो व परगनो आदि की तादाद का ठीक-ठीक निर्देश कही नही मिलता है।"[3]

अबुल फजल ने लिखा है कि "शेरशाह ४७ सरकारो मे बाँटा था तथा अकबर के समय मे १९ सरकारे थी। इसप्रकार कुल ६६ सरकारें होंगी।'[4] इन प्रातो या सरकारो की सख्या समय समय पर घटाई बढाई जा सकती थी। सामान्यत· सरकारे परगनो मे बाँटी गई थी, परगना सरकारी शासन की सबसे छोटी ईकाई थी। इस प्रकार का जिक्र डा० कानूनगो ने किया है।[5] तथापि वैधानिक नीति के अनुकूल नही थी। सरकारो और परगनों की लंबाई-चौड़ाई आवश्यकता के अनुसार बदलती रहती थी। इसी प्रकार उनके अधिकारी वर्ग भी सारे स्थानो पर एक समान नही रहते थे।[6]

शेरशाह के प्रांतीय शासन के बारे मे भी पर्याप्त वर्णन नही मिलता। डा० कानूनगो ने 'निम्नलिखित प्रांताधीशो, सूबेदारो के साथ काजी, दीवान, मुहतासिब आदि पदाधिकारी अवश्य थे'—बतलाया है।[7]

शेरशाह के राज्यकाल में साम्राज्य के शासन-प्रबंधीय विभाजन के बारे मे दो मत हैं। डा० कानूनगो की राय है कि 'सरकारो के ऊँचे

---

१. डा० कानूनगो, शेरशाह, पृ० २४१, ३४७।
२. इलियट, भा० ४, पृ० ५११। ३. डा० कानूनगो, पृ० ६८-६९।
४. अबुल फजल, अकबरनामा भा० ३ (अनु०) पृ० २६१।
५ डा० कानूनगो, पृ० ७१-७२
६. वही, पृ० ८१।
७ वही, पृ० ७२-७३।

विभाजन नही थे। प्रांत और गवर्नरो की सृष्टि तो अकबर ने की थी।'[१] डा० सरन का इससे मतभेद है कि 'शेरशाह के समय में फौजी गवर्नरों की प्रथा थी।[२] सल्तनत काल में यहाँ तक कि शेरशाह और उसके लड़के इस्लाम शाह के राज्य-काल में भी प्रातो के समान ही शासन प्रबंध की दृष्टि से ये एक से नही थे। इन विभागों को सूबे अथवा प्रांत कह कर नही पुकारा जाता था।[३]

शेरशाह सभी प्रात-पतियों के ऊपर दृष्टि रखता था और किसी प्रकार की अशांति, अव्यवस्था अथवा केंद्रीय आदेशों की उपेक्षा सहन नही करता था तथा ऐसा करने पर कठोर से कठोर दंड देता था।'[४]

प्रत्येक प्रात कई-कई सरकारों (जिलो) में विभाजित था। प्रत्येक सरकार मे दो मुख्य अधिकारी होते थे—शिकदार-शिकदारन (प्रमुख शिकदार) और मुसिफ मुंसिफान (प्रमुख मुंशी)। प्रमुख शिकदार का पद बहुत ऊँचा होता था तथा इसके नीचे एक अच्छा सैनिक दल होता था। अपने जिले मे शाति बनाए रखने के लिये यह हर संभव कार्य करता

---

१. डा० कानूनगो, पृ० ७५।

२. डा० सरन प्राविसियल गवर्नमेंट आफ दि मुगल्स, पृ० ८३।

३. डा० सरन, प्राविंसियल गवर्नमेंट आफ दि मुगल्स, पृ० ८३-८४।

४ इन्हे 'इक्ता' कहा जाता था और वे मुख्य पदाधिकारियों के प्रबंध में रख दिए जाते थे। इसी समय शेरशाह ने बंगाल मे एक नवीन प्रकार का प्रातीय शासन स्थापित किया था, जिसके अनुसार प्रांत को कई सरकारो मे विभाजित कर दिया था और प्रत्येक 'सरकार' एक बड़े अफगान अधिकारी के सुपुर्द था। सारे प्रात के ऊपर उसने एक नागरिक अधिकारी की नियुक्ति की, जिसके नीचे एक छोटा सा सैनिक दल भी होता था। इस अधिकारी का काम 'सरकारों' के अधिकारियो के काम की देख-भाल करना और उनके झगड़ो को निपटाना था। प्रांतो मे गवर्नर होते थे तथा और अधिकारी भी। असल बात यह है कि शेरशाह की प्रातीय शासन-व्यवस्था उसकी सरकारो और परगनो की व्यवस्था की ही भाँति अच्छी तरह संगठित नही था' (डा० कानूनगो, पृ० ७३-७४, ७६-७७)।

था। प्रमुख मुंशी का कार्य, मुख्य रूप से यह एक न्यायाधीश होता था। दीवानी मुकदमो का इसे निर्णय करना पड़ता था तथा साथ ही परगनों के अमीनो के कार्य का निरीक्षण भी उसे ही करना पडता था। इन अधिकारियों को सहायता देने के लिये बडे-बड़े दफ्तर तथा बहुत सारे क्लर्क और एकाउंटेंट आदि रहते थे।[1]

प्रत्येक सरकार मे कई-कई परगने होते थे। ये परगने ही शासन की सबसे छोटी ईकाई थी। शेरशाह ने प्रत्येक परगने मे एक शिकदार-एक अमीन, (मुंसिफ), एक कोतदार (खजाची) और दो कारकुन (लेखक) नियुक्त किए थे। इनके अतिरिक्त एक कानूनगो भी होता था, जो अर्ध-सरकारी अधिकारी माना जाता था और परगनों के लगान संबंधी मामलों की पूरी-पूरी जानकारी रखना था।[2]

शेरशाह ने बुद्धिमत्ता पूर्वक ग्रामीण जनता के आत्मनिर्णय के अधिकार को माना था और गाँव के पटवारी एव चौकीदार के द्वारा वह इनसे संबंध-सपर्क रखता था। गाँव मे एक पचायत होती थी, जिसके सदस्य गाँव के वयस्क और बुजुर्ग लोग होते थे। यह पचायत गाँव की सुरक्षा, प्रारभिक शिक्षा, सफाई, सिंचाई आदि बातो का प्रबन्ध करती थी। "गाँव वालो के आपसी झगडे भी पचायत द्वारा निपटाए जाते थे।[3]

परगने और सरकार के शासन मे शेरशाह ने कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन किया। उसने सभी प्रकार के मुकदमो के निर्णय के लिये, पहले की अपेक्षा अधिक सतोष-जनक प्रबन्ध किया। दूसरे उसने जनता की सुविधा-असुविधा का ध्यान रखा। तीसरे उसने द्वैध शासन का प्रचलन करके स्थानीय विद्रोहो की सभावना बहुत कम कर दी क्योंकि अमीन और शिकदार तथा उनके प्रधान अपने-अपने क्षेत्र मे एक-दूसरे पर नियंत्रण रखते थे और जिस व्यक्ति के पास अर्थ था, वह सैनिक शक्ति से वचित था और विद्रोह प्राय. तभी होते है, जब दोनो एक व्यक्ति के पास हो। चौथे उसने परगनो तक के हाकिमो की नियुक्ति एवं पदच्युत

१. डा० सरन, पृ० ८७-८९।
२. डा० सरन, पृ० ९१, श्रीराम शर्मा, पृ० ५१-५२, डा० कानूनगो, पृ० ७१।
३. डा० कानूनगो, पृ० ७४-७५, सरकार पृ० ४९।

केंद्रीय शासन के हाथ में लेकर स्थानीय शासन पर केंद्रीय नियंत्रण वढा दिया।[१]

शेरशाह के वाद इस्लाम शाह ने शासन प्रवध मे कुछ छोटे-मोटे परिवर्तन किए। उसने विद्वानो एवं विद्यार्थियो को नकद वृत्तियाँ न देकर उनको जागीरें दे दी ताकि वे निश्चित होकर अपना जीवन विद्याभ्यास मे लगा सके। इस्लाम शाह ने अपूर्ण दुर्गों तथा सडकों को ठीक करवाया तथा प्रत्येक दो सराय के वीच एक और सराय वनवाया। यह कुछ अन्य कार्य भी सराहनीय किया। इस्लाम शाह के कार्यों की एस० आर० शर्मा ने वडी प्रशसा की है तथा उन्होंने लिखा है कि 'कुछ स्थानो पर यह शेरशाह का अग्रगामी कहा जा सकता है।'[२]

सिर्फ इस्लाम शाह को छोड़कर शेष सभी को निकम्मा और विलासी कहा जा सकता है। क्योकि इन सम्राटो के कारण सूरवंश का पतन वहुत जल्द हो गया।[३]

सरकार ने लिखा है कि 'मुगल साम्राज्य में प्रांतीय प्रवंध की व्यवस्था केंद्रीय सरकार का ठीक छोटा रूप था। प्रत्येक प्रात का प्रधान एक राज्यपाल होता था जो अकवर के शासनकाल मे सिपहसालार और उसके उत्तराधिकारियों के शासनकाल मे सूवेदार अथवा नाजिम कहलाता था। यह प्रांतीय शासक अपने प्रात मे वादशाह का लघु रूप था। वह सम्राट की कृपा का तव तक पात्र वना रहता था, जव तक प्रात मे सर्वाधिक शक्तिशाली एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति माना जाता था। वास्तव में सम्राट ही उसकी शक्ति का स्रोत था।[४]

सूवेदार न तो राजवंश का व्यक्ति होता था और न उच्च अमीर ही होता था। वह तो अपनी सेवाओ के फल-स्वरूप इस पद पर नियुक्त किया जाता था। वह सदैव सम्राट का कृपा-पात्र होता था, पर यदि सम्राट् चाहता तो सेवाओ का ध्यान न करके भी किसी को इस पद पर नियुक्त

१. स्मिथ, पृ० ९३-९४, सरकार, पृ० ५४-५६।
२. एस० आर० शर्मा, पृ० ५७-५८।
३. एस० आर० शर्मा, पृ० ५९, स्मिथ, ९७।
४. सरकार, पृ० ५६, ६१।

कर सकता। अनुभव, आयु एवं निर्णय के कोई बंधन नही थे। यह बहुत बडा दोष था।[1]

अकबर ने मुगल साम्राज्य के जिन प्रदेशो को हुमायूँ से पाया था, अथवा जिन्हे उसने जीता था, उनमें उसने पहले से चले आ रहे प्रादेशिक विभागों प्रांतो और जिलो को लगभग १९ वर्ष तक ज्यो का त्यो बनाए रखा। लेकिन १५७५ ई० में उसने साम्राज्य की सब खालसा भूमि को १८२ एकसे क्षेत्रो अथवा प्रदेशो मे विभाजित कर दिया। इनमे से प्रत्येक भाग की अनुमानित मालगुजारी १ करोड दाम या २,५०,००० रुपए थी। ऐसे हर भाग को एक करोडी नामक अधिकारी के अंतर्गत रख दिया गया। अकबर का यह सुधार सिद्ध नही हुआ क्योकि इसमे प्रशासन की वास्तविक समस्याओ का ध्यान नही रखा था।[2]

जनवरी १५८० ई० मे अकबर ने यह निर्णय किया कि साम्राज्य को १२ स्थायी सूबो मे विभाजित कर दिया जाय और इनमे से प्रत्येक में एक सिपहसालार, एक दीवान, एक बख्शी एक मीर अद्ल, एक सद्र, एक कोतवाल, एक बहर (नौसेना अधिकारी) और एक-एक वाकियानवीस नियुक्त कर दिया जाय।[3] थोड़े समय बाद कुछ सूबो मे अमीन नामक एक अधिकारी और बढा दिया गया। आगरा, दिल्ली, इलाहाबाद, अवध। इस प्रकार साम्राज्य के इन सब प्रांतो मे एक सी शासन-व्यवस्था, एक से नाम के अधिकारी, एक-सी सरकारी भाषा फारसी, और एक-से कायदे-कानून और प्रशासकीय चलन स्थापित कर दिए गए।[4] डा० परमात्माशरण के इस मत मे कुछ भी सार नही है कि अकबर के और उसके उत्तराधिकारियो के काल में दो तरह के प्रांत थे, एक तो वे स्थायी प्रांत जो कि सीधे शासन के अंतर्गत थे, और वे जो कि वास्तव में अधीन राज्य के।[5] हिंदू राज्यो को जिसने अकबर जीत लिया था, या

१. सरकार, पृ० ७३।

२. अकबरनामा, भा० ३ (अनु०), पृ० २४७।

३. स्मिथ, अकबर दी ग्रेट, भा० १, पृ० १७५-७८।

४. अकबरनामा, भा० ३, पृ० २८२। १५९५ मे नहीं जैसा कि परमात्माशरण कहते हैं (प्राविंसियल गवर्नमेंट, पृ० ७०)।

५. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ६६, ४०३, ४७७।

अधीनता स्वीकार कर ली थी, सरकारी रूप से उन प्रांतो का ही भाग बना दिया था। इन्हें प्रातों की सरकारो (जिले) और कभी-कभी परगने भी कहा जाता था।[१]

अकबर ने नवबर १५८६ ई० मे प्रांतो की शासन-व्यवस्था मे एक महत्वपूर्ण सुधार किया। वह यह था कि इस समय मे जो एक सूबे में केवल एक ही सिपहसालार (सूबेदार) नियुक्त किया जाता था, अब उनके स्थान पर दो संयुक्त सूबेदार नियुक्त किए जाने लगे।[२]

अकबर ने अगस्त १५९५ ई० मे प्रातीय शासन को फिर से संगठित किया और अब हर प्रांत मे एक मालगुजारी का उच्चाधिकारी दीवान नियुक्त किया जाने लगा। जैसे—मुगल साम्राज्य की राजधानी आगरा के संयुक्त सूबेदार शेख इब्राहीम और राजा आसकरण थे। अकबर ने संयुक्त सूबेदारो की नियुक्ति हर प्रातो में की और उनमे अक्सर एक हिंदू और एक मुसलमान को रखा।[३]

१५९९ ई० तक इन सूबो की संख्या बढ करके १५ हो गई थी। इस प्रकार अकबर के राज्य काल के अंत तक मुगलसाम्राज्य मे १५ सूबे हो गए थे और उन्हे मिला कर पाँच प्रादेशिक क्षेत्र बना दिए गए थे।[४]

१५९५ ई० मे जो सुधार हुआ, उसका परिणाम यह हुआ कि अब नया दीवान न तो सूबेदार द्वारा नियुक्त होता था और न उसका मनोनीत

---

१. परमात्माशरण, पृ० ७०।

२ अकबरनामा, भा० ३ (अनु०) पृ० ५११ ।

३. वही, पृ० ६७।
कही दो हिन्दू सूबेदारो की नियुक्ति की जैसे—लाहौर या पंजाब में दो हिंदू राजाओ भगवंनदास और राय रायसिह की ही संयुक्त सूबेदारी में रखा गया था। (अकबरनामा, ३, पृ० ६७)।
अजमेर मे जगन्नाथ और राय दुर्ग संयुक्त सूबेदार थे (अकबरनामा, भा० ३, पृ० ६८)।
अफगानिस्तान में मानसिह और जैन खाँ कोका को रखा गया था (अकबरनामा, भा० ३, पृ० ६०२)।

४. अकबरनामा, भा० ३ (अनु०), पृ० ६०५।

व्यक्ति ही होता था। वह अब ख्वाजा (वजीर अमासुद्दीन) के परामर्शानुसार अपना व्योरा सम्राट् को भेजने लगा था। इसप्रकार वह अब केंद्रीय शासन के अंतर्गत आ गया था।[1]

दिल्ली और अवध के सूबे तिपुरदास के नियंत्रण मे थे और आगरा तथा इलाहाबाद राय रामदास के नियंत्रण मे थे।[2]

अकबर के प्रात आधुनिक भारतीय गणतंत्र के राज्यो से बहुत विभिन्न थे। इस प्रकार शासन के अंत काल तक सूबे इस प्रकार थे[3]—

आगरे के सूबे मे १३ सरकारे (जिले) थी, और इनकी कृषि योग्य भूमि, २, ७८, ६२, १८९ बीघे और १८ बिस्वा थी। इसकी मालगुजारी रु० १, ३६, ५६, २५७।९।६ थी। यह जिलो मे विभाजित था, वे थे—आगरा, कालपी, कन्नौज, कोल (अलीगढ) ग्वालियर, हरिज, बयाना, नरवर, मण्ड्रेल, अलवर, तिजारह, नारनौल और सहर।[4] दिल्ली सूबे में आठ जिले थे' जिनकी कृषि-योग्य भूमि का क्षेत्रफल था—२,०५,४६,८१६ बीघा और १६ बिस्वा। इसकी मालगुजारी रु० १,५०,४०,३८८।१४। थी। इसमे ये जिले थे बदायूँ, दिल्ली, कुमायूँ, सभल, सहारनपुर, रेवड़ी, हिसार और सरहिंद।[5]

इलाहाबाद सूबे में दस जिले थे और इसकी मालगुजारी रु० ५३,१०, ६९५।७।९ थी। इसमें कृषि-योग्य भूमि ३९,६८,०१८ बीघा और ३ बिस्वा थी। इस सूबे मे ये जिले शामिल थे—इलाहाबाद, गाजीपुर, बनारस, जौनपुर, मानिकपुर, चुनार, मथखोडा, कालिंजर, कोडा और कड़ा।[6] अवध मे ५ जिले थे और इसकी भूमि थी—१,०१,७१,१८० बीघा। इसके जिले में अवध (अयोध्या) गोरखपुर, बहराइच, खैराबाद और लखनऊ थे।[7]

---

१ अकबरनामा, भा० ३ (अनु०), पृ० ६७।

२. वही, पृ० ६०६।

३ स्मिथ, भा० १, पृ० ८१-८२।

४. आईन, भा० २ (अनु०), पृ० १९३-२०६।

५. आईन, पृ० २९०-३०१।

६. वही, पृ० १७१-१७९।

७. वही, पृ० १८४-९०।

अकबर के सूबो के क्षेत्रफल और उनकी मालगुजारी मे जो फर्क है उससे कुछ लोगों ने यह अनुमान लगाया है कि ये सूबे बड़े और छोटे सूबों में विभाजित थे। जैसे श्री परमात्माशरण लिखते हैं—'पहले बारह सूबे बड़े प्रांतों की श्रेणी मे आते थे, यद्यपि उनमे भी कुछ श्रेष्ठ और कुछ निम्न प्रकार के होते थे।'[1] वे आगे कहते है कि 'इन प्रातो की मालगुजारी की तुलना भी हमे इन प्रांतों के वर्गीकरण का सामान्य अनुमान देती है। फिर बड़े-बड़े प्रांतों के भी उच्च और निम्न वर्ग थे।'[2] अकबर के काल में प्रधान मंत्री तक को सूबेदार बनाकर भेज दिया जा सकता था और एक मुंशी सीधा राजस्व मंत्री बन सकता था।[3] उदाहरण के लिये—एक प्रधान मंत्री मुनीम खाँ को जौनपुर का सूबेदार बना दिया गया और दूसरे प्रधान मंत्री मुजफ्फर खाँ को बिना उसकी गलती के बंगाल का सूबेदार बनाकर भेज दिया गया था।[4]

प्रांत के मुख्य अधिकारी गण

प्रात का अध्यक्ष अकबर के शासन काल मे, सरकारी तौर पर, सिपहसालार कहलाता था।[5] (जनसाधारण मे वह सूबादार और बाद को केवल सूबा कहा जाता था)। अकबर के उत्तराधिकारियो के राज्य-काल में उसे नाजिम कहा जाने लगा।[6] सिपहसालार अधिराट का उपराजय था।[7] सरकारी पद सोपान के अनुसार उसके बाद, परंतु उसके मातहत नहीं, दीवान था। इन दोनों प्रांत के मुख्य अधिकारियों के ऊपर प्रात की प्रायः संपूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था (मशीन) का भार उठाने की जिम्मेदारी थी। सिपहसालार कार्यपालिका, सुरक्षा और फौजदारी, न्याय और

---

१. परमात्माशरण, प्राविंसियल गवर्नमेंट आफ दि मुगल्स, पृ० ७१।
२. परमात्माशरण, प्राविन्सियल गवर्नमेंट आफ दि मुगल्स, पृ० ७३
३. वही, पृ० ७३ टिप्पणी।
४. अकबरनामा, भा० ३ (अनु०), पृ० २६५।
५. लोदियो और सूरो के शासन-काल मे प्राताधीशो और "हाकिम" कहा जाता था (परमात्माशरण, पृ० १५३)।
६. रियाज, पृ० १७०।
७. आईन, १ (अनु०), पृ० २८०।

सामान्य पर्यवेक्षण के लिये उत्तरदायी था।[1] दीवान खासकर राजस्व, प्रशासन, दीवानी न्याय और अनुमानतः सद्र के कार्य-भार के विभागों के सामान्य पर्यवेक्षण के लिये उत्तरदायी था।[2] शासन प्रबंध मे उनके अनेक सहायक थे—

(१) बख्शी अथवा वेतनाध्यक्ष, जिसके ऊपर अन्य विविध प्रकार के कार्यो की जिम्मेदारी थी।

(२) सद्र, जो धर्मार्थ-विभाग दान और अनुदान का अध्यक्ष था।

(३) काजी अर्थात् प्रात का मुख्य न्यायाधीश।

(४) कोतवाल, जिसको आंतरिक सुरक्षा, स्वास्थ्य, सफाई और अन्य नगरपालिका के कार्यो का कार्य-भार सौपा गया था।

(५) मीर-बहर, जिसको बंदरगाह-शुल्क, सीमा-शुल्क, नाव-नौका करो आदि का कार्य-भार दिया गया था।

(६) वाकया नवीस (सरकारी गोपनीय सवाददाता)।[3]

इनके अतिरिक्त कुछ प्रांतो मे एक और अधिकारी अमीन नियुक्त किया जाता था।[4] उन परिस्थितियो मे कदाचित् सामान्य नियत्रण एवं सहायता, दोनों हकीमो के लिये, अमीन की आवश्यकता थी क्योकि इस कारण कार्य परामर्शदाता का कार्य भी होता था।[5] पहले एक ही व्यक्ति

---

१. आईन, १ (अनु०), पृ० २८१।
२. मीरात पृ० ७२१।
३. अबुल फजल, अकबरनामा, भा० ३ (अनु०), पृ० २८२, परमात्माशरण, पृ० १५४।
४. अकबरनामा, भा० ३ (अनु०), पृ० २६५-६६।
५. मीरात, भा० १, पृ० १३३।
१५७५ मे युवक मिरजा अब्दुर रहीम को गुजरात का वाइसराय और अलाउद्दीन को प्रात का अमीन बनाया गया (मीरात, भा० १, पृ० १३४)।
सन् १५८६ मे जब एतमाद खाँ गुजरात का सूबेदार बनाया गया, मीर तुराब अली अमीन नियुक्त किया गया (त० अ०, भा० २, पृ० ३६८, अ० ना०, भा० ३, पृ० ४०३)।

अमीन भी था और सद्र भी तथा दूसरी में उसको एक अतिरिक्त पद न्यायाधीश का, जिसका काम खासकर धर्मादा और दोनों के कार्य का निपटारा करना था और जो साधारणतया सद्र के पद से संबद्ध था।[1] अमीन के पद मे ट्रस्टी और परामर्शदाता के कर्तव्य शामिल थे।[2]

ज्यादातर केवल सर्वोच्च-योग्यता संपन्न, अनुभवी और उच्च पद के उपयुक्त जिम्मेदार व्यक्तियों को ही सूबादार नियुक्त किया जाता था। परन्तु यदा-कदा शाहजादों और उच्च पदस्थ अधिकारियों के पुत्रों के लिये इस नियम मे अपवाद हो जाते थे। अक्सर ये भी महत्वपूर्ण प्रांतों के सूबादार बनाए जाते थे। परंतु ऐसी अवस्था मे एक योग्य और अनुभवी व्यक्ति को सूबादार का अतालीक (मार्ग-दर्शक और परामर्श-दाता) बनाकर भेजा जाता था, और सूबादारों को आदेश दिया जाता था कि वे अतालीक के परामर्शों को मानें। कभी-कभी सूबादार की अवस्था बहुत ही कम होने के कारण अतालीक ही वस्तुतः सूबादार का कार्य-संचालन करता था। इसी तरह वाइसराय की सहायता के लिये सूबादार और कई उच्च अधिकारियों की एक परामर्शदायी समिति बना दी जाती थी।[3]

---

१ अ० ना०, भा० ३ (अनु०), पृ० ४०१।

२. आ० ना०, भा० ३ पृ० ४०३ (अनु०, ३, पृ० ५९६-९७
एतमाद खाँ का स्वास्थ्य गिर रहा था, और मंत्रियों द्वारा उसे काम करने के अयोग्य समझा जाता था, परंतु उसे जाने दिया गया, क्योंकि आदेश पारित हो चुके थे। अतः अबू तुराब को अमीन बनाकर भेजा गया।

३. परमात्माशरण, पृ० १५६।

(अ) मिरजा अब्दुर रहीम खानखाना को १५७५ मे गुजरात का वाइसराय बनाया गया, और चार अमीरों की एक समिति उसकी सहायता के लिये भेजी गई, जिसमे से एक अतालीक था। वजीर खाँ व अलाउद्दीन कजवीनी व सैयद मुजफ्फर व पयागदास रायमराफिरते ऊ रुखसत फरमुदंद। अनुवाद-वजीरखाँ और अलाउद्दीन कजवीनी, सैयद मुजफ्फर और पयागदास को उसकी सहायता तथा परामर्श के वास्ते भेजा (मीरात, भा० १, पृ० १३३)।

प्रातो की प्रशासनिक कार्य कुशलता मे जरा भी त्रुटि नही होने दी जाती थी। अतालीक को, जिले उप-सूबादार की हैसियत से कार्य संचालन करना पड़ता था, प्रशासन की व्यवस्था अथवा कार्य-कुशलता मे कमी के लिये पूर्ण रूप से उत्तरदायी माना जाता था। अयोग्यता और जान-बूझकर कर्तओ की उपेक्षा का अपराधी पाए जाने पर उसे तुरंत पद से हटा दिया जाता था, न केवल, वही हटाया जाता था वल्कि उसके सभी कर्मचारियो को भी वापस बुला लिया जाता था।[1]

सूवादार न तो राजवश का व्यक्ति होता था, और न उच्च अमीर ही होता था। वह तो अपनी सेवाओ के फलस्वरूप इस पद पर नियुक्त किया जाता था। वह सदैव सम्राट का कृपा पात्र होता था, पर यदि सम्राट् चाहता तो सेवाओ का ध्यान न करके भी किसी को इस पद पर नियुक्त कर सकता था। अनुभव, आयु एव निर्णय के कोई वधन नही थे। यह वहुत वडा दोप था।[2]

अवुल फजल ने लिखा है कि 'सूवादार सम्राट् का प्रतिनिधि होता था, जो कुछ भी करता था, वह सम्राट के आदेशानुसार करता था। उसका अपना कुछ निर्णय नही होता था।[3]

(व) शाहजादा दानियाल सन् १५९८ मे इलाहावाद का वाइसराय वनाया गया, अमीरो की एक समिति, जिसमे कलीज खाँ अतालीक की हैसियत से शामिल था, उसके साथ भेजी गई (अ० ना०, भा० ३, पृ० ७२२)।

(स) सन् १६०० मे यही शाहजादा दक्षिण का वाइसराय बनाया गया अवुल फजल को उसका अतालीक वनाया गया (अ० ना०, भा० ३, पृ० ५७७)।

(द) सन् १५९८ मे सादिक खाँ और वाद मे मिरजा युसुफ शाहजादा मुराद, उस समय गुजरात के वाइसराय के अतालीक वनाकर भेजे गए (अ० ना०, भा० ३, पृ० ७२४)

१. मीरात, भा० १, पृ० १३७, अ० ना०, भा० ३, पृ० २१७-१८ परमात्माशरण, पृ० १५७।

२. सरकार, पृ० ७३।

३. अवुल फजल, अकबरनामा, भा० ३ (अनु०), पृ० २६५।

इसका मुख्य काम प्रात में व्यवस्था रखना, मालगुजारी वसूल करना और शाही फरमानो को कार्य मे परिणत करना था। वह अपने हलके के मातहत राजाओ से भी 'कर' वसूल करता था। नये सूबादार को दिए गये एक प्रकार के आदर्श निर्देश थे।[1]

अबुल फजल ने लिखा है कि 'सूबेदार को चाहिए कि सब वर्गों के मनुष्यो को अपने सद्व्यहार से प्रसन्न रखे और यह देखता रहे कि शक्तिशाली लोग निर्बलो को सताते तो नही हैं। उसको उत्पीडको का दमन करना चाहिए, योग्य अफसरो की ही तरक्की के लिये सिफारिश करे। प्रतिमास डाक-चौकी द्वारा दो बार सूचना भेजे कि उनके प्रात मे क्या हो रहा है।[2]

'रैयत को अपनी कृषि की उन्नति के लिये और पूरे हृदय से काम करने के लिये प्रोत्साहित करे। उनसे सब कुछ मत ऐंठ लो। यह रखो कि रैयत से ही सरकार को स्थायी आमदनी होती है। जमीदारो को भेट देकर प्रसन्न रखे। सेना के बजाय, इस प्रकार उनको वश मे रखना अधिक सस्ता है।'[3]

सूबेदार के बाद महत्वपूर्ण पद दीवान का था और उसकी भी नियुक्ति सम्राट द्वारा होती थी। यह सिपहसालार के कार्यो की देख-रेख रखता था और उसको सहयोग प्रदान करके राज्य के संचालन में सहायता देता था। यदुनाथ सरकार ने लिखा है कि—'मुगल शासनकाल के प्रारभिक दिनो मे उसका पद सूबेदार के समान ही समझा जाता था, किन्तु उसका अधिकार सूबेदार के समान नही था।'[4]

परमात्माशरण ने लिखा है कि 'ये दोनो अफसर परस्पर ईर्ष्या रखते थे और एक-दूसरे की कडी निगरानी रखते थे। दोनो में मतभेद हो जाने पर केंद्र से परामर्श लिया जाता था।'[5]

---

१. अबुल फजल, अकबरनामा, भा० ३ (अनु०), पृ० २६७।
२. अबुल फजल, आईन, भा० २ (अनु०), पृ० ३७-४१, मीराते अहमदी भा० १ (अनु०) पृ० १६३-७०।
३. सरकार, मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृ० ५७-६१।
४. वही, पृ० ५३ (चौथा सस्करण, १९५२)।
५ परमात्माशरण, प्राविसियल गवर्नमेट, पृ० १८९।

इनको आदेश रहता था कि गाँवों की वस्ती और खेती बढ़ाओ, शाही-कोष पर नजर रखो। उचित आदेश के विना कोई रुपया न वसूले। रुपए की वसूली के वाद रसीद देना जरूरी था। देखते रहो कि कोई अमीन गलत तो पैसा नहीं वसूल कर रहा है। प्रत्येक फसल के अंत मे असली कागजो को देखकर पता लगाओ कि लोगो ने शक्ति से ज्यादा वसूली या गवन् तो नही कर लिया ताकि उनसे वसूल कर शाही-कोष मे जमा किया जाय। ऐसे करने वाले अमीनो को हटाकर उनकी जगह पर अच्छे आदमियो को नियत किया जा सके।'[1]

'यदि किसी अमीन ने कई वर्ष तक का शेष (भूमिकर) वाकी रहने दिया है तो छोटी छोटी किस्तो के द्वारा तुम स्वयं गाँवो से वसूल करो। प्रत्येक फसल पर वाकी का पाँच प्रतिशत लिया करो। पिछले वर्ष सरकार की ओर से जो तकावी दी गई है, उसको पहली फसल पर वसूल करो। यदि वसूली नही हुई या देर से हुई तो सरकार दीवान या अमीन से पूरी करवाएगी। नियमों के अनुसार अपने महकमे के कागज शाही मुहाफिज खाने (रिकार्ड आफिस) मे भेजा करो।'[2]

वख्शी का पद आमिल के समान था। यह अनेक कानूनगोओ का निरीक्षण करता था। जिले में रीति-रिवाजो से भली भाँति परिचित होता था। इसी के पास कृषको तथा सरकार के वीच किए गए ठेको का विवरण रखता था। तुजुक-ए-जहाँगीरी में, 'कृषि योग्य तथा ऊसर भूमियो और आय-व्यय का विस्तृत लेखा रखना इसका मुख्य कर्तव्य था और वार्षिक आय-व्यय का हिसाव दरवार मे भेजता था।'[3]

कोतवाल पुलिस कर्मचारी था, परंतु कुछ न्याय-कार्य भी करता था। नगर मे शांति और सुरक्षा की स्थापना भी यही करता था।[4]

---

१ मीराते अहमदी, भा० ३; पृ० १७३।

२. सरकार, पृ० ६२-६३।

३. तुजुक-ए-जहाँगीरी (आर० एंड वी०), भा० १, पृ० २४७। पृ० ३३०-३१।

४. सरकार, पृ० ६३।

अबुल फजल ने लिखा है कि 'कोतवाल के पद पर काम करनेवाला व्यक्ति बलवान, अनुभवी, क्रियाशील, विचारवान्, शांत, सतर्क और दयावान होना चाहिए।[१]

'कोतवाल की सजगता और रात की गश्त ऐसी होनी चाहिए कि नागरिक शाति से सो सके और दुष्ट लोग जीवित न रहें। उनके पास एक रजिस्टर रहना चाहिए, जिसमे सभी बातो को नोट किया जा सके।'[२]

'किसी को गलत तरीके से न सताया जाय तथा अगर किसी को मृत्यु दड दिया गया हो, तो उसकी खाल खीचकर न मारा जाय। बारह वर्ष के पहले इस प्रकार का दड भी न दिया जाय।'[३]

फौजदारी प्रातीय सेनाओ का प्रधान होता था और सूबादार की प्रशासकीय कार्यों मे सहायता पहुँचाता था। वह विद्रोहो का दमन करता था और जनता को बदी करता था। शाति एवं व्यवस्था का उत्तरदायित्व भी उसी पर था।[४]

'आमिल' यथार्थ में कर संग्रह कर्ता होता था, पर उसे अनेक अन्य कार्य भी करने पड़ते थे। वह भूमि को देखता था और ऊसर भूमि को कृषि योग्य बनवाता था। वह देश मे शांति स्थापना मे सहायता देता था। वह कर एकत्र करने वालों से जमानत लेता था और उनके कार्य पर कठोर नियंत्रण रखता था। वह करकुनो, मुकदमो एवं हिसाब की देखभाल रखता था। वह जनता समीपवर्ती मनुष्यों एवं जागीरदारो का प्रतिमास विवरण भेजता था। वह भावों का समाचार भी देता था।[५]

'सदर' की नियुक्ति भी सम्राट ही करता था। वह सूबेदार एवं दीवान के प्रभाव से मुक्त था। वह विद्वान एव धार्मिक व्यक्ति होता

---

१. अबुल फजल, आईन, भा० १ (द्वितीय स०), पृ० २७९।
२. वही, भा० २, पृ० ४३-४५, मीराते अहमदी, भा० १, पृ० १६८-६९।
३. अबुल फजल, आईन, भा० २ (अनु०), पृ० ४१-४३।
४. सरकार पृ० ६३-६५।
५. मीराते अहमदी, भा० १, पृ० १३३ (अनु०), अकबरनामा, भा० २, पृ० ४०३, आईन, भा० ३ (अनु०), पृ० २६५-६६, तवकाते-अकबरी, भा० २ (अनु०), पृ० ३६८।

था और इच्छानुसार भूमि तथा धन का दान करता था। 'काजी' और 'मीरआदिल' उसके अधीन रहते थे।[1]

'पोतदार' का कार्य कृषकों से राजस्व वसूल करना तथा राज्यकोष को सुरक्षित रखना था। वह 'रसीद' दिया करता था और भूलों से बचने के लिये रजिस्टर रखता था। दीवान की आज्ञा के बिना यह व्यय नहीं कर सकता था। वह दीवान की अनुमति से धन देता था।[2]

'अमल गुजार' या 'करोड़ी' भूमि का 'कर' संग्रह करता था। यह प्रबंध प्रथम बार अकबर ने जारी किया था।[3] करोड़ी के अधीन ऐसा जिला होता था, जिसकी आमदनी एक करोड़ दाम से कम नहीं होती थी।[4]

'करोड़ी' के पास अपने अधिकार क्षेत्र के अनुसार सैनिक (सहबंदी) रहने चाहिए, जिससे वह समय पर सावधानी से लगान वसूल करे। जहाँ के लोग 'कर' न दे सकें, वहाँ पर वसूल न किया जाय, अन्यथा रैय्यत भाग जायगी। अपने अधीन अधिकारियों से जोर दे कि, नियम से अधिक कर किसी से वसूल न किया जाय ताकि कागजों की जाँच पर उसको आँच न आए। उसको ईमानदारी से काम करना चाहिए।'[5]

'खबर नवीस या प्रतिवेदक' चार प्रकार के होते थे[6]—

(१) वाकाये नवीस।

(२) सवानीह निगार।

(३) खुफिया।

(४) हरकारा।

वाकाये-नवीस सेना के साथ रहता था तथा प्रांतों और नगरों में काम करता था।[7]

---

१. तुजुक-ए-जहाँगीरी (आर० एंड बी०), भा० १, पृ० २४७।
२. सरकार पृ० ७१। ३. वही, पृ० ७३, परमात्माशरण, पृ० १५३।
४. परमात्माशरण, पृ० १५५।
५. सरकार, पृ० ८६, कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भा० ५। पृ० १०९-१०।
६. वही, भा० ५, पृ० १२७-२८।
७. कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भा० ५, पृ० १३१।

सवानीह निगार, यह कभी-कभी नियत्त किए जाते थे। कुछ स्थायी भी होते थे। ये इस वात की रिपोर्ट करते थे कि वाकाये-नवीस ठीक काम कर रहे हैं या नही। चिट्ठी-पत्री दरोगा ए-डाक-चौकी के पास भेजी जाती थी। यह उनको ज्यो के त्यो वजीर के पास भेजता था। वजीर भी उनको विना खोले सम्राट् के सामने पेश करता था। ये चारों प्रकार के खवर नवीस, इस दरोगा के अधीन कार्य करते थे जो उनका सवसे वड़ा अधिकारी और रक्षक था। कभी कभी सूवेदार खवर नवीस को गिरफ्तार करके या तो उसका अपमान किया करता था या उसको पिटवा दिया करता था। तव इसका पक्ष लेकर दरोगा सूवेदार को दंड दिलवाता था।[1] व्यवस्था यह थी कि वाकाये सप्ताह मे एक वार सवानीह महीने में दो वार, हरकारे द्वारा अखवार महीने में एक वार (एक महीना) भेजे जाए तथा नाजिम और दीवान अपनी रिपोर्ट (नकली मे रखकर) महीने में दो वार भेजे, परतु आवश्यक मामले की रिपोर्ट तत्काल की जाती थी।[2]

यह कार्य अकवर के समय मे वहुत ही सुचारु रूप से हुआ। औरंगजेव के समय मे प्रांतीय शासन व्यवस्था अत्यंत अस्तव्यस्त थी क्योंकि वह २५ वर्ष से अधिक उत्तरी भारत से अनुपस्थित रहा और दक्षिणी भारत मे लडाई लडता रहा। अनेक प्रातों में स्थानीय सरदार और जमींदार कानून और आज्ञाओ की अवहेलना करने लगे थे। इसका कारण यह हुआ कि केंद्रीय सरकार कमजोर पड गई।'[3]

जिला शासन व्यवस्था

प्राचीन भारत में जिले

मध्ययुगीन भारत मे सल्तनत के सामान्य और आर्थिक शासन की सुविधा के लिये प्रांतो का जो जिलो मे विभाजन कर दिया था, वह कोई नई वात नही थी। यह व्यवस्था मौर्यो के काल मे और संभवतः चंद्रगुप्त मौर्य के पूर्व भी भारत में प्रचलित थी। चंद्रगुप्त मौर्य के दरवार में जो सुप्रसिद्ध यूनानी राजदूत मेगस्थनीज था, वह न केवल उस समय जिलों के होने का उल्लेख ही करता है वल्कि उनके शासन पर भी प्रकाश डालता है। वह जिले के प्रमुख अधिकारी का नाम आग्रोनामाय देता है। इसकी

---

१. एडवर्ड्ज एड गैरेट, मुगल रूल इन इंडिया, पृ० १९८।
२. सरकार, पृ० १७५।
३. एडवर्ड्ज एंड गैरेट, मुगल रूल इन इंडिया, पृ० २०३।

नियुक्ति संभवतः सम्राट् स्वयं करता था। उसके सिवाय हर जिले मे कुछ और अधिकारी भी होते थे जैसे कृषि, वन, काष्ठ धातु व ढलाई के कारखानो, खानो और मार्गो के अधीक्षक थे।[१] गुप्तकाल मे भी प्रात जिलों मे विभाजित थे जिन्हे विषय कहते थे। विषय पर जो अधिकारी शासन करते थे, उन्हे कुमारअमात्य, आयुक्त अथवा विषयपति कहते थे। यह कहा जाता है कि उस समय जिलाधीशो की नियुक्ति प्रातपति करता था।[२] यह व्यवस्था युगों तक चलती रही। प्रतिहार साम्राज्य मे प्रात मंडलो मे या जिलो मे विभाजित होते थे।[३] कल्चरियो, चदेलो, परमारो, महरवारो, सेन, चौहानों तथा अन्य राज्यवंशों के शासनकाल मे भी यह स्थिति थी।[४]

सल्तनत काल में

दिल्ली के सुल्तानों को एक सुनियोजित जिला शासन प्रणाली अपने पहले के हिंदू शासको से विरासत मे मिली थी। लेकिन उन्होने संस्कृत के नामो को तुर्की और फारसी मे बदल दिया तथा जिलों को शिक कहने लगे। जिले का प्रमुख अधिकारी शिकदार होता था।[५] उसके अधीन एक अच्छा शक्तिशाली सैन्य दल होता था और उसका मुख्य काम जिले की आम शासन की व्यवस्था करना और उसमे अमन-चैन बनाए रखना होता था। सल्तनत काल मे प्रातो की तरह जिलो मे भी एक ही समान शासन-व्यवस्था न थी।[६]

मुगलों के अंतर्गत स्थानीय शासन का स्वरूप

उस समय की सभी सस्थाओ की भाँति मुगलो के स्थानीय शासन का स्वरूप भी अनेक प्रकार की परिस्थितियो से निर्मित हुआ था।[७] दो मुख्य कारणो ने मुगल स्थानीय शासन को प्रभावित किया।[८]

---

१ दि एज आफ इपीरियल, यूनिटी, पृ० ६४।
२. दि क्लासिकल एज, पृ० ३४४।
३. दि एज आफ इंपीरियल, कन्नौज, पृ० २३९।
४. दि स्ट्रगल फार एंपायर, पृ० २७४-८०।
५. ईलियट एंड डाउसन, भा० ४, पृ० ४१४।
६. वही, पृ० ४१४।
७. परमात्माशरण, पृ० १४७।
८. वही, पृ० १४७-४८।

(१) अधिराट् का लक्ष्य और उद्देश्य, अर्थात् मुगल-शासक के शासन का आदर्श ।

(२) मुगल सम्राटों के हाथो मे शासन आने के समय विद्यमान देश की संस्थाएँ ।

मुगल शासन का लक्ष्य 'राजनीतिक शरीर के स्वास्थ्य पर निरंतर ध्यान देना', और उसके रोगो तथा खराबियो का इलाज करते रहना, जिससे जीवन मे परिपूर्णता आवे और उसकी प्रसन्नता शक्ति और समृद्धि आश्वासित हो। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये सम्राट् को होशियारी से समाज के उन चार वर्गो का, जिसमे समाज विभक्त किया जा सकता है, उपयोग करना चाहिए। ये चार वर्ग थे[1]—

(१) योद्धा, व्यापारी और कारीगर ।

(२) विद्वान् व्यक्ति ।

(३) खेतिहर ।

(४) मजदूर, जिनके परिश्रम और सहयोग से 'ससार' अर्थात् राज्य की उन्नति और प्रसन्नता निश्चित की जा सकती है ।

मुगल शासन की भावना इस विश्वास मे जन्मी थी कि राजसत्ता एक ईश्वर प्रदत्त प्रकाश है, फरे-इजादी (दैवी-प्रकाश)। अतः राजा के इस प्रकाश-संपन्न होने से ही अनेक अनुपम गुण प्रवाहित होते है, जिनमे—'प्रजा के प्रति माता-पिता का-सा रवैया', और 'उदार हृदय'।[2]

मुगल शासन की सकल्पना कम से कम अकबर के समय से जन-हितकारी और माता-पिता-तुल्य भावना मे हुई थी। नरेश प्रजा को अपनी सतान समझता था। अत. उसकी हिफाजत, स्वास्थ्य, सुख-सुविधा और उन्नति के लिये स्वयं उत्तरदायी समझता था।[3]

मुगल अधिराट् का लक्ष्य और उसकी भावना इस प्रकार की होने के कारण, स्वभावतः प्रजा का इन प्रशासनिक संस्थाओ और अधिकरणो

---

१. आईन, भा० १ (अनु० ब्लाखमेन), पृ० ४-५ ।

२. वही, पृ० ३-४, इंडिया ऐट दी डेथ आफ अकबर, पृ० ३१-३२, सरकार, मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृ० ५ ।

३. परमात्माशरण, पृ० १४८-४९।

के बनाने मे कोई हाथ न था। निस्संदेह सम्राट को कई मंत्रियो की सहायता और परामर्श का सहारा लेना पड़ता था, और यह कहा जा सकता है कि वे प्रजा के विचारो और भावनाओ का प्रतिनिधित्व करते थे, क्योंकि उनसे प्रजा-हित के कार्यो मे सम्राट् की सहायता करने की आशा की जाती थी। परंतु प्रशासन के निर्माण अथवा उसकी नीति पर प्रजा का किसी प्रकार का प्रत्यक्ष नियंत्रण न था। मान्यता यह थी कि अधिराट् ही प्रजा के हित-अहित का अचूक और सर्वश्रेष्ठ निर्णायक है। अतः स्थानीय प्रशासन, जिसमे प्रात, सरकार और परगने भी शामिल थे, की पद्धति को बनाना भी उसी का काम था।[1]

यह अजीब बात है और इतनी विरोधाभासी मालूम पड़ती है कि उस काल मे जब लौकिक सस्थाओ का अस्तित्व ही न था ग्राम-बिरादरी जैसी लोक-नियंत्रित संस्था को अपना कार्य बिना बाधा शाति से करने के लिये छोड दिया गया था। परतु उनका चुप रहना ही प्रमाणित करता है कि उन्होने बिरादरी की उपयोगिता और प्रशंसनीय कार्यों को मान्यता दी थी। राज्य ने ग्राम-बिरादरी सस्था को नष्ट नही किया, उनके पास अन्य सस्थान थी।[2]

अत: मौन मान्यता देकर उन्होने उसे कानूनी आधार प्रदान किया, और अपने कार्यों मे सरकार के साथ सहयोग करने को प्रोत्साहित किया। ग्राम-संस्थाओ को ग्राम-निवासियो की प्रशासनिक एव सामाजिक सेवाओं के लिये छोड दिया गया था।[3] सनातन से चली आ रही ये सस्थाएं अपनी कार्य कुशलता और उपयोगिता प्रमाणित कर चुकी थी, और उनके कार्यो मे बाधा देने से किसी सुधार अथवा उन्नति की सभावना न थी।[4] इन ग्राम-संस्थाओ के अप्रशासनिक अधिकारो को छीनकर केंद्रकरण करने की कोशिश करेंगे, तो बडा अहित होने की सभावना है। प्रोफेसर सरकार ने भी इस बुद्धिमत्ता की नीति को सराहा है।[5]

---

१. परमात्माशरण, पृ० १४६।

२. वही, पृ० १४६।

३. मुगल ऐडमिनिस्ट्रेशन (द्वितीय सं०), पृ० ५।

४. परमात्माशरण, पृ० १५०। ५. सरकार, पृ० २४६।

मुसलमान शासको ने बुद्धिमानी से प्राचीन ग्राम-प्रशासन को कायम रखा। मुगल-शासको ने प्राचीन ग्राम-पद्धति को स्थानीय-प्रशासन के लिये अनवरोधित रखा, वल्कि बुद्धिमानी से सोच-विचार करके और ग्रामवासियो के हितार्थ सर्वोत्तम साधन का स्रोत और उनकी कार्य-क्षमता को सोचसमझकर किया। ग्रामवासियो को केवल इसी रक्षा की आवश्यकता थी।[१]

वैदिक युग से ही गाँव शासन की सबसे छोटी इकाई बना चला आता था। मौर्यकाल से ग्राम अधिकारी ग्रामिक कहा जानेवाला गाँव का मुखिया महत्वपूर्ण अधिकारी समझा जाता था और 'मनु' के अनुसार उसकी नियुक्ति राजा करता था।[२] कुछ विद्वानो का मत है कि चूंकि वह सरकारी वेतन प्राप्त अधिकारी नही था, इसलिये उसका चुनाव ग्राम-निवासी ही करते थे। १२वी सदी मे न केवल दक्षिणी भारत मे बल्कि उत्तरी भारत मे भी ग्राम सभाएँ होती थी।[३] अभी हाल ही की नवीन शोधो से जो तथ्य प्रकाश में आया है उनसे उत्तर-प्रदेश के मुजफ्फरनगर जिले के कुछ जाट गाँवो की मध्ययुगीन पचायतो के कामो का कुछ अनुमान होता है।[४] उस समय एक गाँव एक पूर्ण आत्मनिर्भर इकाई होता था। गाँव के ज्येष्ठो की एक पंचायत होती थी, जिसका मुकद्दम या मुखिया के नाम से प्रसिद्ध गाँव का प्रधान अध्यक्ष होता था। यही पचायत गाँव के काम चलाती थी। वह झगड़े निपटाती थी, गाँव की पहरेदारी, शिक्षा, मनोरंजन, त्योहारो और मेलो का इंतजाम करती थी। इस गाँव पचायत के सिवाय विभिन्न जातियो की अपनी-अपनी अलग पचायतें होती थी जो कि अपनी-अपनी जाति के लोगो का ध्यान रखती थी। गाँव के लोग सिचाई, जल व्यवस्था और अन्य सामान्य हित के कार्यो को मिलकर व्यवस्था करते थे। हर गाँव के अपने कारीगर और सेठ-साहूकार होते थे। हर गाँव मे अपना पटवारी, लोहार, नाई, वढई, चौकीदार और धोबी होता था।[५]

१. परमात्माशरण पृ० १५२ ।
२. दि एज आफ इम्पीरियल युनिटी, पृ० ३७ ।
३. स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० २७८-८४, दि पालीटिकल सिस्टम आफ दि जाट्स इन नार्दर्न इंडिया, पृ० ९४-१११ ।
४. वही पृ० ९४-१११ । ५. वही, पृ० ९७-९८ ।

स्थानीय शासन, प्रो० सिडनी वेब के शब्दों में, 'उतना ही प्राचीन है जितना कि पर्वत ।'[1]

प्राचीन भारत में निश्चय ही ग्राम स्वायत्त-शासी था, अर्थात् उसके सारे कार्य गाँव के लोग स्वय करते थे,[2] किंतु वह उच्चतर अधिकारियो के प्रति उत्तरदायी था। ग्राम-राज्य की आधार-भूत इकाई समझी जाती थी, जिसके स्पष्ट अधिकार और कर्तव्य थे, और जो सर्वोपरि शक्ति के प्रति अपने कार्य के समुचित सचालन के लिये उत्तरदायी समझा जाता था।[3] राजा स्वयं ग्राम-परिषद् की वास्तविक देख रेख करता था, और यदि उसके कार्यपालिका,' न्याय अथवा अन्य कोई कार्य का विरादरी अनुमोदन न करती तो वह राजा से प्रतिकार करने का अनुरोध करती थी।[4]

ग्राम विरादरी के स्थानीय शासन के किसी मामले मे हस्तक्षेप करना उचित नही समझा मुस्लिम सम्राटो ने।[5] मुस्लिमकाल से पहले जो प्रत्यक्ष नियंत्रण अथवा निरीक्षण होता था वह मुगलकाल मे न था। ग्राम-विरादरी की उपेक्षा करके उसे अपना कार्य करने के लिये सर्वथा अकेला नही छोड़ दिया जाता था।[6]

विरादरी के सामान्य जीवन-यापन अथवा प्रशासन मे मुगल-शासन की ओर से किसी प्रकार का हस्तक्षेप का प्रयत्न न किया जाता था, परंतु यह भी निःसदिग्ध सत्य है कि इन विरादरियो के प्रतिनिधि की हत्या, चोरी और राजद्रोहात्मक कार्यो—जैसे विकट अपराधो के लिये सदैव

---

१. जेमथाई, विलेज गवर्नमेंट इन ब्रिटिश इंडिया, पृ० १४, आर० सी० दत्त, इकनामिक हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इडिया, भा० १, पृ० १५२, एन० सी० बंद्योपाध्याय, डेवलेपमेंट आफ हिंदु पालिटी ऐंड पोलिटिकल थ्योरिज, १, (कलकत्ता १९२७), पृ० २३७-३८, के० ए० नीलकंठन, स्टडीज इन चोल हिस्ट्री एंड एडमिनिस्ट्रेशन, (मद्रास, १९३२), पृ० १३७-३८।
२. कारपोरेट लाइफ इन ऐनशेंट इडिया, पृ० ५८।
३. वही, पृ० ५९।
४. विलेज गवर्नमेंट इन ब्रिटिश इंडिया, पृ० ३२-३४।
५. वही, पृ० ३२। ६. परमात्माशरण, पृ० २२७-२८।

बाद में ये सारे कार्य जाति के रूप मे परिणत हो गए, और वे उनके वंशागत कार्य, विशेष अधिकार और कर्तव्य बन गए ।[1]

ग्राम पंचायत या परिषद

ये वर्गीय एव जातिगत पंचायतें विद्यमान थी, और साथ ही गाँव के सब वर्गों की सामूहिक पंचायते भी थी ।[2]

ग्राम-पंचायत में किन परिस्थितियों मे सभी व्यक्ति शामिल होते थे अथवा कुछ चुने हुए व्यक्ति । प्रारंभिक दसवी शताब्दी के एक शिलालेख मे निम्न उप-समितियों का उल्लेख मिलता है ।[3]

(१) वार्षिक समिति,
(२) उपवन समिति,
(३) सरोवर समिति,
(४) स्वर्ण समिति,
(५) न्याय समिति,
(६) पचवर नाम की एक समिति ।

स्त्री-पुरुष का भेद किसी प्रकार की पात्रता मे बाधक न था, और स्त्रियाँ उपयुक्त एवं कार्यकुशल होने पर चुन ली जाती थी ।[4]

चुनाव

प्रारभिक काल में कतिपय अविकसित बिरादरियो मे पचायतो का चुनाव कुछ तो मतो द्वारा होता था और अंशत. चिट्ठी निकाल कर[5], किंतु प्रत्येक दशा में उनके पीछे धर्म का बंधनकारी बल था । विकसित बिरादरियो मे चुनाव का आधारभूत सिद्धात दलगत सघर्ष न होकर, आपस की बात-चीत व समझौतो द्वारा सर्वसमति से होता था । जिद्दी स्वभाव के व्यक्तियो की अनुचित और बाधक प्रवृत्तियो को रोकने के लिये अवसर इस प्रकार के अनुदेश निकाले जाते थे ।[6]

---

१. मथाई, पृ० २१-२२, परमात्माशरण, पृ० २३२ ।
२. परमात्माशरण, पृ० २३३ । ३. मथाई, पृ० २५-२६ ।
४. वही, पृ० २६ ।
५. मथाई, पृ० २७-२८ ।
६. मद्रास एपीग्राफी-वार्षिकरिपोर्ट, १९१२-१३, पृ० ९८ मथाई, पृ० ३० ।

इस प्रक्रिया को हम उसी प्रकार हाथ उठाकर सर्वसंमति से अथवा स्वीकारात्मक हाँ द्वारा निर्वाचन कह सकते है जिसप्रकार प्रारंभ कालीन यूनानी एवं जर्मन लोक-सस्थाएँ चुनी जाती थी, यह ससार की प्राचीनतम् निर्वाचनपद्धति है ।[1]

कार्य

ग्रामपंचायत का कार्य झगडो का निपटारा, पहरा और निगरानी, शिक्षा, सफाई, लोक-निर्माण, निर्धनो की सहायता, औषधीय राहत, आमोद-प्रमोद और त्योहार की व्यवस्था करना था।[2]

विवादों का निपटारा

प्रारंभिक काल में सभी प्रकार के झगडे ग्राम-परिषदो द्वारा निपटाए जा सकते थे, किंतु मुगलकाल मे गभीर अपराधों के संबध में, उनके अधिकार कुछ सीमित हो गए थे ।[3]

परतु उन्हे सभी प्रकार के जातीय एवं वैवाहिक भूमिगत, मालगुजारी राजस्व, खेतो की सिंचाई, फसल की बँटाई सबंधी झगडो पर विचार करने का अधिकार था । वस्तुत: लोगो के सामाजिक एव आर्थिक जीवन से सबंधित सभी प्रकार के झगडे पचायत के संमुख उपस्थित किए जाते थे ।[4] पंचायत लगने की जगह गाँव की चौपाल, मदिर, अथवा तालाब का किनारा होता था, और उसमे प्रत्येक परिवार के बड़े-बूढे उपस्थित होते थे । मतो का वजन (बल) मतदाता की हैसियत के अनुपात से होता था ।[5] 'मथाई' ने पंचायत के लिये लिखा है कि 'प्राचीन ग्राम-बिरादरी मे मतभेदो को तय करने का सामान्य तरीका यह था कि मुखिया के संमुख पच निर्णय के लिये मामला उपस्थित किया जाता था । छोटे मामलो को तो वह स्वयं निपटा देता था, पर महत्व के प्रश्नो पर बड़े-बूढो की परिषद् की सहायता से फैसला करता था । मुखिया को दंड न्याय के अधिकार

---

१. बंगाल विधान-परिषद मे व्याख्यान, २३ जुलाई, १८९२ ।

२. परमात्माशरण, पृ० २३४ ।

३. परमात्माशरण, पृ० २३५ ।

४. सर सैयद अहमद खाँ, कदीम निजाम-देही, पृ० १३-१४ ।

५. परमात्माशरण, पृ० २३५ ।

भी थे, जिसके बल पर परवर्ती विघटन-काल में उनने कुछ हद तक अत्याचार भी किए, परंतु उसके इस अधिकार के दुरुपयोग को नियंत्रित और मर्यादित किया गया था।[1]

नियुक्त सरकारी कर्मचारियों की अपेक्षा कई पंचायतें कहीं अधिक कुशलता एवं सफलता से काम करती थी, यह बात अनेक बार कई अधिकारियो ने व्यक्तिगत अनुभव के बल पर स्वीकार की है।[2]

अपील के तरीके

सामान्यतः छोटे गाँव पड़ोस के बड़े गावों से संबद्ध थे।[3] बड़े गाँवों से छोटे गाँवो के संबद्ध होने के कारण, छोटे गाँव की पंचायत किसी मामले के फैसले मे असमर्थ होती, तो बड़े गाँव की पंचायत उसका फैसला करती थी। कभी-कभी असतुष्ट व्यक्ति स्वयं बड़ी पंचायत को छोटी पंचायत के फैसले मे हस्तक्षेप करने का अनुरोध करता था।[4]

अतत. इसमे निर्धन किसान उन सभी अगणित कष्टों तथा व्ययों से बच जाता था, जो वर्तमान न्यायालयों की प्रणाली में उसे वहन करने पड़ते है।[5]

पहरा और निगरानी

चोरी-डकैती अथवा इसी प्रकार अन्य प्रकार के अपराधो की रोक-थाम पड़ोसी गाँवो के जमीदारो के पारस्परिक सहयोग से अच्छी तरह हो जाती थी और यदि कही चोरी होती अथवा कोई घायल हो जाता, तो चोरी के माल और अपराधी का, बिना किसी कठिनाई के पता लग जाता था। इस सुप्रबध के कारण ग्राम इन अपराधो से मुक्त रहता था।[6]

---

१. मथाई, विलेज गवर्नमेंट, पृ० १६२।

२. एलफिसटन, ऐड मिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, पृ० ६६।

३. परमात्माशरण, पृ० २३६।

४. कदीम निजाम देही, पृ० १४-१५।

५. रेम्बलस, सं० १४९३, पृ० ३४-३५।

६. परमात्माशरण, पृ० २३७।

इसीप्रकार पंचायत के नियंत्रण और देख रेख मे ब्राह्मण और मौलवी द्वारा शिक्षा, मेहतरो द्वारा सफाई एव अन्य कार्य बड़े सुचारु रूप से संचालित होते थे।[1]

फौजदार

फौजदार की नियुक्ति शाही फरमान के द्वारा होती थी। यह एक फौजी अधिकारी होता था और जिले का प्रमुख होता था। वह जिले में सूबे के सूबेदार का प्रतिनिधि होता था और उसी के अधीन कार्य करता था। जिले की सारी देख-भाल इसी के हाथ मे रहती थी।[2]

सर यदुनाथ सरकार ने लिखा है कि 'बागियो और विद्रोही सरकारों को दडित करने के लिये उनके किले नष्ट कर दो। सडको की सुरक्षा रखो, करदाता की रक्षा करो, (सैनिक सेवा के लिये जागीर प्राप्त) जमीदारो के गुमाश्ताओ और (खालसा भूमि के) करोड़ियो की माल-गुजारी इक्ट्ठा करने के समय सहायता करो।'[3]

सूबेदार का इसके लिये और आदेश था कि 'किसी गाँव पर आक्रमण मत करो। किसानों को त्रस्त मत करो। मार्गो की रक्षा करो, जंगलों को कटवाओ और (नाजायज) किलो को गिरवा दो।'[4]

फौजदार का एक बहुत बडा महत्वपूर्ण कार्य यह था कि वह जिलो के देहाती इलाको में सुरक्षा व्यवस्था करे और चोरों, डकैतो, डाकुओं और अन्य समाज विरोधी एवं उपद्रवी लोगो को दमन कर मार्गो को सुरक्षित बनाए, यात्रियो और व्यापारियो की रक्षा करे और गाँवो की रैय्यत को अमन-चैन से रखे। फौजदार यह काम अपने योग्य सहायक अधिकारियों को सुपुर्द कर उन्हे महत्वपूर्ण देहाती इलाको मे नियुक्त कर देता था और उनके अधीन काफी सैनिक रख देता था।[5]

---

१. कदीम निजाम देही, पृ० १७-१८।

२. आईन, भा० २ (अनु०), पृ० ४१-४२।

३. सर यदुनाथ सरकार, मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृ० ४८-४९।

४. वही, पृ० ५६-५७।

५. मीराते अहमदी, भा० ३, पृ० १७०।

कोतवाल

जिले के मुख्य नगर का शासन कोतवाल के हाथों मे रहता था, जो फौजदार के अधीन होता था और उसकी देख-रेख में काम करता था। उसके वही कार्य होते थे जो कि प्रातीय राजधानी के कोतवाल के होते थे। कोतवाल नगर की पुलिस का प्रधान, नगर पालिका का शासक और नगर का न्यायाधीश होता था।[१]

काजी

हर जिले मे एक काजी न्यायाधिकारी होता था, जिसकी नियुक्ति सद्र-उस-सुदूर की मुहर लगी हुई सनद के अनर्गत होती थी।[२] वह मुस्लिमधर्मशास्त्र का विद्वान् और निर्दोष चरित्र का व्यक्ति होता था। वह धर्म सबंधी और उन सभी मुसलमानों के मामलो को निपटाता था जो कि उनके उत्तराधिकार विवाह, तलाक आदि से संबंधित होते। वह अन्य दीवानी के मुकदमें भी सुनता था। काजी की सहायता के लिये मुफ्ती होता था जो कानून समझता था और काजी उस कानून के अनुसार फैसले देता था। जिले का न्याय प्रबध इस प्रकार काजी और कोतवाल मे बंटा हुआ था।[३]

अमल गुजार

जिले की मालगुजारी इकट्ठी करनेवाले मुख्य अधिकारी अमल गुजार की नियुक्ति केंद्रीय सरकार से होती थी[४], उसकी नियुक्ति के समय उसे सीख दी जाती थी कि वह किसानो का मित्र एव शुभेच्छु बने और देखे कि सभी की पहुँच उस तक हो। उसके मुख्य काम यह थे कि वह मालगुजारी वसूली करे और उपद्रवी बेईमान किसानो, डाकुओं तथा अन्य दुष्ट लोगो को दडित करे। अमल गुजार के नीचे उसकी सहायता के लिये बहुत से कर्मचारी और मुंशी रहते थे।[५]

---

१. मीराते अहमदी, भा० १, पृ० १६८-७०।
२. वही, पृ० १७४।
३. आईन, भा० २, (अनु०) पृ० ५३।
४. वही, पृ० ५३-५४।
५. मीरात, भा० १, पृ० १७८, परिशिष्ट, २२८-२९।

अमल गुजार गाँवो के मुखियो की सहायता से मालगुजारी वसूल करता था और पूरी वसूली के पश्चात् उन्हे कुल मालगुजारी पर ढाई प्रतिशत कमीशन देता था।[१]

अमल गुजार केवल खालसा भूमि की ही देख-रेख नही करता था, बल्कि वह अपने जिले की जागीरदारी की भूमि पर भी नजर रखता था। उसे ऐसे निर्देश थे कि—वह चकनामो (माफी की जमीनों) के सही होने की जाँच करे और मृत व्यक्ति अथवा अनुपस्थित रहनेवालो की, या उसकी जो कि वाकई राजसेवा मे हो, भूमि का भाग जब्त कर ले। वह यह भी देखे कि किसान स्वयं भूमि को जोते और उसे किसी रिश्तेदार को न दे दे, जिन भू-भाग को जब्त किया गया है वे भी वेकार न पड़ी रहे, तथा अनुपस्थित व्यक्ति या लावारिस-व्यक्ति की संपत्ति अपने संरक्षण मे ले ले और स्थिति की सूचना भेजे।[२]

जिले मे जमा की जाने वाली धनराशि की पूरी-पूरी जिम्मेदारी अमल गुजार पर ही होती थी। इस राशि को सुरक्षित रूप से राजधानी कैसे पहुँचाया जाय, इसके लिये उसे पूरी-पूरी हिदायतें रहती थी। अगर जिले के मुख्य नगर मे कोई कोतवाल, न हो, तो अमल गुजार को कोतवाल के कार्य भी करने पडते थे।[३]

इस प्रकार अमलगुजार का काम काफी जिम्मेदारी और कठिनाई का था। किसी भी अमलगुजार को अपने हिसाव का व्यौरा न भेजने पर उसे कैद कर सामान्य सिपाहियो की पहरेदारी मे रख देना, उस समय की मामूली घटना थी।[४]

बितिक्ची

यद्यपि बितिक्ची के अर्थ लिपिक होते है पर वह यह लिपिक से कुछ श्रेष्ठ ही होता था क्योकि वह मुंशी होने के साथ ही अमल गुजार का दाहिना हाथ भी होता था।[५] यह हर फसल के पश्चात् वह खजाची से

१. डा० परमात्माशरण, पृ० २८५।
२. आईन, भा० २ (अनु०), पृ० ४५-५०
३. वही, पृ० ५०।
४. अकवरनामा, भा० ३ (अनु०), पृ० ४५७-५६।
५. डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, अकवर महान, पृ० १४६।

कुछ आय व्यय का हिसाब लेता था और फिर उस अपने हस्ताक्षर कर ऊपर भेज देता था। साल के अंत में उसे पूरी मालगुजारी का संक्षिप्त और सिलसिले वार ब्यौरा भी भेजना पडता था। उसे निर्देश रहते थे कि—'साल के अत में जब मालगुजारी की वसूली बंद हो जाय, तो वह प्रत्येक गाँव की बकाया रकमो का ब्योरा लिखे, उसे अमल गुजार को दे और उसकी एक प्रति दरबार मे भेज दे।' उसको यह भी आदेश थे कि वह अपनी जगह तभी छोड़े जबकि अमल गुजार उसके हिसाब-किताब और कार्य से पूर्ण सतुष्ट हो जाय।[1]

खजानदार

खजाची या खजानदार जिले का एक और महत्व-पूर्ण अधिकारी होता था। वह किसानो से लगान लेता था और उसकी रसीद देता था। प्रातीय दीवान के आदेश के वह कोई बड़ा भुगतान नही कर सकता था और शिकदर के आदेश पर वैसे वह कुछ भुगतान नही कर सकता था पर सूचना उसे सूबेदार को भेजनी पडती थी। खजाने पर एक से अधिक ताले लगाए जाते थे और किसी ताले की एक चाभी अमल गुजार के पास रख दी जाती थी।[2]

परगने का शासन

हर सरकार या जिला कई परगनों मे बँटा रहता था। परगना संस्कृत के प्रतिजगणक अथवा प्रतिगण का ही भ्रष्ट रूप है।[3]

बारनी का कहना है कि, आमिल के सिवाय परगने में मुशरिफ, मुहस्सिल, गुमाश्ता, सरहंग और उनके कर्मचारी भी रहते थे। सरहंग चपरासियों को कहते थे और गुमाश्ता मुशरिफ और मुहस्सिल के प्रतिनिधि होते थे। इनके सिवाय कारकुन भी होते थे जो कि परगना का हिसाब-किताब रखते थे।[4] शेरशाह ने परगनो का शासन व्यवस्थित कर इन

१. आईन, भा० २ (अनु०), पृ० ५०-५२।
२. वही, पृ० ५२-५३।
३. स्ट्रगल फार एपायर, पृ० २७५, ऐपिग्राफिया इंडिका, जनवरी, १८८६, भा० १, पृ० ६३-६५।
४. बरनी, पृ० २८८-६१, ४३१।

परगना अधिकारियों के नाम बदल दिए थे। उसके काल में हर परगने में चार या पाँच अधिकारी रहते थे। वे थे—शिकदार, अमीन, (मुंशिफ) कोतदार (खजांची) और दो कारकुन। एक कारकुन हिसाब किताब फारसी मे रखता था और दूसरा हिंदी मे।[१]

अकबर ने परगनों के शासन में और सुधार किया। उसके काल में जिलों को परगनो में विभाजित कर दिया गया। हर परगने में एक शिकदार, एक अमिल, एक खजांची,[२] एक कानूनगो[३] और एक कारकुन होता था। जितने अधिकारी थे, इनमें से हर एक का अपना अपना कार्यालय होता था।[४] वास्तव मे मिल जुल कर एक टीम की तरह काम करना पडता था।[५] कारकुन परगने में वही कार्य करता था जो कि वितिक्ची जिले मे करता था और इसलिये वह आमिल के लिये सहायता के रूप में वहुत ही जरूरी था।[६]

नगर शासन

मौर्य काल के पश्चात् नगर के शासन का भार कोटपाल नामक एक नवीन अधिकारी पर आ गया था। वह आधुनिक सिटी मजिस्ट्रेट सा ही होता था।[७] कोटपाल को मध्ययुगीन कोतवाल का पूर्वज माना जा सकता है। इसका कार्य, अपराधो और सामाजिक बुराइयो को रोकना, लावारिस संपत्ति की व्यवस्था करना, कसाईघरो, कब्रगाहो और श्मशानो पर नजर रखना आदि कार्य करना था।[८]

वड़े नगर, कस्वो और मोहल्लों मे विभाजित कर दिए जाते थे। हर मोहल्ले में प्राय एक ही जाति के या पेशे के लोग रहते थे। हर मोहल्ले

---

१ इलियट डाउसन, भा० ४, ४१३।

२. अकब्ररनामा, भा० २, ३ (अनु०)

३. वही, भा० ३, पृ० ४५७-५९, आईन, भा० २ (अनु०), पृ० ७२।

४. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, अकबरमहान, पृ० १४९।

५. आईन, भा० २ (अनु०), पृ० ७२। ६. वही, पृ० ७२।

७. स्ट्रगल फार एम्पायर, पृ० २७५, उत्तरी भारत; भा० १०, अक १, पृ० ४५-५९।

८. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, अकवर महान, पृ० १५१।

की देखरेख के लिये एक दो आदमी कर दिए जाते थे और मेहतर तथा घर के नौकर हर घर की खबर कोतवाल को दिया करते थे। नगर का व्यापार विभिन्न किस्म के व्यापारिक और औद्योगिक संघो के प्रधानों और दलालों के द्वारा चलाया जाता था, जिनकी नियुक्ति कोतवाल स्वयं करता था।[1] सार्वजनिक अनुदानों से ही औषधालय और बच्चों की शिक्षा के लिये पाठशालाएँ खोली जाती थी। प्रधान नगरों मे कुछ मदरसों को राज्य की ओर से सहायक अनुदान भी मिलते थे और एक दो औषधालय भी खोल दिए जाते थे। इन औषधालयो मे एक यूनानी पद्धति की जानकारी रखने वाला वैद्य (हकीम) होता था और दूसरा आयुर्वेद का ज्ञान रखने वाला वैद्य। इनके सिवाय चीर फाड के लिये एक जर्राह भी होता था।[2]

उस समय सरकार गृहकर, जलकर जैसे म्युनिसिपल कर नहीं लगाती थी, इसलिये कि वह कोई सुविधा प्रदान नही करती थी। उस समय केवल बाजारो में बेची जाने वाली वस्तुओ के कर और चुगी कर ही लिए जाते थे। इन करो को वसूल करने के लिये एक अलग अधिकारी नियुक्त किया जाता था।[3]

---

१. मीराते अहमदी, भा० १ (अनु०) पृ० १६८-६९।
२. वही, पृ० १८७।
३. परमात्माशरण, पृ० २७७।

तृतीय अध्याय

राजस्व व्यवस्था

राजस्व व्यवस्था

व्यवस्था की क्रमबद्धता

भारतीय प्रशासन की किसी और शाखा प्रशाखा मे वह युगीय तारतम्य दृष्टिगोचर नही होता जो कि मालगुजारी संबधी नीति और प्रशासन मे दृष्टिगोचर होता है।[1] भूमि की उपज पर कर और राज्य का भाग निर्धारित करनेवाले जो आधारभूत सिद्धांत स्मृतियो के युग मे निर्मित होकर चंद्रगुप्त मौर्य के काल मे विकसित हुए थे, वही भारत में युगों-युगों से अपनाए जाते रहे हैं। मध्यकालीन युग मे भी उनमे कोई बडा क्रांतिकारी परिवर्तन नही हुआ। शेरशाह ने जो सुधार किए थे वे केवल उनकी कार्य प्रणाली मे सुधार मात्र थे, जिनका उद्देश्य शासन में किसी प्रकार की समरूपता लाना और उन्हे अधिक अच्छे रूप से कार्यान्वित कराना था। लेकिन इन सुधारो में कोई विशेष मौलिकता नही थी। अकबर ने भी उपज पर कर और राज्य का भार निर्धारित करने के क्षेत्र में जो प्रयोग किए, वे भी कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे प्रतिपादित कृषिनीति के सिद्धांत के विपरीत नही थे और न आधुनिक व्यवस्था ही प्राचीन अथवा मध्यकालीन व्यवस्था से बहुत भिन्न है।[2] इस देश की कृषि संबंधी व्यवस्था सदैव से ही सरकार की बहुत ही रूढ परपरावद्ध अवस्था रही है।

राजस्व सबंधी मध्ययुगीन भारत के इतिहास मे, कुछ ऐसे विशेष लक्षण पाते है, जो पूर्व काल के समान ही थे, यथा भूमि के सर्वेक्षण के तरीके और नकदी मे राजस्व देने की व्यवस्था, तो हमे उनमे नैमितिक संबंध को मानने मे तनिक भी सकोच न होना चाहिए।[3] यह निष्कर्ष पूर्व मुस्लिम भारत की राजनीतिक सस्थाओ मे कृषि प्रणाली के विषय मे अधिक सत्य है।

---

१. यू० एन० घोष दि एग्रेरियन सिस्टम इन एंसिएंट इंडिया, (कलकत्ता १९३०), पृ० ३-४।

२. यू० एन० घोष दि एग्रेरियन सिस्टम इन एंसिएंट इंडिया, (कलकत्ता, १९३०), पृ० ४-५।

३. हिंदू रेवेन्यू सिस्टम, पृ० २८७।

प्राचीन भारत में मालगुजारी व्यवस्था के सिद्धांत

वैदिक संहिताओ और ब्राह्मणों से हमे आदि कृपिक समाज की झलक मिलती है। इस व्यवस्था मे जातीय सरकार या राज्यउपज और पशुधन का दसवाँ भाग गाँव वालो से उपज और पशुओ के रूप मे वसूल कर लेता था। तब पुरोहितो को भूमि प्रदान करने का उल्लेख नही मिलता।[1] बाद में स्मृतियो में यही कबाइली नेतृत्व प्रादेशिक राजस्व मे विकसित हो उठा। उपज मे राजा के भाग को पहले की तरह बाली कहते थे, पर अब इसमें और प्रजा की औद्योगिक तथा कृषि आय पर कर लगाए जाने वाले करों में भेद किया जाने लगा था। इस युग मे मालगुजारी दो प्रकार की होती थी। एक तो उपज के ही एक भाग के रूप मे ली जाने वाली मालगुजारी हिरण्य कहलाती थी। डा० घोषाल का मत है कि तब मालगुजारी निर्धारित करने के दो तरीके थे। एक तो उपज का बँटवारा, जिसे मध्य युग में बँटाई कहते है और दूसरा उपज के मूल्य मे से राज्य का भाग ले लेना जिसे आजकल कनकूत कहते है। सरकार का भाग उपज के १।६ से १।८ तक और १।१० से १।१२ तक भूमि के उपजाऊँपन के अनुसार निश्चित होता था। हिरण्य या नकद मालगुजारी की दर अधिकाश उल्लेखों के अनुसार उपज के कुल मूल्य का पचासवाँ अंश होती थी, कभी कभी संकट के समय राजा का यह भाग बढाकर १।४ कर दिया जाता था और उसे यह अधिकार भी प्राप्त था कि जिस समय वह सन्यासियो और ब्राह्मणो को छोडकर अपनी प्रजा का धन भी अपहरण कर ले। लेकिन राजा को यह परामर्श दिया जाता था कि वह 'कृपकों के प्रति उदार व्यवहार करे, उन्हे खेती के लिये बीज, अन्य वस्तुएँ और धन उधार दे तथा उनके लाभ के लिये सिंचाई के साधन प्रयुक्त करे।' राज्य सरकार कृषक से सीधा सबध रखती थी और हमे उस काल के भूमि की पैमाइश के प्रारंभिक तरीके की भी कुछ जानकारी उपलब्ध है। ब्राह्मणो को किसी को दे देने के अधिकार सहित करमुक्त भूमि प्रदान करने की प्रथा इसी काल मे आरभ हुई थी।[2]

इस व्यवस्था मे मौर्यकाल मे काफी सुधार हुआ। अर्थशास्त्र मे फसल बाँटने या फसल के मूल्य का भाग लेने के अतिरिक्त एक तीसरी नई प्रकार

---

१. यू एन० घोष, पृ० ७-८।

२. यू० एन० घोष, पृ० ८-१०।

की कर निर्धारण व्यवस्था का उल्लेख मिलता है। यह एक प्रकार के आपसी समझौते की व्यवस्था थी। इसके अनुसार 'कृपक' को वर्ष मे खंड निश्चित कर राशि देने को सहमत होना पडता था, चाहे वह भूमि को जोते अथवा न जोते। 'उपज में राज का वह भाग वही पहले जैसा सामान्यतः १।६ ही रहा।' किंतु अब विभिन्न प्रकार की भूमि और उपजो के लिये करों की दरे भी अलग अलग कर दी गई।[1] इस काल मे एक नई बात यह हुई थी कि मालगुजारी के साथ साथ सिंचाई कर भी लिया जाने लगा था जो कि १।५ से १।३ होता था। मालगुजारी को बाली न कहकर भाग कहा जाता था। इनके सिवाय कुछ और सामयिक कर भी जैसे बाली और कर आदि लगाए जाते थे। स्मृतियो के काल मे राजा कभी कभी एक दान जैसा कर (प्रणय) और लगा सकता था। दूसरी दर अधिक से अधिक एक तिहाई या एक चौथाई होती थी। पर वह कर केवल एक बार ही और वह भी अस्थायी रूप मे कुछ समय के लिये लगाया जा सकता था। गाँवो में सामूहिक रूप से एक राशि मे मालगुजारी वसूल कर लेने की प्रथा भी प्रचलित थी। वह गाँव के मुखिया की सहायता से एकत्र की जाती थी। किसानों को राज्य की ओर से अनाज, पशु और धन उधार दिए जाते थे। सिचाई के लिये तालाब बनाए जाते थे और अकाल तथा सूखे के समय मालगुजारी मे छूटे भी दी जाती थी। लेकिन अगर किसान अपनी फसलो की ओर ध्यान नही देते थे, तो उनपर जुर्माना भी किया जाता था।[2]

इस काल में पुरोहितो और विद्वान् ब्राह्मणो को करमुक्त भूमि प्रदान की जाती थी और उन्हे इस भूमि को किसी को दे सकने का पूर्ण अधिकार प्राप्त होता था। दान कार्यो के लिये भूमि प्रदान की जाती थी, लेकिन वह भूमि बेची नही जा सकती थी न दी जा सकती थी और न बंधक ही रखी जा सकती थी। ऐसी भूमि सिर्फ सैनिक रखने के लिये दी जाती थी।[3]

मालगुजारी के अधिकारियो की शृंखला सी थी। इसके सिरे पर समाहर्ता और सबसे नीचे गोप (पटवारी) होता था। गोप के अतर्गत

---

१. काशी प्रसाद जायसवाल, हिंदू पालिटी०, पृ० १६१।
२. घोषाल, पृ० १२, १६, २०।
३. वही, पृ० १६, २१।

चार या पांच गाँव होते थे।[1] उसे गाँवो की सीमाओं, गाँवों के खेतों, बोये और अनबोये खेतो, संपत्ति के और विशेषकर भूमि के हस्तातरण, तकावी, छूटो और आबादी की सूचियाँ आदि से संबंधित कई खाते रखने पड़ते थे। एक अन्य अधिकारी स्थानिक होता था, जिसके अंतर्गत राज का चौथाई भाग रहता और उसे भी अपने क्षेत्र के प्रदेशो के ऐसे ही खाते तैयार रखने पडते थे। समाहर्ता इन सबके ऊपर होता था। उसे सारे राज्य की मालगुजारी तैयार करना पडता था। वह विभिन्न शीर्षको में गाँवो से जो वसूली बाकी रहती थी, उसका लेखा जोखा रखता था और लोगो को जो सैनिक सेवा के लिये करमुक्त भूमि प्रदान की जाती थी, उसका विवरण तैयार करता था। गावों से भेजे गए विवरणों की जाँच के लिये वहाँ निरीक्षकों को भेजा जाता था। अर्थशास्त्र मे इस भूमि के वर्गीकरण और अनाज की दरो के आधार पर पैमाइश के तरीको के उल्लेख उपलब्ध है।[2]

सोलहवीं सदी के पूर्व प्रचलित व्यवस्था

कौटिल्य के अर्थशास्त्र और मेगस्थीज् के विवरणो के अनुसार मौर्य काल मे जो मालगुजारी व्यवस्था प्रचलित थी वही व्यवस्था उत्तर प्रदेश में १२वी सदी के अंतिम चतुर्थांश में जब तुर्की शासन स्थापित हुआ तब देश के विभिन्न भागो मे ज्यो-की त्यो चल रही थी। बँटाई और पैमाईश दोनों के ही आधार पर नकदी और उपज के रूप मे मालगुजारी वसूल की जाती थी।[3]

---

१. काशीप्रसाद जायसवाल, पृ० १६३-६४।

२. घोपाल, पृ० १३-१५। ३. वही, पृ० ५५-५६।

दक्षिण के राष्ट्रकूटो के विवरणों से भी मालगुजारी नकदी और उपज दोनों में ही वसूल किए जाने के उल्लेख मिलते है। (घोपाल पृ० ५७)। बंगाल के पाल राजा उपज का छठवाँ भाग मालगुजारी के रूप मे ले लेते थे। कही-कही वे पैमाइश के अनुसार भी मालगुजारी वसूल करते थे (घोपाल, पृ० ५६-६०)। अवध मे १०७७ ई० के एक अभिलेख के अनुसार वहाँ की मालगुजारी नकदी या उपज के रूप में ली जाती थी। इस अभिलेख से यह भी विदित होता है कि खेतो को देवकूटि काप्ठ नामक एक पैमाने से नापा जाता था (एपिग्राफिका इंडिया, ८, पृ० ६, घोपाल, पृ० ६४)।

इस प्रकार बारहवी सदी तक देश के विभिन्न भागो मे लगभग यही व्यवस्था चल रही थी। उदाहरण के लिये 'कन्नौज के गहरवार राजा मालगुजारी उपज मे और कभी कभी नकदी में वसूल करते थे। राज्य के अधिकारियो, ब्राह्मणो, मंदिरो, और देवालयो को भी जागीरे प्रदान करने की व्यवस्था थी।[1]

इस प्रकार उत्तर प्रदेश मे तुर्की शासन की स्थापना के समय देश में जो मालगुजारी व्यवस्था प्रचलित थी उसकी मुख्य व्यवस्थाएँ ये थी : भूमि की पैमाइश, उपज का अनुमान और नकदी अथवा उपज मे मालगुजारी की वसूली। सामान्यत राज्य का उपज मे छठाँ भाग होता था लेकिन विशेष स्थितियो मे उसे बढ़ाकर चौथाई भी कर दिया जाता था। इस मालगुजारी के सिवाय शासक लोग अन्य कही कर भी वसूल करते थे और संकट के समय मे तो उन्हे अपनी प्रजा की संपत्ति छीन लेने का अधिकार था ही।[2]

सिंध, मुल्तान और उत्तर प्रदेश मे प्रवेश करने वाले अरब और तुर्क मुख्य रूप से योद्धा थे, शासक नही। इसलिये वे अपने विजित प्रदेशो में इस्लामी मालगुजारी व्यवस्था पूर्ण रूप से लागू नही कर सके। फिर उन प्रदेशो मे सदियो से जो व्यवस्था चली आ रही थी, उसे भी एकबारगी हटा देना संभव न था। इसलिये यही उन्होने सुविधाजनक समझा कि वे प्राचीन भारतीय मालगुजारी व्यवस्था को और विशेषकर राजकर निश्चित करने और उसे वसूल करने के प्राचीन तरीको को ही अपना लें। फिर भी उत्तर प्रदेश से बाहर अरब और अन्य इस्लामी देशो मे जो व्यवस्था काफी अरसे से चली आ रही थी, उसकी भी वे उपेक्षा न कर सके। इसलिये

पश्चिमी भारत के सुप्रसिद्ध चालुक्यो के राज्य मे भी यही नकदी और उपज मे मालगुजारी देने की व्यवस्था थी और राज्य तथा किसान के बीच सीधे संपर्क थे। मालवा मे भी वही स्थिति थी (घोषाल, पृ० ६२)।

१. घोषाल, पृ० ६७-६८।
बारहवी सदी मे बंगाल के सेन राजाओ ने भी यही व्यवस्था अपना रखी थी (घोषाल, पृ० ७१)।

२. घोषाल, पृ० ७३।

उन्होने भारतीय और इस्लामी व्यवस्था को मिला जुलाकर एक नई सी व्यवस्था यहाँ स्थापित की ।[१]

यह मध्यकालीन व्यवस्था इस प्रकार मौलिक रूप से तो प्राचीन भारत की कृषि व्यवस्था का ही थोडा सा विभिन्न रूप रही, लेकिन इस्लामी आदर्शों को बनाए रखने के लिये अलग अलग प्रकार की भूमि के नाम बदल दिए गए, और हिंदू मुसलमान किसानो से एक सा कर वसूल न कर उनकी अलग अलग दरें निश्चित कर दी गई ।[२]

इस्लामी भूमि व्यवस्था के सिद्धांत

भू राजस्व निर्धारित करने के लिये मुस्लिम-न्याय-शास्त्रियो ने भूमि को तीन मुख्य वर्गों मे विभाजित किया है[३]—

(१) उपारी (२) खराजी (३) सुल्ही ।

(१) उपारी भूमि में निम्नलिखित प्रकार की भूमि जाती थी—

(क) मक्का, तायक, यमन, ओमन और वहरवा की भूमि,

(ख) वह भूमि जिसके स्वामी ने स्वेच्छा से इस्लाम ग्रहण कर लिया है ।

(ग) वह भूमि जिसे जोतकर मुसलमानो मे बाँट दिया गया हो ।

(घ) वह भूमि जिसपर मुसलमान स्वामी ने मस्जिद बना दी हो या अंगूर की वेलें या वगीचा लगाया हो अथवा मिट्टी पानी देकर उपजाऊ बनाया हो ।

(ङ) वह भूमि जो वेकार पड़ी हो और जिसे किसी मुसलमान ने अपने स्वामी की अनुमति से जोत लिया हो ।[४]

(२) खराजी भूमि को भी पाँच किस्मो में बाँटा गया है—

पहली वह जो ईरान और किरमान मे थी, दूसरी वह जो किसी अधीन व्यक्ति ने अपने घर को घेरने के लिये रख छोडी हो, तीसरे वह जो किसी अधीन व्यक्ति ने नई ही तोड़ी हो और जिसकी सिचाई वह राज के

---

१. जैरेट, पृ० ५१६ ।

२. काशीप्रसाद जायसवाल, पृ० १६७ ।

३. घोषाल, पृ० २८-२६ ।

४. कस्तूर अलवाल फिन्इल्मुल हिसाव, पृ० ३-४, आईने अकवरी २, पृ० ६१-६२ ।

खर्च से बने हुए, तालावो या नहरो से करता हो; चौथे प्रकार की खराजी भूमि वह थी जो किन्ही गैर मुसलमानो से जीतकर फिर खेती के लिये उन्ही के पास रहने दी गई हो, पाँचवी प्रकार की भूमि वह थी, जिसकी सिचाई राज्य द्वारा प्रयुक्त सिचाई के साधनो से की जाती थी।[1] लेकिन कर निर्धारण के लिये खराजी भूमि को खराजी-ए-वाजीफात (निश्चित खराज वाली) और खराजे मिकासी-माह (अनुपातिक खराज वाली) नाम दो वर्गो मे बाँट दिया गया था। पहले की मालगुजारी निश्चित और अपरिवर्तनशील थी। यह प्रायः नकदी के रूप मे रकवो से अलग अलग वसूल की जाती थी और विभिन्न फसलो के लिये विभिन्न दरें होती थी। पर कर की दर उपज की आधी से अधिक नही बढने पाती थी। दूसरी किस्म (खराजे मिकासीमाह) मे उपज का एक भाग कर के रूप में ले लिया जाता था। वह भाग उपज के १।५ से १।२ तक होता था।[2] संक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि, कर की ऊपरी सीमा अधिक से अधिक उपज का आधा भाग था, जिसे 'वहुत ही न्यायोचित' समझा जाता था जवकि निम्न सीमा पाँचवाँ भाग था।

(३) सुल्ही

उन भू-भागो को कहा जाता था जो किसी सधि के अतर्गत प्राप्त हुए हो। यह नाम प्रारंभ मे वनीनजरान और वनी तगलीव के प्रदेशो के लिये ही प्रयोग किया जाता था।[3] लेकिन चूंकि भारत मे इस प्रकार की कोई भूमि नही थी।[4]

उपारी भूमि की उपज का दसवाँ भाग राज्यकर के रूप मे लिया जाता था। लेकिन अगर भूमि की सिचाई मे अतिरिक्त श्रम पडता था, जैसे अगर सिचाई वाल्टियो और रहट से की जाती थी तो ऐसी स्थिति मे राज्य केवल वीसवाँ भाग ही लेता था।[5]

---

१. दस्तूर अल्वाव, पृ० ७-८।

२. दस्तूर अल्वाव, पृ० ३४; अगनिट्स, पृ० ३७७-७८, मीरात, १, पृ० २७०, आईने अकवरी, २, पृ० ६२, ए० एस० डी०, पृ० १०३।

३. दस्तूर अल्वाव, पृ० १०-११। ४. वही पृ० १३।

५. एम० फगमन, पृ० ७९।

खराजी भूमि वह होती थी जो गैर मुस्लिम किसानों या जमीदारों के पास छोड दी जाती थी या कही और के गैर मुस्लिमों को प्रदान की जाती थी। अगर कोई गैर मुस्लिम किसी मुसलमान भू स्वामी से उपारी भूमि खरीद लेता था तो वह खराजी भूमि हो जाती थी, लेकिन अगर खराजी भूमि का कोई गैर मुस्लिम स्वामी मुसलमान भी हो जाता था तो भी उसकी भूमि प्राय' खराजी ही बनी रहती थी। फिर अगर कोई मुसलमान अपनी भूमि को खराजी पानी देकर विकसित करे तो वह भूमि भी खराजी हो जाती थी। खराजी पानी वह होता था जो या तो खराजी भूमि में हो या कि राज्य द्वारा निर्मित नहरो, तालावों अथवा कुओ से लिया जाता हो।[1]

दिल्ली के सुल्तानों की कृषि नीति

बाबर ने भी भेद-भावपूर्ण मुस्लिम नियमों को अपनाया था और इससे अनुमान होता है कि उसने भी अपने सहधर्मियो के पास उपारी प्रदेश बने रहने दिए होंगे। शेरशाह और उसके उत्तराधिकारी रूढिवादी मुसलमान थे, उन्होंने भी कर के नियमों को अपनाया और इस्लाम की प्रमुखता को बनाए रखा। जबकि अकबर ने दिल्ली के सुल्तानो की भेद-

---

१. एम० फगमन, पृ० ६५-१०५।

अरबो ने सिंध में इस्लामी व्यवस्था स्थापित करने की दिशा मे जो प्रथम महत्वपूर्ण परिवर्तन किया वह यह था कि उन्होंने इस्लाम स्वीकार कर लेने वालो की भूमि को उपारी भूमि और हिंदू ही बने रहने वालो की भूमि को खराजी भूमि घोपित कर दिया (चचनाम, एफ, १६३ ए)।

महमूद गजनवी के काल में यह व्यवस्था पंजाव में स्थापित हो गई और फिर कुतुबुद्दीन ऐवक (१२०६-१० ई०) के काल मे इसका विस्तार सल्तनत के सभी प्रदेशों में हो गया (तारीखे फखरुद्दीन मुबारकशाह, पृ० ३३-३४)। फीरोज तुगलक प्रथम मुस्लिम जिसने इस्लामी कर व्यवस्था को कठोरता से अपनाया और शर अनुमोदित उश, खराज, खम्स, जकात जजिया और एक सिंचाई कर के सिवाय अन्य सभी इस्लाम मे वर्जित करों को हटा दिया (फतूहाते फिरोज शाही, शेख अब्दुर्ररसीद, (अलीगढ़ १९५४), पृ० ७)।

भाव नीति को समाप्त कर, नयी अधिक न्यायोचित्त व्यवस्था स्थापित की थी।[1] यह निर्देश किया गया था कि, अगर खराजी भूमि का स्वामी मुसलमान भी हो जाय तव भी उसे उपरी भूमि मे परिवर्तित न किया जाय। यही कारण था कि अगर कोई मुसलमान अपनी उपारी भूमि को सीचने के लिये सार्वजनिक कुओ, तालावो या नहरों का प्रयोग करता था तो उसकी मालगुजारी खराजी व्यवस्था के अंतर्गत ही निश्चित की जाती थी।[2]

कर निर्धारण

हिंदू राजतंत्र मे करों की अदायगी को प्रजा की रक्षा और प्रशासनिक प्रवध के प्रतिफल स्वरूप राजा को दिया जानेवाला पारिश्रमिक समझा जाता था।[3] उत्पादको पर उनके लाभ की भली-भाँति जाँच करके करो को निर्धारित करे, और वह इस तरह कि राजा और उत्पादक दोनो प्रतिफल मे हिस्सा वँटा सके।[4] उन्होने पूर्व निश्चित मालगुजारी के आँकडो को स्वीकार कर लिया और इन्ही आँकड़ो के आधार पर राज्य कर निश्चित कर दिया। अलाउद्दीन खिलजी दिल्ली का प्रथम सुल्तान था जिसने कि खेती की जानेवाली भूमि की पैमाइश करवाई।[5] लेकिन वह भी कोई नई वात न थी। उसने केवल उस प्राचीन हिंदू व्यवस्था की पुनरावृत्ति ही की थी जो कि १२०६ और १२९४ के वीच लुप्त हो

---

१. आईने, १, पृ० २८९-९४. जेरेट, २, पृ० ५०-५८।

२. आईने, २, पृ० ६२।
कुतुबुद्दीन ऐवक से लेकर अलाउद्दीन खिलजी तक दिल्ली के जो भी सुल्तान हुए उन्होने कोई अपनी कर व्यवस्था स्थापित नही की। तव भूमि की उपज को सही रूप से निश्चित कर उसके आधार पर राज्य कर निर्धारित करना आसान नही था। इसलिये निम्न स्तरों चले आ रहे हिंदू कर्मचारियो का ही उपयोग किया और युग-युगांतर से प्रचलित व्यवस्था को ही अपना लिया।

३ जैरेट, २ पृ० ५५१।

४. काशी प्रसाद जायसवाल, पृ० १६१।

५. वरनी, पृ० २८०-८१।

चुकी थी।[1] इस व्यवस्था में जोती गई भूमि नापकर उसके आधार पर उपज निश्चित की जाती थी। यह व्यवस्था उत्तरी भारत मे मुस्लिम साम्राज्य स्थापित होने के समय तक प्रचलित थी। इसको अपनाने पर भी अन्य दो अवस्थाएँ कनकूती और बटाई को पूर्ण रूप से समाप्त नही किया गया था। शेरशाह (१५४०-४५ ई०) ने अलाउद्दीन की पैमाइश व्यवस्था अपनाई। लेकिन यह व्यवस्था सभी जगह प्रचलित नही की जा सकी और कनकूती तथा बटाई व्यवस्थाएँ भी साथ साथ चलती रही।[2]

कर भुगतान के तरीके

कर निर्धारण की तरह कर भुगतान भी नकदी मे अथवा उपज मे भुगतान करने की दोनो ही व्यवस्थाएँ लगभग पूरे सल्तनत काल मे प्रचलित रही।[3] अलाउद्दीन ने यद्यपि अपने साम्राज्य के अधिकांश भाग की पैमाइश करा ली थी, लेकिन फिर भी उसके काल मे किसानो को उपज में ही मालगुजारी देने को प्रोत्साहित किया जाता था। लेकिन शीघ्र ही खराब या नष्ट होनेवाले अनाजो और तरकारियो के लिये कर नकद ही वसूल किया जाने लगा। बाबर और हुमायूं के समय में इस व्यवस्था मे कोई परिवर्तन नही हुआ। बाबर अपने साम्राज्य के विभिन्न जिलों की माल-गुजारी और अपने शासको से नजरानो की वसूली के आकडे जो टंको में देता है, उससे अनुमान होता है कि वह अधिक वसूली नकदी मे ही करता था।[4]

---

१. बरनी, पृ० २८७-८८।

सिकंदर लोदी की देन गजप्रथा जो कि ४१½ अगुल का होता था। यह गज मान्य माप के रूप मे अकबर के शासनकाल की ३१वी वर्ष तक इस्तेमाल होता रहा (आइने अकबरी, १, पृ० ६६)।

३. बरनी, पृ० ४३७। ४, वही, पृ० ४४१।

फिरोज तुगलक के काल मे मालगुजारी आंशिक रूप से नकदी मे और आंशिक रूप मे उपज मे दी जा सकती थी। लेकिन इब्राहिम लोदी के काल में यह हुक्म जारी हुआ था कि मालगुजारी केवल उपज मे ही वसूल की जानी चाहिए (मेमायर्स, २, पृ० ५२०-२१)।

५. मेमायर्स, २, पृ० ५२२-२३।

शेरशाह को दूसरा श्रेय है कि उसने विभिन्न उपजों के करो की तालिका तैयार कराकर तथा उन पर निश्चित मालगुजारी निर्धारित करके भूमि व्यवस्था में महत्वपूर्ण सुधार किया। यह बात पहले मुसलमान शासकों को और संभवतः उनके पहले के प्राचीन हिंदू सम्राटो को भी नही सूझी थी। शेरशाह की तालिका से पता चलता है कि उसकी मालगुजारी की दर भूमि की औसत उपज पर आधारित थी। भूमि को तीन वर्गों में विभाजित कर दिया गया था और तीन प्रकार की भूमि की औसत उपज निश्चित कर ली जाती थी। शेरशाह के साम्राज्य के जो प्रदेश जब्ती व्यवस्था के अंतर्गत थे उन सभी मे अनाज की मालगुजारी की दरे एक सी ही थी[1]। इससे यह प्रतीत होता है कि मालगुजारी नकदी पर वह जोर नही देता था।

माल गुजारी की दर

सल्तनत काल मे राज्य की माँग की दरें एक सी नही थी। वे विभिन्न शासको के काल मे बदलती रहती थी। कुतुबुद्दीन खराजी भूमि की उपज का पाँचवाँ हिस्सा लेता था।[2] अलाउद्दीन उपज का आधा हिस्सा लेता था और गृह कर तथा चराई कर अलग।[3] उसके उत्तराधिकारियो ने यह माँग कम कर दी थी। गयासुद्दीन फिर उपज का पाँचवाँ भाग लेने लगा।[4] मुहम्मद तुगलक ने कम से कम दोआब मे यह माँग काफी बढा दी थी।[5] फिरोज तुगलक ने फिर राज्य की माँग उपज का पाँचवाँ भाग निश्चित कर दिया।[6] शेरशाह उपज का तिहाई भाग मालगुजारी के रूप में लेता था

१. आइने अकबरी, १, पृ० २९७, डा० कुरेशी, पृ० १९९।
२. तारीख फखरुद्दीन मुबारकशाह पृ० ३३-३४।
३. बरनी, पृ० २८७। ४. वही, पृ० २८१।
५. वही, पृ० २८१-८२।
६. फतूहाते फिरोजशाही, शेख अब्दुर्रशीद (अलीगढ, १९५४), पृ० २९। मालगुजारी के अधिकारियों को भी जागीरे दी जाती थी और यद्यपि अलाउद्दीन ने इनमे से बहुतो से जागीरें छीन ली थी (तारीख फकरुद्दीन मुबारकशाह, पृ० ५१-५२)। खिलजी के वंशज और लोदी तथा सूर वशो के सुल्तान भी उदारतापूर्वक किंतु विवेकहीन होकर अमीरो और उलमाओ को जागीरें प्रदान करते रहे (बरनी, पृ० २७९)।

और इसके सिवाय दो कर जरीबाना (पैमाइश का शुल्क) और मोहासिलाना (आमिल का शुल्क) अलग से लेता था। अकबर के सिंहासनारोहण के समय तक यही कर व्यवस्था प्रचलित थी।

जागीरें

दान स्वरूप और सरकारी अधिकारियों को उनके वेतन के रूप में जागीरें देने की प्रथा प्राचीन भारत की तरह सल्तनत काल में भी प्रचलित थी। गजनवी और गोरी सुल्तानों ने इक्तादारों को बड़े बड़े भू भाग जागीरों मे दिए थे। उनकी यह नीति दिल्ली सुल्तानों ने भी अपनाई।

मुगल करारोपण पद्धति का उद्भव और विकास

मुसलमान विजेताओं को भारत में अपना शासन स्थापित होने के समय देश मे अत्यंत उन्नत और सुदृढ़ वित्तीय पद्धति मिली, जिसे उखाड़ना या नष्ट करना न तो सुगम था और न लाभदायक। न ही वे अपने साथ कोई सुपरिचित पद्धति लाये थे, जिसका भारतीय पद्धति के स्थान पर लागू करने से सफलता की आशा की जा सकती थी। फलतः उन्हे देश की ही प्रशासनिक संस्थाओ, विशेषकर राजस्व पद्धति को अपनाना पड़ा। इसके ऊपर उन्होने केवल कुछ धार्मिक कर और लगा दिए थे। यथा हिंदुओ से जज़िया और मुसलमानो से जकात। उपज और खराज के बीच का जो अंतर फ़ारस और तटवर्ती देशो मे था वह भारत मे प्रायः मिट गया और मुगल काल मे जजिया भी समाप्त कर दिया गया था।[1] हिंदू शासकों की संस्थाएँ अनेक बातो मे विशेषतः भूमि-कर-संबंधी, उनके मुस्लिम उत्तराधिकारियो के प्रबंध और तरीको से मिलती जुलती है।[2] पुनः मध्ययुगीन भारत मे विशिष्ट इस्लामी लक्षणों के प्रभाव तथा 'ददश भूमि' (उशारी) और 'करदभूमि' (खराजी) के विभेद को देखते हुए यह भी स्वीकार करना खतरनाक होगा कि मुस्लिम विजय के कारण स्थानीय पद्धति और लगभग तदनुरूप विजेताओ की पद्धति का समन्वय हुआ होगा।[3]

राजस्व संबंधी मध्ययुगीन भारत के इतिहास मे कुछ ऐसे विशेष लक्षण पाते है, जो पूर्वकाल के ही समान थे, यथा भूमि के सर्वेक्षण के तरीके और

---

१. आईन, १, पृ० २७९-८०, गैरेट, २, पृ० ४७-४८।

२. काशी प्रसाद जायसवाल, पृ० १६७।

३. मोरलैंड, अग्रेरियन सिस्टम, पृ० १६।

नकदी में राजस्व देने की व्यवस्था, तो हमे उनमे नैमितिक संबध को मानने मे तनिक भी संकोच न होना चाहिए।[१] यह निष्कर्ष पूर्व मुस्लिम भारत की राजनीतिक संस्थाओ मे कृषि प्रणाली और ग्राम स्वायत्त शासन अधीन पंचायत-प्रणाली के विषय मे अधिक सत्य है।

बाबर

बाबर ने, उस समय जो दिल्ली सल्तनत मे राजस्व व्यवस्था प्रचलित थी, उसी को अपना लिया था। सिर्फ इतना परिवर्तन किया था कि उसने मुसलमानों पर से चुगी हटा लिया था, जबकि हिंदुओ पर वे कर पुरानी दर से ही कायम रहे।[२] लगान व्यवस्था मे कोई परिवर्तन नही कर सका, उसने चली आ रही परिपाटी का अनुशरण किया और लगान गल्ला तथा नकद दोनों रूपो मे लेता था।[३]

जब बाबर हिंदुस्तान आया, उस समय यहाँ गज-सिकंदरी का चलन था। इसको बंद करके बाबर ने बाबरीगज जारी किया।[४] यह जहाँगीर बादशाह के शासनकाल तक प्रचलित रहा।[५] उस समय मुख्य कर, भूमि कर था। शात प्रदेशो से सरकार ही कर वसूल कर लिया करती थी, परंतु जो प्रदेश देशी सरदारो के अधीन थे और जिन पर बादशाह का पूरा अधिकार नही हुआ था, वहाँ पर बादशाह सरदारों से कर लिया करता था।[६]

बाबर ने उत्तरी हिंदुस्तान की विजय के समय अपने विभिन्न स्वामिभक्त अमीरो और सहायको मे विजित राज्यो को जागीर के रूप में बाँट दिया था। वे भूमि कर के रूप मे एक निश्चित धनराशि सम्राट् को देते रहते थे तथा अपने जागीर के कृपको से मनमाना धन वसूल करते थे। दूसरा परिणाम यह हुआ कि राज्य के कृपको और कृपि की दशा अत्यंत

१. हिंदू रेवेन्यू सिस्टम, पृ० २८७।
२. बाबर, पृ० ५१८।
३. बाबर, पृ० ५२२-२३।
४. बीग्स, २ पृ० ६६-६७।
५. वही, पृ० ६६-६७।
६. एस० के० बनर्जी, 'बाबर एंड हिंदूज़' इन दि जर्नल आफ दि यू० पी० हिस्टोरिकल सोसाइटी, ११, भाग २, १९३६।

शोचनीय और दयनीय हो गई। राज्य और सम्राट् को उनकी दशा सुधारने के लिये न तो अवकाश था और न इच्छा ही। सम्राट् कृषकों के प्रति अपना कोई कर्तव्य नहीं समझता था। हिंदुस्तान के लोगों का शोषण करना और उन्हे लूटना उचित माना जाता था। ऐसी दशा मे भूमिकर व्यवस्था में कोई परिवर्तन नही कर सका।[१]

फिरोज तुगलक के काल मे मालगुजारी आंशिक रूप से नकदी मे और आंशिक-रूप से उपज मे ली जाती थी। लेकिन इब्राहीम लोदी के समय में यह हुक्म जारी हुआ था कि मालगुजारी केवल उपज में ही वसूल की जानी चाहिए। लेकिन शीघ्र ही खराब या नष्ट होनेवाले अनाजों और तरकारियो के लिये कर नकद ही वसूल किए जाने लगे। बाबर के समय मे भी इस व्यवस्था मे कोई परिवर्तन नही हुआ। बाबर अपने साम्राज्य के विभिन्न जिलों की मालगुजारी और अधीन शासकों से नजरानों की वसूली जो टंको मे देता था, उससे अनुमान होता है कि अधिक वसूली नकदी मे ही करता था।[२]

हुमायूँ

हुमायूँ ने अपने पिता की तरह समस्त भूमि को जागीर के रूप मे वितरित कर दिया था।[३] उसने कुछ परिवर्तन किया लगान के विभाग में। भूमि की पैमाइश के लिये शिकंदरी गज का प्रयोग किया।[४]

हुमायूँ के शासन के प्रथम काल में बाबर की व्यवस्था चलती रही। साम्राज्य की भूमि चार श्रेणियों में विभाजित थी।[५]

(१) खालसा भूमि जो सम्राट् के निजी अधिकार मे थी।

(२) सयूरगाल अर्थात् माफी भूमि जो विद्वानो या धार्मिक व्यक्तियो को दी जाती थी।

(३) जागीर, जिसे अधिकारियो को दिया जाता था।

(४) जमीदारो के अधिकार की भूमि। ये भाग अपनी सुव्यवस्था, शांति तथा आंतरिक शासन के लिये स्वतंत्र थे।

---

१. आ० एंड अ०, २, पृ० ५८-६७।

२. मेमायर्स, २, पृ० ५२०-२१। ३. बाबर, पृ० ५२०।

४. मोरलैंड, अग्रेरियन सिस्टम आफ मुस्लिम इंडिया, पृ० ७२।

५. ख्वान्दमीर, कानूने हुमायूँनी (अनु० वेनीप्रसाद), पृ० १३।

हुमायूँ को १५५५ ई० मे शेरशाह द्वारा सगठित साम्राज्य प्राप्त हुआ। सूरवश उत्तराधिकारियो के पारस्परिक वैमनस्यता के कारण शासन सगठन अव्यवस्थित हो गया। हुमायूँ अपने साम्राज्य को सुव्यवस्थित करना चाहता था तथा उसके मस्तिष्क मे इसके लिये एक योजना थी।[1]

हुमायूँ ने लगान संबंधी कुछ साधारण सुधार भी किए। सुल्तान सिकंदर लोदी का गज ४१½ इस्कंदरी के वरावर था। हुमायूँ ने इसे वढाकर ४२ इस्कदरी कर दिया, जिससे यह पूरा ३२ सख्या का हो गया।[2] हुमायूँ के समय मे कदाचित् अकवर के समय से कम लगान लिया जाता था।[3]

इसके समय मे कर लगान के रूप मे १।२ तथा १।३ लिया जाता था। कही कही जहाँ जमीन अच्छी नहीं होती थी १।१० और १।२० कर लिया जाता था। यह सव कुछ सोचते हुए भी परिवर्तन नही कर सका क्योकि वह ज्यादा समय तक इस संसार मे नहीं रह सका।[1]

शेरशाह

शेरशाह के भूराजस्व के संवध मे मूल तीन प्रश्न हैं[2]—

(१) कर निर्धारण का तरीका।

(२) अदायगी की विधि या स्वरूप तथा।

(३) सरकारी माँग का अनुपात अथवा अंश।

भारतीय राजसिंहासन की प्राप्ति के पूर्व शेरशाह को अपने पिता की जागीर सहसराम, खवासपुर और टाँडा के परगनों के प्रशासन का यथेष्ट अनुभव था। शेरशाह को लोदियो की राजस्व पद्धति कमजोरियो और कमियो के कारण होने वाली दुर्व्यवस्था का भी व्यक्तिगत ज्ञान था। उसने वड़ी दूरदर्शिता के साथ अपनी तैयार की हुई भू-राजस्व पद्धति का प्रयोग अपनी जागीर मे किया था। इस प्रकार उसकी योजनाएँ और विचार

---

१. कानूने हुमायूँनी, (अनु० वेनीप्रसाद), पृ० २३।
२. वनर्जी, हुमायूँ, २, पृ० ३४३। ३ वही, पृ० ३४३-४४।
१. आईने अकवरी, १ (अनु०), पृ० १६६-६७।
२. परमात्माशरण-प्राविंशियल गवर्नमेंट आफ दि मुगलस, पृ० १६५-६६, त्रिपाठी, सम आसपेक्ट्स, पृ० २६६-६७, मोरलैंड, पृ० ७९।

काफी परिपक्व और स्थिर हो गए थे। जब वह शासक बना सिर्फ मुल्तान प्रान्त को छोड़ करके शेष संपूर्ण प्रदेश में तुरंत लागू कर दिया।[१]

इस प्रकार उसने पूर्ववर्ती पद्धतियों यथा गल्लाबख्शी (बटाई) और मुकतई को समाप्त करके कर-निर्धारण के लिये जरीब अर्थात् भूमि की सर्वेक्षण प्रणाली की स्थापना की।[२] अदायगी के तरीके के विषय में, कृषकों की सुविधा और प्रोत्साहन पर विशेष विचार करके उसने नकदी अथवा पैदावार किसी एक रूप में देने की स्वतंत्रता प्रदान की थी।[३]

लगान निर्धारण प्रणाली के विषय में बादशाह का दृष्टिकोण ही बदल गया था। अपने पिता की जागीर के प्रबंधक के रूप मे उसने किसानो को ही स्वतंत्रता दे दी थी कि वह चाहे जो प्रणाली अपने लिये चुन ले, परंतु बादशाह की हैसियत से इस बार उसने नाप प्रणाली को ही सार्वदेशिक कर दिया। उसने नाप प्रणाली द्वारा सारे ही पहाड़ी से भी लगान वसूली की, इसने उन लोगो की आदत को छुड़ा दिया जो विरोध करते थे, वे शहर आकर लगान दे जाते थे, जितनी निर्धारित की हुई होती थी।[४]

शेरशाह से पहले जमीन नापने की प्रथा नहीं थी लेकिन प्रत्येक परगने मे एक कानूनगो था, जिससे परगने की पूर्व, वर्तमान और भावी स्थिति का परिचय मिल सकता था।[५]

अपनी सुविधा के लिये विजेता सदैव ही प्रचलित अवस्था को आधार बनाता था। अधिक से अधिक इतना ही हो सकता था कि एक जागीरदार को पदच्युत करके उसकी जागीर किसी और को दे दी गई।[६] जागीरदारी व्यवस्था मे आमूल परिवर्तन करने की आवश्यकता नही समझते थे। दूसरा परिवर्तन यह होता था कि दीवानी का अफसर बदल जाता था और जागीरदार लोग इस नये अफसर का हुक्म मानते थे।[७]

---

१. आईन, १ (अनुवाद), पृ० २९।
२. आईन, पृ० २९६।
३. कानूने, हुमायूंनी (अनु० बेनीप्रसाद), पृ० १६।
४. वही, पृ० १७-१८। ५. इलियट एंड डाउसन, ३, पृ० १६२।
६. इलियट एंड डाउसन, पृ० ३९४-९५।
७. वही, पृ० ३९९।

शेरशाह के जमाने में लोदी कालीन इकाइयाँ प्रचलित थी। इसके जमाने मे भूमि की नाप के लिये सिकदर लोदी कालीन बीघा प्रचलित था। उपज का सामान्य स्तर तथा दूसरी बात यह कि कितनी भूमि पर है, यह व्यवस्था कितने क्षेत्र पर लागू की गई थी।[१]

शेरशाह मुस्लिम साम्राज्य का पहला बादशाह था, जिसने भूमि की पैमाइश कराई। यह बहुत ही मुश्किल कार्य था लेकिन उसने उसे पर्शियन विशेषज्ञ से करवाया तथा जो दिल्ली सुल्तानो ने नही किया था, उसने अपने साम्राज्य को पर्शियन साम्राज्यो का रूप दिया।[२] उसने पूरे देश की पैमाइश करायी तथा इस विभाग का सर्वेसर्वा हुमायूँ को बनाया, इसी की अध्यक्षता मे यह कार्य सपन्न कराया तथा पैदावार वाली भूमि को अलग कराया।[३]

इस सर्वेक्षण की आत्मा अहमद खान को कहा जा सकता है क्योकि राय देने वाला वही था।[४] इस व्यवस्था मे सहायता करने वाले विद्वान् ब्राह्मण थे। जमीन को दो भागो मे विभक्त किया गया, परंतु हिसाब एक जैसा रखा गया।[५]

शेरशाह ने सभी प्रकार से सोच करके अपना जो जमीन की पैमाइश करने का तरीका निकाला[६] वह सबसे ऊपर था तथा जिससे जमीन की सही सही पैमाइश हो सके। वह जरीब के द्वारा सभी जमीन की पैमाइश करने का आदेश दिया क्योकि वह सबसे सही नाप हो सकती थी। इसके पहले जो कुछ था वह गलत था, इस कारण इसने नयी पद्धति को अपनाया। जो लगान के बारे मे निर्णय शेरशाह ने पाँच वर्ष मे पैमाइश के द्वारा

---

१. मोरलैंड, पृ० ७९।

२. आईने अकबरी, १ (अनु०), पृ० २८७।

३. इलियट, ४, पृ० ४१५।

४. आइने अकबरी, २ (अनु०), पृ० ४५।

५. स्मिथ, ३, पृ० ३९९।

६. अब्बास खा शेरवानी, तारीख-ए शेरशाही (अनु०), पृ० ७३।

७. आईने, २, पृ० ६६-६७।

किया वह अकबर १६ वर्ष मे किया। वह अलग अलग स्थान के लिये जमीन के हिसाब से किया गया।[1]

हसन खान ने तीन पद्धति को पूरे देश के लिये लागू किया, जमीन के सम्बन्ध मे[2]—

पहला जो था, जमीन की पैमाइश करके जमीदारो को दे दी जाती थी तथा उनसे लगान वसूल की जाती थी और यह जो जमीदार थे, उनका सवध सीधे केंद्र से होता था। दो पद्धति और जो थी वह पुरानी थी। दूसरी मे शेरशाह का कोई आनद नही था। वह जो थी वह एक तरह से जमीन दे दी गई थी। तीसरे जो थी, वह ऐसे क्षेत्र मे थी, जिसकी एक प्रकार से कहा जा सकता है, जानकारी ही नही थी।

इस प्रकार जो नक्शा तैयार हुआ था, उसके द्वारा पैदावार करनेवालों अर्थात् किसानों से शेरशाह का अपना कोई संवध नही था, इससे जमीन का सब व्यौरा साफ-साफ हो गया सिर्फ पहाडी क्षेत्रों मुल्तान की व्यवस्था भिन्न थी। लगान के विभाग के लिये मुकद्दम तथा आफिसर अमीन आदि नियुक्त कर दिए गए, वह अति उत्तम तरीका था।[3]

कर निर्धारण

जो नियुक्ति हुई थी उसमें शेरशाह किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करता था क्योकि इससे शासन मे कमजोरी आ सकती थी।[4] लगान के रूप मे शेरशाह नकद न देने पर गल्ला तथा मुक्ती कानून के रूप मे नियम बनाया।[5] सभी प्रातो मे केंद्र के समान बाजार भाव कर दिया और उसी के हिसाब से वसूली की जाती थी।

अदायगी के तरीके के विषय मे कृपको की सुविधा और प्रोत्साहन पर विशेप विचार करके उसने उसे नकदी अथवा पैदावार किसी एक रूप मे स्वतंत्रता प्रदान की थी। संपूर्ण उपज का एक भाग सरकार का और

---

१. मोरलैंड, पृ० ४५२-५३, पी० सरन, दि० अ० आ शेरशाह, पृ० १४७।
२. तारीख-ए-शेरशाही, (अनु०), पृ० ६५।
३ आ० अ० (अनु०), पृ० २६४।
४. शेरवानी, तारीख-ए-शेरशाही (अनु०), पृ० १०३।
५. एम० एस० कामिसारियट, हिस्ट्री आफ़ गुजरात, पृ० २१६।

दो भाग कृपक का, इस नियम के मुताबिक कर लिया जाता था, अर्थात् उपज का कर के रूप मे लिया जाता था। इसके अतिरिक्त कृपकों को कुछ और भाग दौरे पर जानेवाले सर्वेक्षको (पटवारियों) और तहसीलदारों के निर्वाह और शुल्क के रूप मे भी देना पडता था।[१]

अबुल फजल ने लिखा है कि 'जो आज अकबर के समय मे कर की व्यवस्था है, वह शेरशाह के भी समय मे थी।'[२] अबुल कैदी ने अकबर के समय का १।३ बतलाया है। परंतु शेरशाह १।४ पैदावार का हिस्सा लेता था।[३]

डा० कानूनगो ने आईन-ए-अकबरी के मत को मानने से अस्वीकार कर दिया है तथा १।४ बतलाया है क्योकि अकबर से भिन्न शेरशाह को बतलाया है। अकबर को इन्होने १।३ बतलाया है।[४] क्योकि मोरलैंड की बात को इन्होने स्वीकार किया है।[५]

डा० सरन ने मोरलैंड की बातों को माना है तथा तथा कहा है कि, 'शेरशाह के समय मे भी अकबर की तरह १।३ नही बल्कि १।४ वसूल किया जाता था।'[६]

डा० कुरैशी ने १।४ माना है, जमीन की पैदावार या टैक्स। क्योकि बाबर भी तैमूरी प्रणाली को अपनाया था, शेरशाह इस नियम को लागू नही किया था। वह १।४ लगान के रूप मे टैक्स लेता था।[७]

शेरशाह ने जब लगान की माँग की तो हसन खाँ ने उसे, जहाँ पर सिंचाई का साधन था, जो बरसाती पानी, कुएँ या नहरो से सिंचाई होती थी, पूरा-पूरा हिसाब दिया। जहाँ पर इस व्यवस्था का प्रबंध था या उपलब्ध था वहाँ पर प्रतिशत टैक्स के रूप मे वसूल किया जाने लगा, जो नही देता था उसे कडी से कडी सजा दी जाती थी।[८]

---

१. शेरशाह की राजस्व पद्धति (कानूनगो), जर्नल आफ, बिहार एड उडीसा रिसर्च सोसाइटी, पटना खड १७, भाग १, १९३०-३१।
२. आइने, १ (अनु०), पृ० २९८-९९। ३. वही, पृ० २९४।
४. मोरलैंड पृ० ४५२-५३, पी० सरन, पृ० १४७।
५. अलीजुलफीकार, शेरशाह सूरि पृ० ३७३-७४ आईने, २, पृ० ६३-६६।
६ पी० सरन, पृ० १४७-४८। ७ डा० कुरैशी, पृ० ११८-१९।
८. अब्बास खां शेरवानी, (अनु०), पृ० १९३।

मालगुजारी की दर भूमि की औसत उपज पर आधारित थी। भूमि को तीन वर्गों में श्रेष्ठ, मध्यम, खराब में विभाजित कर दिया गया था और तीन प्रकार की औसत उपज निश्चित कर ली जाती थी। अलग अलग फसलों के लिये अलग अलग तालिकाएँ होती थीं। शेरशाह के साम्राज्य के जो प्रदेश उसकी व्यवस्था के अंतर्गत थे उन सभी में अनाज की मालगुजारी की दरें एक सी ही थीं।[1]

कर की वसूली

प्रत्येक परगने में एक अमीर, एक धार्मिक सिकंदर, एक खजांची, एक हिंदी कारकून और एक फारसी लेखक था।[2] उसने अपने सूबेदारों को हुक्म दिया कि जब भारत आए तो भूमिकर, खेतों की नाप के अनुसार लिया जाय। इसके लिये खेतों को नापा जाय। कर उपज के अनुसार लिया जाय। उपज का एक भाग कृषक और आधा भाग मुकद्दम को दिया जाय। कर का निश्चय अन्न की किस्म को देखकर कर लिया जाय, जिससे मुकद्दम, चौधरी और आमिल लोग किसान पर अत्याचार न करें जो राज्य की संपदा के रक्षक हैं।[3] शेरशाह प्रत्येक परगने में एक कानूनगो की नियुक्ति की थी जिससे परगने की पूर्व, वर्तमान और भावी स्थिति का परिचय मिल सकता था।[4]

वसूली की पद्धति गल्ला-बख्शी या अनाज के रूप में भी जाती थी, जो यह कार्य करता था उसे नकद वेतन के रूप में दिया जाता था।[5] इस प्रकार गल्ला बख्शी का नियम सभी सम्राटों के समय में था।

इस प्रकार का नियम प्रांत भी महसूस किए और यही नियम प्रांतों में भी लागू किया गया।[6]

---

१. आईने, १, पृ० २९७, डा० कुरैशी, पृ० १९९।

२. कानूनगो, पृ० ३५३।

३. कानूनगो, पृ० ३५२-५३।

४. इलियट एंड डाउसन, ३, पृ० १९२।
आईने, २, पृ० ९२, कानूनगो, ३३०-३१।

५. मोरलैंड, पृ० ४८९। ६. आईने, १, पृ० २९४।

तीसरे प्रकार की जो वसूली होती थी प्रांतों से उसमे शेरशाह नकद लेता था मुद्रा के रूप मे।[1] क्योकि पहले मे वह केंद्र शासित से मुद्रा लेता था, दूसरे मे गल्ला-वक्सी या अनाज के रूप मे वसूल करता था और तीसरे में प्रात पतियो से नकद ही लिया करता था।[2]

यह सत्य है कि शेरशाह १।३ कर वसूल करता था। क्योकि अकबर ने शेरशाह की नीति का अनुशरण किया और १।३ लगान वसूली करता था।[3] कहीं-कहीं अकबर ने शेरशाह के नियमो का बिलकुल ही पालन नहीं किया है।[4]

शेरशाह उपज का तिहाई भाग लेता था मालगुजारी के रूप मे और इसके सिवाय दो कर जरीवाना (पैमाइश शुल्क) और मोहासिलाना (आमिल शुल्क) अलग लेता था। अकबर के सिंहासनारोहण के समय यही दर प्रचलित थी।[5]

प्रांतीय शासन

सामान्य प्रबंध के लिये, जिसमे राजस्व प्रबंध भी शामिल था, सबसे छोटी ईकाई परगना था। परगने का राजस्व अधिकारी अमीन था, उसके अधीन एक खजाची और दो अथवा अधिक लिपिक होते थे। शेरशाह की व्यवस्था की विशेषता यह थी कि उसने कृषको, जिनमे से बहुत से फारसी से अनभिज्ञ थे, की सुविधा के लिये मुनाशियो का एक अलग समूह नियुक्त किया था, जो (अभिलेखो) रिकार्डों को हिंदी मे रखता था। कर्मचारी राज्य का प्रतिनिधित्व करते थे। गाँवो का मुखिया एक प्रकार का अर्ध सरकारी व्यक्ति था, जो राज्य के अधिकारियो को मालगुजारी की वसूली मे सुविधा करता था और उनके साथ कृषको के बीच मध्यस्थ कड़ी का काम देता था। कृषकों के मामलो का प्रतिनिधित्व पटवारी करता था जो इन दिनो गाँव का मुनीम (आलेखक) होता था और गाँव के कृषि संबधी अभिलेखो को रखता था।[6]

---

१. आईने २, पृ० ६३। २ वही, २, पृ० ६६-६७।

३. आईने, १ (अनु०), पृ० २९८।

४. एम० एस० काम्मिसारियट, २।२८।

५. आईने, १, पृ० २९६, डा० कुरैशी, पृ० ११९-२०।

६. तारीखे-दौलते-शेरशाही, फरमान १०।

प्रत्येक सरकार में उसने एक सरदार (सिकदार-ए-सिकदारान) और एक प्रधान मुसिफ (मुसिफ ए-मुसिफान) मुकर्रर किया, जिनका कर्तव्य आमिल और रियाया पर दृष्टि रखना था, जिससे प्रजा पर आमिल अत्याचार न करे। सरकार के लगान को न खा जाय। अगर आमिलों में आपसी झगड़ा होता था तो वे लोग उसका निर्णय करते थे, जिससे राज्य मे कोई गडबडी न हो।[1]

यदि लोग कानून का उल्लेख न करके विद्रोह करते थे या भूमि कर की वसूली मे कोई गडवडी करते थे तो सिकदार-ए-सिकदारान को निर्देश था कि उसको दंड देकर कर लिया जाय जिससे विद्रोह और लोगों तक न पहुँचे।[2]

डा० कुरैशी ने लिखा है, प्रांतीय व्यवस्था वहुत कठिन थी। वावर जो था वह केवल ३० प्रतिशत ही लेता था, हुमायूँ ने भी अपने पिता का अनुशरण किया।[3] परगने का जो कार्यालय था, वह शेरशाह के अंदर था और समय समय पर निरीक्षण किया करता था तथा राय दिया करता था।[4]

इस्लाम शाह के लगान संवधी वाते वहुत कम मिलती है क्योकि इतिहासकारो ने इसके शासन प्रवंध के वारे मे वहुत कम आनंद लिया है। जो कुछ भी इसके वारे मे प्राप्त होता है, वह अकवर के समय में इतिहासकार लिखे है क्योकि सूरवंश का अंतिम शासक था। कुछ भी जो लिखे है वाकेट मुस्तफी क्योकि इसके समय के सवसे वडे इतिहासकार थे।[5] वह उन्होने अपने पिता के पदचिह्नो का अनुशरण किया। शेरशाह के सारे वनाये हुए नियमों को अपने शासन पद्धति का मुख्य लक्ष्य वनाया तथा पूरे शासन तक यही चालू रहा।[6]

इस्लाम शाह ने लगान विभाग को ज्यो का त्यो अपने पिता के समान रखा। किसी प्रकार की फेर वदल नही की।[7]

परगाना सवसे नीचा शासन था लगान का। वहाँ पर इस्लाम शाह ने लगान के लिये मुसिफ तथा अमीन की नियुक्ति अफिसर के रूप मे की।

१. आईने १, पृ० २९७, गैरेट, पृ० ६३।
२. कानूनगो, पृ० ३७०-७८। ३. आईने १, पृ० ३००-३०१।
४. मोरलैंड, पृ० ४४७।
५. स्मिथ, पृ० ३०६-७। ६. एडवर्ड थामस, (लंदन), पृ० २९०।
७. आईन-अकवरी, १, पृ० २९७।

खजाची, कारकुन, कानूनगो और क्लर्क इनके अदर रखा, जो किसानों के यहाँ लगान वसूल करने के लिये जाते थे। ये लोग पर्शियन नही बोलते थे बल्कि हिंदी बोलते थे।[1]

कारकुन अपना कैंप लगाकर एक जगह रहता था और हिसाब किताब करता रहता था लेकिन आमील जो था, वह दूर का कार्य करता था।[2]

कानूनगो कृषि का हिसाब किताब रखता था और उसकी छान बीन किया करता था।[3]

सिकदार जरूरत पडने पर मुसिफ की सहायता कर दिया करता था।[4]

सभी मुकदमो को पटवारी देखता था, यह गाँव का कृषि सबंधी हिसाब किताब रखता था।[5] मुख्य जो सभी प्रकार की सहायता करते थे, जमीन संबधी बातो के लिए आफिस का वह मुसिफ या आमील होता था, वह समय समय पर सहायता कार्य करते थे। यह सबसे बड़ा पदाधिकारी होता था। यह सभी प्रकार की करदाताओं को नियन्त्रित करता तथा सभी का निपटारा करता था। परगने की सीमा विवाद का निर्णय करता था।[6]

इस्लाम शाह केवल पूरे साम्राज्य मे प्रत्येक मौसम मे एक प्रकार का नियम लागू करना चाहता था। वह जरीब पद्धति को बढाना चाहता था तथा १।३ पैदावार की माँग कर रहा था। वसूली के लिये अपने आफिसरों को समय समय पर निर्देशित करता रहता था।[7]

इस विषय मे सभी इतिहासकार एकमत हैं कि शेरशाह कृपको के हितों और कल्याण का बहुत ध्यान रखता था, और यदि किसी पर कृषको के सताने का सदेह हो जाता था, तो वह उसे कठोर दंड देता था। इसलिये व्यवहारत उसने मध्यस्थ मुदियो को हटाकर कृषको से सीधा सबंध

---

१. एडवर्ड थामस, पृ० २९८-९९।
२. स्मिथ, पृ० २८४।
३. स्मिथ, पृ० २७८।
४. वही, पृ० २८९।
५. अकबरनामा, २, पृ० ८६१, अकबरनामा, २, पृ० ११३, अकबर नामा, ३, पृ० १५८, १६३, २०७, २१४, २४८, २५०, २६५, २८२, ३१०, ३:७, ३७२, ३८१, ४०३ तथा ४५७।
६. स्मिथ, पृ० २९१-९२।
७. अकबरनामा, ३, पृ० ८७।

स्थापित किया था।[1] इसके अतिरिक्त हमें तत्कालीन प्रलेख से ज्ञात होता है कि प्रत्येक भूमि के स्वामी और करदाता अपने घर का ढाई प्रतिशत खजाने मे बीमा कोष के रूप मे जमा करने की आज्ञा दी गई थी, ताकि आकस्मिक दुर्घटना अथवा प्रकृति जनित आपत्तिकाल मे उसका उपयोग किया जा सके।[2] इस खजाने का उपयोग आपत्तिकाल मे होता था। उसने नियम बनाया था कि गरीब कृषकों को आपत्तिकाल मे विनाश से बचने के लिये राज्य के खजाने से जितना भी अधिक राज्य की क्षमतानुसार दिया जा सके, दिया जाय।[3]

अकबर

साम्राज्य की आय का मुख्य स्रोत भूमि कर था। समस्त प्रशासन के आर्थिक संगठन का मेरुदंड भूमि कर था। जिस समय अकबर सम्राट् हुआ, तब शेरशाह द्वारा गठित भूमि कर व्यवस्था प्रचलित थी। अकबर इस भूमि कर प्रणाली को अपने शासन के प्रारंभिक पंद्रह वर्षों तक कायम रखा। इसके बाद उसने भूमिकर व्यवस्था की ओर ध्यान दिया।[4]

प्रारंभिक प्रयोग

अकबर ने शुरू ने शेरशाह की अनाज की दरे (रई) और जमा (मालगुजारी) अपनायी। उस समय दिल्ली, आगरा, इलाहाबाद और अवध ही ऐसे प्रदेश थे, जिन पर मुगलों का पूर्ण आधिपत्य था। इन प्रदेशो से माग इन्हो रई और जमा दरो के आधार पर निश्चित की गई। लेकिन वह फसल न हो सकी क्योंकि सभी प्रांतो की पैदावार मे अंतर था, इस कारण सफलता न मिल सकी। इसलिये यह व्यवस्था असफल सिद्ध हुई।[5]

---

१. स्मिथ, पृ० ३०२-०५।

२. प्रो० विलियम्स का लेख (इंडियन हिस्टारिकल रिकार्ड, कमीशन की कार्यवाही, खंड ३, जनवरी १९३०)।

३, तारीखे-दौलत-शेरशाही, फरमान सख्या १०।

४ आईन-ए-अकबरी, २, पृ० ५८-६७।

५. आईन-ए-अकबरी, १, पृ० २९७-३४७, वही, २, पृ० ६८-९४।

बैरम खाँ को हटाने के बाद अकबर ने ख्वाजा अब्दुल मजीद को १५६० ई० के बीच मे ही कभी आसफ खाँ की उपाधि देकर वजीर नियुक्त किया और उसे ही उसने मालगुजारी व्यवस्था को पुनर्संगठित करने का भार सौंप दिया।[1] उस समय तक मालगुजारी की रकमे (जमा-ए विलायत) उ ज मे अर्थात् विभिन्न प्रकार के अनाजो (रकमी) में लिखी जाती थी, दामो अथवा रुपयों मे नही।[2] बैरम खाँ के समय से वही व्यवस्था चली आ रही थी। इस व्यवस्था के आधार पर आसफ खाँ ने मनमानी रुप से जागीरी भूभागो मे जो वेतन के बदले मे दिए गए थे, कही तो मालगुजारी बढा दी और कहीं कम कर दी। आसफ खाँ ने जागीरदारो को संतुष्ट करने के लिये उनकी जागीरो का मूल्यांकन अधिक कर दिया। यह बहुत ही अनुचित सिद्ध हुआ और इससे बड़ा असंतोष फैल गया। मालगुजारी की वसूली मे कोई परिवर्तन नही किया, शेरशाह की ही परंपरा को कायम रखा। इस कारण यह प्रथम प्रयोग असफल सिद्ध हुआ।[3]

द्वितीय प्रयोग

एतिमादखाँ (मालिक फूल) ने किया था। यह १५६१ ई० मे खालसा (राज्य के सुरक्षित प्रदेश) का दीवान नियुक्त किया गया था। उसने मालगुजारी व्यवस्था बडी ही अस्तव्यस्त पाई। सर्वप्रथम उसने खालसा भूमि को जागीरी भूमि से अलग कर दिया और फिर खालसा भूमि मे मालगुजारी वसूली के नये नियम बनाकर उन्हे सितम्बर १५६२ ई० से लागू कर दिया। अबुल फजल इनका कोई विवरण न देकर केवल यही कहकर सतुष्ट हो जाता है कि इससे गबन समाप्त हो गए।[4] जबकि बदायूँनी लिखता है कि इससे खर्च मे बडी बचत हो गई।[5] लेकिन यह निश्चित है कि मालगुजारी निश्चित करने का तरीका वही रकमी बना रहा। जिसे विभिन्न प्रकार के अनाज की दरो मे दिखाया जाता रहा। इस व्यवस्था को मुजफ्फर खाँ ने १५६७ ई० मे खत्म कर दिया था।[6]

---

१. अकबरनामा, २, पृ० १११।　　२. मोरलैंड, पृ० २३६-४।

३. आईन, १, पृ० ३४७, आईन, २, पृ० ६४।

४. अकबरनामा, २, पृ० १७८-७६, मुंतखब उत तवारिख, २, पृ० ६५।

५. मुतखब उत तवारिख, २, पृ० ६५।

६. अकबरनामा, २ पृ० २८०।

आईने अकबरी के अनुसार खालसा प्रदेश को एक सी मालगुजारी के बराबर बराबर भागो मे बाँटने का प्रयास इसी समय किया गया।[1] प्रत्येक भाग की मालगुजारी एक करोड दाम की और प्रत्येक एक करोडी नामक अधिकारी को नियुक्त कर दिया गया था। करोडी की सहायता के लिये एक बितिक्ची (मुशी) और एक खजाची रहता था। ये अधिकारी किसानो से सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करते थे और उनसे नकद मालगुजारी वसूल कर रसीद देते थे। यद्यपि अभी तक भूमि की उपज का वास्तविक अंदाज करने का कोई प्रयत्न नही किया गया था फिर भी इस कदम से मालगुजारी विभाग मे कुछ सुधार अवश्य हुआ। अब एक योग्य और अनुभवी व्यक्ति को केंद्रीय मालखजाने का अध्यक्ष बना दिया गया और उसकी सहायता के लिये एक मुशी रख दिए गए।[2] इससे जिन सूबो मे अनाज की जो दर थी, उसी हिसाब से वसूल किया जाने लगा। इससे अधिकतर स्थानो मे कर कम हो गया, कृषको की दशा में सुधार हुआ और कृषको का सतोष बढ गया।[3] इसके अतिरिक्त भूमि की नाप का दोष पूर्ववत रहा।

तृतीय प्रयोग-परगनों के लिये विभिन्न मालगुजारी की दरें

मुजफ्फर खाँ ने अकबर के राज्यकाल के ११वे वर्ष (१५६७ ई०) मे एक तीसरा प्रयोग किया। इससे मालगुजारी व्यवस्था मे काफी सुधार हुआ। अभी तक अकबर की मालगुजारी व्यवस्था के आधार पर शेरशाह के काल से चली आ रही फसलो की दरे ही थी, मुजफ्फर खाँ ने इनके स्थान पर हर परगनो की फसलों के लिये अलग अलग फसलो की दरो की व्यवस्था की।[4] शासन के पंद्रहवे वर्ष मे (१५७०-७१) अधिक निश्चयात्मक सुधारो की स्थापना हुई, जब मुजफ्फर खाँ तुर्बती ने टोडरमल की सहायता से स्थानीय कानूनगोओ द्वारा प्रस्तुत और केंद्र से दस उच्च कानूगोओं[5] द्वारा परीक्षित प्राक्कलनों (आर्थिक अनुमानों) पर आधारित सशोधित भू राजस्व निर्धारण की व्यवस्था की। टोडरमल के मंत्रित्व काल मे इनमे सुधार हुआ। इन विवरणों के आधार पर हर परगने की अलग उपज को

---

१. अकबरनामा, पृ० २७३। २. आईने अकबरी, १, पृ० १२-१४।
३. अकबरनामा, २, पृ० १९७-९८,
तबकात-ए-अकबरी, २, पृ० १७०।
४. आईने, १, पृ० १७-१९। ५. अकबरनामा, २, पृ० ४९८।

ध्यान मे रखकर मालगुजारी की नई दरें तय की गयी। यदि १५७१ मे कुल मालगुजारी का यह जो अनुमान किया गया वह पहले अधिक ठीक था और १५७१ के पूर्व के आँकडों से कम था, फिर भी इस नवीन व्यवस्था के अंतर्गत जो वमूली की गई थी, वह इस अनुमानित कुल मालगुजारी से मेल नही खाती थी वल्कि जो कुल मालगुजारी वसूल हो सकी थी, वह अनुमानित मालगुजानी से कम थी।[1]

इन सुधारो को अनेक कानूनगोओं ने वड़े परिश्रम से कार्यान्वित किया, और वे १५७१ ई० तक कही पूर्ण रूप से लागू किए जा सके। १५६६ सभी परगनो की जीती जाने वाली भूमि उसकी उपज और वसूल की जानेवाली मालगुजारी आदि सूचनाएँ मालगुजारी विभाग को प्राप्त हो गई थी। इस कारण शहावुद्दीन अहमद खाँ को मालगुजारी निश्चित करने की प्रथा को समाप्त करने मे आसानी हुई, यह प्रथा मुजफ्फर खाँ ने चलाई थी। शहावुद्दीन खाँ ने इसकी जगह एक नई व्यवस्था स्थापित कर दी। मालगुजारी विभाग मे हर परगने में खेती योग्य भूमि के विवरण और मालगुजारी आकड़ो से राज्य की माँग निश्चित की जाती थी।

इन सुधारों से जागारो की भूमि सालाना में परिवर्तित हो गई। इस प्रकार का प्रथम परिवर्तन अगस्त सितवर १५७४ ई० मे मुनीम खाँ की पहली सूवेदारी मे हुआ जिसमे जौनपुर, वाराणसी, चुनार नदी तक का प्रदेश समिलित था।[2]

इसके वाद दूसरा सुधार यह किया गया कि राजस्व की दृष्टि से खालसा-भू-भाग को १८२ क्षेत्रो मे विभाजिन किया गया। ये क्षेत्र इस प्रकार से विभाजित किए गए कि प्रत्येक क्षेत्र के भूमि कर से प्राप्त आय एक करोड दाम या ढाई लाख रुपए हो। प्रत्येक क्षेत्र को करोडी नामक

---

१ अकवरनामा, २, पृ० २७०, आईने, १, पृ० ३४७, आईने, २, पृ० ६४, कुरैशी, पृ० १०८, इरफान हवीब, पृ० २०३-४, मोरलैंड, पृ० २०३।

२ तवकात-ए-अकवरी, २, पृ० २९६।
मासिर-ए-रहीमी, १, पृ० ८२४-२५।
तारीख-ए-अकवरशाही, पृ० ३११।

राजस्व के अधिकारी के अधीन कर दिया गया। यह अपने क्षेत्र के गांवों मे भूमि की पैमाइश करवाता था। सिर्फ उस भूमि की पैमाइश करवाता था जो कृषि योग्य थी लेकिन उसपर खेती नही होती थी। ऐसी भूमि पर कृषि करने के लिये वह कृषको को प्रोत्साहित करता था और धीरे धीरे प्रायः तीन वर्ष मे उससे भी भूमि कर वसूल करने लगता था। वह अपने क्षेत्र के कृषको से भूमि कर वसूल कर राजकोष में जमा करता था तथा अपने क्षेत्र की आय का विवरण तैयार करता था। उसे यह आदेश था कि वह कृषको के हितो मे वृद्धि करे और कृषि क्षेत्र को बढ़ाने का प्रयत्न करें।[1]

चौथा प्रयोग

अकबर अभी तक प्रचलित मालगुजारी की किन्ही भी व्यवस्थाओ से संतुष्ट न था और वह बराबर इस बारे मे सोचता रहता था कि मालगुजारी व्यवस्था में और सुधार किया जाय, वह किसानो के लिये अधिक हितकर और राज्य के लिये संतोष एवं सुविधाजनक बन जाय। इसी कारण अकबर ने सन् १५७३-७४ मे एक चौथा प्रयोग किया। इस प्रयोग मे तीन बातें थी।[2]

(१) खालसा प्रदेश का विस्तार।

(२) जागीरी प्रदेश मे आनुपातिक रूप से कमी।

(३) भूमि की राज स्वीकृति पैमाने या गज पैमाइश कर उसकी वास्तविक उपज निश्चित करना और उसके आधार पर मालगुजारी तय करना।

खालसा प्रदेश के विस्तार के लिये सर्वप्रथम अगस्त सितंबर १५७४ ई० में कदम उठाए गए, जो जौनपुर, बनारस, चुनार तथा कर्मनासा नदी के तट तक के प्रदेश को सबसे पहले राज्य के अंतर्गत लाने का प्रयास

---

१. अकबरनामा, २, पृ० ११७-१८।
   तारीख-ए-अकबरशाही, पृ० ३१७।
   कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, ४, पृ० १०९-१०।
२. स्मिथ, पृ० १६६-६७।

किया गया।[1] इसके पश्चात् एक के बाद एक सूबे खालसा में शामिल होते गए और १५७५ तक अधिकाश प्रदेशो को खालसा मे परिवर्तित कर दिया गया।[2] अब से जागीरदारी व्यवस्था का शासन और मालगुजारी की वसूली भी जागीरदारो अथवा उनके प्रतिनिधियो के हाथ से निकल गई और केंद्रीय सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारियो के हाथो मे आ गई।

अकबर ने लगभग इसी समय भूमि की पैमाइश तथा अन्य पैमाइश संबंधी कार्यो के लिये सिकंदर लोदी के गज को सरकारी पैमाने की इकाई मान लिया। लेकिन जरीब मे सुधार किया क्योंकि जिन रस्सियो से अभी तक नपाई की जाती थी वह मौसम के कारण घट बढ जाती थी। बाँसों के डडे के पैमाने प्रचलित किए। ये लोहे की कड़ी की कडो से एक दूसरे से फँसाए जाते थे। अब जमीन को बीघों मे नापा जाने लगा। पहले की तरह बीघा ६० गज लंबा और ६० गज चौडा होता था। इसके पहिले मुख्य चार अधिकारी थे—शहबाज खां, आसफ खा द्वितीय, राय पुरुषोत्तम और राय रामदास। भूमि के पैमाइश के बाद उपज की निश्चित मालगुजारी होती थी।[3]

यह राज्य कर स्थायी कर दिया गया और वार्षिक उपज तथा भाव के कारण साधारणत: इसमे परिवर्तन करने का प्रयत्न ही नही रहा। इस व्यवस्था ने समान रूप से कृषको और जमीदारो की शिकायतो को दूर कर दिया। शिहाब खाँ जब तक प्रात का शासन किया था टोडरमल की व्यव-स्थापनाओ मे सुधार करता रहा।[4]

भूमि का वर्गीकरण

मालगुजारी निर्धारित करने के लिये भूमि का वर्गीकरण, पोलज, परती, चाचर और बजर मे कर दिया था।[5] यह वर्गीकरण भूमि के उपजाऊपन

---

१. स्मिथ, पृ० १७६। २. वही, पृ० १७७-७८।

३. आरफ कधारी, पृ० ३१७, अकबरनामा, ३, पृ० ११७-१८, तबाकत, २, पृ० ३००-३०१, मुन्तखब, २, पृ० १८६, स्मिथ, पृ० १७८-७९।

४. बाम्बे गजेटियर (१८९६), स० १, भाग १, पृ० २२१-४, २६५-६, बेली, गुजरात, पृ० १०-१३।

५. आईन, २, पृ० ५८-६२।

अथवा उसकी मिट्टी की किस्म पर आधारित न था। पोलज वह भूमि थी, जिसे हर साल जोता जाता था और जिसे कभी अनजुती नही छोडा जाता था। परती को शक्ति प्रदान करने के लिये कुछ समय तक विना जुती ही पड़ी रहने दिया जाता था। चाचर तीन-तीन और चार-चार साल तक अनजुती पड़ी रहती थी और वंजर वह भूमि थी जो पाँच साल से अधिक समय तक नही जोती जाती थी।[3]

पोलज परती को तीन किस्मो अच्छी, मध्यम और खराव मे विभाजित कर दिया गया था।[4] इन तीन किस्मो की प्रति वीघा औसत उपज को पोलज अथवा परती के प्रति वीघा की सामान्य उपज मान लिया जाता था। पोलज और परती मे विशेष फर्क न था और परती पर खेती की जाने पर उससे पोलज की दर से ही मालगुजारी वसूल की जाती थी। चाचर और वजर भूमि जोते जाने पर पाँचवे वर्ष तक लगान मे क्रमशः वृद्धि होती थी, जब उनका स्तर वही हो जाता था जो पोलज का होता था।[5] यह मालगुजारी उपज का तीसरा भाग होती थी।

दससाला वन्दोवस्त

राजस्व मंत्रालय ने १५७६ ई० तक खालसा प्रदेश की उपज और उसकी मालगुजारी के सही-सही आँकड़े प्राप्त कर लिए थे। टोडरमल के नवीन वंदोवस्त का अवुल फजल ने निम्न प्रकार से वर्णन किया है—'जव सम्राट् की दूरदर्शितापूर्ण प्रवध द्वारा साम्राज्य के विस्तार मे वृद्धि हो गई तो प्रति वर्ष के प्रचलित मूल्यो का पता लगाना कठिन हो गया और विलंव के कारण वहुत असुविधा उत्पन्न हो गई। एक ओर कृपको ने अत्यधिक आह-रणो की शिकायत की और दूसरी ओर नियत भूमि पर वकाया लगान के कारण असंतुष्ट हो गया।[6] फिर जिन लोगो को मालगुजारी वसूली का काम सौंपा जाता था वे भी सम्राट् द्वारा मूल्यो की स्वीकृति देर से आने के कारण हर साल जो वकाया रकम रह जाती थी उसको लेकर चिंतित रहा

---

१. वही, १, पृ० २९७।

२. रेवेन्यू रिसोसेज आफ दि मुगल एम्पायर, पृ० १५।

३. स्मिथ, पृ० ४०१।

४. आईन, १, पृ० ३९७।

रहा करते थे। इन सभी कठिनाइयो को दूर करने के लिये अकबर ने १५८० ई० मे दससाला बंदोवस्त लागू किया।[1]

यह आइन-जमा-ए-दहसाला अथवा आईने दहसाला आदि नामों से प्रसिद्ध है। अकबर ने पन्द्रहवे वर्ष (१५७१) से २० वर्ष (१५८१) तक के दोनो सालो को मिल कर कुल वर्षो की मालगुजारी को छोडकर उसमे दस का भाग देकर औसत निकाल लिया और इसी औसत को राज्य की सालाना मालगुजारी निश्चित कर दिया।[2] अबुल फजल ने लिखा है कि 'इस नवीन कार्य का सार यह था कि हर परगने पिछली 'दस साल (हाले दहसाला) की उपज और उपज की कीमतो की स्थिति की जानकारी प्राप्त कर ली गई और दसवाँ भाग वार्षिक मालगुजारी के रूप मे निश्चित कर दिया गया।[3] यह माँग हर परगने की पिछली दहसाल की औसत उपज और वहाँ प्रचलित पिछले दस सालो की वस्तुओ की औसत कीमतो के आधार पर निश्चित की गई थी। दूसरे शब्दों मे यह कहा जा सकता है कि 'गत दस वर्ष' की औसत उपज को उन्ही दस वर्षो के औसत मूल्यो के हिसाब से नकदी मे बदल लिया गया था।[4] इस समय तक राजस्व मंत्रालय विभिन्न प्रकार की जोती जानेवाली भूमि, वास्तविक उपज और १५७६ से १५८० ई० तक की कीमतों की काफी पूर्ण और सही जानकारी प्राप्त कर चुका था। लेकिन १५७१-१५७५ ई० सफी प्रथम ५ वर्षो के आँकडे आमिलो और कानूनगोओ जैसे विश्वसनीय अधिकारियो से ही प्राप्त किए गए थे। अन्य फसलों पर भी वह लागू किया गया।[5]

यह प्रबंध १५८० से ९० ई० तक दस वर्षों के लिये किया गया। जो १५८० मे निश्चित दर की गई थी वही १५९० तक चलती रही। लेकिन निश्चित ही एक स्थायी बंदोवस्त नही था। इस कारण दो दरें निर्धारित की गई थी। आईने अकबरी के अनुसार 'बिल्कुल वही नही थी जो २४ वे वर्ष मे लागू की गई थी, बल्कि वह थी जो ४०वे साल में अथवा उसके

१. आईन, २, पृ० ७२-७५।
२. वही, १, पृ० ३४८। ३. अकबरनामा, ३, पृ० २८२।
४. मोरलैंड, पृ० २०७-८।
५. आईन, १, पृ० ३४८, जैरेट का आईने दहसाला का अनु० आईन, २, पृ० ९४-९५।

आस पास प्रचलित थी।[१] डा० कुरैशी ने लिखा है[२] कि 'समय समय पर इसमे परिवर्तन होता गया'।

इस बंदोबस्त को किसानों के प्रति लाभप्रद बनाने के लिये कई परगनों को मिलाकर एक एक मालगुजारी क्षेत्र के अंतर्गत रख दिया गया था। इन क्षेत्रो की फसलो की उपज प्रायः एक सी रहती थी। प्रत्येक ऐसे गुजारी क्षेत्र के लिये अलग अ ग राज्य की मालगुजारी के दस्तूर थे जिन्हे उस क्षेत्र के पिछले १० साल की औसत उपज और औसत कीमतो पर निश्चित किया जाता था।[३] इन्हे भी दस्तूर कहा जाता था। कुछ प्रात अलग अलग अपना महत्व रखते थे फिर भी उनकी औसत करीब करीब समान थी जैसे मोरलैंड ने लिखा है कि 'इलाहाबाद के सूबे मे १६ दस्तूर और १४४ परगने थे जबकि अवध के सूबे में १० दस्तूर और १३३ परगने थे लेकिन उपज के लक्ष्य से बहुत कुछ मिलते जुलते थे।[४]

आमिलों के लिये नये नियम

दससाला बदोबस्त लागू होने के पश्चात् मालगुजारी इकट्ठी करने वालो की देखरेख तथा किसानो की देखरेख आदि के लिये टोडरमल ने प्रधानमत्री बनते ही यह नियम बनाया कि किसानो से लगान से ज्यादा वसूल करने पर उन्हे जुर्माना देना होगा तथा उनके वेतन से वसूल किया जायेगा। किसानों से जो ज्यादा लिया गया होता वह उनके खाते मे डाल दिया जायेगा। हर आमिल के पास अब दो नही पहले की तरह एक मुशी होता था क्योकि दो मुशी रहने पर हिसाब किताब ठीक ठीक नही रह पाता था। आमिलो को हर मौसम की फसलों का व्यौरा रखना पड़ता था, जिससे छूट भी दी जा सके।[५] मालगुजारी इकट्ठी करने मे गाँव के पटवारियो की मदद लेनी पडती थी। जो विवरण दरबार को भेजना पडता था उसपर आमिलो के साथ साथ पटवारी का भी हस्ताक्षर होता था। इस कारण मालगुजारी वसूल करने वालो पर भी अकुश लग गया।[६]

---

१. हरफान, पृ० २१०। २. डा० कुरैशी, पृ० १०९।
३. सरकार, मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृ० ८७-८९।
४. अकबरनामा, ३, पृ० ३८१-८३।
५. आईन, २, पृ० ९५-९६। ६. मोरलैंड, पृ० ८८।

गज-ए-इलाही

१५८५ ई० मे यह आदेश जारी किया गया कि पूरे साम्राज्य में न भूमि की पैमाइश के लिये बल्कि मव पैमाइशों के लिये गज-ए-इलाही का प्रयोग किया जाना चाहिए। यह गज लंबाई मे लगभग ३३ इंच था।[1] इससे एक बीघा का क्षेत्रफल लगभग १०५ प्रतिशत बढ़ गया। इसके कारण पूरे साम्राज्य में रवी तथा खरीफ दोनो फसलों की दरो मे अंतर करना पड़ा।

अंतिम सुधार

१५८२ ई० मे सारे खालसा प्रदेश को चार मालगुजारी के प्रदेश में विभाजित कर दिया गया और प्रत्येक एक एक योग्य राजस्व अधिकारी के अंतर्गत रख दिया गया। वे अधिकारी ये थे—ख्वाजा हामसुद्दीन, ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद, रामपतिपुर दास तथा राय रामदास। वे लोग मालगुजारी मत्री कुलीज खाँ के अतर्गत कार्य करते थे।[2]

अगस्त १५९५ ई० मे हर सूबे मे एक अलग दीवान नियुक्त किया गया। वह सूबेदार से लगभग स्वतन्त्र होता था और सीधे राजस्व मंत्री के अतर्गत कार्य करता था।[3] राजस्व के मामले मे अंतिम सुधार वह था कि राजस्व अधिकारियो और दीवानो को शहजादा सलीम के अधीन कर दिया गया और १६०५ मे अधिकारियो के मनसबो के आदेशो पर उसकी मुहर लगाई जाने लगी थी।[4]

मालगुजारी व्यवस्था का अंतिम स्वरूप

पहले सब जोती जाने वाली भूमि और कृषि योग्य अनजुती भूमि को भी लगभग ३३ इंच लबे गज-ए-इलाही नामक निश्चित पैमाने से नाप लिया जाता था।[5] फिर चार किस्मो मे विभाजित कर दिया जाता था। पोलज, परती, चाचर और बजर तथा रवी और खरीफ की विभिन्न प्रकार की फसलो के लिये दरे नकदी मे और एक सी मालगुजारी के साम्राज्य के एक से प्रदेशो के लिये अलग अलग दस्तूरो की दरे भी नकदी मे निश्चित कर

---

१. अकबरनामा, २, पृ० ५२९। २. अकबरनामा, ३ पृ० ८३९।
३ वही, पृ० ८३९। ४. आईन, १, पृ० २६६।
५. आईन, १, पृ० २६६।

दी जाती थी। बाजार का भाव चाहे जो कुछ भी हो पर किसान को निश्चित दर से लगान देनी पडती थी। पर जुती हुई भूमि, वास्तविक उपज और कीमतो का सालाना विवरण रखे जाते थे।[१] इस कारण मे पता चलता था कि किसान को अगले साल उपज के हिसाब से कितनी लगान देनी है। किसान को एक पट्टा दे दिया जाता था जिससे उसे अपनी भूमि का हिसाब किताब मालूम हो जाता था। पट्टे के हिसाब से किसान आमिल को लगान देते थे तथा साथ ही साथ रसीद प्राप्त करते थे।[२] किसी कारण फसल नष्ट हो जाने पर सम्राट द्वारा छूट दी जाती थी। अगर भाव कम हो जाता तो लगान कम कर दी जाती थी अगर बढ जाता तो बढा दी जाती थी। क्योंकि सरकारी दरो के स्थान पर बाजार की तत्कालीन वास्तविक दर काम मे लाई जाने लगी।[३] राज्य की दर निश्चित करने के दो तरीके थे और किसान उनमे से एक चुन सकता था कनकूत या बटाई, दोनो में ही किसान और राज्य समान रूप से फायदा और नुकसान दोनों का साझीदार होता था। इस कारण लगान मे छूट या उसमे वृद्धि का कोई सवाल ही नही उठता था।[४]

कनकूत के अर्थ के किसी खेत की अनुमानित उपज। मालगुजारी का अधिकारी गाँव के मुखिया और कुछ अन्य जानकार लोगो को लेकर खेत का चक्कर लगाता था और उनमे से प्रत्येक अपना अपना अनुमान लगाते थे। इन्हे छोड़ कर औसत निकाला जाता था और इस औसत का एक तिहाई राज्य की माँग निश्चित कर दी जाती थी।[५] बटाई या गल्ला बख्शी या माओली तीन प्रकार की होती थी। पहली राशि बटाई मे फसल काट कर जब भूसा और दाना अलग कर लिया जाता था तब दोनो पक्षों के सामने बाँट दिया जाता था। दूसरी को खेत की बटाई कहते थे, इसमें फसल बोते ही खेत को बाँट लिया जाता था। तीसरी बँटाई को काट बँटाई कहते थे, इसमे कटी फसल को लाँको के ढेर लगा दिए जाते थे। फिर इन

१. मोरलैंड, ११८-२२, श्रीराम शर्मा ७६-८२, स्मिथ, २०-२१।
२. आईन, १, पृ० ३००-३०१।
३. अकबरनामा, ३, पृ० ६०।
४. वही, पृ० ६३-६४।
५. श्रीराम शर्मा, पृ० ८५-८७।

ढेरों के तीन बराबर भाग कर एक राज्य को दे दिया जाता था। किसान को यह सुविधा दी जाती थी कि वह चाहे तो प्रचलित भावों पर राज्य के भाग को नकद रकम देकर ले सकता है।[२] इन दोनो मे से कोई तरीका अपनाने पर राज्य से सीधे संबंध किसानो के रहते थे। किसान अपनी भूमि को बेंच सकता था रेहन रख सकता था और चाहे तो उसे उपहार में भी दे सकता था।[३]

नस्क की व्यवस्था एक प्रकार की कार्य प्रणाली थी। इसे जब्त और बटाई व्यवस्था मे कभी कभी, किंतु कनकूत व्यवस्था मे सदैव ही काम मे लाया जाता था। जब जाब्ती व्यवस्था के अंतर्गत भूमि मे नस्क प्रणाली प्रयोग की जाती थी तो उस भूमि को नापा नही जाता था और पिछले विवरणों पर ही मान लिया जाता था। बटाई व्यवस्था के अंतर्गत जो भूमि होती थी उसमे नस्क को इस प्रकार लागू किया जाता था कि खेत या फसल अथवा अनाज बिना कोई बँटवारा किये पिछले दरो से राज्य का हिसाब ले लिया जाता था। अकबर उपज का कोई तखमीना न लगाकर प्रत्येक गांव से कुछ गंलो पर चावल ले लेता था। बिना जमीन का ख्याल किए ही किसानो से हल पीछे ले लिया जाता था।[१]

अबुल फजल के विवरण को आधार मानकर डा० परमात्माशरण ने लिखा है कि 'नसक प्रणाली' 'कनकूत' या 'मुकई' नामक भूमि कर वसूल करने की प्रणाली से पृथक नहीं थी।[२] डा० सरन ने लिखा है कि, 'मुगल शासन काल में सामूहिक कर निर्धारण प्रणाली का अस्तित्व ही नही था'। डा० हसन के मतानुसार भूमि कर की नमक प्रणाली के अंतर्गत सरकार का भाग या भूमि कर खेत मे खडी फसलो से प्राप्त उपज के अनुमान पर निश्चित कर दिया जाता था। सरकारी अधिकारियो और कृषको में परस्पर समझौते के अनुसार यह कर निश्चित कर लिया जाता था।[3] डा० सरन के मत और विश्वास से प्रो० शर्मा सहमत नही है। अलीगढ से

---

२ आईन २, पृ० ४७। ३. मोरलैंड, पृ० १२५।

१. अकबरनामा, २, पृ० ३३३, भाग ३, पृ० ३८१-८२, ५४८, आईन, १, पृ० २८५, ८६, ८७, ३८९, ४८५, ४८७, हरफान हबीब, पृ० २१५-१९।

२. परमात्माशरण, पृ० २९०। ३. डा० सरन, पृ० ७१।

प्राप्त एक 'दस्तूर-उल-अमल' को प्रमाण मानकर उन्होने लिखा है कि 'नसक प्रणाली के अंतर्गत भूमि कर को निश्चित करने के समय न तो खेत मे खडी फसल की व्यवस्था का विचार किया जाता था और न ही कृषि योग्य भूमि के भेद का, वल्कि इसके विपरीत, पिछले दस से बारह वर्ष तक के भूमि कर के औसत के आधार पर नवीन भूमि कर निश्चित कर लिया जाता था ।[1] अतः अनुमान के हिसाब से यह कहा जा सकता है कि कृषकों से वसूल किया जाता था ।

मांग की दर

अबुल फजल ने लिखा है कि अकबर शेरशाह का अनुशरण कर फसल का एक तिहाई तज्य कर के रूप मे लेता था ।[2] जाव्ती व्यवस्था के के अंतर्गत वही व्यवस्था प्रचलित थी । वैसे बटाई या कनकूत व्यवस्था मे यह दर लागू थी या नही । अबुल फजल ने जहाँ कही भी कुछ स्थितियों के कारण इस सामान्य तिहाई की दर से अलग कोई दरे लागू की जाती थी, वहाँ का उल्लेख विशेष सावधानी पूर्वक किया है। जैसे सम्राट् चावल की दर काश्मीर मे आधार कर देता था ।[3] जबकि अजमेर के कुछ भागों मे फसल का केवल सातवाँ या आठवाँ भाग ही कर के रूप मे वसूल करता था ।[4] किसान को पैमाइश करने वाले एक दाम प्रति बीघा जाबिताना देना पडता था । वह एक दहसेरी नामक कर भी देता था जो कि दस सेर अनाज प्रति बीघा होता था । चाचर और बजर भूमि पर दहसेरी कर नही लगता था और साथ ही कुछ छूटे भी मिल जाती थी जैसे—कुछ जगहो मे ऐक मन अनाज चौथाई सेर और कही इससे भी अधिक अनाज उसे फसल रखने के उपलक्ष्य मे दे दिया जाता था ।[5] गाँव के कारीगरो और अन्य कार्य करनेवालो को जैसे पुजारी, बढई, लुहार, धोबी, नाई, मेहतर आदि को बटाई और कनकूत व्यवस्था मे अनाज के पूरे ढेरों मे से भुगतान कर दिया जाता था । वह प्रथम उत्तर प्रदेश मे १९५२ ई० मे जमींदारी समाप्त होने तक प्रचलित थी ।[6]

१. श्रीराम शर्मा, पृ० ९२-९३ । २. आईन, १, पृ० २९७ ।
३. वही, पृ० ५७०, आईन, २, पृ० ३६६ ।
४. लवही, १, पृ० ४०५, भाग २, पृ० २७३ ।
५. आईन, २, पृ० ७१ । ६. औल्डहम, पृ० ८३ ।

चाचर भूमि के सबंध मे अमलगुजार को आदेश दे दिया गया था कि अगर ऐसी भूमि पर खेती की जाय तो पहले वर्ष निश्चित मालगुजारी का पाँचवाँ भाग लिया जाय। दूसरे वर्ष ३।५, तीसरे और चौथे वर्ष ४।५ और पाँचवे वर्ष से पोलज भूमि की तरह पूरी की पूरी मालगुजारी वसूल की जाय।[1] इसी प्रकार जब बंजर भूमि की खेती की जाय तो निर्देश थे कि किसान से पहले साल प्रति बीघा उपज से केवल एक या दो सेर अनाज लिया जाय। दूसरे वर्ष पाँच से, तीसरे वर्ष उपज का छठवाँ भाग, चौथे साल उपज का चौथाई भाग और एक दाम प्रति बीघा, और पाँचवें साल तथा उसके बाद पूरी पूरी मालगुजारी वसूल किया जाय।[2]

अबुल फजल स्वीकार करता है कि 'सपूर्ण हिंदुस्तान में जहाँ सब कालों में इतने प्रबुद्ध सम्राट् शासन कर चुके है उत्पादन का ६वाँ भाग वसूला जाता था, तुर्की, ईरानी, और तूरानी साम्राज्यो मे पाँचवाँ, छठवाँ और दसवाँ ग्रहण किया जाता था किंतु अकबर ने तिहाई की माँग की, अर्थात् भारतीय और ईरानी अनुपात से दुगुना।[3]

मालगुजारी उगाही

हर परगने में एक कलक्टर या अमलगुजार होता था। यह किसानो से सीधी मालगुजारी इकट्ठी करता था। गाँव का मुखिया मालगुजारी वसूली सहायता करता था।[4] किसानों के यहाँ पिछली मालगुजारी बकाया रहती थी तो पहले उसे वसूल किया जाता था। किसानो से और कोई अतिरिक्त भुगतान न कराने शुकराने आदि न लिये जाने के निर्देश थे। अमल गुजार को मालगुजारी वसूली के मासिक विवरण दरबार मे भेजने पडते थे।[5]

जागीरें

मुगल प्रशासन का अतीव महत्त्वपूर्ण और असाधारण लक्षण था। इन जागीरो मे से तो कुछ ऐसी थी, जो विधान के अनुसार सैनिक विभाग मे समझनेवाले सरकारी कर्मचारियो के वेतन के बदले मे दी जाती

---

१. आईन, २, पृ० ७३। २. वही, पृ० ७५।

३. आईन, पृ० ५५, २६७, ३३६, अकबरनामा, २, पृ० ६४३, ७४९।

४. वही, २, पृ० २८५। ५. वही, पृ० २८५-८७।

थी। इसके बाद अधिन्यास व्यक्तियों और संस्थाओं को धर्मार्थ दिए गए थे। जागीर का एक निश्चित मूल्यांकन किया जाता था, जागीर को आदेश था कि उचित पावने से अथवा जागीर की सरकारी अनुमानित आय से अधिक वसूल न करें। २७वें इलाही वर्ष में राजा टोडरमल ने राजस्व अधिकारियों के निर्देश के लिये आदेशों और नियमों का परिपत्र भेजा। सम्राट खालसा भूमि के अमल गुजारों और जागीरदारों के नाम आदेश था कि नियम के अनुसार मालगुजारी वसूल करें।[१] यदि किसानों से ज्यादा वसूल किए तो जुर्माना किया जायेगा और फरियादी को रुपया वापस दिलाया जायगा।[२] जब करोड़ियों की नियुक्ति १७वें वर्ष हुई तो जागीरदारों को भी उनकी जागीर में करोडियों की नियुक्ति का आदेश दिया गया।[३] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि खालसा और जागीरें दोनों भूमियों का कर निर्धारण सरकारी नियमों से होता था। जागीरदार अपनी जागीर में अपने कर्मचारियों से वसूली का कार्य करवाता था।[४]

सुधार

राजस्व पद्धति के कार्य संचालन को सफल बनाने के लिये, अकबर ने उसके प्रत्येक कल्पनीय पक्ष को पूर्णत्व प्रदान करने की चेष्टा की। यह ज्ञात होने पर कि ठेकेदारी प्रथा के अंतर्गत पैमाइश करने वालों को कम से कम २०० बीघा रबी और १५० बीघा खरीफ में नापने पर ५८ दाम मिलते हैं, अतः माप संतोषजनक रीति से नहीं हो पाती, उसने मजदूरी प्रथा कायम की, जिसमे प्रति बीघा एक दाम दिया जाने लगा।[५] बहुत से नियम विरुद्ध महसूल जो स्थानीय रूप में पैदा हो गए थे, बंद कर दिए गए। वस्तुतः उसने यह निश्चित कर दिया कि हर प्रकार के मनमाने कर जैसे—जिहात, सायर जिहात तथा अतिरिक्त वसूली, वजूहात और फरुआत, जो रिवाजों से काम हो गए थे, विधान की दृष्टि में अन्यायपूर्ण थे और गलत थे बंद कर दिया।[६] ४१ उंगल का एक सर्वमान्य गज प्रचलित किया। पुराने जमाने

१. अ० ना०, ३, पृ० ३७२।

२, वही, ३; पृ० ३८१, अनुवाद ५६१।

३. तबकाते-अकबरी, इलियट, ४, पृ० ३८३।

४. वही, २, पृ० ३५८-३५६, अ० ना०, ३, ७३२।

५. आईन, १, पृ० ३०१।   ६. वही १, पृ० २६४, २, पृ० १७-१६।

के जरीव व तनाव सन की रस्सी के होते थे जो मौसम के कारण छोटे बड़े होते रहते थे, जिससे पैमाइश सही नही हो पाती थी, जिससे लोगो का नुकसान होता था। सम्राट् ने इन त्रुटियो को बाँस के वने तनाव जारी करके दूर किया, ये लोहे के छल्लो से जुड़े होते थे, और मौसम से प्रभावित नही होते थे।[१]

किसानो को हर सभव प्रोत्साहन दिया जाता था, उनमे जो जरूरतमंद और सहायता के योग्य होते थे, उन्हे तकावी दी जाती थी, जिसे छोटी छोटी किस्तो मे धीरे-धीरे वसूली किया जाता था। नये कूएँ, नही खोदी जाती थी और पुरानी की मरम्मत कराई जाती थी।[२] फसल के नुकसान हो जाने पर किसानों को मालगुजारी मे छूट दे दी जाती थी। सरकारी नीति का यह एक लक्षण ही था कि किसानो के हितो की न केवल रक्षा ही की जाय वल्कि उनमे वृद्धि भी की जाय। अमलगुजारो तथा स्थानीय कर्मचारियो को ऐसे आदेश थे कि वह किसानों के मालिक न वने, वल्कि शुभ चितक वने।[३]

अच्छे नियमो को वास्तव में कहाँ तक माना जाता था यह कहना कठिन है। पर इतना तो था कि अकवर के शासन मे वह विशेपता थी कि जैसे समयानुसार नियम वनाने मे परिश्रम किए जाते थे, वैसे ही उन्हे कार्यान्वित करने मे प्रयत्न भी किए जाते थे। अकवर अधिकारियो को विना संकोच गलती करने पर निष्पक्ष रूप से दडित करने मे वड़ी सजगता दिखाता था।[४]

कोई ऐसा साधन उपलब्ध नही है कि १६०५ ई० मे अकवर की मृत्यु के पश्चात् साम्राज्य की कुल मालगुजारी का अनुमान लगाया जा सके। सौभाग्य से अवुल फजल ने १५६५ ई० मे साम्राज्य के प्रत्येक प्रात की मालगुजारी का विवरण अपनी आईने अकवरी मे दिया है, जो कि अकवर

---

१. अकवरनामा, २, पृ० १६७।

२. जन० आफ ऐ० सो० आफ व० जि० १५ (१८४६), पृ० २१४-१५।

३. स्मिथ, पृ० ३७६-७७, मोरलैंड, पृ० १११-१३।

४. अकवरनामा, ३, पृ० ३५०-५३८।

के शासनकाल में १५६५ ई० में लिखी गई थी। १५६५ ई० मे अकबर के साम्राज्य की मालगुजारी ५१, ४८३, ००, ००६, ११२ दाम अथवा रु० १२, ८७, ०७, ५०० ६।४० थी[1]। इस कारण १५६६ ई० में इतनी कम थी तो १६०५ ई० मे और बढ़ गई होगी।

अकबर द्वारा किया गया राजस्व प्रबंध मुगलकाल तक अपरिवर्तनशील रहा।[2]

---

१. १५८० ई० मे आईने अकबरी (भाग १, पृ० ३८५) के अनुसार कुल मालगुजारी ३, ६२, ६७, ५५, २४६ दाम थी। निजामुद्दीन अहमद के अनुसार १५६३-६४ में जो राशि प्राप्त हुई थी, वह ४,४०,०६,००,००० (तबकाते अकबरी, ३, पृ० ५४६) थी। आईन, १, पृ० २८५, त० अ०, ३, पृ० ५४६।

२. स्मिथ, पृ० ३०६-३०७।

चतुर्थ अध्याय

उत्तर प्रदेश में विधि एवं न्याय व्यवस्था

उत्तर प्रदेश में विधि एवं न्याय व्यवस्था

कानून के स्रोत

इस्लामी न्याय-शास्त्र (फिक) मुख्य रूप से 'कुरान' और 'सुन्नाह' (पैगंबर की रीतियो और परंपराओ) से निर्मित हुआ और इसलिये मुसलमान इसे शास्वत और असंशोधनीय मानते है। इसकी तथाकथित उत्पत्ति होने पर भी यह बढते हुए मुस्लिम साम्राज्य और समाज की आवश्यकताओ के लिये काफी सिद्ध नही हुआ, इसलिए इसके दो स्रोत, किया और 'इज्मा' (सर्वसंमति) बन गए, फिर भी पहले दो सर्वस्रोत ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण माने जाते रहे और इन्हे इस्लामी न्याय-शास्त्र के 'उसूल-उल्-उसूल' (आधारो पर आधार) माना जाता है। कालांतर में कानून में इतनी उलझने पडी कि उलमा उनकी व्याख्याओ को लेकर कई मतो मे विभाजित हो गए। किंतु इस्लाम के प्रसार मे जो क्रांतिकारी परिवर्तन हुए उनमे केवल इनमें से चार मत ही आगे चल सके। इन्ही चार मतो को इस्लामिक विधि मे सर्वाधिक प्रामाणिक माना जाता है।[1]

(१) हनीफी, जिसकी स्थापना अबू हनीफा ने ६९९-७६६ ई० सन् मे की थी।

(२) मलिकी, जिसकी स्थापना मलिक इब्न अनस ने ७१५-७९५ ई० मे की थी।

(३) सफी, जिसकी स्थापना अस सफी ने ७६७-८२० ई० मे की थी।

(४) हम्बली, जिसको अहमद बीन हंबल ने ७८०-८५५ ई० मे प्रतिपादित किया था।

हदीस के अनुसार, इस आधार पर ली हुई सामग्री का श्रेय पैगंबर और उनके महान् सहयोगियों को दिया जाता है और यही इलहाम (ईश्वरोक्ति) का अंत माना जाता है।[2]

---

१. एल० पी० आर्गनाइज्ड, मोहम्मडन थियुयरी आफ फाइनेंस, पृ० १३३; डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, मीडिवल इंडियन कल्चर, पृ० ३-४।

२. लामेन्स, विली फर्स्ट एंड इंस्टीच्यूशन आफ इस्लाम, पृ० ११।

इस विधि के स्रोत जो कि दैवी ज्ञान में प्रकट हुए थे, व्यवस्थापन विधि ज्ञान मे नही, भारत के बाहर के थे। अरब और मिस्र के न्यायशास्त्रियो ने केवल 'कुरान' और 'हदीस' के तात्पर्य स्पष्ट करने का दावा किया था। उन्होने किसी भी ऐसी बात पर कोई नवीन सिद्धात प्रतिपादित नही किया जिसपर कि कुरान या पैगवर की परम्परागत उक्तियाँ मौन हो।[1]

इस्लामी विधि की उत्पत्ति और उसकी पूर्व की आख्याओं के कारण कोई भी भारतीय न्यायाधीश ऐसा फैसला नही दे सकता जिसे कि इतना प्रामाणिक समझा जाय कि वह कोई कानूनी सिद्धान्त स्थापित करे, इस्लाम की किसी अस्पष्टता को स्पष्ट करे अथवा किसी कुरानी कानून के स्पष्ट मंतव्य को किसी ऐसे मामले के संदर्भ मे पूर्ण करे, जिसके बारे मे उसमे विशेष रूप से कुछ नही कहा गया हो।[2] परतु पूरे मध्य युग में भारतीय न्यायाधीशो (काजियो) को अरब और मिस्र के न्यायशास्त्रियो द्वारा सकलित की गई इस्लामी विधि संहिताओ, प्रस्तुत किए गए उदाहरणो और निर्णयो पर ही निर्भर रहना पडता है।[3]

उत्तरी भारत मे जहाँ कि सुन्नी मुसलमानों का प्रभुत्व पूरे मध्य काल मे रहा, हनीफी कानून ही प्रचलित रहे और अभी भी इस देश के अधिकतर मुसलमान इस्लामी न्यायशास्त्र की हनीफी अवस्था ही स्वीकार करते है।[4]

मुस्लिम कानून और गैर मुस्लिम

मुस्लिम न्याय शास्त्र के चारो आख्याकार इसपर एकमत है कि एक मुस्लिम राज्य मे गैर मुसलमानों को कोई स्थान नही है, उन्हे मुसलमानों जैसे अधिकारो का उपयोग नही करने दिया जा सकता, क्योकि केवल मुसलमानो को ही ऐसे राज्य का नागरिक माना जाता था। गैर मुसलमानो के लिये और विशेष रूप से हिंदुओ के लिये तो एक ही कानून था इस्लाम अथवा मृत्यु। इसके सिवाय केवल हनीफी मत के अनुसार उन्हे जिम्मियों की तरह रहने की अनुमति दी जा सकती थी। जिम्मी वे लोग होते थे,

---

१. सरकार, मुगल ऐडमिनिस्ट्रेशन, पृ० १००।
२. अरनाइड्स, पृ० १३४। ३. लामेस, पृ० १२-१३।
४. सरकार, मुगल-एडमिनिस्ट्रेशन, पृ० १००-१०१।

जिन्हे एक समझौते के अंतर्गत द्वितीय श्रेणी का नागरिक मानकर उनपर कुछ अयोग्यताएँ लाद दी जाती थी। उन्हें उनके जीवन की सुरक्षा का आश्वासन दे दिया जाता था और अपने धर्म को अनुत्तेजक रूप से पालन करने की अनुमति दे दी जाती थी।[1]

लेकिन वे न तो अपने धर्म का खुलकर प्रचार कर सकते थे और न किसी को अपने धर्म मे दीक्षित ही कर सकते थे। उन पर कुछ सामाजिक कानूनी और राजनीतिक अयोग्यताएँ भी लगा दी जाती थी। जैसे, वे अच्छे वस्त्र धारण नही कर सकते थे, घोडे पर नही बैठ सकते थे और न अस्त्र-शस्त्र धारण कर सकते थे। उन्हे मुसलमानों से बहुत ही संमानपूर्ण व्यवहार करना पडता था। इस प्रकार अदालतो में गवाही देने, फौजदारी कानून के अतर्गत् संरक्षण और विवाहो को लेकर उनपर निश्चित बंदिशें लगी हुई थी।[2] उदाहरण के लिये काजी की अदालत में उनकी गवाही को वैध नही माना जाता था। उन्ह नये मंदिर का निर्माण करने या पुराने मंदिरों की मरम्मत कराने की अनुमति नही थी।[3] फिर उन्हे घृणित जजिया नामक कर भी देना पडता था जो कि उनकी निम्न स्थिति का परिचायक था।[4]

मुस्लिम कानून व्यवस्था की जरूरत इसलिये पड़ी कि सत्ता को सुदृढ तथा बढाने के लिये और सत्ता की खिलाफत करने वालो को दबाने के लिये, क्योकि यह विदेशी तथा दूसरे के ऊपर हुकूमत करना कठिन कार्य होता है। यह इस्लामिक कानून का मुख्य सचालन कुरान से होता था। यह कुरान का नियम केवल विदेशियो द्वारा नही आया बल्कि कुरान के नियमो को इन्होने अपनी तरफ से बढ़ाया अर्थात् उसके खिलाफ ही नियमो को लागू किया, न कि परिवर्तन किया।[5]

---

१. सरकार, औरंगजेब, पृ० ३५१-५५। २. सरकार, पृ० ३५५-५७।
३. फतहाते फिरोजशाही (फारसी प्रति, अलीगढ़ १९५४) पृ० ९।
४. जर्नल आफ इंडियन हिस्ट्री, जिल्द ४१, भाग १, दिसवर, १९६३।
५. वाहीद हसन, ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ जस्टिस ड्यूरिग दि मुसल्मि रूल पृ० १७९।

इन लोगो ने जितने प्रकार के नियमो को दर्शाया है, उसका केवल एक मात्र उद्देश्य था कि एक मुसलमान दूसरे की इज्जत करे तथा एक दूसरे के लिये मर मिटे और विदेशियों पर शासन करने के लिये एक दूसरे का सहयोग करे। इस प्रकार का कोई नियम कागज मे नही था।[१] मुसलमानो ने इस प्रकार का नियम इसलिये बनाया था कि लोग डरे, तथा समझे कि इस्लामिक कानून ही सब कुछ है और उसके फैसले को पडित तथा हिंदू वकील प्राथमिकता दे।[२]

इस प्रकार के सिद्धात की सहायता फतवा-ए-आलमगिरि में लिखा गया है, सभी मुसलमानो के कानून दो रूप मे—एक धार्मिक मामले के लिये तथा दूसरा सत्ता को बनाए रखने और प्राप्त करने के लिये। धार्मिक कानून को सभी मुसलमानो ने प्रयोग के रूप मे कार्यान्वित किया।[३]

सभी सम्राटों के कानून का महत्व इसलिये था कि इसके बिना साम्राज्य का कोई भी कार्य ठीक से नही हो सकता था क्योंकि तरह तरह के उपद्रव खड़े हो जाते थे। यहाँ तक कि इसके बिना सत्ता नही रह सकती थी, क्योकि इसी के द्वारा दड पाने के डर से सब लोग डरते थे और राज्य तथा प्रजा का इसी के ही द्वारा सबध भी था। इसके सिवाय राज्य का एक भी कार्य करना संभव नही था।[४]

इस्लामी राज्यों मे कानून की रक्षा खलीफा के द्वारा हुई क्योंकि वह धर्म का सब कुछ होता था। इसकी मान्यता के बिना कोई भी राजा वास्तविक राजा नही माना जाता था और न प्रजा मे ही इतनी इज्जत थी। राजा को इससे मान्यता लेनी पडती थी।[५]

इस्लामी विधि शास्त्र का सिद्धात किसी भी मुस्लिमेत्तर व्यक्ति को राज्य का नागरिक स्वीकार नही करता है। उसकी दृष्टि मे राज्य इस्लाम

---

१. ई० जी० मैकेलगन, दि जेसुएट एंड दि ग्रेट मुगल्स पृ० १४।
२. बशीर अहमद, दि एडमिनिस्ट्रेशन आफ जस्टिस इन मेडिवल इंडिया, पृ० १७४।
३. बशीर अहमद, पृ० १७८।
४. वही, पृ० १८१।
५. सरकार, पृ० ३५८।

धर्म के उद्देश्यों को पूरा करने वाला संगठन अथवा साधन-मात्र है। इसलिये उसमे किसी गैर-मुस्लिम व्यक्ति का कोई हक नही हो सकता। किंतु जब खलीफाओ के शासन का विस्तार गैर-मुस्लिम देशो मे हुआ, तो उनके संमुख मुस्लिमेत्तर प्रजा के साथ व्यवहार की समस्या उपस्थित हुई। गैर मुस्लिम जनता न तो पूर्णतया मुस्लिम बनने के लिये मजबूर की जा सकती थी, और न उसका किसी प्रकार उन्मूलन ही सभव था। फलत. विधि-वेत्ताओं ने गैर-मुस्लिम प्रजा को इस्लामी राज्य मे निवास करने के विशेपाधिकार प्रदान करने के लिये उनपर कई तरह के प्रतिबंध और अयोग्यताएँ लागू की तथा इसके ऊपर से एक प्रकार का जुरमाना लगाया, जो मुस्लिमेत्तर लोगो को मुस्लिम राज्य मे रहने की कीमत के रूप मे देना था।[1] इसी कीमत का नाम जिजियाह था।[2]

इस्लामी राज्यो में मुस्लिमेतर प्रजा की सिद्धाततः यही हैसियत थी। परंतु अन्य देशो की अपेक्षा भारत मे अति विशाल गैरमुस्लिम जनसमुदाय के अस्तित्व का इस्लाम के सिद्धांत के साथ समन्वय करने की समस्या शासको के समुख अधिक आई। शीघ्र ही पता चल गया कि इस विशाल जन समुदाय पर अपने धर्म के कठोर आदेशो के अनुसार शासन करना असभव था, यद्यपि वे अदम्य दुराग्रह से अपने धर्म का प्रतिपादन व प्रचार करते रहे।[3]

दिल्ली सुल्तानों की विवशता

मुस्लिम कानून का कार्यान्वयन

दिल्ली के सुल्तान (१२०६-१५२५) बहुत चाहने पर भी हिंदुओ पर पूरे पूरे इस्लामी कानून लागू करने मे स्वय को असमर्थ पाते रहे। जैसे— उनके अमीरो उलेमाओ ने हिंदुओ पर इस्लामी कानून लागू करने पर जब-जब जोर दिया तब-तब वे बुद्धिमत्ता पूर्वक समय माग कर इसे टालते रहे।[4]

---

१. वरनी, पृ० ७६-७७।   २. परमात्माशरण, पृ० ३३०।

३. वही, पृ० ३३०-३१।

४. सनाये मुहम्मदी, मेडिवल इंडिया क्वार्टर्ली, जिल्द १, भाग १ पृ० १००-१०५।
   के० ए० निजामी, रिलिजन एड पोलिटिक्स इन इंडिया इन दी थर्टिंथ सेंचुरी, पृ० ३१५-१६।

पूरे सल्तनत काल में हिंदुओ को इस्लामी उसूलो के अनुसार द्वितीय श्रेणी का नागरिक समझा जाता था। बलवन वैसे यह मानता था कि एक मुस्लिम शासक का कर्तव्य यह है कि उसकी जानकारी मे या उसकी स्वीकृति से किसी भी काफिर को किसी भी मुसलमान से श्रेष्ठता नही मिलनी चाहिए, उसे खुले और निडर रूप से शिर्क और कुफ्र (मूर्तिपूजा) का पालन नहीं करने देना चाहिए। पर वह भी इस कठिन काम को नही कर सका।[1] जलालुद्दीन खिलजी (१२९०-९५ ई०) ने भी इस पर अपनी शर्म व्यक्त की थी कि वह हिंदुओं के बारे मे पुराने निर्देशो का पालन नही कर सका और न इस देश मे शुद्ध इस्लामी कानून ही लागू कर सका।[2]

सल्तनत काल के अन्य शासक भी इस प्रकार की असहायता अनुभव करते रहे। हिंदुओं का देश मे बहुमत था और अधिकांश भूभाग अब भी उन्ही के अधिकार मे था। फिर उनके पास अस्त्र शस्त्र भी थे। इसलिये उन्हे पूर्ण रूप से विनष्ट करना न तो संभव ही था और न औचित्य पूर्ण ही।[3]

लेकिन जैसा कि आधुनिक लेखको का विचार है, यह मान लेना गलत होगा कि सुलतानो ने हिंदुओ को अपने विधि नियमों और जीवन प्रणाली का अनुशरण करने की छूट दे दी थी। इसके विपरीत उनमें से अधिकाश ने अपने भरसक प्रयत्न किए कि वे हिंदुओ को इस्लामी रीति रिवाजो के अनुसार रहने को विवश कर दे। उनमें से फिरोज तुगलक और सिकंदर लोदी जैसे सुलतानो ने तो इस्लामी विधि व्यवस्था को राज्य के शासन मे अपनाना अपनी नीति का मुख्य उद्देश्य ही बना लिया था और उनसे जजिया वसूल किया जाता था। मुस्लिम शरियत और कानूनो के अनुसार उन पर तरह तरह की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और कानूनी बंदिशे लगाई जाती थी। उन्हे मालगुजारी और अन्य कर मुसलमानो से ऊँची दर पर देने पड़ते थे। वे नये मदिर नही बना सकते थे और पुरानो की मरम्मत नही करा सकते थे। उनको केंद्रीय अथवा प्रांतीय स्तर पर शासन मे स्थान नही दिया जाता था। ये निर्विवाद तथ्य है। विवाद केवल इस पर हे कि विभिन्न सुलतानो के राज्यकाल मे इस्लामी सिद्धातों को

---

१. बरनी, पृ० ७०-७९। २. वही, पृ० १५१।
३. वही, पृ० १५८।

हिंदुओ पर थोपने, हिंदुओ के मदिर गिराने की नीतियो और शातिकाल में उनका बलात धर्म परिवर्तन करने पर कितना कम या अधिक जोर दिया गया। यह सोचना अवास्तविक है तथा उल्लिखित तथ्यो के विपरीत होगा कि मुस्लिम कानून केवल संहिताओ मे ही बंद रहे और उन्हे अदालतो में कार्यान्वित नही किया गया। कुछ भी हो जिम्मियो के विरुद्ध कानून हटाए नही गए, बल्कि आधुनिक शब्दो मे वे बराबर कानून सहिता में बने रहे। जबकि मुसलमानों और गैर मुसलमानो के लिये एक से कानून नही थे, अदालतो के न्यायाधीश मुसलमान थे,[1] और जबकि गैर मुसलमान काजी की अदालतों मे हिंदू गवाहो के रूप मे पेश नही हो सकते थे तब जैसा कि कुछ आधुनिक लेखको ने तुच्छ के समान वर्णन किया है। यह दावा करना बेकार है कि इस युग मे सबको कानूनी समानता प्राप्त थी और निष्पक्ष न्याय होता था।[2]

अन्य देशो की अपेक्षा भारत मे अति विशाल गैर मुस्लिम जन समुदाय के अस्तित्व का इस्लाम के सिद्धातो के साथ समन्वय करने की समस्या शासको के संमुख अधिक आई। शीघ्र ही पता चल गया कि इस विशाल जनसमुदाय पर अपने धर्म के कठोर आदेशो के अनुसार शासन करना असभव था, यद्यपि वे अदम्य दुराग्रह से अपने धर्म का प्रतिपादन व प्रचार करते रहे। सुल्तान से जब उसके भतीजे मलिक अहमद ने इस्लाम के सिद्धातों के इस उल्लघन का कारण पूछा तो उसने निराशा भरे शब्दो मे उन हिंदुओ का दमन करने मे अपनी असमर्थता स्वीकार की, जो महल के नीचे घटा-शख बजाते हुए यमुना स्नान और पूजा के लिये खुले आम जाते थे, तथा साफ कपडे पहनते और विलासमय जीवन व्यतीत करते थे।[3]

शेरशाह तथा उसके पीछे आने वाले शासकों में तो पूरी तरह परिवर्तन हो गया था। शेरशाह से पहले शासको ने तो विवश होकर मुस्लिमेतर

---

१. हुसैन, एडमिनिस्ट्रेशन आफ जस्टिस ड्यूरिंग दि मुस्लिम रूल इन इंडिया, पृ० १५, अहमद पृ० ११५, ए० रहीम, मुहम्मडन जूरिसप्रूडेंस, पृ० ५६, अमीर अली, हिस्ट्री आफ सरासेस पृ० १८८, ४२२।

२. आई० एच० कुरैशी, एडमिनस्ट्रेशन आफ सल्तनत, पृ० १६१-६३, इब्न हसन, पृ० ३०७-३०८।

३. परमात्माशरण, पृ० ३३०।

प्रजा को धार्मिक स्वतंत्रता दी थी, किंतु शेरशाह ने राजनीतिक इष्ट सिद्धि के दृष्टिकोण से पूरी धार्मिक स्वतंत्रता देने की नीति अपनाई। फलस्वरूप उसके समय से हिंदुओ के धार्मिक और सामाजिक व्यवहारों का निर्णय इस्लामी कानूनो से न होकर स्वय उनकी अपनी विधियों द्वारा होने लगा, जैसा कि ग्रेडी का कहना है 'एक बात मे मुस्लिम विजेताओ का बर्ताव यूरोप मे सामान्य रूप से प्रचलित इस धारणा के बिल्कुल प्रतिकूल था कि मुसलमान प्रशासकों का यह एक स्थिर सिद्धान्त सदैव से सतत् चला आया था कि वे न तो स्वयं ही अपने कानून का बडे कट्टर व अतिचालित तरीके मे पालन करते थे, वरन् अपनी प्रजा एवं उनके सब, जो उनके अधीन हो, उस कानून का पालन करने पर मजबूर करते थे। सब धार्मिक मामलो मे उन्हे, जो उनके शासन के वशवर्ती हुए, स्वधर्म के अनुसरण की स्वतंत्रता ही न दी गई बल्कि उनके ऐसे विचारो को भी दफना दिया गया, जिनकी मुसलमानो के लिये मान्यता न दी जाती थी।'[१]

अन्य बातों मे, विशेषकर लौकिक मामलो (खासकर फौजदारी क्षेत्राधिकार के अतर्गत) मे मुस्लिम कानून के नियमानुसार ही फैसला दिया जाता था, किंतु जिन मुकदमो मे दोनो पक्ष हिंदू होते थे, उनमे विवाद के विषय को पडितो अथवा विधिवेत्ताओ के पास निर्णय के लिये भेज दिया जाता था।[२] इस सिद्धात का समर्थन 'फतवाए आलमगीरी' से होता है, जिसके अनुसार समस्त मुस्लिम कानून दो भागो में विभक्त था—धार्मिक और लौकिक और पूर्णतया धार्मिक कानूनो का उपयोग केवल मुसलमानो के लिये होता था।[३]

काजी का न्यायालय

राजा, वजीर तथा काजी की नियुक्ति स्वयं करता था।[४] काजी को मानसिक एवं शारीरिक दृष्टि से पूरी तरह स्वस्थ होना चाहिए। उसे मुक्त नागरिक होना चाहिए, कोई दास इस पद को प्राप्त करने का अधिकारी न था। इस्लाम धर्म मे आस्था होना एक आवश्यक शर्त थी।

१. हिदाया (हैमिलटन और ग्रेडी द्वारा संपादित), पृ० १६।

२. वाहीद हुसन, पृ० १८०।

३. बेली डाइजेस्ट आफ मुहम्मडन ला, पृ० १७४।

४. अहमद, पृ० १७८।

इस्लाम धर्म मे आस्था न रखने वाला मुसलमानो के ऊपर न्यायाधीश का काम नही कर सकता था। उसे सत्यवादी, ईमानदार तथा सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक कानून का ज्ञाता होना चाहिए।[1] 'हिदाया' के अनुसार काजी मे साक्षी के गुण होने चाहिए, अर्थात् उसे स्वतंत्र बुद्धिमान, प्रौढ, मुसलमान और निष्कलंक होना चाहिए। नारियाँ भी काजी हो सकती है, किंतु विधि वेत्ताओं मे उनके अधिकार क्षेत्र के संबंध में मतभेद है, अर्थात् क्या उनके अधिकार समस्त मामलो पर है, या कुछ सीमित प्रकार के मामलो तक ही सीमित है।[2]

काजी स्वतंत्र रूप मे था, इसपर किसी का कोई अधिकार नही था, क्योकि दबाव में पड करके कार्य नही करता था। यह किसी आदमी या किसी चीज के बारे मे पढ़ करके तथा प्रयोग करके ही कानूनी निर्णय देता था।[3] यह मुस्लिम कानून के अंतर्गत स्त्री तथा पुरुष का जूरी के द्वारा सीमित मुकदमों को करता था।[4]

नियुक्ति के पश्चात्, काजी को आदेश होता था कि वह अपने पद से संबंधित समस्त अभिलेखों को अपने अधिकार मे ले ले तथा पूर्ववर्ती काजी से 'दीवान' माँग ले। इन अभिलेखो को उसे अपने अमीनो द्वारा प्राप्त करना चाहिए, और इन अमीनो को पूर्ववर्ती सेवा-निवृत्त काजी से अलग-अलग विषयो की पृथक मिसिलें—यथा संपत्ति, सनाथ, विवाह, उत्तराधिकार आदि की माँग करनी चाहिए। नये काजी को किसी न्यायिक फैसले के कारण बंद कैदियों के बारे में भी पूछ-ताछ कर लेनी चाहिए, और उनके मामलो को फिर से जाँच कर तदनुसार कार्य करना चाहिए।[5]

काजी की नियुक्ति एक तरह से सभी मुकदमों के लिये की जाती थी। इसकी सहायता के लिये दीवान की नियुक्ति की जाती थी क्योकि पदच्युत काजी तथा अमीन के कागजो की छान-बीन करना था क्योकि नया

---

१. फान क्रेमर, पृ० २८४।

२. हिदाया (हैमिलटन और ग्रेडी), पृ० ३३४।

३. ब्रिग्स, हिस्ट्री आफ दि राइज आफ दि मुहम्मडन पावर इन इंडिया, पृ०२८४-८६।

४. ई० जी० मैकेलगन, पृ० ३३४।

५. फान क्रेमर, पृ० २८६-८७।

काजी जो था, वह सभी प्रकार के मुकदमों की फिर से देखरेख करता था।[1]

काजी अपनी कोर्ट का सब कुछ होता था। वह अपने संबंधियों की मौजूदा या बीती हुई केसों को स्वीकार नहीं करता था। वह न्यायालय में बराबर का दर्जा देकर सभी मुकदमों की गवाही लेता था तथा फैसला करता था, वह न्यायालय मे पूरी तैयारी के साथ आता था।[2]

काजी को अपनी अदालत या तो मस्जिद मे या अपने घर में लगानी चाहिए। अपने संबंधियों के अतिरिक्त वह अन्य किसी से न तो उपहार ले, और न उनकी दावत या भेंट स्वीकार करे। उसे मुकदमों मे दोनों पक्षों के साथ समान सौजन्यता का व्यवहार करना चाहिए, और किसी एक के प्रति मुस्कराकर भी किसी प्रकार का पक्षपात न करना चाहिए। अदालत में जाने के पूर्व उसे अपने को शांत और निर्विकार भाव रखने योग्य बना लेना चाहिए। कार्य करते समय भी उसमे यह गुण होना आवश्यक था।[3]

काजी का न्यायालय विभाग मे राजा के बाद सबसे ज्यादा अधिकार था, राजा भी इसी के परामर्श से कोई कार्य करता था। काजी जो था, वह छोटे छोटे करों के लिये काजी की ही नियुक्ति करता था, टैक्स कलक्टर की नहीं।[4]

काजी के पद मे निम्नलिखित कर्तव्य हासिल थे—(१) मुकदमों को सुनकर निर्णय करना। (२) निर्णय को कार्यान्वित करना। (३) पागल, अवयस्क आदि ऐसे लोगों की सम्पत्ति के लिये अभिभावक (एक प्रकार का संरक्षक) नियुक्त करना, जबकि वह स्वयं उसकी देख-रेख करने मे असमर्थ हो। (४) वक्फ संपत्ति का अधीक्षण और प्रबंध करना। (५) वसीयत नामों को कार्यान्वित करना। (६) विधवाओं के पुनर्विवाह का कार्यभार लेना। (७) धार्मिक कानूनों द्वारा निर्धारित दंडों को कार्यान्वित

१. विग्स, पृ० १८५।

२. ई० जी० मैकेनगन, पृ० ३३६-३८।

३. हिदाया, पृ० ३३६-३३८. मीरुलमसेल (अ० अनु०) पृ० ५२-५५।

४. विग्स, पृ० २८४-८६।

करना। (८) सडको और मकानो का इस दृष्टि से अवीक्षण कि कोई खुली जगह अथवा गलियो की छत के आगे बढाकर अथवा अनधिकृत भवन आदि बनाकर उन्हे बदसूरत न कर दे। (९) न्यायाधिकारियो यथा शोहद, (लेख प्रमाणक), सचिवो और उन न्यायाधीशो का अवीक्षण, इन्हे वहाँ स्वयं नियुक्त अथवा पदच्युत कर सकता था। (१०) जहाँ सदका (निर्धन-कर) वसूल करने के लिये कर्मचारी नियुक्त न हो, वह इस कर की उगाही भी काजी के पल्ले पडती थी।[१]

न्यायालयों का संगठन

उत्तर प्रदेश जैसे भाग मे आगरा, लखनऊ, इटावा, कोयल (अलीगढ), जौनपुर, इलाहाबाद तथा बनारस के काजियो का न्यायालय था। इसके अतिरिक्त सरकार, परगना तथा गाँवो मे भी काजी होते थे। अदालतो के संगठन के संबध मे अनेक प्रसिद्ध विद्वानो ने ऐसी बाते कही हैं जो प्राप्य तथ्यो के बिल्कुल विपरीत हैं। इस सबध मे सबसे अधिक निश्चयात्मक प्रकारात्मक विचार सर यदुनाथ सरकार के है, 'विधि और न्याय विभाग का प्रधान दोष यह था कि उसकी कोई निश्चित प्रणाली न थी, अदालतों का नियमानुसार बड़ी से छोटी अदालतो तक क्रमागत् सगठन न था और न न्याय क्षेत्रो के अनुसार अदालतो का अनुपातत. विभाजन ही था।'[२]

किंतु विचित्रता तो यह है कि उक्त विचारो के साथ ही आपने यह भी लिखा है कि 'प्रत्येक प्रात की राजधानी मे अपना एक काजी होता था, जो साम्राज्य के मुख्य काजी (काजी-उल-कुजात) द्वारा नियुक्त होता था, परंतु उसके मातहत कोई छोटी अथवा प्राथमिक अदालत न थी। अत. अपील के लिये प्रातीय अदालते भी न थी। हर बड़े नगर तथा फौजदार के मुख्यालय मे एक काजी नियुक्त होता था। छोटे नगर तथा गाँव मे अपना काजी होता था, किंतु उन स्थानो मे रहने वाला कोई भी वादी अपने मुकदमे को पास के जिले के काजी के पास, जिसके न्याय क्षेत्र मे वह निवास करता हो, ले जा सकता था।'[३] फिर सरकार ने

---

१. फान क्रेमर, पृ० २८४-२८६।

२. सरकार, मुगल ऐडमिनिस्ट्रेशन (दूसरा सं०), पृ० १०७।

३. सरकार, पृ० १०८।

कहा है कि—'प्रत्येक नगर, यहाँ तक कि बड़े बड़े गाँवों मे भी स्थानीय काजी होते थे, जिनकी नियुक्ति प्रधान काजी करता था।'[१]

शाही दरबार की न्यायव्यवस्था मे द्वितीय स्थान प्रधान काजी का होता था। वही मुख्य सद्र अथवा धार्मिक विभाग का प्रधान भी होता था। वह मुस्लिम धर्मशास्त्र और विधिशास्त्र का विद्वान् होता था और स्वभाव से गंभीर, चरित्रवान् और ईमानदार व्यक्ति होता था। सम्राट् उसकी नियुक्ति पूरे जीवन या सीमित काल के लिये करता था। वह उसे जब चाहे तब पदच्युत भी कर सकता था, लेकिन उसे प्रधान काजी के न्याय सबधी कार्यो में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं था।[२]

प्रधान काजी के काम यह थे कि वह मुसलमानों के धार्मिक और निजी कानूनो से सबधित मामलो को निपटाता था। दूसरे निर्णयो को कार्यान्वित करता था। तीसरे कैदखानो का निरीक्षण, वहाँ कैदियो की दशा देखना था और जो रिहा करने लायक होते थे उन्हे रिहा करता था। चौथे प्रांतीय, जिले, परगने के काजियो और अन्य निम्न काजियों के पदो पर नियुक्ति के लिये योग्य व्यक्तियो की सिफारिश करता था।[३]

प्रधान काजी के कुछ अन्य कर्तव्य होते थे, जैसे—धार्मिक अनुदानों (औकाफो) की देखरेख करना, अल्पवयस्कों, अपाहिजो या अन्य ऐसे लोगों के लिये जो स्वयं अपनी संपत्ति की देख भाल करने के लिये अयोग्य हो, सरक्षक नियुक्त करना और विधवाओं के पुनर्विवाह के लिये राजीनामा आदि कागज पत्र तैयार करना।[४]

प्रधान काजी की अदालत का मुख्य काम अपीले सुनना था, लेकिन कभी कभी वह मुकदमो को प्रारंभिक चरणो में भी सीधे ही सुन लेता था, क्योंकि साम्राज्य का कोई भी व्यक्ति बिना अपनी स्थानीय अदालत मे अपना मामला पेश किए सीधे ही प्रधान काजी के सामने प्रस्तुत कर सकता था।[५]

---

१. सरकार, पृ० १०६।

२. एनसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, भाग २, पृ० ६०५।

३. वही, पृ० ६०६-६०७। ४. वही, पृ० ६०६-६०७।

५. कमेंटेरियस, पृ० २०६, जैरिफ पृ० १२।

सर्वोच्च काजी के मातहत प्रानीय काजी होते थे, और उनके मातहत 'फौजदार के मुख्यालय' मे भी काजी होते थे। प्रत्येक परगने के केंद्र तथा अन्य नगरो मे, जहाँ उनकी आवश्यकता होती थी, काजी होते थे।[1]

प्रांतीय और स्थानीय काजी

हर प्रात की राजधानी मे, हर जिले और हर परगने के केंद्रीय नगर और कस्बे मे एक एक काजी होता था। वडे वडे शहरो, नगरो और अधिक मुस्लिम आवादी वाले वडे वड़े गाँवो मे भी एक एक काजी रहता था। इनकी नियुक्ति मुख्य काजी की सिफारिश पर सम्राट् स्वय करता था और वे अपने अपने क्षेत्र मे वही कार्य करते थे जो प्रधान काजी राजधानी मे करता था। कभी कभी एक वडे नगर मे एक से अधिक काजी रख दिए जाते थे और सैनिक तथा सैनिक अधिकारियो के मामले निपटाने के लिये एक अलग काजी भी नियुक्त कर दिया जाता था। उसे काजी-ए लश्कर कहते थे। इस काजी को शाही छावनी, सेना या किसी व्यक्ति पर पूर्ण अधिकार प्राप्त नही था, क्योकि इनमे से कोई भी अगर चाहता था तो नगर के काजी की अदालत मे भी अपना मामला पेश कर सकता था।[2] ऐसे मामलों पर अगर सूबेदार या अन्य अधिकारी निर्णय भी दे देते थे तब भी सम्राट् के अंतिम आदेश प्राप्त करने के लिये उन निर्णयो को उसके पास प्रेषित कर दिया जाता था। अक्सर इन मामलो मे अपराधी को गवाहो सहित शाही दरबार मे भेज दिया जाता था।[3]

किंतु न्याय प्रशासन मे भाग लेने वाले एव प्रमुख अधिकारी दीवान था। दीवाना-आला और प्रातीय दीवान दोनो कुछ न्याय अधिकार रखते थे किंतु ऐसा मालूम होता है कि उनकी अदालत प्रारंभिक अदालत न होकर अपील होती थी।[4]

सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायिक अधिकारी (शासक के पश्चात्) प्रधान सद्र होता था, जिसके साथ प्रधान काजी का पद भी सम्मिलित

---

१. सरकार, पृ० ११०। २. मीरात, पृ० १५६।

३. सरकार, पृ० २८।

४. एडीशनल, २६, २५१, पन्ना ८० तथा मीरात (ई० आ०, ३५६७), पन्ना, १६१।

था।[1] प्रान्तीय काजियों और मीरअदलों का प्रधान होता था, और वे लोग उसके हस्ताक्षर से नियुक्त होते तथा उसकी आज्ञा के अधीन काम करते थे। फिर सर्वोच्च न्यायालय के उच्चतम अधिकारियों की सूची में अबुल फजल ने केवल वकील, बख्शी और सद्र का उल्लेख किया है। काजी-उल-कुजात का उल्लेख तो बिल्कुल नहीं है।[2]

मुफ्ती

न्याय प्रशासन में मुफ्ती के हवाले अक्सर मिलते हैं, किंतु किसी से यह नहीं जान पड़ता कि यह पद नियमित था। वह एक प्रकार से गैर सरकारी वैधानिक पद था, जिसे जनमत ने मान रखा था।[3]

जैसे शाह अब्दुन्नबी सद्र की सिफारिश पर विहानी के मत्रे-जहाँ का साम्राज्य का मुफ्ती बनाया गया था।[4] वास्तव में मुफ्ती एक प्रकार से विधि शास्त्र के गैरसरकारी विधि परामर्शी (कानूनी सलाहकार) होते थे, और उनकी कोई निश्चित संख्या न थी, कोई भी व्यक्ति, जो विद्वान् समझा जाता हो, वही मुफ्ती कहलाता था। धर्म के अंतर्गत सभी मामलों में, जिनके बारे में न्यायाधीश सही कानून से अनभिज्ञ होते थे, उसकी सहायता माँगी जाती थी। मुफ्ती का कर्तव्य प्रस्तुत मुकदमें लागू होने वाले कानून को बता देना मात्र होता था। मुफ्तियों से मुसलमानों के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन से सम्बधित तमाम प्रश्नों पर फतवा अर्थात् महान् विधि वेत्ताओं द्वारा प्रतिपादित कानून के अनुसार निर्णय या फैसला माँगा जाता था। वह फतवा गैरमुस्लिमों के लिये भी होता था, यदि वे कानून के विरुद्ध कोई कार्य करें।[5]

मुफ्ती स्पष्ट रूप में गैरसरकारी विधिपरामर्शी होते थे। दिल्ली के मुफ्ती मियाँ जमाल खाँ अपने समय के बहुत बड़े विद्वान् थे। उनके सम्बंध में कहा जाता है कि वह कभी किसी बादशाह के घर नहीं गए, वरन् नगर के संमानित अधिकारियों से ही संपर्क रखे रहे।[6] थेविनो ने भी

---

१. आईन, १, पृ० १६८।
२. वही, पृ० २३२, २, पृ० ६-१५।
३. फान क्रेमर, पृ० २८४।
४. बदायूंनी, भा० ३, पृ० १४१।
५. परमात्माशरण, पृ० ३३६।
६. बदायूंनी, भा० ३, पृ० ७७।

मुफ्ती के अस्तित्व का उल्लेख किया है, जो 'इस्लामधर्म से संबद्ध सभी बातो पर निगाह रखते थे।[1] १८वी शताब्दी के उत्तरार्ध मे, उच्च अदालतों मे शनै शनैः मुफ्तियो की उपेक्षा हुई,[2] और नीची अदालतो मे अनेक मुंशी (लिपिक), जो काजी के फैसले की नकल करते थे, सरकारी तौर पर मुफ्ती कहलाते थे।[3]

मीरअद्ल

मीरअद्ल का पद भारत की विशेषता थी। इस नाम के किसी अधिकारी का तुर्की, फारसी अथवा मिस्र के मुस्लिम खलीफाओं की न्याय-पालिका मे पता नही है। दिल्ली के सुल्तानो के समय मे भी इस अधिकारी का कोई उल्लेख नही मिलता है। इस प्रकार मीरअद्ल के पद और कर्तव्य की कल्पना केवल मुगलो की कृति थी। इस अधिकारी की वास्तविक नियुक्ति के संबध मे अबुल फजल का कहना है कि वह स्थायी पद नही था, और उसकी नियुक्ति उसी अवस्था मे होती थी, जब काजी सारे कार्य के सभालने मे असमर्थ होता था।[4] सिपहसालार, वजीर, सद्र का नाम मिलता है, पर काजी और मीरअद्ल का कही उल्लेख नही है। प्रायः शायद यह तीनो पद एक ही अधिकारी द्वारा ग्रहण किए जाते थे, जो सरकारी भाषा मे सद्र के नाम से संबोधित होता था।[5]

अबुल फजल ने केवल उन्ही महत्व के कर्मचारियो की सूची दी है, जो एक आदर्श प्रात के लिये निश्चित किए गए हो। फलत. अबुल फजल के कथन का वास्तविक स्पष्टीकरण यह जान पडता है कि वह अधिकारियो

---

१. ट्रेवेल्स, भा० ३, पृ० १९-२०।

२. विल्सन, ग्लासरी, पृ० ३४९, कमीशन आफ सीक्रेश रिपोर्ट, भा० ७, पृ० ३२१-३३२।

३. मीरात, भा० ३, पन्ना ७२२, रिपोर्ट आफ हिस्टारिकल रिकार्ड रिकार्ड कमीशन, १२, (१९२९), पृ० ८३-८४, जर्नल बिहार-उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, खड २०, भा० ३, ४, १९२४, पृ० २७५७८, 'ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ जस्टिस इन भागलपुर डिस्ट्रिक्ट।

४. परमात्माशरण, पृ० ३४१।

५. बदायूंनी, २ पृ० ६५, सरडब्लू हेग ने (बदायूनी अनु० ३, १२०-१२१)।

का एक सामान्य विवरण है, जो सिद्धांततः किसी प्रात के लिये आवश्यक थे। वाद को काजी और सद्र के पद को सामान्यत. एकही व्यक्ति के सुपुर्द किया जाता था, यद्यपि यह नही कहा जा सकता कि पहले भी इन दो पदो का एकीकरण था।[१] दिल्ली के तुर्क सुल्तानो के अधीन सगठित न्याय विभाग से भी होना था। उस विभाग का नाम था 'दीवाने-कजाए-ममालिक' अथवा 'दीवाने शरअ'[२] और काजी-उल-कुजात अथवा काजी एक ममालिक उसके अध्यक्ष होते थे, जिन्हे सरकारी तौर पर अनेक नामो यथा-सदे-जहाँ, सद्रस्सुदूर, सद्रुल–इस्लाम[३] अथवा सद्रुस्सुदूरे–जहाँ कहते थे।[४] वह साम्राज्य का मुख्य न्यायाधीश तथा महाविद्वान् और धार्मिक सज्जन होता था। साम्राज्य के समस्त उलमा (विद्वान्) उसके अधीन होते थे, और फीरोज शाह तुगलक के समय उसे पेशन देने का भी अधिकार था।[५] इस प्रकार स्पष्ट है कि पूर्ववर्ती काल मे भी काजी और सद्र के पद अलग अलग न थे, वरन् एक ही पद के दो नाम थे।

काजी-ए-अस्कर

सेना के लिये अलग काजी होते थे, जिन्हे कुछ लेखकों ने मीर अद्ल के नाम से सबोधित किया है।[६] अकबर के समय में तीन प्रमुख व्यक्तियों ने, एक के पश्चात् दूसरे ने इस पद को ग्रहण किया था। काजी तवायस १५६७ ई० तक, काजी याकूब (सन् १५६७-१५७७) और काजी जलाल (१५७७)।[७] अपने शासन के ३०वें वर्ष मे अकबर ने काजिम वेग तबरेजी को छावनी का मीर अद्ल नियुक्त किया था।[८] आटोमन (तुर्की) साम्राज्य मे भी अस्कर (सेना) के काजी होते थे।[९] पर यह पद अन्य

---

१ परमात्माशरण, पृ० ३४३।
२. सीराते-फिरोजशाही-बाँकीपुर, हस्त०, पृ० १२३।
३. मसालक-अल-अवसर, इलियट, भा० ३, पृ० ५७८।
४. वरनी, भा० १, पृ० २४७-२४८।
५. इलियट, भा० ३, पृ० ५७९, वरनी, पृ० ५८०।
६. परमात्माशरण, पृ० ३४३।
७. वदायूँनी, भा० ३ पृ० ७८-७९।
८. अ० ना० भा० ३, पृ० ४७७।
९. इनसाइक्लोपीडिया इस्लाम, भा० २, पृ० ८३८।

पदो के समान नवीन न था। शेरशाह के समय मे भी फौज के काजियों का अस्तित्व था। पदोन्नति होने पर, बंगाल का अमीन बनने से पूर्व काजी फजीलत इसी पद पर था।[1] इन नियमित अदालतो के अतिरिक्त महत्वपूर्ण एवं जटिल मुकदमो, जिनमे सरकारी कर्मचारी फंसे होते थे, पर विशेष जाँच आयोग द्वारा सुनवाई होती थी।[2]

सरकार तथा परगने के काजी

सरकार और परगना अदालतों के संबध में विद्वानों ने अपने निम्न प्रकार के विचार व्यक्त किए है :—

'इनसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम' मे मुगल प्रशासन पर प्रकाशित लेख मे आद्यांत सैनिक-सगठन और राजस्व प्रशासन पर ही विचार किया गया है, और न्यायिक प्रणाली का उल्लेख दो चार शब्दों मे ही कर दिया गया है।[3]

डा० बेनीप्रसाद ने 'हिस्ट्री आफ जहाँगीर' मे लिखा है कि 'प्रत्येक नगर तथा सामान्यत' छोटे से छोटे कस्बे मे भी काजी और मीर-अद्ल होते थे, जो मिलकर सयुक्त न्यायिक बेच (जुडिशियल बेंच) बनाते थे।'[4]

स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'अकबर दि ग्रेट' में लिखा है कि 'प्रातीय न्यायपालिका तक ही सीमित रहे, आगे न बढे, और इसको भी उन्होने इतना महत्व नही समझा कि उसके बारे मे कुछ पक्तियो से अधिक लिखा जाय। केंद्रीय न्यायपालिका पर उन्होने कुछ अधिक लिखा, पर वह भी प्रशासन की अपेक्षा शासन की विभीषिकाओ को दिखाने के उद्देश्य से ही लिखा गया है।'[5]

डा० ईश्वरीप्रसाद ने अपनी पुस्तक मुस्लिम रूल इन इंडिया' मे लिखा है कि 'काजी-ए-अस्कर को विभाग का अध्यक्ष बताया है।'[6]

परंतु इनसे भी अधिक निरर्थक कथन मिलते है। यथा—'मुस्लिम काल मे न्याय-प्रशासन काजी द्वारा होता था और न्यायपालिका का

---

१. बदायूँनी, भा० १, पृ० ३६५। २. परमात्माशरण, पृ० ३४४।
३. इनसाइक्लोपीडिया इस्लाम, भा० २, पृ० २४१-४२।
४. डा० बेनीप्रसाद, हिस्ट्री आफ जहाँगीर, पृ० ११०।
५. स्मिथ, अकबर दि ग्रेट, पृ० ३८०-८१।
६. डा० ईश्वरीप्रसाद, मुस्लिम रूल इन इंडिया, पृ० ४४२।

संगठन निम्न प्रकार से होता था। काजी मुकदमें की जाँच कर मीर-अदल के पास भेज देता था और वह फैसला सुनाता था। इनकी अपील सूबेदार के पास होती थी उसके बाद मुख्य काजी के पास। इसके बाद अंतिम अपील सम्राट् के पास होती थी। यह आज की प्रिवी कौंसिल के निर्णय सरीखा था।[1]

सरकार और परगना की अदालतें

सरकार के प्रशासन की विभिन्न शाखाओं के प्रभारी चार प्रमुख अधिकारी होते थे—फौजदार, कोतवाल, आमिल और काजी। इनमें फौजदार एक प्रकार से सामान्य कार्यकारी प्रशासक था, जिसके कर्तव्य विधि और व्यवस्था, शांति और सुरक्षा को बनाए रखना तथा राजकीय कर्मचारियों को अपने कर्तव्यों के पूरा करने में, उपद्रवी जनता द्वारा दी जाने वाली बाधा को दूर कर, सहायता देना था। इस कार्य संपादन के लिये उसके पास सैनिक पुलिस का एक दस्ता रहता था। इस प्रकार वह राज्य के आदेशों एवं भावनाओं को जनता पर लागू करने और शासन संचालन को सुगम बनाने में सम्राट् की शक्ति को व्यक्त करता था। किंतु फौजदार को कोई न्यायिक अधिकार न थे।[2] वह प्रांतीय, सिपहसालार की कार्यपालिका के कर्तव्यों का सरकार में प्रतिनिधित्व करता था।[3]

कोतवाल के कार्य बड़े विस्तृत थे। वह (दंडनायक) मजिस्ट्रेट, पुलिस का नायक और नगरपालिका का अफसर संयुक्त रूप से तीनों था। दंड नायक की हैसियत से वह पूरी सरकार में होने वाले फौजदारी के मुकदमों का विचारण ले सकता था, किंतु अन्य हैसियत से उसका क्षेत्राधिकार सरकार के मुख्य नगर तक ही सीमित था। फौजदारी के मुकदमें कोतवाल के पास जाते थे। धार्मिक जैसे—विवाह, तलाक, दीवानी आदि मुकदमें काजी के पास जाते थे। इन्हीं दोनों अधिकारियों के पास न्याय संबंधी प्रायः सभी कार्य बँटे हुए थे। किंतु आमिल को कुछ अंशों तक ऐसे कामों में

---

१. डा० डी० पंत, कमर्शियल पालिसी आफ दि मुगल्स, पृ० ४३।

२. कमीशन आफ सीक्रेसी, रिपोर्ट, १७७२ पृ० ३२१-५१।

३. परमात्माशरण, पृ० ३४७।

उनका हाथ बँटाना पडता था।[1] टेवर्नियर ने कहा है कि 'कोतवाल का दफ्तर एक प्रकार की चौकी थी, जहाँ दंडाधिकारी उस स्थान के निवासियो के विवादो पर न्याय करता है।[2] पेल्मार्ट कहता है कि, ''तलाक, लड़ाई-झगड़े, धमकी आदि के मामूली मामले कोतवाल और काजी के हाथों में थे।'[3] थेविनो ने और भी स्पष्ट शब्दो मे बताया है कि 'नगर का अध्यक्ष दीवानी मुकदमो को देखता था और सामान्यतया शीघ्रता से न्याय करता था। फौजदारी के मुकदमो मे वह जरा भी हाथ न लगाता था। फौजदारी के मुकदमे कोतवाल के न्यायाधीन थे। उनको अन्य मुख्य कार्यों में नगर की चौकीदारी करना था। फिर भी दीवानी और फौजदारी का कोई भी न्यायाधीश किसी को फाँसी की सजा नहीं दे सकता था।[4]

काजी और कोतवाल दो व्यक्ति थे, जो मुख्य रूप से सरकार में न्याय कार्य करते थे, और आमिल कुछ अंशो में उसमे भाग लेता था।[5]

परगना अदालत

सामान्यतः परगना अदालतो मे काजी होता था, जो दीवानी और धार्मिक मुकदमो का फैसला करता था। किंतु यहाँ शिकदार, कोतवाल के दंडनायक संवंधी पद का और फौजदार के साधारण कार्य-पालिका एवं पुलिस दोनों कार्यो का प्रतिनिधित्व करता था। अपने क्षेत्राधिकार मे शिकदार का कार्य 'मालगुजारी की वसूली में राजस्व अधिकारियो को सहायता देना और केवल लौकिक फौजदारी वर्ग के मुकदमो पर विचार करना था।[6] ग्राम के पुलिस कार्यों के लिये परगनो में एकाधिक थानेदार होते थे किंतु उन्हें कोई न्यायिक अधिकार न प्राप्त थे। काजी की नियुक्ति परगने के सदर मुकाम तक ही सीमित न थी। प्रत्येक महत्वपूर्ण नगर एवं वड़े गाँवो मे काजी होता था।[7]

---

१. मीरात (एथे, ३:६७), पन्ना १६५। २. टेवर्नियर, पृ० ६२।
३. पेल्सार्ट, जहाँगीर (अनु० मोरलैंड), पृ० ५७।
४. थेविनो, भा० ३, पृ० १६-२०।
५. मेनरीक, भा० १, पृ० ४०६-४२४।
६. अ० ना०, भा० ३, पृ० ३६०।
७. मैनरिक, भाग २ पृ० १११-१२।

अकबर के समय मे एक परगने में प्रशासन चलाने और विवाह, शव-दाह और तलाक आदि कुछ धार्मिक कार्यो के हेतु १६ काजी नियुक्त थे।[1]

न्यायिक प्रणाली का कार्य संचालन

मुस्लिम विधि-वेत्ताओ ने राजा को न्याय-प्रशासन के लिये सर्वोच्च पद और अधिकार प्रदान किए है। बिना अतिशयोक्ति के कहा जा सकता है कि अपने पूर्वाधिकारी अफगान शासक तेजस्वी शेरशाह के समान ही मुगल सम्राट् भी अपनी प्रजा को सुरक्षा और न्याय प्रदान करना अपना उच्चतम एव सर्वाधिक आवश्यक कर्तव्य समझते थे, और वे इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये हृदय से सचेष्ट भी थे।[2]

शेरशाह

शेरशाह के समय में मुख्य न्यायाधीश राजा ही होता था क्योकि यह हर सुबह आम खास मे (बहुत बड़े हाल मे सब लोग इकट्ठे होते थे) प्रत्येक मुकदमो को यह सुनता था, जो लोग अपील करते थे तथा अपनी तकलीफो को कहते थे, जो मुकदमे होते थे।[3]

शेरशाह न्यायरत्न से अलकृत था और कहा करता था—'न्याय करना सभी धार्मिक क्रियाओ से सर्वोत्तम है। इस बात को मुसलमान और काफिर दोनो के बादशाह मानते है।'[4]

जब शेरशाह की समृद्धि का अकुर संपन्न हुआ तो वह पीडित लोगो के बारे में और न्याय के प्राथियो के विषय मे असलियत जानने का प्रयास करने लगा। उसने अत्याचारियो का कभी पक्ष नही लिया, चाहे वे उसके रिश्तेदार हो, प्रिय पुत्र हो[5], या उसके प्रसिद्ध सरकार हो, या उसकी जाति के ही लोग क्यो न हो।[6] अत्याचारियो को दड देने मे वह न देर करता था और न दया। उसने स्थान स्थान पर न्यायालय स्थापित कर दिए थे।[7]

---

१. जर्नल आफ बिहार-उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, भा० ३-४ (१६२४) पृ० २७५-७८।

२ परमात्माशरण, पृ० ३५१। ३. वाहीद हसन, पृ० १७६।

४. एर्सकिन, भा० २, पृ० ४४४-४५। ५. वही, पृ० ४४७।

६. इलिएट और डाउसन, भा० ४, पृ० ४२५-३२।

७. तारीख-ए-दाऊदी, पृ० २०४, डा० कानूनगो, शेरशाह, पृ० ३६६।

शेरशाह प्रतिदिन प्रातः वह आम खास (सभा भवन) में सभी आगतों की फरियादे अथवा शिकायतें सुनता था। स्पष्ट है कि अपीलों के अतिरिक्त यह प्रारंभिक मुकदमे भी सुनता होगा।[१] शेरशाह ने संपूर्ण साम्राज्य के मुख्यालयो में प्रत्येक सरकार और परगने में जाल सा बिछा दिया था।[२] तारीख-ए-दाऊदी मे सर्वत्र काजी और मीर अद्ल की अदालतों के अस्तित्व का हवाला मिलता है।[३]

शेरशाह, सही कार्य न्यायालय का प्रत्येक परगना तथा प्रात की सरकार के पास आदेश के रूप मे भेज दिया था तथा कभी कभी सम्राट् खुद ही प्रातो मे जाता था तथा छान बीन करवाता था।[४] तारीख-ए-दाऊदी के वर्णन से पता चलता है कि प्रत्येक काजी तथा मीर अद्ल के न्यायालय के कौन कौन से कार्य तथा कर्तव्य थे।[५]

सम्राट् ने प्रातो को दो भागों में विभक्त कर दिया था। परगने में शिकदार की नियुक्ति कर दी, वह मृत्यु का सबसे बडा न्यायाधीश होता था तथा मुसिफ साधारण मुकदमें का होता था। वह शिकदार तथा मुसिफ का स्थानातरित पद कर दिया, इस कारण न्याय मे धाँधली नही हो पाती थी। मुसिफ से अलग अमीन का पद बनाया, यह भूमि की लागत लगाई गई लगान की छान बीन करता था। पुलिस की तैनाती शिकदार के अंदर कर दी गई।[६]

गाँव को ठीक से रखने के लिये इसने गाँव मे मुकद्दम या सबसे गाँव के बड़े आदमी की नियुक्ति की।[७] मुकद्दम की ड्यूटी होती थी, वह नुप चाप

---

१. अब्बास पृ० १०४
२. उपर्युक्त, पृ० १०८, लेखक की प्रति, पृ० २१५।
३. तारीखे-दाऊदी, औरि० १९७, पृ० ८३-८४।
४ ब्रिग्स, पृ० २८४।
५. अब्बास, तारीख-ए-शेरशाही, उर्फ तुहफा-ए-अकबर शाही पृ० १०४।
६ ब्रिग्स, पृ० २८४-८५।
७. अब्बास खाँ शेरवानी, तारीख-ए-शेरशाही, उर्फ तुहफा-ए-अकबर शाही (उदयपुर, हस्तलिखित प्रति), पृ० १०८।

गाँव मे होने वाली हर एक बात की खबर सरकार तक पहुँचाना चाहे वह किसी प्रकार की बात हो ।[1]

शेरशाह समय समय पर अपने बड़े बडे आफिसरो के यहाँ फरमान भेजा करता था ताकि वह अपने काम मे चुस्त रहे और अपने के नीचे के आफिसरों तथा कार्यकर्ताओं को ठीक प्रकार से रखें ।[2]

शेरशाह के समय में सब कुछ न्यायालय का काजी ही होता था ।[3] सुल्तान राज्य का सबसे बडा कर्ताधर्ता था, वह ही काजी के फैसले मे तबदीली कर सकता था ।[4]

सरकारी भूमि संबंधी जो मुकदमा होता था, वह पंचायत के जरिये तय किया जाता था, नही तो मुंसिफ के यहाँ, अगर नही तो परगने के काजी तक, वह बड़ी जायदाद का अगर मुकदमा होता था तो सम्राट् के पास जाता था ।[5]

बाजारो मे यहाँ वहाँ काजी और मीर-ए-आदिल का न्यायालय रहता था ।[6] काजी साधारण न्यायालय का होता था, वह बाजार तथा आस पास निश्चित एरिया का मुकदमा देखता था । मीर आदिल जो था, वह काजी का दिया हुआ तथा बतलाया हुआ कार्य करता था ।[7]

जो पोशाक निश्चित किया हुआ था, उसको पहन करके, सही मुकदमों को बदल करके पेश करने का अधिकार था ।[8]

वह प्रत्येक दिन सुबह दीवान-ए-खास मे मुकदमो को सुनता था ।[9]

---

१. अब्दुल्ला, तारीख-ए-दाऊदी (अनु०), पृ० १६७ ।
२. वही, पृ० १६८-६६ कामिसारियट, हिस्ट्री आफ गुजरात, पृ० २२५ ।
३. बदायूंनी, भा० २ (अनु०) ४६६ । ४. वही पृ० ५०३ ।
५. हिस्ट्री आफ इडिया, भा० ३, पृ० १३३ ।
६. ईलियट, हिस्ट्री आफ इंडिया, भा० ३, पृ० १२६ ।
७. वही, पृ० १२६ । ८. अब्दुल्ला, (अनु०), पृ० २०३ ।
९. अबुल फजल, आ० अं० (अनु०), भा० २, पृ० ४१, इस्तीफाक हुसेन कुरैशी, दि ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ सल्तनत आफ डेल्ही, लाहौर, पृ० १६०-६१ ।

इस्लाम[1] शाह के समय न्यायाधीश के बिना राय से किसी भी मुकदमे की सुनवाई होती थी।[2] क्योंकि पिता शेरशाह का असर पड़ा हुआ था। इसके बाद अंतिम निर्णय भी हो जाता था।[3]

इस्लाम शाह ने शेरशाह की पद्धतियो पर चल करके साम्राज्य तथा जनता दोनो की रक्षा की। सम्राट् के पद की गरिमा को कायम रखा।[4]

सरकारी अधिकारियो के मार्ग प्रदर्शन और नियंत्रण के लिये उसने और इस्लाम शाह ने समय समय पर विनियम बनाए थे। दोनो ही इन विनियमो का पालन कराने मे बड़े दृढ और सख्त थे।[5] शेरशाह के न्याय, आदर्श और तरीको के संबंध मे सुविदित है कि वह निर्धन और निर्बल व्यक्तियो को अन्याय और अत्याचार से बचाने के लिये कितना सचेष्ट रहता था। किसानो के कुशल क्षेम के लिये उसकी महान् उत्सुकता बहुत उच्चकोटि की थी।

मुगल शासक वर्ग

मुगल शासक भी न्याय के उसी पवित्र और उच्चादर्श से प्रभावित थे। शासकीय कार्यो मे सम्राट् के हकों और न्याय का समुचित समान है।[6] वे बराबर आम खास (सार्वजनिक दरबार भवन) मे नियमित रूप से कचहरी करते थे, और प्रतिदिन अपना कुछ समय याद फरियाद सुनने और न्याय करने में लगाते थे। इन अदालतो का तरीका इतना सरल था कि साधारण से साधारण व्यक्ति भी बिना बाधा के सम्राट् तक पहुँच सकते थे। फरियादी अपनी अर्जियाँ लिखकर लाते थे, और इस तरह लिए रहते थे कि अदालत मे एकत्रित अधिकारी उन्हे देख सके। सारी अर्जियाँ सम्राट् के संमुख उपस्थित की जाती थी। वह उन्हे पढवाकर सुनता और हर एक फरियादी को बुलाकर खुद जिरह करता, और आवश्यक कार्यवाही के लिये आज्ञा प्रदान करता था।[7] अबुल फजल का कहना है कि—अकबर न्याय कार्य मे नित्य कम से कम डेढ पहर समय लगाता था।[8] वह नित्य-

१. कुरैशी, पृ० १५७-५८। २. वही पृ० ३२२।
३. बदायूँनी, भा० २ (अनु०), पृ० ४०७-०८।
४. कुरैशी, पृ० ३२७। ५. परमात्माशरण, पृ० ३५२।
६. कमेंटेरियस, पृ० २१०।
७ बर्नियर, पृ० २६३। ८. अ० ना० भा० ३, पृ० २५७।

कचहरी करता था और फरियादों को सुनता था।[1] जिसके द्वारा कोई भी व्यक्ति निर्भय होकर अपनी फरियाद सम्राट् तक पहुँचा सकता था, प्रजा के प्रति उसकी न्याय करने की सदिच्छा, उत्साह और सद्भावना व्यक्त करती है।[2]

अकबर फरियाद सुनने और अपराधी को दंड देने के लिये झरोखे पर बैठता था। बीमार और अतीव शारीरिक कष्ट होते हुए भी झरोखे पर बैठना बंद न किया, क्योंकि वह अपने शरीर के आराम की परवाह करना हराम समझता था।[3]

मुगल सम्राट् न्याय कार्य के लिये नित्य कुछ न कुछ समय तो देते ही थे। सप्ताह मे उन्होंने एक दिन खास कर न्यायिक कार्यो के लिये नियुक्त कर रखा था। उस दिन वे अधिक महत्व के मुकदमों को देखते थे।[4] बर्नियर भी इन सम्राटों के न्यायकार्य के प्रति नियमितता की साक्षी देता है।[5]

बाबर सल्तनत काल के बादशाहों की तरह अपने कानून व्यवस्था को कायम रखा क्योंकि इसके पास समय का अभाव था, इस तरफ ध्यान न दे सका। सल्तनत काल में न्यायव्यवस्था इस्लाम के कानूनों पर आधारित थी। इसके अनुसार जनता मुसलमान और गैर-मुसलमान दो वर्गो मे बँटी हुई थी और गैर-मुसलमान राज्य के नागरिक नही समझे जाते थे। बादशाह कानून के अनुसार ही सब मुकदमो का फैसला करता था, चाहे वादी और प्रतिवादी मुसलमान हो या गैरमुसलमान। बाबर तथा हुमायूँ तक यही प्रथा जारी रही क्योंकि दोनो को समय कम मिला, परेशानियों से घिरे हुए थे। न्याय की तरफ बिल्कुल ही ध्यान न दे सके।

बाबर तथा हुमायूँ जो सुधार करने का सोचा, लेकिन आकस्मिक मृत्यु ने सब कुछ समाप्त कर दिया।

---

१ हाकिंस, पृ० ११६।
२. विथिंगटन, पृ० २२६, सरकार, पृ० १०७, जहाँगीरनामा (रो० एंड बे०), भा० १, पृ० १७२।
३. रो० एंड बे०, भा० २, पृ० १३-१४।
४. मोसरेट, पृ० ६३। ५. बर्नियर, पृ० ३६०।

हुमायूं का जो स्वप्न था, वह कुछ न कर सका। केवल तीन वार चोरी का मुकदमा तथा चार वार मृत्यु का मुकदमा देख सका था। इसके वाद समयाभाव के कारण न्याय-विभाग मे अच्छे काजियो की नियुक्ति न कर सका।[१]

हुमायूँ ने 'गरजनेवाले वादल के समान' एक तवला (ढोल, दौसा) दीवान खाने के पास रखवा दिया। जो लोग न्याय चाहते थे वे इसे वजाते थे। इसके वजाने का नियम इस प्रकार निश्चित किया गया कि सुनने वाले को अपराध के विषय में पता चल जावे। साधारण झगड़े मे छड़ी (चोव) से एक वार, वेतन न मिलने पर दो वार, सपत्ति के अपहरण होने पर तीन वार तथा किसी की हत्या होने पर चार वार ढोल वजाने का आदेश था।[२]

न्याय से सवधित होने के कारण यह न्याय का तवला (तवल-ए-आदिल) कहलाता था। हुमायूँ का यह आदेश नया नही था। ईरान के शासको ने इस तरह की प्रणाली चलाई थी। वाद मे जहाँगीर ने कदाचित् इसी से प्रभावित होकर अपने न्याय की जीर प्रारंभ की।[३]

अकवर के समय मे न्यायव्यवस्था सवसे ठीक थी। अकवर ने स्वयं कहा है कि 'यदि मैं किसी न्याय का हूँगा तो स्वयं ही अपने विरुद्ध निर्णय करूँगा।' उसने जीवित अपराधी व दंडित मनुष्यो की खाल उतरवाना, निषिद्ध कर दिया था। मृत्युदड वह स्वय देता था, अन्य न्यायाधीशो को इसका अधिकार नही था। अवुल फजल ने इस्लामी न्याय व्यवस्था के विषय मे लिखा है कि 'वादशाह को दुर्वल पर जुल्म के हाथ को कम करना चाहिए क्योकि पैगंवर कहते हैं कि अन्याय के शिकार की पुकार यदि काफिर भी होगा तव भी ईश्वर द्वारा कभी भी अस्वीकार नही की जा सकती।'[४] अकवर की निष्पक्षता के वारे मे अवुल फजल लिखता है कि— 'सम्राट् अपने न्यायालय मे संवंधी और अपरिचित में अमीरों के प्रमुख और भिखारी मे कोई भेद नही करता है।[५]

---

१. ख्वंदमीर, कानूने हुमायूँनी (वेनीप्रसाद), पृ० ८१-८२।

२. ख्वंदमीर, कानूने हुमायूँनी, वेनी प्रसाद, पृ० ८२, अ० ना०, भा० १, पृ० ३६१-६२, अर्सकिन, भा० २, पृ० ५३३-३४।

३. अर्सकिन, भा० २, पृ० ५३७।

४. अ० ना०, भा० ३, पृ० २५७, ४७७, ७२२।

५. वही, भा० २, पृ० २६६, वेवरिज का अनु०, पृ० ३८७।

सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश स्वयं अकबर था। सम्राट् का न्याय सबसे बड़ा श्रोत था तथा अधिष्ठाता माना जाता था। अबुल फजल के अनुसार 'सम्राट् न्याय का दरबार खोलता है और खुला दरबार करता है। अत्याचारो और न्याय से पीड़ित व शोषित व्यक्तियो के मुकदमो मे वह शपथो और गवाहो के बयानो पर विश्वास नही करता है क्योंकि वह साधन प्रायः चालाक और धूर्त व्यक्ति अपनाते है, परंतु मुकदमे के दौरान हुए विवरण में विरोधाभास को वह समझ कर सही खोजबीन के आधार पर अपना निर्णय देता है। सत्य मध्य में ही होता है। न्याय के कार्य में वह डेढ पहर (साढे चार घटे) से कम समय नही देता है।[1]

निष्पक्ष न्याय पर बल

पादरी मांसरेट लिखता है कि—बादशाह शासन के मामलों मे सत्य और न्याय को सबसे अधिक मानता है। वह इस बात के लिये उत्सुक रहता है कि बिना पक्षपात और दुर्भावना के अपराधी को दड दिया जाय, परंतु साथ ही किसी प्रकार की आवश्यक उदारता और दया भी नही वर्ती जाय।[2]

अकबर पहला मुस्लिम शासक था जिसने हिंदू और मुस्लिम भेदभाव को मिटाकर, एक समान स्तर पर ला खडा किया। १५६१ ई० में एक आदेश जारी करके इस अतर को मिटाना शुरु किया। इस आदेश के द्वारा गैर मुस्लिमो को बंदी बनाना, उनके परिवारो को गुलाम बनाना और उन्हे बरबस मुसलमान बना लेना वर्जित कर दिया गया। १५६३ ई० में उसने हिंदू तीर्थो पर हिंदू यात्रियों से जो कर लिया जाता था, हटा दिया और १५६४ ई० मे जजिया कर हटा दिया तथा एक सी नागरिकता स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त किया।[3] इतना ही नहीं, अकबर ने इस्लाम को राज्य धर्म स्वीकार न कर हिंदू धर्म और देश के अन्य धर्मों को भी मान्यता प्रदान की और सभी को अपने-अपने धर्म का प्रचार करने और उसमे नये अनुयायियो को दीक्षित करने के अधिकार भी दे दिए।[4]

---

१. अ० ना०, भा० ३ (अनु०) पृ० २५७, वेबजिक, अं० अनु० पृ० ३७७।
२. मासरेट, पृ० १०५।
३. स्मिथ, अकबर दि ग्रेट मुगल्स, पृ० ६५-६६, ७६-७७, ८१-८३।
४. वही, पृ० ३८६।

पहले से चली आ रही परिपाटी का अकबर ने स्वरूप बदल दिया। इन्ही कार्यो का पूरक-सा अकबर ने फिर एक और हुक्म जारी किया, जिसके अंतर्गत गैर मुसलमानो को, गिरिजाघर, ईसाईमठ, मंदिर और अग्नि मंदिर आदि बेरोक-टोक बनाने की अनुमति मिल गई।[1] एक और कानून द्वारा यह घोषित कर दिया गया कि किसी को धर्म के कारण परेशान न किया जाय और हर स्त्री-पुरुष को अपनी पसंद के किसी भी धर्म को मानने की पूरी पूरी स्वतन्त्रता है।[2] १५८० ई० के पश्चात् इस्लामी विधि व्यवस्था मे जो एक मूलभूत परिवर्तन हुआ वह यह था कि जिन हिंदुओ को बलात् मुसलमान बना लिया गया था, उन्हे अगर वे चाहें तो फिर अपने पूर्वजो का धर्म अपना लेने की अनुमति दे दी गई और अगर किसी हिंदू स्त्री को मुसलमान से विवाह करने और इस्लाम को अगीकार करने के लिये विवश किया गया था, तो उसे भी उसकी इच्छा पर पुन अपने परिवार मे संमिलित हो जाने की सुविधा दे दी गई।[3] एक अन्य न्यायोचित कानून जिसका संबंध इस्लाम से नही था, जारी हुआ कि जिन माता पिता ने निर्धनता अथवा किन्ही दूसरे विवश करनेवाले कारणो से अपने बच्चो को बेच दिया हो, वे अगर उनके पास धन हो तो, अपने बच्चो को पुनः खरीद कर 'दासता' से मुक्त करा सकते है।[4]

इन सबसे कही अधिक शक्तिशाली और क्रांतिकारी स्वतंत्रता जो अकबर ने गैर-मुसलमानो को प्रदान कर दी थी, वह यह थी कि वे अब मुक्त रूप से इस्लाम की और पैगंबर मुहम्मद साहब के व्यवहार की आलोचना कर सकते थे, जो कि इसके पूर्व मृत्युदंड से दंडनीय अक्षम्य अपराध माना जाता था।[5]

न्यायप्रथा में संशोधन

मुसलमानो पर लागू होने वाली विधि व्यवस्था मे भी अकबर ने संशोधन किया। इब्न हसन का मत है कि—'मुस्लिम न्याय शास्त्रियो ने जिस मुस्लिम न्याय व्यवस्था की स्थापना की थी, वह अकबर की नीति

---

१ मुन्तखब-उत-तवारीख, भा० २, पृ० ३९२।

२. वही पृ० ३९१।

३. वही, पृ० ३९१-९२। ४. वही, पृ० ३९१।

५. वही, पृ० ३०८, ३१६, ३१७।

से प्रभावित हुई सी प्रतीत नही होती।' वे आगे लिखते है कि—'विवाह और तलाक के कानून मुसलमानों के धार्मिक विश्वासो और आस्थाओं से इतने घनिष्ट रूप से संबधित थे कि उन्हे किसी भी रूप मे परिवर्तित या संशोधित नही किया जा सकता था। इसलिये नागरिक विधि-व्यवस्था में किसी परिवर्तन की गुंजाइश ही नही थी और आज के ब्रिटिश युग मे भी मुख्य रूप से वैसा ही है।[1] सर्व प्रथम उसने आदेश दिया कि एक मनुष्य को केवल एक पत्नी रखनी चाहिए। लेकिन अगर वह वंध्या हो, तो वह दूसरा विवाह कर सकता है। दूसरे किसी स्त्री के गर्भवती होने की आयु निकल चुकी हो, और उसके मासिक धर्म होना बंद हो गया हो, तो उसे विवाह करने की अनुमति नही दी जानी चाहिए।[2] तीसरे चचेरे और अन्य निकट सबंधियो के बीच विवाह वर्जित कर दिए गए।[3] चौथे यह कानून बनाया गया कि १४ वर्ष की आयु के पहले कन्याओ तथा १६ वर्ष की आयु के पहले बालको का विवाह नही होना चाहिए।[4] पाँचवें अगर कोई स्त्री अपने पति से १२ वर्ष बड़ी हो, तो उन्हे पति-पत्नी की तरह नही रहना चाहिए।[5] सुन्नत बाल्यावस्था मे किया जाना ठीक समझा जाता था, पर अकबर ने उसकी आयु बढ़ाकर १२ वर्ष कर दी, जिससे हर कोई विचार करे कि सुन्नत कराना चाहिए या नही।[6] सुन्नत की प्रथा एक मुस्लिम धार्मिक कर्तव्य होता है। ये नियम केवल शुभ इच्छा मात्र नही थे, उन्हे पालन करवाए जाने के लिये आदेश जारी किया गया था। नगर कोतवालों को उन्हे कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया था।[7]

अकबर हिंदुओ के अपने कानूनों मे भी हस्तक्षेप करने से नही हिचका। लड़के लड़कियो के विवाह की आयु और एक पत्नी सबंधी नियम हिंदुओं

---

१. इब्न हसन, सेंट्रल स्ट्रक्चर आफ मुगल इम्पायर, पृ० ३०८।
२. मुन्तखब-उत-तवारीख, भा० २, पृ० ३५६, आ० अ०, १ पृ० २८८।
३. मुन्तखब-उत-तवारिख, भा० २, पृ० ३७६ आ० अ० १, पृ० २८८।
४. वही पृ० ३०६, ३३८, २८७-८८।
५ मुन्तखब-उत-तवारीख, भा० २, पृ० ३७६।
६. वही, पृ० ३७६।
७. आईन, भा० १, पृ० २८७-८८, भाग २, पृ० ४४-४५।

और मुसलमानो सभी पर लागू होते थे। इसी प्रकार यह भी दोनो पर लागू होता था कि अधिक आयु के कारण गर्भ धारण न करने योग्य स्त्री को विवाह करने की अनुमति न दी जावे। दूसरा विवाह करने की अनुमति दे दी गई थी, उन स्त्रियो को जो विधवा हो गई थी। अकबर का यही उद्देश्य इस कानून मे भी निहित था कि हिंदू विधवाओ को उनकी इच्छा के विरुद्ध उनके पतियो की चिताओ पर सती होने को विवश न किया जावे।[1] सोलहवी सदी मे जहाँ तक हो सका, वहाँ तक एक समान धार्मिक, सामाजिक कानूनी व्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। इसके लिये उसने हिंदुओ, मुसलमानो, ईसाइयों और पारसियो सभी को कुछ निश्चित दिनों तक पशु-वध वर्जित कर दिया गया था।[2] साथ ही शराब बनाने तथा पीने पर भी रोक लगा दिया गया।[3] अकबर, उसके पुत्रो और प्रपौत्रो के विवाह हुए थे, उनका इस्लामी प्रथा के विपरीत पहले धर्म परिवर्तन नही किया गया था और वे विवाह हिंदू और मुस्लिम दोनों ही पद्धतियो से संपन्न किए गए थे।[4]

अकबर के राज्यकाल मे जन साधारण पर लगाए जाने वाले और सबके लिये एक से कानूनो का क्षेत्र बहुत बढ गया था। यह समस्त भारतीय जातियो को एक सूत्र मे बाँधना चाहता था, अपनी कानूनी व्यवस्था के अनुसार। इसका मुस्लिम व्यवस्था पर प्रभाव यह पडा कि उसका क्षेत्र आनुपातिक रूप से सिकुड़ता गया। वह कभी कभी कानूनो से संबंधित मुस्लिम नियमो की उपेक्षा कर जाता था और काजियो तथा अन्य न्यायाधीशों को निर्देश दे देता था कि वह केवल गवाहो के बयानो पर ही निर्भर न रहे, बल्कि अन्य स्रोतो से भी सत्य जानने का प्रयत्न करे। वादी-प्रतिवादी के वक्तव्यो, गवाहो के बयानो, जाँच पड़ताल करें और उनकी शक्ल सूरत, व्यवहार की देखभाल और अगर आवश्यक हो, तो परीक्षा करके सच्चाई जाने।[5]

---

१. मुतखब-उत-तवारिख, भा० २, पृ० ३५६-३७६।

२. वही, पृ० ३२१-२२। ३. वही।

४. बदायूंनी, भा० २ पृ० ३४१, अ० ना०, भा०, ३, पृ० ४८१, तबकाते अकबरी, भा० २, पृ० ३६२-६३।

५. अ० ना०, भा० ३, पृ० २५७, ४७७, ७२२।

मुस्लिम न्याय व्यवस्था

मुस्लिम न्याय व्यवस्था मे तीन प्रकार के अपराधो को मान्य किया गया है।[१] एक खुदा के प्रति अपराध, दूसरे राज्य के प्रति अपराध और तीसरे व्यक्तियो के प्रति अपराध। प्रथम श्रेणी के अपराधों के लिये मृत्यु दंड दिया जाता था। नास्तिक स्त्रियो को दंड देने के संबंध मे न्याय शास्त्रियो मे मतभेद है। इनकी व्यवस्था मे उन्हे कारावास का दंड दिया जाना चाहिए, लेकिन अन्य तीन व्यवस्थाओं के अनुसार उन्हे भी मृत्युदंड ही दिया जाना चाहिए। इसी प्रकार धर्म विरोधियों को भी मृत्यु दंड की व्यवस्था है।[२]

मुस्लिम विधि व्यवस्था के अनुसार अपराधों के लिये चार प्रकार के दंडो का विधान था[३]—(१) हद्द, (२) तजीर (३) किसास, (४) तशहीर। हद्द के अन्तर्गत अपराध और दंड दोनो ही निश्चित होते थे। यदि कोई व्यक्ति व्यभिचार का दोषी होता था तो उसे मामूली तरह से पत्थर मार मार कर मार डाला जाता था। अगर वह कुमारी बालिका से व्यभिचार का अपराधी हुआ तो उसे कोडे लगाए जाते थे। और इसी तरह कोई व्यक्ति किसी विवाहिता स्त्री पर व्यभिचार का गलत आरोप लगाए तो उसे ८० कोडे मारे जाते थे। जो व्यक्ति शराब या अन्य नसीले द्रव्यो के सेवन का अपराधी होता था तो उसे भी ८० कोड़े लगाए जाते थे। चोरी करने वालों का दाहिना हाथ काट दिया जाता था। डकैती का अपराध सिद्ध हो जाने पर उसके हाथ पाँव के पंजे काट दिए जाते थे लेकिन अगर वह डकैती के साथ हत्या का अपराधी हो, तो उसे मृत्यु दंड की सजा दी जाती थी क्योंकि नास्तिकता की सजा मौत ही थी।[४]

तजीर मे राज्य और व्यक्तियो के प्रति किए गए हल्के अपराधो के

---

१. सरकार, पृ० १०१।

२. एनसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, भा० ४, पृ० १२२८, कुरान चार ६१, पाँच ३७, छब्बीस ४६।

३. एनसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, भा० १, पृ० १३२, ६८०, भा० २, पृ० १८७-८८, भाग ४, पृ० १७३-७४, पृ० १७३-७४, ह्यूज डिक्शनरी आफ इस्लाम, पृ० ४७६-७७।

४. डिक्शनरी आफ इस्लाम, पृ० ४७६-७७।

हल्के दंडों की व्यवस्था रहती थी। तजीर के अतर्गत दंड देने मे आराधी के पद और मर्यादा का भी ख्याल रखा जाता था।[1]

किसास के अतर्गत बदला लेने अथवा अपराध के बदले निकटतम सबंधियो द्वारा आर्थिक क्षतिपूर्ति की व्यवस्था आती थी। लेकिन जिस व्यक्ति के विरुद्ध अपराध किया गया हो, वह या उसके सबंधी बदला ले लेने या क्षतिपूर्ति लेने के लिये तैयार न हो, तो फिर मामला काजी की अदालत मे जाता था। हत्या की सजा मौत थी, लेकिन साधारण अपराधो मे 'दॉत के बदले दॉत' और 'आँख के बदले आँख' ले लेने के ही सिद्धात को अपनाया जाता था, वैसे इसके अपवाद भी होते थे।[2]

तशहीर अथवा सार्वजनिक लाछन और इस्लामी किस्म की सजा थी। लेकिन वह पूरे मध्ययुग मे प्रचलित रही थी। इसके अतर्गत अपराधी को सिर मुडाकर पूंछ की ओर मुँह करके गधे पर बैठाना और मुँह काला करके सडको पर घुमाना आदि दड आते थे।[3]

गबन करने, मालगुजारी का समय पर भुगतान न करने और बागी हो जाने, जैसे राज के प्रति अपराधो के दंड सम्राट् की मर्जी पर निर्भर होते थे। कभी कभी अपराधी को हाथी के पैरो तले कुचलवा दिया जाता था, या उसे काले विषधर साँप से डसवा दिया जाता था। कई विभिन्न प्रकार की यातनाएँ भी दी जाती थी।[4]

मृत्युदंड केवल भयानक अपराधो के लिये दिया जाता था और वह भी प्रायः सम्राट् के द्वारा ही दिया जाता था। मृत्यु दंड बहुत सोच समझ करके दिया जाता था। अबुल फजल ने लिखा है कि 'अकबर मृत्यु दड देने मे बडा सतर्क था और इसमें वह पूर्ण विवेक से काम लेता था, किसी का प्राण लेने मे वह बहुत धीमा था।'[5]

---

१. डिक्शनरी आफ इस्लाम, पृ० १७३-७४।
२. वही, भा० २, पृ० १०३८-४१, ह्यूज डिक्शनरी आफ इस्लाम, पृ० ४८१।
३. डिक्शनरी आफ इस्लाम, भा० १, पृ० १३२।
४. इब्न हसन, पृ० ३२८-३२।
५. आ० अ० भा० ३, (अनु०), पृ० २९८।

उच्च न्यायालय में अपीलें

उस समय आज की तरह अपीलों के कोई निश्चित अथवा परिष्कृत नियम न थे, परंतु उनके अभाव में किसी प्रकार से न्याय मे कसर न होती थी। प्रथा के अनुसार अपीले छोटी अदालतो से क्षेत्राधिकार के अनुसार, बडी अदालत और वहाँ से उससे बडी और अंत मे स्वयं सम्राट् के समुख पेश की जा सकती थी। माल के मुकदमे सरकार और परगने के काजी देखते थे, किंतु अपीलें दीवाने-सूबा और दीवाने आला के यहाँ जाती थी। सरकार और नीचे की अदालतों मे काजी दीवानी और धार्मिक प्रकृति के फौजदारी मुकदमे भी सुनता था, किंतु अपील, सम्राट् के मुख्य काजी के यहाँ होती थी। छोटी मोटी फौजदारी के मुकदमे परगनो मे शिकदार सुनता था और उसकी अपील, कोतवाल के पास होती थी। कोतवाल की अदालत से मुकदमें प्रांत के नाजिम या और वहाँ से सम्राट् के पास जाते थे। कुछ परगनो का महत्व आर्थिक अथवा राजनीतिक दृष्टि से सरकार के समतुल्य होता था, ऐसी अवस्था मे उनके न्यायालय सरकार के काजी के अधीन न होकर सीधे प्रांतीय सद्र के अधीन होते थे, क्योंकि दोनो की हैसियत समान समझी जाती थी।[१]

यदि कोई पक्ष यहाँ के फैसले से खुश न हो, तो वह मुख्य दीवान, अथवा यदि शरियत का मामला हुआ तो मुख्य काजी के यहाँ अपील करता था। ये अधिकारी पूरी जाँच करते थे। इतना सुप्रबंध होते हुए भी सिवा हत्या और धर्म के मुकदमों को छोडकर सम्राट् के पास और कौन से मुकदमे जा सकते थे।[२]

अकबर ने ३०वे इलाही वर्ष में कतिपय नव नियुक्त न्यायाधिकारियों को अन्य हिदायतें देते हुए यह भी आदेश दिया कि यदि वे किसी कठिन प्रश्न पर निर्णय मे अपने को असमर्थ समझें, तो सम्राट् को रिपोर्ट करे।[३]

मासरेट ने लिखा है कि—'अकबर के समय मे मृत्युदंड का अधिकार प्रांत के सूबेदारो से ले लिया गया था, इन्हे मृत्युदड देने के लिये सम्राट् से स्वीकृति लेनी पड़ती थी।'[४]

---

१. मीरात, ज़मीमा (बडौदा संस्करण), पृ० १९३।

२ ओरि० २६२५१, पृ० ८०।

३. अ० ना०, भा० ३, पृ० ४७७। ४. मॉसरेट, पृ० २१६।

मुकदमों की संख्या

न्याय की सुविधाओ के होते हुए भी, मुकदमो की संख्या बहुत ही कम थी। जनता मे अनावश्यक और आत्मघाती मुकदमो का विशेषकर ग्रामीणों मे बढने न देने का महत्तम श्रेय ग्राम पंचायत अदालतो को है। ये ग्राम पंचायत अदालते, ग्रामवासियो के प्रति उत्तरदायी होने के कारण, जिनके बीच उनका अस्तित्व होना था, परंपरा से चली आ रही थी और झगडो के निर्णय करने की ऐसी अद्वितीय साधन बन गई थीं कि शायद ही कभी बड़े बूढे दोनो पक्षों के लिये पूर्ण संतोषजनक निर्णय न कर सकी हो। आरंभ कालीन ब्रिटिश सरकार एक स्वर से उन ग्राम पचायतो की सुदर व्यवस्था की सराहना की है, जो १९वी शताब्दी तक कार्य करती रही थी। पंचायत का निर्णय बिना किसी फीस डालने वाले खर्च के, अधिकाधिक ईमानदारी से वही हो जाता था, उच्चतर अधिकारियों के यहाँ अपील का दरवाजा किसी के लिये बंद न था। मुकदमो की संख्या कम होने का दूसरा कारण न्याय मे द्रुतगति होना था, जिसके कारण परगना एवं अन्य ऊँची अदालतो मे आने वाले मुकदमे अनिश्चित काल तक सुनवाई और फैसले के लिये नही पड़े रहते थे।[1]

जाँच पड़ताल का तरीका

मुगलों की न्याय व्यवस्था मे वैसे काफी गभीर दोष थे, फिर भी यह व्यवस्था काफी ठीक काम करती रही। अकबर न्याय करने के आदर्श से प्रेरित था और लोगो की ऐसी आस्था थी कि उन्हे अकबर से सदैव न्याय ही मिलता है। सम्राट् हर तरह से बल देता था कि न्यायाधीशो को हर मामले मे हर संभव तरीके तथ्यो की जाँच पडताल करनी चाहिए। उन्हे गवाहो और शासकों से सतुष्ट नही होना चाहिए, बल्कि कई प्रकार से जाँच पड़ताल करनी चाहिए। उन्हे जनहित भावना से युक्त रहना चाहिए।[2]

पादरी मासरेट लिखता है कि 'सरकारी कामो, अधिकारियो द्वारा की जाने वाली गलतियो और बदमाशियो के प्रति सम्राट् की सख्ती प्रशंसनीय हैं, क्योंकि वह लोक विश्वास के प्रतिकूल काम करने वाले अपराधियो के प्रति बहुत ही कठोर है। इस कारण उसकी कठोरता से सब भय खाते हैं, और उसके निर्देशो और इच्छाओ के अनुसार कार्य करने का यथा शीघ्र

---

१. सरकार, पृ० १०८। २. आइन पृ० २, पृ० ३८-३९।

प्रयत्न करते हैं। सम्राट् शासन के मामले मे हकों और न्याय के प्रति संमाननीय भावना रखता है।[1]

यह तथ्य देशी अथवा विदेशी लेखकों के विवरणो से पूर्ण रूप से प्रमाणित होता है। गुजरात का प्रधान न्यायाधीश (सद्र और काजी) हाजी इब्राहीम सरहिंदी अहमदाबाद के निवासियो की शिकायत और फरियाद पर पद से निलंबित कर दिया गया था। बदायूँनी का कहना है कि 'वह घूस लिया करता था। जाँच के पश्चात् जब उसपर अभियोग प्रमाणित हो गया, वह न केवल बर्खास्त ही किया गया, वरन् रणथंभौर के किले में (१५८४)[2] कैद कर दिया गया। ४२वे इलाही वर्ष मे सैयद सुल्तान नामक विद्वान्, जो स्व निवेदन पर थानेश्वर का करोडी नियुक्त किया गया था, को फाँसी दे दी गई, क्योकि उसके लालची और अत्याचारी प्रशासन के विरुद्ध थानेश्वर की प्रजा ने शिकायत की थी।[3]

अकबर का आदेश था कि 'न्यायाधीशो को मामला सुनने और उसपर निर्णय देने के बीच सोचने के लिये कुछ समय रखना चाहिए। इसी बीच पुन: खोज बीन करनी चाहिए, फिर से जाँच पड़ताल करनी चाहिए और उसकी एकाग्र और पैनी दृष्टि से बारीकी से जाँच करनी चाहिए।'[4]

काजी की फीस

वे लोग निकाहाना (विवाह शुल्क) और मेहराना (दहेज का अंश) लिया करते थे, जिस पर वे अपनी माता के दूध के समान अपना हक मानते थे।[5]

न्याय व्यवस्था में निहित भावना

अकबर का आदर्श अपनी प्रजा को निष्पक्ष न्याय देना था। उसकी यही भावना उसके इस कथन में निहित थी कि—'अगर मैं किसी अन्याय पूर्ण कार्य का अपराधी होऊँगा, तो मैं स्वयं अपने विरुद्ध न्याय करूँगा।

१. मासरेट, पृ० १०६।
२. मीरात (हं० आ० ३५६७), पृ० ८३, अ० ना०, भा० ३, पृ० २६५ (अनु०), ३८३, बदायूँनी, भा० २, पृ० २७७।
३. अ० ना०, भा० ३, पृ० ७४८, अनु० पृ० १११८।
४. आइन, भा० २, द्वितीय सं०, पृ० ४३।
५. मा० उ०, भा० १ (अनु०), पृ० ७५-७६।

तब मैं अपने पुत्रो, संबधियो और दूसरो के बारे मे क्या कहूँ ?'[1] समकालीन विदेशी लोग जो भी उसके दरबार मे आए वे उसके मानवतापूर्ण न्याय करने की नीति से बहुत ही प्रभावित हुए। अकबर ने इस बात को भली-भाँति हृदयंगम कर लिया था कि 'दड देना प्रशासन की कला से सबसे कठिन कार्यो मे से एक है' और इसलिये अपने न्यायाधिकारियो को निर्देश दे रखे थे कि वे 'नरमी और समझदारी से दंड दे'। उसने अपने लिये वही निदेशक सिद्धांत बना रखे थे।[2] पादरी मांसरेट लिखता है कि—'सम्राट् को शासन के मामले मे सही और न्यायोचित बात का सबसे अधिक ध्यान रहता, प्राण दड के मामले उसके सामने सुने जाते थे, जिस मामले मे वह स्वयं न्याय करता है उसमे उसी के निर्देशानुसार अपराधियो को तब तक दंडित नही किया जाता, जब तक कि वह तीसरी बार दंडित करने का आदेश न दे दे।[3] डुजौरिक भी मांसरेट के कथन की पुष्टि करते हुए लिखता है कि 'संक्षेप में इस सम्राट् से दया और उदारता का प्रकाश-सा उद्‌भाषित होता है, यहाँ तक कि उन पर भी जिन्होने कि स्वयं उसके व्यक्तित्व पर चोट की हो'।[4] सम्राट् को नशेबाजी और व्यभिचार से इतनी घृणा थी कि जब उसके प्रधान वाणिज्य आयुक्त ने विवाहित होते हुए एक उच्च वंशीय ब्राह्मण की कन्या का बलात् हरण कर लिया तो कोई प्रभाव, प्रार्थना अथवा प्रस्तावित मुक्ति धन की बडी रकम उसे बचा न सकी और गला घोंट कर मार डाला गया।[5] वह आगे लिखता है, 'यद्यपि अप्राकृतिक अपराधो के लिये इस्लामी कानूनो मे दड का कोई विधान नहीं है, लेकिन फिर भी अकबर, ऐसे अपराधो के अपराधी लोगो को बुरी तरह चमडे के कोड़ो से पिटवाता था।[6]

अकबर ने अपने अधिकारियो, सूबेदारो, न्यायाधीशो और अन्य लोगों को यह निर्देश दे रखे थे कि वे 'लोगों की गलतियो पर नरम दृष्टिकोण

---

१. आईन, भा० ३, पृ० ४३४। २. मीरात, भा० १, पृ० १६६।
३. कमेंटैरियस, पृ० १०६, मीरात, भा० १, पृ० १६४।
४. अकबर एंड दि जेसुइट्स, पृ० १२।
५. कमेंटेरियस, पृ० २१०। ६. वही, पृ० २१०।

अपनाये क्योंकि कभी कभी दंड से वे अधिक कठोर (अपराधी) बन जाते है।'[1]

जब कोई व्यक्ति गवाही देने आवे, तो काजी उसे किसी प्रकार का निर्देश न देकर, उसका बयान शांतिपूर्वक अभिलिखित कर ले। उसके बाद संपूर्ण मुकदमें पर विचार कर कानून के अनुसार फैसला करे। यदि प्रतिवादी के विरुद्ध फैसला (डिगरी) हो, तो उसी समय उसे क्षतिपूर्ति का का आदेश दे, परतु यदि वह दे सकने मे असमर्थ हो, तो उसे तब तक जेल में न रखें जब तक कि उसके लिये वादी स्वयं प्रार्थना न करे। गैर-अदायगी के लिये उस समय तक किसी को जेल न भेजा जावे, जब तक कि दो गवाह यह न कह दे कि उनमे देने की क्षमता है।[2]

सम्राट् की अदालत में सामान्यतया वादियो और प्रतिवादियो के संमुख फरियादो को पढकर सुना दिया जाता था, यदि आवश्यकता होती तो कानूनी विशेषज्ञों से, जो ऐसे अवसरों पर सदा उपस्थित रहते थे, सलाह ले ली जाती थी।[3]

यथा साक्षी शपथ, लिखित दस्तावेज और दिव्य परीक्षा। यदि साक्षी अथवा पक्ष ईसाई हुआ तो वह बाइबिल, मुसलमान हुआ तो कुरान और हिंदू हुआ तो गीता की कसम लेता था।[4]

साक्ष्य के प्रकार और उनकी सबलता

अबुल फजल ने लिखा है कि—'शासकों के मुकदमो में वह शपथ अथवा साक्षी पर विश्वास नही करता था, क्योकि वह धूर्तों की चालबाजी होती है, वरन् परस्पर विरोधी बयानो, मुखाकृति, जांच के उचित तरीको एव दूरदर्शिता से भरे अनुमानों से निष्कर्ष निकालता है।'[5] जब शाहजादा दानियाल इलाहाबाद का सूबेदार नियुक्त हुआ तो उस अवसर पर दिए जाने वाले आदेशों मे एक यह भी था,—'जांच मे गंभीरता और धैर्य से काम ले। लेख पत्रो, साक्षी और शपथ पर ही विश्वास न कर लो। विभिन्न

१. मीरात, भा० १, पृ० १६६।
२. हिदाया, अल्मावर्दी सुलुकुल मुल्क (ओरि० २५३)।
३. बर्नियर, पृ० २६३, लाहौरी, भा० १, पृ० १४९-५०।
४. थेविनो, भा० ३, पृ० १९।
५. अ० ना०, भा० ३, पृ० २५७ (अनु०), पृ० ३७३।

प्रकार से जाँच की जाय और उसके माथे की रेखाओं के उतार चढाव पर भी ध्यान दो।'[1]

मुगल शासनकाल मे अदालतें मस्जिद अथवा काजी के घर पर नहीं होती थीं, वरन् इसी काम के लिये बने सरकारी भवनो में लगती थी। आगरे मे काजी की कचहरी किले के फाटक के बाहर थी, इसी से वह फाटक कचहरी का दरवाजा कहलाता था।[2] कचहरी का दूसरा नाम चबूतरा भी था।[3] ९५५ अल हिजरी (सन् १५८९ ई०) मे यह आदेश जारी हुआ कि हिंदुओ के मुकदमे काजियो द्वारा न सुने जाकर पंडितो द्वारा सुने जायेगे।[4]

कार्यवाही में शीघ्रता

अदालती कार्य मे शीघ्रता मुगल शासन का स्पष्ट एवं प्रमुख लक्षण था। यह तत्कालीन प्रणाली के कारण स्वत- सभव था। छोटे छोटे मुकदमें ग्राम बिरादरी के पचायतो के द्वारा निपटा दिए जाते थे तथा शेष जिला अधिकारियो द्वारा। इस कारण प्रातीय अथवा सामाजिक अदालतो मे जाने वाली मुकदमो की संख्या कम हो जाती थी। इसी कारण न्याय प्राप्ति में द्रुत-गति होनी थी।[5]

अकबर ने अदालतों मे होने वाले विलंब से मुवक्किलो को होने वाले कष्टो को पूर्णतया एहसास किया था। इस कारण २६वे इलाही वर्ष में साम्राज्यिक सदारत (साम्राज्य का धर्मादा एवं न्यायिक विभाग) को पाँच पृथक क्षेत्राधिकारियो मे विभाजित करना आवश्यक समझा, जिससे कि फरियादियो को विलंब के कारण कष्ट न हो।[6]

आयोगों का गठन

२७वे इलाही वर्ष मे सम्राट् ने अपने दरबार के प्रमुख सरदारो को एक प्रकार की प्रीवीकाउंसिल (निजी मत्रणा-सभा) बुलाई और देश के

---

१. आ० ना०, भाग-३ पृ० ७२२ (अनु०) १०७८-७९, तथा पृ० ३९० (अनु०) पृ० ५७७-७८।

२. फिच १८३, टॅवर्नियर, पृ० ७९।

३. मेनरिक, भा० २, पृ० १६०।

४. वही, पृ० १६३।

५. बर्नियर, पृ० २३७-३८।

६. अ० ना०, पृ० ३७२।

शासन के सुधारो के लिये उसने सुझाव माँगे। राजा बीरबल ने प्रस्ताव प्रस्तुत किया—'कुछ न्यायप्रिय और उत्साही पुरुष, प्रत्येक स्थान पर त्रसित जनता की दशाओं और न्याय याचना करने वालो का निष्पक्ष परिचय देने तथा अनिवार्य दुर्घटनाओ के विषय मे रिपोर्ट (प्रतिवेदन) करने के लिये, निरीक्षक नियुक्त किये जायँ।'[1] सम्राट् ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया और उसे कार्यान्वित करने के लिये न्याय प्रशासन को चार सदस्यों की एक समिति के सुपुर्द किया। इस समिति में राजा बीरबल (जो स्पष्टतया उसका प्रधान था), हकीमहुम्माम, शमशेर खाँ कोतवाल और कासिम खाँ सदस्य थे।[2] एक आदेश जारी किया गया कि वे केवल साक्षियो और शपथो से संतुष्ट न हो, बल्कि पूरी गहराई से जाँच करें। इस नवीन व्यवस्था की आलोचना करते हुए अबुल फजल लिखता है कि—'एक पक्ष (अत्याचारी) का काम बहुत ही नीचता का होता था, और दूसरे पक्ष फरियादी की दशा व्याकुलता पूर्ण होती थी। अत्याचारी की घूस और उसकी उच्च हैसियत तथा त्रासित की असहाय अवस्था के कारण यह आवश्यक था कि जाँच मे तनिक भी देरी न हो।[3]

विशिष्ट आयोग

खास खास मामलो की जाँच के लिये विशिष्ट आयोगो की नियुक्ति आलोच्य तीनो सम्राटों के शासनों का समान गुण था।[4] निम्न दृष्टांतो से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है—

इस्लाम शाह सूर के समय में शाह मुहम्मद वली नामक व्यक्ति, जिसका सम्मान सम्राट् भी करते थे, अपनी पुत्री का विवाह सुप्रसिद्ध हकीम मीर शमसुद्दीन से करना चाहता था, परंतु शमसुद्दीन ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। वली इस पर इतना रुष्ट हुआ कि एक दिन हकीम और उसके चाचा को दावत के बहाने बुलाकर उसकी हत्या करवा दी। जब नगर दंडनायक (कोतवाल) ने इस घटना के बारे मे उससे पूछ-ताछ की, तो उसने उक्त षड्यंत्र के प्रति अपनी पूर्ण अज्ञानता प्रकट की।

---

१. अ० ना०, पृ० ३८० (अनु०), ५५८-६०।

२. वही, पृ० ४०५।

३. वही, पृ० ४११।

४. बदायूंनी, भा० १, पृ० ३९१-९४।

कोतवाल ने सपूर्ण घटना का प्रतिवेदन बडी मुहर (मुहरे-अकाबर) लगाकर तैयार किया और खरीते के साथ सुल्तान को भेज दिया । इस्लाम शाह ने इस मामले की पूर्ण जाँच के लिये एक आयोग दिल्ली भेजा, जिसमें मखदूमुल मुल्क और सुल्तानपुर के अब्दुल्लाह थे, जो शेखुल इस्लाम और सद्रूस्सुदुर थे । पूरी जाँच मे दो मास लगे और अत मे वली का अपराध प्रमाणित हुआ ।[1]

खुदादाद वरलास का बेटा मिरजा युलाद एक कट्टर सुन्नी था । उसने एक रात मुल्ला अहमद ताला पर, जो इमामी मत के पोषक थे, आक्रमण करके उसका सर के धोखे मे हाथ काट डाला । उसी रात को अपराधियो की तलाश हुई और वे कोतवाल द्वारा पकड़े गए, उनके कपड़ो पर खून के दाग थे, पर उन्होने अपराध से इकार कर दिया । सम्राट ने खानखाना आसफ खाँ, खुदावंद खाँ और अबुल फजल का एक आयोग नियुक्त किया । अपराधी दोषी पाए गए, और उन्हे ऐसा दड दिया गया जो दूसरो के लिये शिक्षा हो ।[2]

इसी प्रकार मिरजा अजीज कोका, अपने नौकर से दीवान को पीटवा पीटवा कर मरवा डाला था, नौकर को फाँसी दे दी तथा कोका फरियादी को क्षतिपूर्ति करके किसी प्रकार सुलह करके अपनी जान बचानी पडी ।[3]

मिरजा अजीज कोका दाग—विनियमो के विरुद्ध था और जब उसको कार्यन्वियन का आदेश दिया गया, तो उसने धृष्टता की । सम्राट् ने उसे

१ अ० ना०, भा० ३, पृ० ५२७, (अनु०) ८०४ ।

२. अ० ना० भा० ३, पृ० ५२७, (अनु०) ८०४ ।

गुजरात के सद्र हाजी इब्राहीम को अकबर ने पर्याप्त जाँच के बाद रणथम्भौर के किले मे कैद कर दिया था । सिंध के सूबेदार इज्जत खाँ, किसी ब्राह्मण की पुत्री के सतीत्वभग की चेष्टा के घोर लज्जाजनक अपराध में पदच्युत कर दिया गया और उसका मंसब और वेतन जब्त कर लिया गया । कुशासन के कारण गुजरात का सूबेदार मुर्तजा खाँ वापस बुला लिया गया । (रो० एड बे०, भा० १, पृ० १५३) । एक मामले मे अपने कुप्रबध के लिये गुजरात के सूबेदार को पटना के किले मे आजीवन कैद की सजा मिली । (मनूची, भा० १, पृ० १६८) ।

३. अ० ना०, पृ० २६६, (अनु), ३८७ ।

स्वय अपने बाग मे नजर बद कर दिया।[१] खानखाना अब्दुर्रहीम कर्तव्य पालन की उपेक्षा के कारण दक्खिन से वापस बुला लिया गया, और वह एक वर्ष तक बेकार रहा।[२] उसी प्रकार के अपराध के लिये राजा जगन्नाथ की जागीर छीन ली गई।[३]

कुछ मामलो मे 'निर्वासन का दंड भी दिया जाता था। थानेश्वर का हाजी सुलतान, हिंदुओ द्वारा गो-हत्या के अभियोग की शिकायत करने पर बक्खर को निर्वासित कर दिया गया।[४] धृष्ट व्यवहार के लिये अजमेर के ख्वाजा मुइनुद्दीन के पोते शेख हुसेन भी बक्खर को निर्वासित किए गए थे।[५] दाग दिये जाने के विनियम बनने के पश्चात् २०वें इलाही वर्ष मे कई अधिकारी जांच करने अनिवार्य सख्या से कम सेना रखे पाए गए और उनको बंगाल से निर्वासित कर दिया गया तथा जागीर ले ली गई।[६] अबुल फजल का कहना है कि 'यह सम्राट् द्वारा रोष प्रकट करने तथा दड देने का प्रबलतम् उपाय था, क्योंकि सम्राट् की उपस्थिति से हटाया जाना महत्तम अपमान की बात थी।'[७] ऐसा जान पडता है कि बंगाल और बक्खर सरीखे दूरस्थ और अस्वास्थ्यकर प्रदेश अपराधी कर्मचारियों को दंड देने के लिये साम्राज्य के दांडिक प्रभाग थे। एक लेखक की लडकी को बहका कर ले जाने के अपराध मे एक सैनिक पदच्युत और निर्वासित किया गया।[८]

कोडा, अग भग आदि शारीरिक दड भी दिया जाता था। एक शील भंग करने के कारण अकबर की आज्ञा से हाफिज कासिम बधिया कर दिया गया।[९] हत्या की चेष्टा करने के अपराध मे अब्दुर्रहमान का बेटा

---

१. अ० ना०, भा० ३, पृ० १४७, अनु० १०८-२०६।
२. रो० एड बे०, भा० १, पृ० १७६-१८०।
३. वही, भा १, पृ० २४१।
४. खफी खाँ, भा० १, पृ० ६८३-८४।
५. मेनरिक, भा० १, पृ० ४२५।
६. बदायूँनी, भा० ३, पृ० ११८।
७. अ० ना०, भा० ३, पृ० १४८, अनु० २०६-१०।
८. मनूची, भा० १, पृ० २०३।
९. अ० ना०, भा० ३, पृ० ७३३, अनु० १०६३ (शासन का ४२वां वर्ष)।

वरखुरदार कैद किया गया।[1] व्यभिचार के मामले में फँसे रहने के कारण मुहम्मद अब्दुस्समदशीरी कलम का पुत्र शरीफ खाँ पीटा और कैद में रखा गया।[2]

सार्वजनिक अथवा व्यक्तिगत गंभीर अपराध करने पर प्राण दड दिया जाता था। अकवर तो राजद्रोहात्मक षड्यंत्र अथवा वास्तविक विद्रोहों के मामलो मे भी नर्मी से काम लेता था और जव तक कि साम्राज्य की सुरक्षा अथवा सार्वजनिक शाति की दृष्टि से कठोरतम दंड आवश्यक न हो, केवल कैद की ही सजा देता था।[3]

राजद्रोह के मामले मे खाने जमाँ (१५६७ ई०) उसके भाई वहादुर औ८ साथियो को फाँसी दी गई, और दरवार से भाग कर शत्रुपक्ष मे जा मिले, वे हाथी के पैरो तले कुचलवाए गए।[4] कावुल के विद्रोह के समय १२ विद्रोही पकड़े गए। सम्राट् ने उनके मामलो की जाँच की और प्राण दंड की आज्ञा दी, किंतु उनमे से एक मसखरे ने सम्राट् को अपनी हरकतो से प्रसन्न कर लिया और वे सव छोड दिए गए।[5]

पापी, विमोहक अथवा व्यभिचारी को फाँसी की सजा दी जाती थी।[6] अकवर की आज्ञा से एक ब्राह्मण की लडकी के साथ घणित व्यभिचार करने के अभियोग मे मुख्य व्यापार आयुक्त का निर्दयता से गला घोटा गया था।[7]

अपनी माँ की हत्या के अभियोग मे जालौर दुर्ग के दुर्गपाल पहाड सिह को प्राण दंड दिया गया।[8]

---

१. अ० ना०, भा० ३, पृ० ७५८। २. वही, पृ० ५६६।

३. वही, पृ० २९८। ४. वदायूँनी, भा० २, पृ० ९७-१०१।

५. मासरेट, पृ० १०९। ६. मासरेट, पृ० २१०-११।

७. वदायूँनी, भा० २ (अनु०), १२४।
कश्मीर, जो उस समय तक (१५६९ ई०) मित्र राज्य था, के मुक्तियों की हत्या के अभियोग मे दो अधिकारियो को मृत्यु दंड दिया गया। (वदायूँनी, भा २ (अनु०), पृ० १२४)।

८. रो एड वे०, भा० १, पृ० ३५३।

एक स्त्री को प्रलोभन देने और उसके पति की हत्या करने के लिये जला नामक सम्राट् के मुंह लगे व्यक्ति को प्राण दंड दिया गया।[1]

अकबर के प्रधान शिकारी के बेटे सुभान अली ने बंगाल के सूबेदार इस्लाम खां की हत्या करने का प्रयत्न किया, और वह भाग निकला। वह पकडा गया और उसे प्राण दंड दिया गया।[2]

खान आलम के भतीजे होशंक को हत्या के अपराध में प्राण दंड हुआ।[3]

धार्मिक कट्टरता के वशीभूत होकर मुल्ला अहमद की हत्या करने के प्रयत्न और उसे घायल करने के अपराध मे फुलार और उसके साथी हाथी के पैरो मे बाँध कर सारे शहर मे घसीटे गए थे।[4] जनता की फरियाद पर थानेश्वर के एक करोड़ी को प्राण दंड दिया गया क्योकि वह अत्याचारी था।[5]

---

१. अ० ना०, भा० २ (अनु०), पृ० ३६० । २. वही पृ० २७-२८ ।

३. रो० एंड बे०, भा० २, पृ० २११ ।

४. अ० ना०, भा० ३ (अनु०), पृ० ५२७ ।

गुजरात के शक्तिशाली अधिकारी जुझार खां को चंगेज खां की हत्या के अपराध मे उसकी माँ की फरियाद पर हाथी के पैरों के नीचे डाला गया (अ० ना०, भा० ३, अनु०, पृ० ३२) ।

५. अ० ना०, भा० ३ (अनु०), पृ० ७४८ ।

पंचम अध्याय

सैनिक संगठन

सैनिक संगठन

सभी युग मे सेना को राज्य एवं प्रशासन का आधारशिला माना गया है। मुस्लिम शासकों का शासन तो सेना पर ही निर्भर करता था। अतः सभी शासको ने सैनिक संगठन पर विशेष जोर दिया। निरकुश राजतत्र को शक्तिशाली बनाने में शक्तिशाली सेना ने विशेष योगदान दिया है। सोलहवी सदी मे बाबर प्रथम मुगल सम्राट् था, जिसने सैनिक संगठन के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। उसकी सेना मे पैदल, घुडसवार, तोपखाना विशेष महत्वपूर्ण था। इनकी सहायता से उसने बहुसख्यक पैदल सेना तथा अजेय दुर्गो पर विजय प्राप्त करके अभूतपूर्व ख्याति प्राप्त करने मे सफलता प्राप्त की है।

बाबर

मुगलो की सैनिक पद्धति की सर्वाधिक उलझन पूर्ण और जटिल समस्या 'मंसबदारी' पद्धति के सही तात्पर्य से सबंधित है।[1]

बाबर की सेना का सगठन उसके पूर्वज तैमूर के सैन्य सगठन जैसा ही था। तैमूर ने अपनी सेना के सगठन मे महान मगोल सेनापति चंगेज खाँ (११५४-१२२७) का अनुसरण किया था। इसका सगठन पाँच बातो पर आधारित था।[2]

(१) सेना को नियमित रूप से अलग अलग सैन्य दलों या टुकड़ियो मे बाँटना। इस सैन्य दल को तूमान कहते थे। हर तूमान मे १० हजार सैनिक होते थे। (२) कठोर अनुशासन (३) केवल योग्य सेनापतियो का ही चुनाव। ये सैनिक दूर दूर स्थित नियुक्त सेनाओ का स्वतत्र रूप से परिपालन करते थे। (४) बहुत स्वामिभक्त और वीर शाही रक्षको की सैन्य दल का इस सेना का सबसे महत्वपूर्ण अग होना (५) सेना का असाधारण रूप से द्रुतगामी होना।

तैमूर ने अपनी सेना के सगठन मे इसी मगोल सैन्य संगठन को अपनाया था और बाबर ने उसी का अनुकरण किया था। बाबर की सेना शक्ति

---

१. बरनी, पृ० ५०२।   २. स्मिथ, भाग १, पृ० ३६२।

तोपखाने से और आगे बढ़ गई थी। तोपो का प्रयोग उसने ईरानियों से सीखा था। उसके तोपखाने मे ढकवां बंदूकें और भारी भारी तोपें थी।[1]

बाबर को सबसे अधिक अपने तोपखाने एवं बंदूकों पर विश्वास था। 'रशब्रुक विलियम्स' ने लिखा है कि—'अगर किसी एक साधन से हिंदुस्तान को जीतने में बाबर को सहायता मिली तो वह साधन उसका तोपखाना था।'[2]

एक बार उस्ताद अली कुली ने तोप तैयार कर ली तो बाबर उससे पृथक पत्थर चलाने का दृश्य देखने स्वयं पहुँचा।[3] अलीकुली बराबर उन्नत तोपे बनाने का प्रयत्न किया करता था।[4] अन्य तोपो की परीक्षा तथा पत्थर चलाने के दृश्य को देखने के लिय जब भी बाबर को अवसर मिलता तो वह पहुँच जाता था।[5] तोप चलाने के लिये उचित व्यवस्था हेतु मुहसिलों तथा बेलदारों की नियुक्ति का उसने कई स्थानो पर उल्लेख किया है।[6]

बाबर ने तुर्कों, मंगोलो, उजबेको और अफगानो की सैन्य व्यवस्था की बहुत सी महत्वपूर्ण बातें और युद्ध प्रणाली के तरीके भी अपना लिए थे। इन सबका प्रयोग उसने इब्राहीम लोदी और राणा सांगा के विरुद्ध बड़ी सफलता से किया था।[7]

बाबर के काल में मुगल सेना में विभिन्न जातियों के सैनिकों का मिश्रित समूह था। इन सैनिको, और सेनानायको को भूमि तथा जागीर दे दी जाती थी। बड़े बडे अमीरो और सरदारो के पास प्रायः उनकी ही अपनी जाति की सेना होती थी। इस कारण ये अमीर तथा सरदार मुगल शासन का विरोध करते थे। अमीर और सरकार सम्राट् द्वारा निश्चित संख्या मे सैनिकों को नहीं रखते थे, यद्यपि इसके लिये उन्हे निर्दिष्ट जागीर दी गई थी।[8]

---

१. रशब्रुक विलियम्स, पृ० १११।
२. रशब्रुक विलियम्स, पृ० ११२। ३. बाबरनामा, पृ० २२६।
४. वही, पृ० २६२। ५. वही, पृ० २६६-६७।
६ वही, पृ० २२६, ३६, ६५। ७. स्मिथ, पृ० ३६६।
८ मोरलैंड, मांसरेट, आन अकबर्स आर्मी, पृ० ४७, जे० आई० एच० (अप्रैल १६३६) पृ० ५१।

हुमायूँ

हुमायूँ (१५३०-५६) को अपने पिता की शक्तिशाली सेना, सैन्य संगठन तथा युद्ध प्रणाली विरासत मे मिली थी।[1] लेकिन जैसा कि सर यदुनाथ सरकार का कथन है—'तुर्क जन्मजात सैनिक होते हुए भी केवल श्रेष्ठ नेतृत्व में ही लड सकते थे।'[2] हुमायूँ मे सेनापति के गुण नही थे। उनमे अपने पिता की दृढ इच्छाशक्ति और असीम शक्ति की कमी थी। यही कारण है कि अपने अंतर्गत प्रथम श्रेणी की सेना होते हुए भी वह शेरशाह से चौसा (२६ जून, १५३९) और बिलग्राम (१७ मई, १५४० ई०) के दो निर्णयात्मक युद्धो मे पराजित हुआ और भारत से बाहर खदेड़ दिया गया।[3]

हुमायूँ सब ओर चतुर और शक्तिशाली शत्रुओ से घिरा हुआ था, इसलिये उसके लिये यह आवश्यक था कि सैनिक स्थिति पर उसका काबू हो और उसका सामना करने के लिये उसमे दृढ़ता हो। परंतु इन दोनों गुणो की हुमायूँ मे बहुत कमी थी और उसके सामने ऐसी स्थिति उपस्थित हो गई थी, जिसके लिये अत्यत शक्ति और सैनिक चतुरता की आवश्यकता थी।[4]

हुमायूँ की सेना राष्ट्रीय सेना नही थी, न उनकी एक भाषा ही थी, और न उसका एक देश था। वह साहसी लोगो का एक लश्कर था, जिनमे चगतई, उजबेग, मुगल, ईरानी, अफगानी और हिंदुस्तानी सब शामिल थे। यह वास्तव मे क्रांति का युग था। सब राज्यो मे ईरान, समरकद, बुखारा, हिसार, बल्ख और हिंदुस्तान में राजसिहासन लड़ने मरने वालो के हाथ मे या ऐसे ही लोगो के वंशजो के हाथ मे थे। ऐसी परिस्थिति मे हजारो ऐसे उपद्रव हो सकते थे, जिनके कारण प्रपंच और दलबदी की आग धीमे धीमे सुलगती हुई महाज्वाला का रूप धारण कर ले।[5]

हुमायूँ की सेना मे उसके पिता (बाबर) की तरह विभिन्न जातियों का मिश्रित समूह था। इन सेनाओ को रखने वाले सेनानायको को जागीरें दी

१. स्मिथ, भा० १, पृ० ३६२।
२. सरकार, मिलेटरी हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० ३९।
३. वही पृ० ४१।
४. आबिद, पृ० २१९।
५. एर्सकिन, पृ० २०४।

जाती थी। इस कारण बड़े अमीरो तथा सरकारों के पास प्राय उनकी ही जाति के सैनिक होते थे। इस कारण मौका पाकर वे विद्रोह कर देते थे। सम्राट् को जब सेना की आवश्यकता पड़ती थी तो वे अमीर और सरदार कृपको, श्रमिको, जुलाहो, शिल्पियो तथा छोटे छोटे व्यापारियो को एकत्र करके उन्हे सैनिक वेपभूषा पहना कर अपनी एक सेना बना लेते थे और उनके आधार पर वेतन लेते थे। इन्ही अप्रशिक्षित सैनिको को सम्राट् के पास भेजते थे। इस सेना मे सैनिक प्रशिक्षण और सैन्यगुणो का सर्वथा अभाव रहता था और वह सेना एक विशाल भीड़ के समान होती थी, जिसका संचालन करना सेनानायकों के लिये दुष्कर होता था। इन दोषों का निवारण अकबर ने किया।[1]

हुमायूँ की सैनिक कमजोरी के कई कारण थे। वास्तव मे हुमायूँ शांतिप्रिय सम्राट् था। युद्ध मे शत्रु की सैनिक शक्ति का संतुलन नही कर पाता था।[2] निष्कासन के पश्चात् हुमायूँ मे कुछ सक्रियता तथा बुद्धि आई। अफगानिस्तान तथा बदख्शाँ के सैनिक कार्यो से उसके इस परिवर्तन की स्पष्ट झलक मिलती है। किंतु अधेड़ अवस्था मे प्रारंभिक जीवन के सेना को उखाड़ फेंकना असभव था। शेरशाह द्वारा उसकी पराजय से उसकी सैनिक अयोग्यता का ढिंढोरा पीटना हमारी भूल होगी। शेरशाह चतुर तथा बुद्धिमान सेनानायक था। जैसा कि डा० कानूनगो लिखते है—'वह अपनी बरावरी के शत्रुओं से लोमड़ी की चतुरता तथा कमजोरो पर शेर का दभ तथा गरज प्रदर्शित करता था।'[3]

हुमायूँ का सबसे बडा गुण उसका साहस था। अपनी सैनिक शक्ति से ही उसने काबुल, कधार तथा हिंदुस्तान के अपने खोये राज्य को पुनः प्राप्त किया।[4]

हुमायूँ अपनी वापसी के समय जो सेना अपने साथ लाया था, वह ऐसे विरोधी तत्वों का मिश्रण था, जिसने देश पर पूरा अधिकार के अस्थायी उद्देश्य की पूर्ति के पश्चात् स्वभावतः शक्ति और सहायता का स्रोत बनने की

---

१. मोरलैंड, पृ० ४९, जे० आई० एच० (अप्रैल, १९३६), पृ० ५१।
२. डा० कानूनगो, पृ० १००। ३. वही, पृ० १०१।
४. स्मिथ, पृ० ३८१।

अपेक्षा एक खतरा खड़ा कर दिया। ईरानी और तुर्की समुदायों की पारस्परिक स्पर्धा और अफगानो की विद्रोही भावना ने एक बार तो साम्राज्य के अस्तित्व को ही खतरे मे डाल दिया।[1]

शेरशाह

शेरशाह ने अपनी स्वाभाविक चुस्ती के साथ सेना मे सुधार शुरू किए और शीघ्र ही सैनिक व्यवस्था को पूर्णतया परिवर्तित करके उसे एक नवीन रूप दिया।[2] परमात्माशरण ने लिखा है कि यदि अब्बास खाँ का कथन अक्षरश: स्वीकार किया जाय, तो इस सुधार का आधारभूत लक्षण था—सेना का नियंत्रण और निरीक्षण और कदाचित केंद्रीय सेना की भर्ती को पूर्णत: शेरशाह द्वारा अपने हाथों में केंद्रित कर लेना। उसने अपने प्रातः-कालीन दैनिक कार्यक्रम मे कुछ समय सैनिकों की भर्ती करने के लिये निश्चित कर रखा था। उस समय वह उनके शारीरिक गठन एवं अन्य आवश्यक अर्हताओ को स्वय देखता था और तत्काल उनकी नियुक्ति, पद, वेतन आदि निश्चित करता था।[3]

शेरशाह ने दाग प्रणाली को फिर प्रचलित किया, इस योजना को कार्यान्वित करने का उसका उद्देश्य जागीरदारो को, जो अपने सैन्यदल स्वयं भर्ती करते थे तथा धोखे बाजी से रोकना था। शेरशाह इस दाग देने के

१. परमात्माशरण, पृ० २४५-४६।
लोदी शासको की सैनिक पद्धति सगठन मे जितनी सरल थी, उतनी ही निर्बल और जीर्ण भी। अलाउद्दीन खिलजी के जो सुधार किये थे, मतिमंद और आराम तलब फिरोजे तुगलक ने उन्हे त्याग दिया था। तब से दिल्ली के सुल्तानो की सेना आवश्यका के समय कुलीनो तथा जागीरदारो द्वारा एकत्रित हर प्रकार के व्यक्तियो का केवल गिरोह होता था। ऐसा जान पडता है कि सम्राट् स्वय सेना की भर्ती नहीं करता था और उसके निरीक्षण, अनुशासन अथवा प्रशिक्षण की भी कोई व्यवस्था विद्यमान न थी। (शेरशाह पृ० ३६१)।
२. शेरशाह, पृ० ३६२-६३, इलियट, भा० ४, पृ० ४२५, अब्बास, पृ० १०४-१०५, इलियट भाग ४, पृ० ४११-४१२।
३. परमात्माशरण, पृ० २३९-४०।

नियम का पालन बड़ी कठोरता से करता था, और जब तक उनके घोड़े दाग नहीं दिए जाते थे, वह सैनिकों को वेतन नहीं देता था।[1]

शेरशाह की सेना सुसंगठित तथा सर्वोत्तम सेना थी। इसकी सेना में घुड़सवारों का महत्व अधिक था। इसकी सेना के चार अंग थे। वह प्रायः अफगानों को ही घुड़सवार सेना मे रखा था। घुड़सवारों के बाद बंदूकचियों का महत्व था। इसका हस्तिदल भी अच्छा था परंतु उसका तोपखाना विशेष महत्वपूर्ण नहीं था, शायद विकास उसका बाकी था।[2]

शेरशाह की सेना दो वर्गों मे विभक्त थी—राजकीय सेना और जागीरदारों का सैन्यदल। प्रांतों के सूबेदारों और जागीरदारों के लिये आवश्यक था कि वे अपनी जागीर और पद (मन्सब) के अनुसार कुछ अश्वारोही रखें। देश की अस्थिर राजनीतिक अवस्था के कारण यह आवश्यक था कि साम्राज्य भर मे कुछ छावनियाँ बनाई जांय, और उनमे पर्याप्त सेना रखी जाय। सीमांत क्षेत्रों एवं सामरिक महत्व के स्थानों से अधिकतम सेना अवश्य रखी जाती थी।[3] गक्खरों और काश्मीर मे सुरक्षा के लिये हैबत खाँ नियाजी (आज़म हुमायूँ) की अधीनता मे रोहतास के किले में २०,००० अश्वारोही रखे गए थे।[4] किंतु सेना की संख्या के संबंध मे इतिहासकारों में मतभेद है। एक फौज में कितने अश्वारोही रहते थे इसका कोई संकेत प्राप्त नहीं है।[5]

किंतु यह निश्चित जान पड़ता है कि इस शब्द से एक रेजीमेंट में अश्वारोहियों की एक निश्चित संख्या का बोध होता था, क्योंकि बन्दूकचियों का तात्पर्य पैदल सेना से था।[6] किंतु शाही स्थायी सेना की संख्या निश्चय ही १,५०,००० अश्वारोही, २५,००० बंदूकची और तीरंदाजों की बताई गई है। यदि प्रत्येक फौज की संख्या की अनुमानित औसत १०,००० अश्वारोही मानी जाय तो छावनियों में, जिनकी संख्या १५ थी,

१. परमात्माशरण, पृ० २१९।
२. इ० एंड डा०, शेरशाह, पृ० ४१६-१७, मुस्तफी, पृ० ५५१।
३. इ० एंड डा०, शेरशाह, पृ० ५५१।
४. वही, पृ० ४१९।
५. परमात्माशरण, पृ० १०७, १०८, २२४-२५।
६. वही, पृ० १४२-४२।

बँटी हुई फौजों की संख्या मोटे तौर पर १,५०,००० अश्वारोही होगी। इस प्रकार स्थायी सेना की संख्या लगभग ३,००,००० अश्वारोही और उसके अतिरिक्त लगभग १,००,००० पैदल सेना रही होगी।[1]

यह मानना भी उचित ही होगा कि शेरशाह के उत्तराधिकारियो द्वारा कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन न तो सेना के सगठन मे किया गया, और न उनकी संख्या में, केवल इस्लाम शाह ने प्रत्येक सरकार के लिये ५,००० अश्वारोहियो की सख्या निर्धारित की थी।[2]

सेना के दोष को दूर करने के लिये शेरशाह ने बख्शी की नियुक्ति की, जिसे बख्शी-ए-लश्कर कहते थे। उसका कार्य आरिज-ए-मुमालिक से मिलता-जुलता था। सभी सैनिको को नकद वेतन देने की व्यवस्था की गई, वही वेतन का वितरण भी करता था। उसके अधीन अनेक बख्शी रहते थे। ये लोग सैनिको की भर्ती के समय उनकी हुलिया लिखते थे और यदि वे घुडसवार सेना मे भर्ती होते थे तो उनके घोडों को दगवा दिया जाता था। समय-समय पर सैनिको को एकत्रित करके उनका निरीक्षण करता था।[3]

सवार सेना

घुडसवार सेना की संख्या काफी थी। वह मुगल सेना का सुसज्जित और शक्तिशाली अग थी। इस सेना मे मनसबदारो के अधीन सैन्य दल और केंद्रीय सरकार द्वारा सीधे भर्ती किए अहदी होते थे। कभी कभी यह समझ लिया जाता था कि अधीन सामत जो सेनाओं मे भेजते थे, वे इस सेना का एक अलग अंग होती थी। यह धारणा भ्रमात्मक है।[4] अधीन सामंत भी मनसबदारो के समान समझे जाते थे तथा उनके साथ यही नियम लागू किया जाता था, जैसे पशुओ को दागना, घोडो की किस्मे, सामाजिक निरीक्षण आदि। समय समय पर सैनिक निरीक्षण हुआ करते थे। मनसबदारो, घुडसवारों को अरब, ईराक और ईरान के घोड़े नही दिए जाते थे। सैनिको की सुरक्षा के लिये शिरस्त्राण कवच, लोहे के पैतावे आदि दिए जाते थे और घोडों की गर्दन, छाती पीठ की भी

१. बदायूँनी, भाग १, पृ० ३८१।
२. वही, पृ० ३८४।
३. शर्मा, पृ० १२१-२२।
४. वही, पृ० १४०।

बचाव की व्यवस्था की जाती थी।[1] अकबर के अश्वारोही सेना की क्षमता और उसकी तेज गतिशीलता की सराहना न केवल समकालीन भारतीय लेखको ने ही की है, वल्कि यूरोपीय विद्वानो ने भी की है।[2] अकवर के पास एक शक्तिशाली ऊँट सेना भी थी जो देश के रेगिस्तानी इलाकों में युद्धो मे वहुत उपयोगी सिद्ध होती थी।[3]

भ्रष्टाचार को दूर करने के लिये घोडो को दागना वहुत ही आवश्यक समझा गया। इसे दाग-ओ-महल्ली अथवा केवल दाग कहते है। हर सैनिक का निरीक्षण के समय हुलिया लिखना जरूरी समझा जाता था। मनसवदार अपने अधीन सैनिको के घोड़ो का तीसरे साल निरीक्षण करता था अगर ऐसा नही करता तो मनसवदार के जागीर के दसवें भाग को काट लिया जाता था जिसे नकद वेतन मिलते थे उसे १८ माह वाद अपने घोडे निरीक्षण के लिये प्रस्तुत करना पड़ता था। प्रथम सैनिक निरीक्षण के वाद जो अन्य निरीक्षण होते थे उन्हे दाग-ए-मुकर्रर (दाग की पुनरावृत्ति) कहते थे।[4]

प्राचीन मध्य एशियाई प्रचलन के अनुसार अंत तक प्रधानत. अपने अनियमित प्रकार के अश्वारोही सैनिको पर ही निर्भर करता रहा।[5]

पैदल सेना

यह वंदूकचियों और दाखिलियो को छोडकर पैदल सेना मुगल सेना का सवसे वडा भाग होती थी। उनका अपना एक मुंशी, एक खजाची और एक दरोगा अलग होता था। उच्च पदस्थ वदूकचियों मे से प्रत्येक को २६० दाम से ३०० दाम तक प्रतिमाह वेतन मिलता था लेकिन और शेप को ११० से १५० के वीच। अकवर की सेना मे कुल १२,००० वंदूकची थे।[6] इन्हे पाँच श्रेणियों मे बाँट दिया गया था और प्रत्येक श्रेणी को

१. आईन, भाग १, पृ० ११८-१९।

२. कमेटेरियस, पृ० ८८-८९।

३. वही, पृ० १४०।

४. आईन, भाग १, पृ० १९१-९२, २४२, २६७।

५. इर्विन, पृ० ५७।

६. आईन, भाग १, पृ० १८८, तया भाग १ (द्वितीय सं०), पृ० २६१।

तीन और छोटी श्रेणियो मे विभाजित कर दिया गया था। प्रथम श्रेणी के बंदूकचियो का १३० से १५० दाम वेतन होता था, द्वितीय का २०० से २२०, तृतीय का १७० से १९०, चौथी का १४० से १६० और पाँचवी का ११० से १३० दाम तक।[1]

बंदूकचियो के वाद दाखिली सैनिक आते थे, इनकी भर्ती केंद्रीय सरकार करती थी, वही वेतन भी देती थी। इनको उच्च मनसवदारो के पास रखा जाता था। ये ज्यादा पैदल सैनिक होते थे। इनमे से एक चौथाई बंदूकची होते थे और शेष तीरदाज, बढ़ई, लुहार, भिश्ती और वेलदार आदि।[2]

अबुल फजल जिन अन्य सैनिको का उल्लेख करता है वे थे—दरवान, खिदमतिया, मेवरा, शमशेरवाज, पहलवान, चेला और वलिकया।[3]

स्मिथ ने लिखा है कि—'अकबर की पैदल सेना अंत तक निम्नकोटि की बनी रही, इस कारण उसे अपने अश्वारोहियो पर आधारित रहना पडा।'[4]

तोपखाना

अकवर का कोई अलग से तोपखाने का वजीर या सेनापति नही था। यद्यपि अबुल फजल लिखता है कि, 'तुर्की को छोड़कर किसी अन्य देश के पास भारत से अच्छा तोपखाना नही था फिर भी यह कहना ही पड़ेगा कि मुगल तोपखाना बहुत ही सामान्य और अक्षम था।'[5] मुगल तोपखाने मे बडी बडी तोपें थी, इन्हे कई एक हाथी और एक एक हजार जानवर खीचते थे। यह बारह बारह मन के गोलें फेकती थी, लेकिन यह तोपे केवल किलो के घेरो के समय ही काम आती थी, खुले युद्धो मे इनका प्रयोग नही होता था।[6]

अकवर ये यांत्रिक कलाओ को चलते हुए देखने मे वडा आनंद का अनुभव करता था, और बहुधा वह स्वयं उन्हे चालित करता था। तोपो को ढालने में तथा तोडदार बंदूको के निर्माण पर वह विशेष ध्यान देता

---

१. आईन, भाग १, पृ० २६०-६१।
२. वही, पृ० २६०-६१।
३. वही, पृ० २६२-६४।
४. स्मिथ, पृ० ३९४।
५. आईन, भाग १, पृ० २६४-६५।
६. इर्विन, पृ० १७८।

था। वह अत्युत्तम निशानेबाज था, और उसने विपुल संख्या मे जानवरो का शिकार भी किया था। उसके भाग्यशाली निशाने से, जब उसने जयमल पर गोली चलायी थी, चित्तौड का पतन हुआ था[1] किंतु इन सब प्रयत्नो के होते हुए भी, वह कभी साधारण तौर से कुशल तोपखाना अथवा अच्छी पैदल सेना आयोजित न कर सका।[2]

अबुल फजल गजनालों और नर नालों का विशेष उल्लेख करता है, जो कूच के समय शाही सेना के साथ रहती थी।[3] गढियो के घेरों में और नाविक युद्धो में प्रयोग होने वाली तोपें अलग होती थीं। बंदूकचियों की सेना अलग रहती थी, उसे तोपखाने का अंग नहीं समझा जाता था।[4]

अकबर तोपों की ढलाई, उनकी किस्मो और बनावट में सुधार आदि मे व्यक्तिगत रुचि लेता था। वह कई तोपों का आविष्कार किया, एक तोप ऐसी बनवाया जो समय पड़ने पर अलग अलग कर दी जाती थी। उसके एक दूसरे आविष्कार से सम्राट् १७ तोपों को ऐसे जोड़ देता था कि उन्हे एक साथ ही एक ही तीली से दागा जा सकता था।[5] तोपों को अब अधिकतर पहियेदार गाड़ी पर लगाया जाने लगा था, बंदूकों की नालो की लंबाई इतनी बढाई जाने लगी थी कि उनकी कुल लंबाई ६ फीट १॥ इंच होने लगी थी और लकड़ी की कांटियों पर लगी गजनालो और शुतरनालों की सख्या बढा दी गई थी। इनका वजन कभी कभी ५० पौंड तक का होता था और उनसे ३-४ औंस की गोलियाँ चलती थी।[6] उस्ताद कबीर और हुसैन अकबर के काल के प्रसिद्ध बंदूक बनाने वाले थे।[7]

हाथी

अकबर के पास कई हजार हाथी थे। इनमे अधिकतर युद्ध में काम आते थे। ये सात श्रेणियो मे विभाजित थे। हर श्रेणी के हाथियो को फिर उनके डील डौल के अनुसार तीन और श्रेणियो में बाँट दिया जाता था।[8] हाथी अकबर की सेना के एक महत्वपूर्ण अंग थे। वे भारी भारी तोपे ले जाते थे और शाही सेना को नदी नाले पार करने मे मदद करते थे। शाही

---

१. स्मिथ, पृ० ३९४। २. वही, पृ० ३९४-९५।
३. आईन, भाग १, पृ० २६७। ४. आशीर्वादीलाल, पृ० २५७।
५. स्मिथ, पृ० ३९५। ६. सरकार, पृ० ५५।
७. आईन, भाग १, पृ० १११-२३। ८. सरकार, पृ० ५७।

झडो और नगाडो को लेकर चलते थे, युद्ध मे इन हाथियो को पूर्ण रूप से अस्त्र शस्त्रो से सुसज्जित कर दिया जाता था। उनकी बचत के लिये उनके मस्तक पर लोहे का तवा अथवा खाल लपेट दी जाती थी और उनके पैर एव शरीर के अन्य भाग भी भरसक सुरक्षित कर दिए जाते थे।[1] हर हाथी अपने सुड और दातो मे एक तलवार और दो कटारे लेकर चलता था। हर एक के हौदे में चार सैनिक रहते थे। हाथियों का प्रयोग अधिकतर फाटक तोडने में किया जाता था।[2]

अकबर ने हाथियो का पर्याप्त प्रयोग किया, जिन्हे वह बडी सख्या मे पाले हुए था। उनकी पीठ पर वह धनुर्धारियो अथवा बंदूकचियो का उपयोग करता था।

नौ सेना

मुगलो के पास सही अर्थों मे नौ सेना थी ही नही। अकबर के पास केवल बडी बड़ी बहुत सी नावे थी, जिनपर भारी भारी बोझ यहाँ तक कि हाथी भी लादकर ले जाया जा सकता था। जुलाई १५९४ ई० मे रावी के तट पर एक बड़ी नाव बनाई गई थी। इस बजरे के ढाँचे की लंबाई जिस पर यह नाव बनाई जाने वाली थी, ३५ इलाही गजी थी। इसे बनाने मे २९३६ साल और नाग के शहतीर तथा ४३८ मन २ सेर लोहा और १४० बढई, लुहार तथा अन्य लोग लगे थे। सम्राट् यह दृश्य देखने गया था। एक हजार लोग इसे खीचने मे लगे थे। इसे दस दिन मे सूखी भूमि से पानी मे उतारा गया था और बंदर लहारी भेज दिया गया था। पानी की कमी के कारण इसमे बडी परेशानी हुई थी।[3] १५९६ ई० मे एक और बजरा बनवाया। १५९४ के बजरे से परेशानी हुई थी पानी की कमी के कारण, इसलिये अकबर को यह सूझी कि 'इस बाजरे को एक ऐसी बड़ी नाव के ऊपर बनाया जाय जो १५,००० मन से भी अधिक वजन ले जा सके और इस तरह उसे सरलता से बंदर पर ले जाया गया। इस बजरे को बनाने मे ५ महीने लगे थे। यह ३७ गज लंबा था और इसके निर्माण मे १६, ३३८ रु० खर्च हुए थे। इसे सुरक्षित रूप से बंदर लहारी तक ले आया

१. आईन, भाग १, पृ० १२४, १३१, २४६, कमेंटरियस, पृ० ७८।
२. इर्विन, पृ० १७५।
३. अकबरनामा, भाग ३. पृ० ६५१-५२।

गया था। दर्शक इसे देखकर चकित रह गए थे।[1] ये बडी बड़ी नावें और बजरे केवल अंतर्देशीय आवागमन और भीतरी युद्धो के लिये ही उपयुक्त थे।[2] अकबर के पास सामुद्रिक यात्राएँ करने के लिये योग्य जहाज नही थे जो जहाज थे भी वह केवल भारत के मुसलमानो और शाही परिवार के लोगो की हज यात्रा के लिये थे, इसलिये उसे पुर्तगालियो का मुँह ताकना पडता था।'[3]

सैनिकों का वेतन

आईने अकबरी द्वारा एक सैनिक का मासिक वेतन सुगमता मे निश्चित किया जा सकता है। इसमे लिखा है कि 'एक अस्व' (एक घुडसवार) को निम्नलिखित दरो के अनुसार वेतन दिया जाता था। अगर उनका घोडा ईराकी होता था तो उसे तीस रुपया प्रतिमाह वेतन दिया जाता था, अगर मुजन्नास हुआ तो पच्चीस रुपया, तुर्की हुआ तो बीस रुपया, पाबू हुआ तो अट्ठारह रुपया, ताजी हुआ तो पद्रह रुपया और जगली हुआ तो बारह रुपया।'[4] सितंबर १५९५ ई० मे जारी हुए एक हुक्म के अनुसार मुगल अफगान और हिंदुस्तानी सैनिक के लिये एक सी वेतन दरो का निर्धारण किया गया था। यह इस प्रकार था कि एक घोड़े के सवार को १५ रुपया प्रतिमाह, दो घोडे के सवार के लिये २० रुपया और तीन घोडे के सवार के लिये २५ रुपया। राजपूतों के लिये स्वीकृति वेतन क्रम यह थे कि दो घोडे वाले सवार के लिये १५ रुपया प्रतिमाह और तीन घोडे वाले के लिये २० रुपया प्रतिमाह।[5]

सेना की शाखाएँ

अकबर की सेना में पैदल, घुडसवार और हाथी सेना व तोपखाने तो थे किंतु नौ सेना न थी। इसमे सवार सेना सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी।[6]

अकबर की नौ सेना उस समय पाश्चात्य देशो के समुद्री बेड़े के समान, कोई नौ सेना या जल सेना नही थी। समुद्री बदरगाहो पर जहाज बनाए जाते थे। कभी कभी यह जहाज बडी बडी नदियों के मुहानो पर बसे हुए

१. अकबरनामा, भाग ३, पृ० ७१५। २. आईन, भाग १, पृ० २८९-९२।
३. स्मिथ, पृ० ३९५-९६। ४. आईन, भाग १, पृ० २६०।
५. अकबरनामा, भाग ३, पृ० ६७२। ६. स्मिथ, पृ० ३९४।

नगरो और बंदरगाहो की सुरक्षा करते थे। इन जहाजों मे युद्ध पोत नहीं होते थे, वे नौ सेना के अंग थे। सारी नौ सेना का अधिकारी 'मीरवहर' कहलाता था।[1]

सैनिक शक्ति

ब्लौच मैन के अनुसार अकवर की एक ऐसी स्थायी सेना जिसका वेतन और सज्जा का खर्च शाही खजाने से दिया जाता था, २५,००० से अधिक नही थी। लेकिन वाद की खोजों से यह संख्या काफी कम सिद्ध हुई। आईने अकवरी मे जो तालिका दी हुई है, उसमे तथा तवकाते अकवरी में केवल जात मनसव का ही उल्लेख है और जात मनसव के मनसवदारो के अतर्गत वास्तविक सेना का कोई अनुमान तक नही होता।[2] फादर मांसरेट को प्रथम श्रेणी का समकालीन विश्वस्त लेखक माना जाता है। वह १५८१ ई० की कावुल की चढाई मे अकवर के साथ रहा था। मासरेट लिखता है कि—'अश्वारोही सेना को हर तरह से सेना का जान समझा जाता था। इसलिये साम्राज्य की रक्षा के लिये एक स्थायी, सक्षम और जहाँ तक वन पडे पूर्ण रूप से सुसज्जित अश्वारोही सेना रखने के लिये सम्राट् खर्च मे कोई कोर कसर नही करता। पैंतालिस हजार अश्वारोही, पांच हजार हाथी और कई हजार पैदल सेना थी, जिन्हे सीधे शाही खजाने से भुगतान किया जाता था।' इनके अतिरिक्त मनसवदारो के अधीन भी सेना रहती थी।

डा० स्मिथ इस स्थायी ४५ हजार सवार सेना को गलती से वह सेना लेते हैं जो अकवर के साथ कावुल की चढाई पर गई थी और लिखते हैं कि '१५८१ ई० की वह चढाई असाधारण थी क्योंकि साम्राज्य को वडा खतरा उपस्थित हो गया था। इसलिये वह असगत रूप लिख वैठते हैं कि 'यह वात निश्चित रूप से मानी जा सकती है कि सामान्य वर्षो मे अकवर इतनी वडी सेना का, जितनी उसके भाई के आक्रमण को विफल करने के लिये सुसज्जित की गई थी, खर्च नही उठाता था।'[3] इस कावुल की चढाई मे मासरेट के अनुसार ५० हजार सवार सेना अकवर के साथ थी, जो उसकी स्थायी ४५ हजार की सवार सेना से भी पाँच हजार अधिक

१. शर्मा, पृ० २९८। २. स्मिथ, पृ० ३५९।
३. स्मिथ, पृ० ३६१।

थी।[1] अगर मनसबदारों के अंतर्गत भी इतनी सेना मान ली जाय तो अकबर के काल मे सवार सेना की संख्या ६०,००० कूती जा सकती है।[2]

युद्ध प्रणाली

अकबर, साम्राज्यिक शिविर की भारभूत सामग्री से मुक्त होकर द्रुतगति से संचालित सैनिक आघातों के महत्व को जानता था और उसने गुजरात को अपनी नौ दिनो की अद्भुत यात्रा से और उक्त प्रांत मे पहुँचने पर वीरता पूर्ण हाथो हाथ युद्ध द्वारा मर्मांतक आघात करने का उल्लेखनीय उदाहरण प्रस्तुत किया था। किंतु सामान्यतः वह प्रचलित प्रणाली को अपनाने मे, और कूच करते समय अपनी सेना पर दरबार के समस्त साज सामान को और दुस्वप्न की भाँति सताने वाले चलते फिरते नगर को लादने मे सतुष्ट रहता था। वह ऐसे कार्य मे खतरे मोल ले सकता था, कारण कि उसने पर्याप्त रूप से सचेत शत्रु का सामना कभी नही किया था जो गतिशील और साहसी बनकर अवरोचित लाभ उठा सकता था।[3]

फादर मासरात, जो उसके सबसे अधिक सावधानी से आयोजित सैन्य परिचालन, काबुल अभियान मे साथ गया था, साम्राज्य के शिविर की विशालता और वैभव का सजीव चित्रण करता है। स्वामी के साथ जाने वाली चुनी हुई बेगमे हथिनियों पर सजे हुए पिंजरों में बंद ले जाई गई थी। सफेद छत्रियो मे ऊँटों पर सवार परिचारिकाएँ अपनी अपनी स्वामिनियो के साथ थी, वह जुलूस गंभीर मुख उच्चवर्गीय अधिकारियो के नेतृत्व में पाँच सौ व्यक्तियो की गारद से रक्षित था। हाथियो और ऊँटों पर राजकोष ले जाया गया था। तोपखाने की सामग्री गाडियो पर थी और शाही साज सामान खच्चरों पर लादा गया था।[4] राजकीय पत्रादि भी सेना के साथ थे। घोडों पर सवार आगे की देखरेख करने वालो को राहगीरों को रास्ते से एक तरफ हटा देने के लिये आगे भेज दिया जाता था। सम्राट् के पीछे उसकी बेगमे रहती थी। रक्षा के लिये ५०० बहुत ही गंभीर और शालीन मुख मुद्रा वाले वृद्ध व्यक्ति तैनात रहते थे।[5]

---

१. कमेंटेरियस, पृ० ८३।   २. स्मिथ, पृ० ३६३-६४।

३. स्मिथ, पृ० ३६५ (अनु०), पृ० ३६५।

४. कमेंटेरियस, पृ० ५८०।   ५. आईन, भाग १, पृ० ४७।

अबुल फजल कहता है कि जहाजबानी ने सैनिकों के लिये शिविर स्थापित करने की प्रशंसनीय प्रणाली आविष्कृत की है, जो उनके लिये बहुत सुखदायक है। खुले मैदान में वे शाही रनिवास, दिवान-ए-आम और नक्कार खाना स्थापित करते है, जिनकी कुल जगह लंबाई में १५३० गज है। उनके दाहिने, बायें और पार्श्व में ३६० गज का खुला मैदान है जहाँ रक्षकों के अतिरिक्त अन्य किसी को प्रवेश प्राप्त नही था। इसी स्थान मे १०० गज की दूरी पर बाएं और मध्य में मरियम मकाना (राजमाता) के गुलबदन बेगम (अकबर की फूफी), तथा अन्य साध्वी महिलाओं के खेमे है, और शाहजादा दानियाल के खेमे, उसके दक्षिण में शाहजादा सलीम, और वाम पक्ष में शाहजादा मुराद के खेमे गड़े हैं। खेमे के कुछ पीछे दफ्तर और कारखाने स्थापित है। खेमे के पीछे ३० गज पर चारो कोनों पर बाजार स्थापित है। बाहर की ओर चारो तरफ, अपनी अपनी पद मर्यादा के अनुकूल अमीरों के खेमे स्थापित है।[1]

जैसे ही किसी चढाई अथवा युद्ध का निर्णय लिया जाता था, वैसे ही उसके लिये जिन लोगो को चुना जाता था, उन्हें मीरबख्शी एक नियत स्थान पर शामिल होने की सूचना भेज देता था। जिस पर मनसबदार को सेनापति बनाया जाता था। वह चढाई पर जाने के पहले सम्राट् से चढ़ाई अथवा युद्ध की योजना पर विचार विमर्श कर लेता था।[2] युद्ध क्षेत्र में सेना को कैसे खडा किया जाता था इस पर मासरेट ने लिखा है—"अश्वारोहियो के दलो को अर्द्धचंद्राकार व्यूह मे खडा किया जाता था। उसके तीन भाग कर दिए जाते थे। एक को बाई ओर, दूसरे को बीच मे, तीसरे को दाहिनी ओर रखा जाता था। सवारों के पीछे पैदल सेना रहती थी और उनके पीछे हाथी, जिन्हे दूसरी सेनाओ के आगे कभी बढने नही दिया जाता था।[3]

सामान्यत: उसके तेज सवार और द्रुतगामी, बंदूकची ही मिलकर युद्ध का फैसला कर देते थे। इस प्रकार अकबर किसी एक विशेष युद्ध प्रणाली से बँधा हुआ नही था और वह अपनी चढाइयो और युद्धो मे वास्तविक स्थिति का अध्ययन कर उसके अनुसार अपनी युद्ध प्रणाली तय करता था।[4]

---

१ कमेंटेरियस, पृ० ७८-७९। २. स्मिथ, पृ० ३६७।
३ कमेंटेरियस, पृ० १३९-४०। ४. वही, पृ० १४१।

अकवर न केवल संभावित युद्ध क्षेत्र की स्थिति को ही पूर्ण रूप से हृदयगम कर लेता था, वल्कि युद्ध समाप्त हो जाने पर किसी एक कुदाल और विश्वसनीय सेनापति से पूरे युद्ध क्षेत्र का निरीक्षण भी करवाता था। वह ऐसा इसलिये करता था ताकि उसे पता चल सके कि युद्ध के समय उसके सैनिक और सेनापति कैसे लड़े थे। जो अधिकारी और सैनिक खूब जमकर मोर्चा लेते थे, उन्हें पुरस्कृत कर उनकी पद-वृद्धि कर दी जाती थी। लेकिन जो लोग ढिलाई दिखाते थे उनकी भर्त्सना कर उनकी कमी के कारण पद-अवनति कर दी जाती थी।[1]

अब्बास ने यह भी लिखा है कि शेरशाह के पास युद्ध के लिये ५,००० हाथी थे, और उनका प्रयोग केवल भारी तोपों अथवा इसी प्रकार के अन्य सामानों को खींचने के लिये किया जाता था। सूर शासकों के पास शक्तिशाली तोपखाने थे, इसके प्रमाण प्राप्त हैं। तारीख रसीदी एवं अन्य इतिवृत्तों से ज्ञात होता है कि विलग्राम, कालिंजर और रायसीन के युद्धों में शेरशाह ने तोपों का इस्तेमाल किया था। इस्लाम शाह को जब दिल्ली मे पता लगा कि गाडियो को खीचने वाले बैल ग्वालियर मे पीछे छूट गए है तो उसने सेना के १००० से २००० तक आदमी प्रत्येक भारी तोप खीचने के लिये लगा दिए थे।[2]

मनसबदारी प्रथा का उद्भव तथा विकास

मनसबदार अथवा सैनिक अधिकारियो के कुछ निश्चित रकम अथवा भत्ता लेकर अनुपातत: अनिवार्य रूप से सैनिको का योगदान देने की जिम्मेदारी लेने के अर्थ में मनसबदारी पद्धति निश्चित रूप से विद्यमान थी, किंतु उस समय वह केवल अधिकारियो तक ही सीमित थी। ५,००० से १०,००० तक मनसबदारो का उल्लेख समस्त सूरी काल मे अक्सर मिलता है।[3] इसके अलावा शेरशाह तो स्पष्ट कहता है कि उसने दाग देने और उपस्थिति नामावली रखने के विनियम जागीरदारों के उस छल-कपट के उन प्रयत्नो को रोकने के लिये जारी किए थे, जो सुल्तान सिकंदर

१. स्मिथ, पृ० ३६७-६८।

२. वदायूँनी, भाग १, पृ० ३८४।

३. वही, पृ० ३८४-८५ (इस्लाम शाह सूर के शासन काल मे ५००० से १०००० तक के मन्सबदार थे)।

लोदी के समय में प्रचलित थे और इसलिये भी कि 'प्रत्येक अपने व्यक्तिगत पद (मन्सव) के अनुसार सैनिक रखे और उनकी संख्या मे घटबढ न हो।'[1]

सेनाओ का वितरण होता था। मुगल सेना का सबमे श्रेष्ठ भाग, जिसमे अहदी, दाखिली, वरकंदाज, शमशीर बाज होते थे। ये राजधानी मे रहते थे, राजधानी की सुरक्षा का भार, इन सैनिको मे श्रेष्ठ को सौंपा जाता था, जब कभी सम्राट् राजधानी से बाहर जाता था तो ये सैनिक साथ जाते थे। प्रांतो मे सूवेदारों और सरकारो मे फौजदार के अधीन मे स्थानीय शांति व्यवस्था वनाए रखने तथा उपद्रवो के दमन के लिये सेना रखी जाती थी। विशेप अवसरो पर या युद्ध की महत्ता को देखते हुए अस्थायी सैनिक भर्ती कर लिए जाते थे तथा कार्य समाप्त हो जाने पर उनकी सेवाएँ समाप्त कर दी जाती थी।[2]

सेना के प्रशासनिक कर्मचारियो के संबध मे तत्कालीन प्राप्य स्रोतो में कोई सूचना न मिलने के कारण कानूनगो महोदय सदृश लेखको को कहने का अवसर कि 'सम्राट् स्वयं ही सेनापति और सेना का प्रधान वेतनदाता होता था।'[3] यह दृढोक्ति सत्य से वहुत दूर प्रतीत होती है। पहली वात तो यह है कि इसका समर्थन किसी भी स्रोत के निश्चित कथन से नही होता, और इतिहासकारो के इस प्रकार के मौन से यह परिणाम कदापि नही निकाला जा सकता। प्रथम दृष्टि मे, यह लगभग असंभव अत उपहासास्पद प्रतीत होता है कि कोई व्यक्ति, चाहे वह कितना ही क्रियाशील एवं स्फूर्तिवान क्यो न हो, उन सब कठिनाइयो से भरे कार्यो को, विना किसी की सहायता के अकेले कर लेगा। तीसरे हमे यह मालूम है कि किसी भी समय विशेपकर सूर और मुगल शासको के समयो मे, स्थायी मुख्य सेनापति के पद का कभी अस्तित्व ही न था। प्रत्येक अवसर पर युद्ध संचालन के लिये किसी उपयुक्त अधिकारी को सेनापतित्व सुपुर्द कर दिया जाता था। चौथे, सवसे वड़ी वात तो यह है कि सिकंदर लोदी के

१. परमात्माशरण, पृ० १०५, २१८।

२. श्रीराम शर्मा, पृ० २९८।

३. शेरशाह, पृ० ३६२।

समय[1] और इस्लाम शाह की मृत्यु के बाद ही, शाही सेना के कार्यभारिक बख्शियो के अस्तित्व के निश्चित प्रमाण मौजूद है।[2]

ये दोनों प्रमाणों से मालूम होता है कि दो सूर शासकों के समयों मे, बख्शी और अन्य महत्व के अधिकारियों के होने की अवश्य पुष्टि करते हैं, क्योकि कोई कारण नही जान पडता कि बख्शियो का जो पद लोदी शासकों के समयो मे मौजूद था, वह शेरशाह के समय मे समाप्त कर लिया गया हो। इस प्रकार यह मानना उचित होगा कि सैनिक विभाग के प्रशासन के लिये नियमित कर्मचारी नियुक्त थे।[3]

आफगान सम्राट् ने अपनी विशाल सेना के ही बल पर देश के भीतरी तथा बाहरी खतरो से बचने का प्रयास किया तथा साम्राज्य को सुसंगठित रखा। सभी सेना को देश के अंदर विस्तृत करके रखा तथा नजदीकी सिफारिश पर भी।[4] शेरशाह अपनी निजी सेना १,५०,००० और बदूकची भी २५,००० रखा।[5]

शेरशाह की सेना हाथी, घोडो तथा बंदूकचियो से सुसंगठित थी। देश की उन्नति की अपेक्षा उसने सेना को अधिक महत्व दिया।[6] युद्ध के समय मे हाथी का प्रयोग प्राचीन कालीन व्यवस्था की भाँति किया जाता था। इसके हाथी बड़े लड़ाकू तथा युद्ध कला मे निपुण थे। इसकी हाथियो की विशाल सेना थी, अकबर के समय मे इसकी संख्या ५,००० बढकर हो गई।[7] शेरशाह अफसरों तथा मुंशियो का चुनाव खुद करता था।[8] इसकी सेना का बहुत कठोर नियम था तथा समय समय पर वह घोड़ो का निरीक्षण करता था।[9]

यह सेना के निरीक्षण के साथ साथ, कभी कभी भाषण भी

---

१. तारीखे दाऊदी, इलियट, भाग ४, पृ० ४५७।
२. अहमद यादगार, इलियट, भाग ५, पृ० ४३।
३. वही,
४. शेरशाह, पृ० २५६।
५. इलियट एव डाउसन, ४, शेरशाह ४२१-२२, मुस्तफी, पृ० ५५३।
६. शेरशाह, पृ० ३६४। ७. वही, इ० एवं डा०, ४, पृ० ४२४।
८. वही इ० एवं डा०, पृ० ४२। ९. वही, पृ० ४३।

करता था। यह सेना को संगठित तथा उसकी शिक्षा का काफी ख्याल करता था जबकि उसके उत्तराधिकारियो ने इसे गिरा दिया।[1]

शेरशाह बड़े अफसरो को सजा देने मे नही चूकता था, जिस कारण इसका भय हमेशा बना रहता था। सैनिको को वेतन जागीर तथा नकद दोनो रूप मे दी जाती थी। यह अकबर[2] से कम समय मे अपनी एक सुदर सेना का स्वरूप दिया तथा इसी के बल पर अपने साम्राज्य का विस्तार भी किया।

बाबर तथा हुमायूं के समय मे अपने रिश्तेदारो तथा बडे बड़े आदमियों और सैनिको को मनसब केवल प्रदान दिया जाता था। इन दोनों सम्राटो के समय मे मनसबदारी प्रथा का उतना महत्व नही था क्योंकि सिपाही और दरबान तक को मनसब प्रदान किया जाता था।[3]

शेरशाह ने इस मौजूदा प्रचलन मे बडा आनंद लिया क्योकि सुजात खां को १०,०००-का मनसब प्रदान किया गया था।[4] इस प्रथा को कायम रखते हुए अलग अलग विचार करने का फैसला किया। यह इस प्रथा को मान्यता दी, जागीर प्रथा को बद करने का प्रयत्न किया।[5] यह नई प्रचलन व्यवस्था को अलग रूप मे चलाने का प्रयास किया[5]। यह अपनी सेना को जागीर तथा नकद देने का बदोबस्त किया।[6]

शेरशाह ने इस प्रथा को एक सुदृढता का रूप प्रदान किया क्योंकि इसके समय मे योग्य व्यक्तियो को ही प्रदान किया जाता था, सबको नहीं प्रदान किया जाता था, योग्यता ही इसके समय मे मुख्य बात थी।[7]

अकबर के शासन की एक विशेषता मनसबदारी प्रथा थी। बाबर हुमायूं के शासनकाल मे मनसबदार होते थे। इस प्रथा की प्रेरणा ईरान

---

१. शेरशाह, पृ० ३६७।
२. मोरलैंड, पृ० ४६, जे० आई० एच०, अप्रैल, १६३६, पृ० ५३।
३. इलिएट तथा डाउसन, भाग ४, पृ० ४२६।
४. वही, पृ० ५४६। ५. सरकार, पृ० ५५१।
५. मोरलैंड, मॉसरेट ऑन अकबर्स आर्मी, जे० आई० एच०, (अप्रैल, १६३६) पृ० ५१।
६. आईन भाग, १, पृ० २३६, ४७। ७. वही, भाग १, पृ० २४८।

से मिली थी। शेरशाह के शासनकाल मे भी मनसवदारी का स्वरूप सुदृढ था लेकिन शासन को शक्तिशाली वनाने के लिये अकवर ने इस प्रथा का फिर से पुनर्गठन किया। अकवर के समय मे जो व्यक्ति जितने मनसव के लायक थे, उन्हें इसने उतने ही मनसव से प्रतिष्ठित किया।[१]

मनसव एक अरवी शब्द है जिसका अर्थ है 'स्थान निश्चित करना' मुगल शासन मे सरकारी कर्मचारियों और अधिकारियों के पद व वेतन का निश्चय और शासन तथा दरवार मे उसकी श्रेणी व समान का निश्चय मनसव से किया जाता था। मनसव शब्द से यह अभिप्राय है कि 'मनसव धारण करने वाले मनसवदार मुगल राज्य का नौकर थे।[२]

अकबर

हुमायूं के समय से जो सैन्य संगठन चला आ रहा था, अकवर ने उसमे १० साल तक कोई हस्तक्षेप नही किया। केवल यही हुआ कि कुछ पदाधिकारियो की पदोन्नति कर दी गई अथवा कुछ नये सेनानायक और कुछ सैनिक भर्ती किए गए और कुछ अन्य अधिकारियों को उनकी विद्रोही प्रवृत्तियों पर निकाल दिया गया। १५६६ ई० मे अकवर का इस ओर ध्यान गया कि उसके सैनिक अधिकारियो द्वारा रखे जाने वाले सैनिको की सख्या निश्चित कर दी जाय। अधिकारियो को यह शिकायत थी कि वेतन के वदले मे उन्हे जो जागीरें प्रदान की थी, उनकी आय का निर्धारण मनमाने रूप से वढा चढाकर रखा जाता था। वित्तमंत्री मुजफ्फर खॉ ने उसकी शिकायत दूर कर दी थी। सैनिक सख्या निश्चित करना अधिकारियो के लिये तथा राज्य के लिये भी उचित था।[३] अवुल फजल लिखता है, चूंकि तव दाग विभाग का अस्तित्व नही था, इसलिए अव सभी अधिकारियों और राज्य के सेवकों के लिये सैनिको की संख्या निश्चित कर दी गई ताकि सभी कुछ न कुछ लोगो की सेवा के लिये तत्पर रहे। इन अधिकारियो को तीन वर्गो के सामान्य सैनिक रखना आवश्यक कर दिया गया। प्रथम वर्ग के लिये ४८,००० दाम वार्षिक, द्वितीय के लिये ३२,००० और तृतीय वर्ग के लिये २४,००० दाम प्रदान किए जाते थे।[४]

---

१. सरकार, पृ० ५५७। २. कमैंटेरियस, पृ० ६३।

३. मोरलैंड, जे० आर० ए० एस०, १९३६, पृ० ५१।

४. अकवरनामा, भाग २, पृ० २७०।

अकवर का मुख्य उद्देश्य विजय का था, वह समस्त भारत अथवा करीव करीव समस्त भारत पर अपनी प्रभुसत्ता स्थापित करता, और मध्य एशियाई राज्यो की, जो एक समय मे उसके पितामह के अधिकार मे थे, पुनर्विजय करना था। वह यह समझ लिया था कि विना सभी वर्गो के सहयोग से यह कार्य होना असभव है। फारसी आधार पर जिस नौकरशाही का उसने संगठन किया उसका रूप अनिवार्यतः सैनिक था, तथा नागरिक क्षेत्राधिकार रखने वाले प्रायः समस्त महत्वपूर्ण पदाधिकारी प्रधानत फौजी सेनानायक थे।[1]

अकबर समस्त सैनिक संगठन को पुनर्व्यवस्थित करने की आवश्यकता से पूर्णतया परिचित था। उसने दाग देने और उपस्थिति नामावली के नियमो का पुनरुद्धार किया, जिससे जागीरदारो की जाली उपस्थिति नामावली, एव अन्य धोखेवाजियो को रोका जा सके। इन विनियमो को उसने अधिक व्यापक वनाना शुरू किया। इसके वाद, अकवर की सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं चिरस्मरणीय योजना, जिसको मनसवदारी का नाम दिया गया था, विकसित हुई। इस पद्धति को एक विशाल सेना के सगठन की इष्टसिद्धि के लिये, इतने विस्तृत और विवरणात्मक रूप में कार्यान्वित करना पडा कि वह अत्यंत दुरूह हो गई। इसकी संरचना मे अवश्य ही अतिशय परिश्रम और वहुत लंबा समय लगा होगा।[2]

अकवर ने पहली वार अपनी घुडसवार सेना को तीन वर्गो मे विभाजित कर दिया (१५६६ ई०) तथा यह भी निश्चित कर दिया गया कि राज्य की ओर से हर सेनापति के अंतर्गत सैनिको की संख्या निश्चित करना तथा वेतन निश्चित करना था। प्रथम श्रेणी के सवार वेतन १०० रु० माहवार था, द्वितीयश्रेणी के सवार का ६६⅔ रु० माहवारी और तृतीय श्रेणी के सवार का ५० रु० था।[3]

अकवर मनसवदारी प्रथा का प्रचलन धोखा धड़ी को समाप्त करने, सैनिक संगठन मे सुचारुता और स्थायित्व लाने तथा उसके कार्यान्वियन को सुविधाजनक वनाने के लिये किया था। उसके राज्यकाल मे उसके

१. आईन, भाग १, पृ० ६२ (आईन १, पृ० ४७४ नं० २०५)।
२ स्मिथ, पृ० ३६३ (शेरशाह, पृ० ३०४ पाद टिप्पणी)।
३. अकबरनामा, भाग २, पृ० २७१-७२।

कठोर अधीक्षण में, यह पद्धति सफलतापूर्वक कार्यान्वित हुई। परंतु उसके उत्तराधिकारियों द्वारा किए गए परिवर्तनों और नियंत्रण में अपेक्षाकृत ढिलाई के कारण उसकी कार्यकुशलता को अतिशय क्षति पहुँची।[1]

दागप्रथा का प्रारंभ

अकबर ने अपने शासन के अठारहवें वर्ष (१५७३) में दाग प्रथा चलाने का निश्चय किया। इस प्रथा के अंतर्गत सहली घोटों को और सेनानायक के अंतर्गत सभी घोडों को दो जगह दागा जाता था। उनकी एक रान पर सरकारी अंक दगा होता था और दूसरी रान पर सेनानायक का अंक दाग दिया जाता था। इस दाग प्रथा को सबसे पहले अलाउद्दीन खिलजी ने चलाया था[2] और शेरशाह ने सबसे पहले सफलतापूर्वक अपनाया था।[3] अकबर ने इसलिये अपनायी दाग प्रथा को कि सिर्फ अच्छी नस्ल के घोडे रखें, धोखा न दे सकें। इनमें मुख्य उच्चाधिकारियों ने विरोध किया। मुजफ्फर खाँ भूतपूर्व प्रधान मंत्री मुनीम खाँ और अकबर की धाय का भाई अजीज कोका भी था। टोडरमल और कुछ अन्य राजभक्त अधिकारियों और कर्मचारियों ने समर्थन किया था। अकबर कार्यान्वित करने को दृढ़ प्रतिज्ञ था। फलस्वरूप मुजफ्फर खाँ को सेवा से हटा दिया गया और मिर्जा अजीज को नजरबंद कर दिया गया।[4]

मनसबदार, अथवा श्रेणीबद्ध पदाधिकारी

इस प्रथा का प्रचलन सिकंदर लोदी और इब्राहीम लोदी ने किया। इन दोनों सम्राटों ने १०,००० से १२,००० मनसब देने का फरमान किया। सिकदर लोदी ने जमाल खाँ को १२,००० का मनसब तथा जागीर प्रदान की, जौनपुर के लिये। यह ५०० घोड़ों को अपने अंदर रखता था।[5] इब्राहीम लोदी ने दौलत खाँ को १२,००० का मनसब किया तथा हस्त सेना का इसे सर्वेसर्वा बनाया।[6] दौलत खाँ ने सबसे पहले पहल शेरखाँ को ५००

१. परमात्माशरण, पृ० २४६।
२. स्मिथ, भाग १, पृ० ३४६। ३. वही, पृ० ३६१-६२।
४. अकबरनामा, भाग २ (अनु०), पृ० ६८-६६, १४७-४८, मुतखब, भाग २।
५. सरकार, पृ० ३२१। ६. वही, पृ० ३२३।

घोडो का मालिक बनाया । इसके बाद मुहम्मद खाँ सूर को जो गवर्नर था, १५,००० घोड़ों का संरक्षक बनाया गया ।[1]

साम्राज्य के उच्चवर्गीय पदाधिकारी मनसबदार, मनसब के हकदार कहलाते थे । मनसब राजकीय पद और आमदनी के सूचक थे । अरबी शब्द मनसब का तात्पर्य जो तुर्किस्तान और फारस से ग्रहण किया गया था, केवल 'स्थान' है । भारत मे मनसबदारो के श्रीकरण का सर्वप्रथम उल्लेख टाड ने किया है कि बिहारमल आम्बेर का प्रथम शासक था जिसने मुसलमान शासक के समुख वश्यता-प्रदर्शन किया था । उसने आम्बेर के राजा के रूप मे ५,००० का मनसब ग्रहण किया था ।[2] मनसब का दूसरा संदर्भ अकबर के शासन के पंद्रहवें वर्ष (१५७०-७१) मे हुआ था, जब मालवा के आमदस्थ शासक, बाजबहादुर का दरबार मे आगमन हुआ था, और वह १००० का मनसबदार नियुक्त किया गया था ।[3] किंतु इन पदो का व्यवस्थित श्रीकरण तीन वर्ष बाद था, शासन के १८वें वर्ष मे गुजरात विजय के पश्चात्, जो अकबर के जीवन सोपान का एक कीर्ति चिह्न था ।[4]

यह प्रणाली इस तथ्य पर आधारित थी कि सेना का अधिकांश भाग उन सैन्यदलों द्वारा निर्मित था जिनकी भरती और जिनका प्रस्तुतीकरण व्यक्तिगत रूप से सरदारों अथवा प्रधानो द्वारा होता था । अकबर द्वारा निर्धारित श्रेणियाँ पूर्वतः व्यक्तियो की उस संस्था को सूचित करती थी जो प्रत्येक पदाधिकारी को प्रस्तुत करनी होती थी ।[5]

अकबर ने अपने पदाधिकारियो को ३३ श्रेणियों में विभाजित किया था, जो १० के मनसबदारो से प्रारंभ होकर १०,००० के मनसबों तक जाती थी । शासन के उत्तर पक्ष मे इस प्रकार के पदाधिकारियो की कुल

---

१. हैदेत हसन, कानूनी हुमायूँनी, पृ० ४३-४४, (अनु०) डा० बेनीप्रसाद, पृ० ३१-३२ तथा ए० एन०, भाग १, पृ० ३५६ ।
२. टाड, एनल्स आफ आंबेर, परि० १, ख० १, पृ० २८६ ।
३. आईन, भाग १ (अनु०), पृ० ४२६ ।
४. अकबर नामा भाग ३ (अनु०), पृ० ६५ ।
५. फॉस्टर, अर्ली ट्रवल्स इन इंडिया (सर विलियम्स फॉस्टर द्वारा सपादित), १६१५, खंड २, पृ० ५६ ।

संख्या प्राय: १६०० थी और इसका राजकीय अमीरों का दल बन गया था। इसमे उन्नति सम्राट् की इच्छा पर निर्भर थी, पद का कोई भी भाग वंशानुगत नहीं था। इसके विपरीत स्वयं को समस्त प्रजाजनों का अपने को स्वामी मानता था, इसके फलस्वरूप अपने समस्त मृत पदाधिकारी की सपत्ति (समस्त) को निर्ममतापूर्वक अधिग्रहण कर लिया था, जिसके परिवार को सम्राट् की दयाशीलता पर आश्रित रह कर फिर से जीवन का प्रारंभ करना पडता था।[1]

८,००० से १०,००० तक के वर्ग शाही परिवार के राजकुमारों के लिये अनन्य रूप से आरक्षित रखे जाते थे। आरंभ के ७,००० के वर्ग भी इसी प्रकार आरक्षित थे किंतु शासन के बाद के काल में राजा टोडरमल तथा दो एक अन्य पदाधिकारियो की इस पद पर उन्नति कर दी गई थी। प्रत्येक वर्ग का निश्चित दर पर वेतन, निर्धारित था, जिसमे से धारक को अपने पदाश के घोड़ो, हाथियो, बोझा ढोने वाले जानवरों, और गाड़ियों का व्यय भार वहन करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त ५,००० से नीचे की प्रत्येक श्रेणी में तीन वर्ग और विभाजित थे।[2]

बदायूँनी ने लिखा है—'१५७५ मे यह तय कर दिया गया कि हर अमीर २० (बिस्ती) के मनसबदार से शुरू करे।[3] तथा अपने कार्यो के कारण उन्नति करे।

मनसबदारों को अपने सैनिको सहित पहरा देना और सैनिक सेवाओं आदि (जारओ बुलजर) का आदेशानुसार तैयार रहे अब जब नियमानुसार वह अपने बीस सवारो को घोडो को दागे जाने के लिये ले आए, तभी उसे १०० (सफी) या इससे अधिक का नायक बनाया जाय। इसी प्रकार इसी नियमानुसार उन्हे अपने मनसब के अनुसार हाथी, घोड़े और ऊँट रखने पड़ते थे। जब वह अपनी नई सेना पूर्ण रूप से तैयार कर निरीक्षण के लिये ले जाते थे तब उनकी योग्यता और स्थिति के अनुसार (हजारी) दुहजारी या इससे ऊँचे ५ हजारी मनसब तक पदोन्नति कर दी जाती थी।

---

१. स्मिथ, अकबर दि ग्रेट, पृ० ३६०।

२. आईन, भाग १ (अनु०), पृ० २४८।

३. मुंतखब, भाग २ (अनु०), पृ० १८७।

लेकिन अगर वे निरीक्षण मे ठीक न उतरे तो उनकी पदावनति कर दी जाती थी और उनके अधीन सैनिकों की संख्या कम कर दी जाती थी।[1]

बिहार विजय से लौटने के बाद (१५७५ ई०) मे अकबर ने इस नये नियम को कठोरता से लागू किया। अबुल फजल लिखता है कि 'यद्यपि पूर्वी प्रदेशो में उपद्रव होने के पूर्व इस वर्ष के शुरू मे सम्राट् ने इस विषय ('दाग की प्रथा') की ओर ध्यान दिया था और उसके अधिकारी ने काम शुरू कर दिया था लेकिन फिर भी इस महान कार्य की व्यवस्था तभी जम सकी जबकि सौभाग्य पताकाएँ (सम्राट्) राजधानी मे ही थी। तब जाँच पडताल की गई और अधिकारियो के मनसब तय कर दिए गए। अधिकारी और अन्य कर्मचारी नकद वेतन पाते थे और उनके मनसब योग्यता और उनके सैन्य दलो के अनुसार निश्चित कर दिए गए।[2]

इन कार्यों से सेना की सज्जा व्यवस्था हो गई थी और देश में सु-शासन स्थापित हो गया था और धोखे तथा गबन से भी बचत हो गई थी।[3] अकबर को इसे लागू करने मे काफी कठिनाई हुई क्योंकि उच्च अमीरो तथा अधिकारियों ने इसका बहुत विरोध किया था। १५७५ के अंत मे अकबर ने अपने धाय भाई मिर्जा अजीज कोका को गुजरात से बुला लिया ताकि 'दागने का कार्य नेताओ से ही शुरू किया जाय' कोका के इनकार करने पर जेल में डाल दिया गया। बहुत से अन्य अधिकारियों ने इन नियमों का पालन किया तथा अपने घोडो को दगवा दिया।[4]

१५७५ के मध्य मे जिन लोगो को शाही सेवा मे अपनी नियुक्ति पर मनसब प्रदान किए गए वे थे हकीम अब्दुल फतह, हकीम हमाम और जिलान के मौलाना अब्दुर रज्जाक के पुत्र हकीम नूरउद्दीन[5], लेकिन शजात खाँ, मुहम्मद अब्दुल्ला, मीर मुई जुल्मुलक, कासिम खाँ कोहबर, दोस्त मुहम्मद, बाबा दोस्त और मुहम्मद आरिफ जैसे कुछ अन्य अधि-

---

१. मुतखब, भाग २, पृ० १९० ।

२. अकबरनामा, भाग ३, पृ० १४७ (अं० अनु०), भाग ३, पृ० १६६ ।

३. वही, भाग ३, पृ० ११७ ।

४. अकबरनामा, भाग ३, पृ० १४७ (अं० अनु०), ३, पृ० १०८-१०९ ।

५. वही, पृ० १४४, (अं० अनु०), भाग ३, पृ० २०४ ।

कारियों ने शाही आदेशों का पालन नही किया और अपने घोड़े दागने के लिये नहीं लाए। फलस्वरूप उनका तबादला बंगाल कर दिया गया।[1]

जब यह योजना पूरी तैयार हो गई तो १५७५ ई० के अंत तक कार्यान्वित किया गया। अकबर का मुख्य उद्देश्य यह था कि उसके अधिकारी अपने अपने मनसबों के अनुसार घोड़े, हाथी, ऊँट और गाड़ियाँ तो रखें ही पर साथ ही एक निश्चित संख्या मे सवार सैनिक भी रखें। वह इस व्यवस्था द्वारा उनमें व्याप्त भ्रष्टाचार और घोड़ो संबंधी धोखा धड़ी को खत्म कर देना चाहता था। इसी कारण से अबुल फजल लिखता है, कि 'सम्राट ने मनसबदारो के मनसब दहबाशी (१० के नायक) से दसहजारी (१० हजार का सेनापति) तक निर्धारित कर दिए, लेकिन ५,००० से ऊपर के मनसब अपने श्रेष्ठ पुत्रों के लिये सीमित कर दिए। सम्राट् कुछ लोगो को एक ही नजर में पहचान लेता है और उन्हे ऊँचा मनसब प्रदान कर देता है। कभी कभी वह किसी कर्मचारी का मनसब तो बढ़ा देता है लेकिन उसके सवार कम कर देता है। भारवाहक पशुओं की संख्या भी वही निर्धारित करता है'।[2]

१५७६ में सर्वोच्च मनसब बढ़ाकर १०,००० कर दिया गया। लेकिन ६,००० से १०,००० तक के मनसब केवल शाहजादो के लिये ही थे। १५७६ ई० मे युवराज सलीम को १०,००० का, मुराद को ७,००० का और दानियाल को ६,००० का मनसबदार नियुक्त किया गया था। सलीम इस समय पहली सवार सेना (अव्दी) का सेनापति था।[3]

१५८५ ई० मे सर्वोच्च मनसब १२,००० का कर दिया गया और अमीरो को ६,००० और ७,००० के मनसब दिए जाने लगे। अब सलीम को १२,०००, मुराद को ९,००० और दानियाल को ७,००० का मनसबदार बना दिया गया। १६०२ ई० में मिर्जा अजीज कोका का मनसब बढ़ाकर ७,००० जात और ६,००० सवार कर दिया गया और १६०५ ई० मे मानसिंह को भी यही मनसब प्रदान कर दिया गया।[4]

---

१. अकबरनामा, भाग, ३ पृ० १४८, (अ० अनु०), पृ० २०९।
२. आईन, भाग १, पृ० १७६ (अं० अनु०), १, (द्वितीय सं०), पृ० २४८।
३. अकबरनामा, भा० ३, पृ० २१६।
४. मुंतखब, भाग २, पृ० ३४२, अकबरनामा, भाग ३, पृ० ८०६-८३२।

निम्नलिखित उदाहरणो से मनसबदारो की स्थिति स्पष्ट हो जाती है—

मनसबदार	घोडे	हाथी	बोझा ढोने वाले जानवर और गाडियाँ खच्चरो सहित	वेतन मासिक रुपयो मे		
				प्रथम श्रेणी	द्वितीय श्रेणी	तृतीय श्रेणी
५०००	३६०	१००	२६०	३०,०००	२६,०००	१८,०००
१०००	६४	३१	६७	८,२००	८,१००	८,०००
५००	३०	१२	२७	२,५००	२,३००	२,१००
१००	१०	३	७	७००	६००	५००
१०	४	—	—	१००	८२—½	७५

उत्तर मुगलकाल मे पूरे वर्ष का वेतन कठिनता से ही कभी लिया जाता था और कुछ उदाहरणो मे केवल चार महीनो का वेतन ही अनुमत था। विभिन्न प्रकार कटौतियाँ भी की जाती थी और बकाया जमा होता रहता था। किंतु अकबर इस प्रकार की अनियमितताओ को कभी स्वीकृति नही देता था। भरती मे की गई व्यक्तियों की वास्तविक संख्या पदानुकूल निर्धारित सख्या से बहुत ही कम मिलती थी। ५,००० के मनसबदार के लिये ४,००० घुडसवार प्रस्तुत करना असाधारण रूप से अच्छी बात समझी जाती थी, और सामान्यत. उसे प्राय १,००० से अधिक की माँग नही की जाती थी। अधिकाश व्यक्ति अपने घोड़े साथ लाते थे। बाद के समय मे, जहाँ तक कि सैनिको के संभरण का संबंध था, ये पद पूर्ण रूप मे अवैतनिक हो गए थे।[1]

---

१. उदाहरण के लिये लुत्फुल्ला खाँ सादिक (अठारहवी शताब्दी मे) यद्यपि वह ७,००० के मनसब का हकदार था, कभी ७ गदहे भी नही रखता था, घोडो और घुडसवारो की बात तो अलग रही। (इर्विन, पृ० ५६) टेरी १६१७ या १६१८ का जिक्र करते हुए कहता है—'वह व्यक्ति जो पाँच या छै हजार का वेतन पाता था, एक हजार या अधिक को जरूर ही सदैव तैयार रखता है, जिस हिसाब से बादशाह को उनकी आवश्यकता हो, और इसी अनुपात से शेष सब होता है (सं०, १७७७, पृ० ३९१)। उसी ग्रथकार के अनु० म० के वेतन पाबंदी साफ दिए जाते थे (पृ० ३९६)।

मनसवदारी व्यवस्था के कुछ नियमो का और विशेपकर घोडो को दागने और निर्धारित संख्या मे सैनिकों को रखने के निर्देश का विरोध १५८३ ई० तक चलता रहा। १५८०-८३ के बीच होने वाले भारी विद्रोह को जब अकवर ने सफलतापूर्वक दवा दिया तव कही व्यवस्था का साम्राज्य के सभी भागो मे कठोरता से पालन कराया जा सका।[1]

मनसवदारी व्यवस्था के शुरू शुरू में छोटे छोटे मनसवों से प्रारंभ किया गया, जिसका कारण संभवतः यह था कि उच्चपदीय अधिकारी इसके विरोधी थे। कुछ मनसवदारो की नियुक्तियाँ १५७५ के वाद नहीं हुई थी। खाने जहाँ को १५ नवंवर, १७७५ ई० में वंगाल का सूवेदार नियुक्त किया गया था लेकिन इस अवसर पर उसपर अन्य तरह से कृपा प्रदर्शित करने पर भी अकवर ने न तो उसे कोई मनसव ही दिया था और न उसकी कोई पदवृद्धि ही की थी।[2] इसी तरह अक्टूबर १५७५ ई० के अंत मे वंगाल के सफल सैनिक अभियान से लौटने पर टोडरमल को कई तरह से संमानित किया गया था और उसे मुशरिफे दीवान भी नियुक्त कर दिया गया था, लेकिन तव भी इसे कोई मनसव प्रदान नहीं किया गया था।[3] इसी के कुछ समय वाद अफगानिस्तान के मासूम खाँ को एक उच्च पद पर नियुक्त कर विहार भेजा गया था, पर उसे भी कोई विशेष मनसव नहीं दिया गया था।[4] ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च मनसव पर प्रथम नियुक्ति १५७६ ई० के मध्य के लगभग हुई थी जवकि शहाबुद्दीन अहमद खाँ को ५,००० का मनसव देकर मालवा का सूवेदार नियुक्त किया गया था।[5] इसी वर्ष कुतुवुद्दीन खाँ को भी ५,००० का मनसवदार वना दिया गया था।[6] इस व्यवस्था मे जो कुछ भी हुआ वह १५७६ ई० के वाद ही हुआ।

---

१. अकवरनामा, भाग ३, पृ० २६४, मुतखव, भाग २, पृ० २८०।

२. वही, पृ० १६२ (अं० अनु०), ३, पृ० ३२६।

३. वही, पृ० १५७–५८।

४. वही, पृ० १५८।

५. वही, पृ० १७०।

६. वही, पृ० १८४, (अं० अनु०), ३, पृ० २५७।

दुर्गों और राजधानियो वाले नगरो के केंद्रीय वंदी खानो के अतिरिक्त सरकार और परगनो के केंद्रीय नगरो मे भी वंदी खाने होते थे। इन सार्वजनिक जेलो को वंदी खाना कहा जाता था। किंतु सामान्य अपराधियों के लिये प्रयुक्त वंदी खानो के अतिरिक्त उच्च वर्ग के लिये कोई अलग और अच्छा स्थान होता था[३]। दो अवसरो पर मेनरिक की गिरफ्तारी मे उल्लिखित विवरणो से ज्ञात होता है कि मिदनापुर मे जो सरकार का केंद्र था, और शिकदार के मुख्यालय में, जो परगना का केंद्र था, नियमित वंदी खाने थे। जेल से पत्र व्यवहार करने की छूट थी[१]।

राजवंशों को कैद मे रखने के लिये मुख्यतः ग्वालियर का दुर्ग था[२]। ग्वालियर के दुर्ग का कुछ भाग सामान्य अपराधियों के लिये भी इस्तेमाल किया जाता था[३]। संभवतः इसी तरह अन्य दुर्ग भी दोनों प्रकार के वदियो के रखने के काम मे आते रहे होगे[४]।

जमानत

अभियुक्त को जेल से जमानत छुड़वाना संभव था। कानून के अनुसार छूटने के लिये उसे जमानत देनी पड़ती थी। विना जमानत दिये छूटना संभव नही था[५]।

अकवर ने उसे जीवनदान तो दिया, परंतु उसे मुख्य कोतवाल की देखरेख में कैद में रखने के लिये लाहौर भेज दिया। इस घटना को सुनकर कावुल के सूवेदार मुनीम खां ने अब्दुल माली के भाई, कईमई के जागीरदार मुहम्मद हासिम को स्थानीय जेल मे कैद कर दिया। अकवरनामा, २, पृ० २९-३०)।

१. मेनरिक, १, पृ० ४२१।
सरकार, स्टडीज इन मुगल इंडिया, पृ० २१६।

२. मांसरेट, पृ० २११; फिच, पृ० १४५; वर्नियर, १४; मुडी, पृ० ६१।
अमीरो तथा उच्च अधिकारियो के कैद के लिये यदाकदा उपयोग मे आने वाला जेल ग्वालियर का दुर्ग था। (वदायूंनी, ३, पृ० ७९)।

३. ओरि०, १७५, पन्ने ७२-७३।
महत्वशाली वड़ा वंदीगृह रणथंभौर का दुर्ग था। यह भी उसी प्रकार दोनों वर्गों के कैदियो के रखने के काम मे आता था।
(रोजर एंड वेवरिज, पृ० ३४५)।

४. परमात्मा शरण, पृ० ३८६। ५. मनूची, २, पृ० १९८।

जेलों का जीवन

जेलों का कैसा जीवन था यह मेनरिक के द्वारा किए गए वर्णनों से मिलता है। जब मेनरिक और उसके साथी जेल में चटगांव के डाकू होने के संदेह में पकड़े गये और मिदनापुर के कोतवाल की अदालत में भेजे गए, तो कुछ सौदागर उसकी पहचान के लिये बुलाए गए। उनमें से एक बंगा के पादरी से परिचित था और वह मेनरिक का दोस्त था। इस परिचय के आधार पर मेनरिक ने अपने सौदागर मित्र से जेल, जहां उसे दुर्व्यवहार की आशंका की अपेक्षा किसी सुविधाजनक स्थान मे भिजवाने का अनुरोध किया, किंतु, उनकी शिनाख्त न हो सकी थी, इसलिये उसका आवेदन स्वीकृत न हो सका। तथापि सौदागर ने जेलर से मिल कर उनकी सुविधा के लिये प्रयास करने का वचन दिया। वे डाकेजनी के संदेह में पकड़े गए थे, इसलिये उनकी हथकड़ियाँ डाल दी गई और गले मे तौक पहना दिया गया था। किंतु उनके व्यापारी मित्र, जिसने उनकी जमानत की थी, के प्रयत्न से न केवल हथकडी और तौक ही काट दिए गए बल्कि उन्हे सोने के लिये चारपाइयाँ दी गई और व्यापारी के घर से खाना भी मिलने लगा।[1]

उनके घावों की चिकित्सा के लिये एक चिकित्सक भी बुला लिया गया, जिसकी औषधि ने जादू सा काम किया और वे कुछ दिनों मे अच्छे हो गए। यह देखकर मेनरिक को महान आश्चर्य हुआ। उसका व्यापारिक मित्र सब संभव साधन जुटाता था।[2]

जैसे मेनारिक और उसके साथियों का है जो मिदनापुर के एक मुस्लिम व्यापारी द्वारा जमानत दिए जाने पर छोड़ गए थे। (मनूची २, पृ० १६६)।

मुहम्मद अमीन खाँ (लाहौर के सूबेदार ने) चोरी का आरोप लगाया था और उसे जेल मे बंद कर दिया गया था, कोतवाल ने मनूची से जमानत की माँग की थी, कनून के अनुसार। (मेनरिक, १, पृ० ४१४)।

१. मेनरिक, १, पृ० ४२१-२४।

२. मेनरिक, १, पृ० ४२५।

सप्तम अध्याय

सामाजिक दशा

सामाजिक दशा

हिंदू मुस्लिम एकता

इस्लाम के प्रादुर्भाव से भारतीय समाज एवं संस्कृति पर भारी कुठाराघात हुआ। उसकी राजनीतिक सत्ता छीन ली गई और भीषण नर संहार हुआ। धीरे धीरे जब मुसलमान भारत मे स्थायी रूप से बस गए तो उन्होंने यहाँ के रीति रिवाजों के बारे मे जानना प्रारंभ किया। दोनो जातियो ने एक दूसरे से बहुत कुछ सीखा और दोनो के समिश्रण के फलस्वरूप एक नई सभ्यता एवं सस्कृति प्रकाश मे आ गई, जिसे इतिहास मे 'इंडो मुस्लिम संस्कृति' कहा जाता है।[1] दोनो धर्मों एवं जातियो के सिद्धातो मे बडा मतभेद था, इसी कारण से इनमे एकता स्थापित नही हो रही थी। दो विभिन्न जातियो को एक करने के लिये मध्यकालीन भारत मे अथक प्रयत्न किए गए। जिन साधनों के द्वारा इन्हे एक करने का प्रयत्न किया गया, उन्हे दो भागो में किया जा सकता है।[2] यथा—

(१) सूफी तथा अन्य संतो के प्रयास, तथा

(२) शाही प्रयत्न।

सूफी संतो तथा अन्य समाज सुधारको ने मध्यकालीन भारतीय इतिहास मे मतभेद को दूर करने तथा दोनो जातियो को एक करने मे महत्वपूर्ण प्रयास किया। मुस्लिम सूफी सत जनसाधारण के बीच रहते थे और अपनी ईश्वर भक्ति, धर्म निष्ठा और आध्यात्मवाद से बहुत से हिंदुओ को आकर्षित करके उन्हे अपना शिष्य बनाए थे। सूफी संतो के विश्व एकतावादी सिद्धात भारतीयो के मनो को बहुत भाये और वे उनके अनुयायी हो गए। सूफी सतो के प्रसिद्ध-मुईन उद्दीन चिश्ती[3], पाकपटन के फरीद उद्दीन शकरगंज[4], दिल्ली के निजामुद्दीन औलिया[5], नासिरुद्दीन

---

१. रामपूजन तिवारी, सूफी मत साधना साहित्य, पृ० ४४१।

२. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ० २३५-३६।

३. रामपूजन तिवारी, सूफी मत साधना, साहित्य, पृ० ४४७।

४. वही, पृ० ४५८।   ५. वही, पृ० ४६०।

चिराग देहलवी और फतेहपुर सीकरी के शेख सलीम चिश्ती प्रमुख संत थे।[1]

इन संतों ने अपने समय के समाज को प्रभावित किया और इनके सदेश हिंदू एवं मुसलमान दोनों को हृदयग्राही हुए।[2]

इन संतो ने संगीत मार्ग का अवलंबन किया और मनुष्य मात्र की प्रशंसा पर जो जोर दिया, परिणामस्वरूप हिंदू एवं मुसलमान दोनों इनके सिद्धातो का अनुसरण करने लगे। इस प्रकार ये दोनो जातियाँ एक दूसरे के करीव आती गईं।[3]

इन सूफी संतो के अतिरिक्त भक्ति मार्ग के लगभग सभी संतो ने इन दोनो विभिन्न जातियो को एक करने का प्रयास किया। इन संतो मे सवसे प्रसिद्ध एव प्रमुख नाम कवीर दास जी का है, जिन्होने दोनों धर्मों, सभी धर्मों के मिथ्या आडंवरो का खंडन कर प्रेम मार्ग जनता को दिखाया।[4] 'कवीर ग्रथावली' के अनुसार 'कवीरदास जी का उद्देश्य सभी धर्मों एवं जातियो मे एकता स्थापित करनें का था'।[5] डा० ताराचंद ने भी इस संवध मे लिखा है कि—'उनका उद्देश्य सभी धर्मों एवं जातियों मे एकता स्थापित करने का था'।[6]

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होने अपना संपूर्ण जीवन अर्पित कर दिया। उनका मुख्य उद्देश्य ही हिंदू और मुसलमानो को एक करने का था। वे स्वयं अपने इस उद्देश्य की प्रतिमूर्त थे, क्योकि न तो वे पूर्ण रूप से हिंदू थे और न ही मुसलमान। उनका यह रूप केवल विचारो से ही नहीं था, वलिक, वह जन्म से ही इसी प्रकार के थे। आप 'विधवा ब्राह्मणी' से उत्पन्न हुए और एक मुस्लिम जुलाहे के यहाँ उनका पालन पोषण हुआ था। इसलिये आपको डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'नृसिहावतार' माना है[7]।

१. रामपूजन तिवारी, सूफी मत साधना, साहित्य, पृ० ४६०-६१।
२. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, कवीर पृ० २३६।
३. डा० ताराचंद, इनफ्ल्युएंस आफ इस्लाम आफ इडियन कल्चर, पृ० १६८-६६।
४. कवीरदास जी, कवीर ग्रंथावली, पृ० ८१।
५. वही, पृ० ८३। ६. डा० ताराचद, पृ० २०३।
७. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कवीर, पृ० २४६।

कबीरदास जी ने जब देखा कि धर्म के नाम पर दोनों जातियाँ परस्पर संघर्ष कर रही है तो उन्हे बडा दु:ख हुआ। उन्होने जनता को उपदेश दिया कि—'ईश्वर एक है, लेकिन उसके नाम अलग अलग रखे हुए है। क्या हिंदू और क्या मुसलमान, दोनो ही एक ईश्वर की उपासना करते है, केवल उनके नाम मे अंतर है।' उन्होने लिखा भी है—

दुई जगदीश कहाँ ते आये, कहु कौने भरमाया।
अल्लाह, राम, रहीम, केशव, हरि, हजरत नाम धराया[1] ॥

इसी प्रकार आपने झूठे आडंबरो के कारण मुल्ला, पडित, पुरोहित और मौलवी इत्यादि सभी को फटकारा और उनकी कडी आलोचनाएँ की। वास्तव मे आप क्रातिकारी थे, जिन्होने दोनो धर्मो मे क्राति करके जनता को समझने का अवसर दिया[2]।

नानक को हिंदू और मुसलमानो मे कोई भेद नही नजर आता था। उन्होने दोनो जातियो को एक करने की सतत् चेष्टा की। इसलिये दोनो धर्मो को समान महत्व दिया और दोनो के रीति रिवाजो का पालन किया। इस प्रकार आपने अपने कार्यो द्वारा सिद्ध कर दिया कि दोनो ही धर्म समान है तथा किसी भी व्यक्ति को सकीर्ण विचारों वाला नही होना चाहिए। वास्तव मे नानक सर्व-धर्म-समन्वयकारी हिंदू थे। कबीरदास की भाँति दोनो धर्मो के मिथ्या आडंबरो का खंडन कर प्रेम मार्ग का अनुसरण किया। मध्यकालीन भारत के विचारो पर उन्होने क्रांतिकारी प्रभाव डाला[3]।

---

१. कबीर, कबीर ग्रथावली, पृ० ६८।

२. डा० ताराचंद, पृ० २०७।
कबीरदास जी के समान भक्ति आंदोलन के एक अन्य संत और सिख धर्म के प्रवर्तक गुरु नानक ने भी दोनो जातियो को एक करने का प्रयत्न किया। डा० ताराचद के अनुसार—'गुरु नानक हिंदू तथा मुसलमान दोनो जातियो को एक करने का प्रयास किए।' (डा० ताराचद, पृ० २०७-०८)।

३. डा० ताराचद, पृ० २०८-०९।
गुरु नानक और कबीरदास जी के अतिरिक्त रामानंद भी हिंदू मुस्लिम एकता के प्रेमी थे। आपने जाति भेद का खंडन किया और सभी जातियो के मनुष्यो को अपना शिष्य बनाया। (रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० १६१)।

कुछ लोगो ने गुरु नानक को इस्लाम धर्मावलंबी माना है और कहा है कि—'नानक की वेश भूषा मुसलमानो से मिलती जुलती है, उनके विचारों पर भी इस्लाम का प्रभाव प्रत्यक्ष है[१]।

नानक ने निर्गुण उपासना को महत्व दिया, सगुण उपासना मे उनका विश्वास नही था। गुरु नानक ने भक्ति को महत्व दिया। उनके अनुसार वह भक्ति उसी को मिलती है, जिसपर भगवान कृपा करते है[२]।

गुरु नानक ने हिंदू धर्म, इस्लाम तथा सूफी संप्रदाय के सारत्व को लेकर एक नवीन धर्म की स्थापना की। इनका धर्म व्यावहारिक है, उन्होने जाति पांति, ऊँच नीच, कर्मकांड, मूर्तिपूजा का समर्थन नही किया, वे भगवान् की पवित्रता हृदय शुद्धि तथा आचरण की उच्चता पर बल देते हैं। इस प्रकार गुरु नानक ने जो भी धर्म चलाया, वह कबीर की अपेक्षा अधिक स्थायी और प्रभावशाली हुआ[३]।

दादू दयाल अपना अलग पंथ चलाए। जो दादू पंथ के नाम से प्रसिद्ध है। इनके समय मे हिंदू मुसलमान एक दूसरे के कट्टर शत्रु थे। कबीर की भांति दादू ने भी, हिंदू मुसलमानों में भी समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की। उन्होने कहा कि—'सभी व्यक्ति ईश्वर द्वारा निर्मित है, फिर उनमें भिन्नता कैसी[४] ?'

मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' में शेरशाह की प्रशंसा की है। इससे जान पड़ता है कि कवि ने कुछ पद्यो की सन् १५१० ई० में रचना की थी। पर ग्रंथ को १९-२० वर्ष बाद शेरशाह के समय में पूरा किया।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है—'इन कवियो ने लौकिक प्रेम के बहाने, जिस प्रेम तत्व का आभास दिया है, वह प्रियतम ईश्वर को मिलाने वाला होता है[५]। इसी तथ्य को जायसी एक पद्य में कहते हैं कि—'इस प्रेमतत्व द्वारा ही मनुष्य उस अव्यक्त सत्ता से समरस हो जाता है[६]।

१. फ्रेडरिक पिंकाट्, द डिक्शनरी आफ इस्लाम, पृ० १२३।
२. सेई तुधु नौ गावहि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत।
(साले, तेज सिंह, सं० जुयुजी, पृ० १३८)।
३. फ्रेडरिक पिंकाट, पृ० १२५।
४. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० १६६।
५. वही, पृ० १७८।
६. जायसी, ग्रंथावली पद्मावत, मंडप गगन, खंड दोहा १९६, पंक्ति २।

मानुष प्रेम भयो वैकुण्ठी।
नाहि त काह छार एक मूठी ॥

मुसलमान होते हुए भी जायसी ने हिंदू प्रथा को लिया तथा तत्कालीन हिंदू समाज, हिंदुओं के तीर्थ स्थान और देवताओ, उनके सामाजिक विश्वासों का वर्णन विस्तृत रूप मे किया है।[1] कबीर ने हिंदू मुसलमानों के वैमनस्य को दूर करने का जो प्रयत्न किया, उनका प्रभाव स्थायी न हुआ, क्योकि उनकी उक्तियाँ हृदय स्पर्शी नही थीं, पर जायसी ने शुद्ध प्रेम मार्ग रखा और यह प्रमाणित करने की चेष्टा की कि हिंदू हो या मुसलमान, प्रेम के द्वारा सभी ईश्वर को प्राप्त कर सकते हैं।[2]

इन्होने हिंदू तथा मुसलमानों मे सामजस्य स्थापित करने की चेष्टा की। दोनो के हृदय का अजनबीपन मिटा कर एक रागात्मक संबंध स्थापित करने वाले संतों में जायसी का नाम प्रमुख है।[3]

संत रैदास जाति के चमार थे, उन्होने अपने कई पदो मे अपने को चमार कहा है—

ऐसी मेरी जाति विख्यात चमार।
हृदय राम-गोविंद गुन सारा ॥[4]

संत रैदास जी ने दोनों संप्रदायो को एक करने की काफी चेष्टा की।

इन कवियो के अतिरिक्त चैतन्य तथा नामदेव आदि संतों ने भी इस दिशा में प्रयास किए और दोनों जातियो को एक करने का प्रयत्न किया। वास्तव मे एकता स्थापित न करके, दोनो के भेद-भावों को समाप्त करने की चेष्टाएँ की गईं। इन संतों के प्रभाव एव उपदेशो के कारण हिंदू एवं मुसलमान एक दूसरे के निकट आते गए।[5]

स्टेनली लेनपुल का कथन है कि—'राजाओं और राजदरबारो के विवरणों की अपेक्षा जन साधारण का इतिहास सामान्यतः अधिक प्रेरणात्मक और शिक्षाप्रद माना जाता है। किंतु, सत्य होते हुए भी, केवल पाश्चात्य लोगो के लिये ही यह बात ग्राह्य समझी जानी चाहिए। उनकी

१. रामचंद्र शुक्ल, पृ० १८०।
२. वही, पृ० १८०-८१। ३. वही, पृ० १८४।
४. रैदास जी की बानी, पृ० २१।
५. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० १८७।

दशा मर्मस्पर्शी और कारुणिक क्यों न हो, पाश्चात्य भाग्यशालियों के जीवन की तुलना मे जिन्हे अवसर, संपदा, शक्ति और ज्ञान बहुत अधिक दिया जा चुका है, अवर्णनीय रूप से तुच्छ और नीरस है ।[1]

यह कथन सत्य है कि भारतीय जनसाधारण का प्रायः कोई विकास नही हुआ है, जब हम २२ शताब्दियों पूर्व मेगस्थनीज् द्वारा उल्लिखित भारतीय, सामाजिक दशा का वर्णन पढते है तो हम यह अनुभव करते हैं कि उत्तर भारत में प्रचलित आज की दशा पर प्रकाश पड़ता है। समाज के प्राचीन रूप और दैनिक जीवन पर शासकीय परिवर्तनों अथवा आधुनिक प्रवृत्तियो का अत्यंत प्रभाव पडा है[2] ।

स्त्रियों की दशा

भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति सदैव से एक समस्या रही है। समय के साथ साथ इनकी दशा मे महान् परिवर्तन हुआ। प्राचीन काल के बाद बौद्ध काल में इनकी दशा में पतन आरंभ हुआ। सल्तनत युग एवं मुगलकाल मे भी इनकी स्थिति ठीक नही रही। भारतीय विद्वानों एवं आलोचको ने तो सदैव स्त्रीनिंदा की है। महाकवि तुलसी दास ने तो निम्न चौपाई स्त्रियो के विपय मे कही है :—

'ढोल गवाँर सूद्र पशु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी' ।[3]

इसी प्रकार कबीर दास जी ने भी कहा है :—

'इक कनक, एक कामिनी, दुर्गम् घाटी दोय[4] ।'

वास्तव में उनकी दशा अत्यंत शोचनीय थी। इस्लाम के अभ्युदय होने से भारतीय समाज मे काफी परिवर्तन आ गए। यह सत्य है कि बहु विवाह शासक वर्ग के हिंदुओ मे मुसलमानो के आने से पूर्व प्रचलित था, परंतु पर्दे की प्रथा का मुसलमानों में सामान्य चलन था। इस प्रकार हिंदू स्त्रियो पर

---

१. स्टेनली लेनपुल, कैंब्रिज हिस्ट्री, पृ० २०३।

२. पी० एन० चोपड़ा, सम एस्पेक्ट आफ सोसायटी एंड कल्चर इन मुगल एज, पृ० २०३।

३. तुलसीदास, सुदर कांड, दोहा ६५, चौ० ३-४।

४. कबीरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ० १२७।

भी इसका गहरा प्रभाव पड़ा। मुगलकाल मे स्त्रियो की दशा निम्न प्रकार की थी।

पर्दा प्रथा

प्राचीन युग में भारत मे पर्दे की प्रथा नही थी। इसका प्रचार मुसलमानो के आने से ही प्रारंभ हुआ। पर्दा उनकी मातृभूमि अरब और तुर्किस्तान मे प्रचलित था। अतएव यह स्वाभाविक था कि एक विदेशी देश मे इस पर काफी जोर दिया जाय। अकबर जैसे दयालु शासक ने भी निम्न फरमान जारी करवाया था।

वदायूँनी ने लिखा है कि—'यदि कोई युवती गलियो एवं बाजारो मे बगैर घूंघट के दिखाई दे या जान बूझ कर उसने पर्दा को तोडा हो तो उसे वेश्यालय मे रखा जाय और पेशे को अपनाने दिया जाय'[१]।

हिंदुओ मे पर्दे की प्रथा मुसलमानों के प्रभाव के कारण आया। उन्होंने परदा इसलिए अपनाया ताकि वे अपनी स्त्रियो की रक्षा कर सकें और सामाजिक पवित्रता पर कोई आँच नही आए। शासक वर्ग का अनुकरण भी एक कारण था, जिससे हिंदू पर्दे के पक्षपाती हो गए। मुगल काल मे पर्दे का हिंदू एव मुसलमानो के उच्च परिवार में सामान्य प्रथा थी। जायसी, चैतन्य, तथा विद्यापति ने अपने मतो को व्यक्त करते हुए कहा है कि—'वंगाल और उत्तर प्रदेश के अमीर हिंदू परिवार मे पर्दे का प्रचलन था[२]।' पर्दा संमान का एक चिह्न समझा जाता था।

अमीरो की स्त्रियाँ चारो ओर से आच्छादित, विस्तृत भवन मे रहती थी, जिसमे तालाब, बगीचे, इत्यादि सभी विलास की सामग्री उपलब्ध रहती थी। पुरुष और स्त्रियों के मध्य हिजडे पत्र व्यवहार के लिये अमीर परिवार मे रखे जाते थे। पति अपनी पत्नी को किसी बाहरी पुरुष से मिलने तक नही देता था। बेली ने भी इसकी पुष्टि की है[३]।

अस्वस्थ स्त्रियो को पुरुष चिकित्सक देख भी नही सकता था। कुलीन परिवार की स्त्रियाँ बिना घूंघट के बाहर जाना उचित नही समझती थी।

---

१. वदायूँनी, मुंतखब-उत-तवारिख, २ (अनु०), पृ० ३२१।

२. जायसी, चैतन्य, विद्यापति, 'आखिरी कलाम', रामचद्र शुक्ल, पृ० १, पंक्ति १।

३. बेली, हिस्ट्री आफ गुजरात, पृ० ८७।

वेनी ने लिखा है कि—'मुस्लिम स्त्रियाँ चरित्रहीनता और गरीबी को छोड़ कर कभी भी बाहर नहीं निकलती थी[१]।

साधारणत: स्त्रियाँ विशेप अवसरों को छोड़ कर घर के बाहर निकलना प्रतिष्ठा के विपरीत समझती थीं। इन अवसरों पर भी उनकी पालकी ढंकी रहती थी तथा नौकरों और हिजड़ों से घिरी होती थी। राजकुमारियाँ तो कभी कभी महल से बाहर निकलती थी, जिसके लिये उन्हे बादशाह से पूर्व आज्ञा लेनी पड़ती थी। इस प्रकार किसी शाहजादी का दर्शन करना अत्यंत दुर्लभ था[२]।

बर्नियर ने लिखा है कि—'किसी कारण वश यदि मुस्लिम स्त्री का पर्दा टूट जाता था तो उस पर विपत्तियों का पहाड टूट जाता था। काबुल का गवर्नर अमीर खाँ ने अपनी स्त्री को इसी कारण छोड दिया था, क्योंकि उसका पर्दा हाथी से जान बचाने के कारण टूट गया था[३]। लेकिन वेनी प्रसाद ने लिखा है कि—'नूरजहाँ उसका उल्लंघन थी। वह पर्दा नही करती थी और जनता के सामने आती थी[४]।'

डा० चोपडा के अनुसार—'मुस्लिम अपनी स्त्रियों को सदैव संदेह की दृष्टि से देखते थे। उन्हे बिना बुर्के के घर से बाहर निकलने की आज्ञा नही थी। अमीर व्यक्ति उन्हे पालकी मे भेजते थे, जो चारो ओर से ढँकी रहती थी[५]।

१. वेली, पृ० ८९

२. वेली, हिस्ट्री आफ गुजरात, पृ० ९१।

३. बर्नियर, ट्रेवेल्स, पृ० १५३।

४. वेनी प्रसाद, हिस्ट्री आफ जहाँगीर, पृ० १२७।
राजपूताने मे पर्दा प्रथा नही था। शासको के संपर्क से वहाँ पर्दा प्रथा का विकास हुआ, परतु वहाँ इसका प्रभाव कम ही था। राजपूत रमणियाँ सब प्रकार के युद्धो मे दक्ष थी तथा शिकार इत्यादि पार्टियो मे हिस्सा लेती थी। दक्षिणी भारत मे मुसलमानो के अतिरिक्त पर्दा प्रथा नही थी। मालबार मे तो स्त्रियाँ अतिथियों का समान करती एवं उनके साथ बात चीत भी करती थीं। पी० एन० चोपडा, सम एस्पेक्ट आफ सोसायटी ऐंड कल्चर इन मुगल एज, पृ० २०९)।

५. वही, पृ० २०९-१०।

वेली पर विश्वास किया जाय तो मुस्लिम अपनी उपस्थिति के अतिरिक्त अपनी स्त्रियो को अपने संबधियों से भी बात नही करने देते थे[1]।

पर्दे की कट्टर प्रथा मध्यवर्गीय हिंदुओ मे नही अपनाई गई थी। हिंदू रमणियाँ घर के बाहर आ जा सकती थी। वे अपने पति तथा सबंधी जनों के साथ घर के बाहर जाती थी। और खुली हवा का आनद उठाती थी। मुस्लिम स्त्रियो के समान ये अपने को एड़ी से चोटी तक नही ढँकी रहती थीं। एक दुपट्टा उनके सिर को ढँकने के लिये पर्याप्त था[2]।

किसान तथा अन्य पेशे वाली पर्दे की प्रथा से बिलकुल स्वतंत्र थी। वे नदी के तट पर स्नान करती एवं नंगे पाँव मदिरो मे जाती थी। असरफ के अनुसार—'मध्य युग मे पर्दा प्रथा का जन्म उत्तरी भारत में ही हुआ जिसका कि कारण राजपूतो की विशेष सामाजिक परंपराएँ थी।' परंतु डा० आशीर्वादी लाल इस मत का खंडन करते है और लिखते है कि—'पर्दा प्रथा जो थी वह मुसलमानो के साथ ही भारत मे आई तथा विकसित हुई'[4]।

किसी लडकी का जन्म होना शुभ नही माना जाता था। टॉड के अनुसार राजपूत कहते थे—वह पतन का दिन होता है जब एक कन्या का जन्म होता है[5]।

उनका लडको के समान आदर नही होता था। यह अंतर शाही घरानो में भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता था। लडकी के जन्म पर केवल 'हरम' मे ही बेगमें खुशी मनाती थी, जबकि पुत्र जन्म पर संपूर्ण दरबार खुशियाँ मनाता था। पुत्र का कितना महत्व था अकबर के निम्न कथन से स्पष्ट हो जाता है—'यदि मेरे पुत्र होगा तो मैं शेख मुइन उद्दीन चिश्ती की दरगाह पर पैदल जाऊँगा'।[6]

---

१. बेली, पृ० ११३। २. वही, पृ० ११३-१४।
३. अफसर, लाइफ ऐंड कंडीशन आफ पीपुल आफ हिंदुस्तान, पृ० १७३।
४. डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, मुगलकालीन भारत, पृ० ५६१।
५. टॉड, एनाल्स ऐंड ऐंटीक्यूटिज आफ राजस्थान, पृ० २०७।
६. अबुल फजल, आईन, ३, (अनु०), पृ० ३०२।

अधिक कन्याओं को जन्म देने वाली स्त्रियों को हेय दृष्टि से देखा जाता था और उन्हें कभी कभी तलाक भी दे दिया जाता था। शिशु हत्या राजघरानों में प्रचलित थी।

विवाह प्रथा

यद्यपि 'कुरान' के अनुसार-'एक मुसलमान को चार शादी करने का अधिकार है, तथापि निम्न वर्ग के हिंदुओं एवं मुसलमानों में एक विवाह का ही प्रचलन था। वास्तव में 'निकाह' के द्वारा एक मुसलमान चार शादी तथा 'मुताह' के द्वारा असंख्य विवाह कर सकता था। इस प्रकार अकबर ने यह आदेश दिया था कि—व्यक्ति अपनी प्रथम पत्नी के बांझ होने पर दूसरा विवाह कर सकता है। इसका मुख्य कारण यह था कि एक से अधिक पत्नी रखने से स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।'[1]

बहु विवाह प्रथा उच्च कुलीन मुसलमानों में थी, दो तीन या चार तक पत्नियां रखते थे। मिर्जा अजीज कोका का कथन है कि—एक व्यक्ति को चार स्त्रियों से विवाह करना चाहिए। एक ईरानी स्त्री से बातचीत करने के लिये, खुरासानी को गृह कार्य करने के लिये, हिंदू रमणी से बच्चों को खिलाने के लिये और फटकारने के लिये, जिससे तीनों स्त्रियों को चेतावनी हो जाय।'[2]

एक से अधिक स्त्रियां होने पर इनमें प्रतिद्वंद्विता आती थी और वे अपने पति का प्रेम अधिक से अधिक प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहती थी। इन्हे अन्य आवश्यक वस्तुओं के अतिरिक्त अपने पति से मासिक भत्ता भी मिलता था। बहु विवाह के कारण अनेक बुराइयाँ आ गई थीं। एक पति अपनी पत्नियों की अनेक विलास संबंधी आवश्यकताओं को पूर्ण करने में असमर्थ पाता था।[3]

हिंदुओं में कुछ राजकुमारों को छोड़कर सभी में एक विवाह प्रथा विद्यमान थी। बेली के अनुसार—'हिंदू एक विवाह करता था और उसे चरित्रहीन होने के अतिरिक्त जीवनपर्यंत तलाक नहीं देता था।[4]

---

१. अबुल फजल, आईन, १, पृ० २१८-२०।

२. वही, पृ० २, पृ० ३६१। ३. बेली, पृ० ११६-२०।

४. वही, पृ० १२३।

मण्डलसो, हेमिल्टन, ओमे तथा स्टेवोरिनस आदि विद्वानों ने वेली के मतो को स्वीकार किया ।[1] यदि किसी की स्त्री बाँझ होती तो वह ब्राह्मण की सहायता से द्वितीय विवाह कर सकता था[2] ।

वाल विवाह की प्रथा मे लडकी का पालन पोषण उसके माँ बाप के घर मे होता था । उच्च वर्ग मे लडकी को माध्यमिक शिक्षा दी जाती थी तथा साधारण परिवारो मे घर के कार्यो मे कुशल करना ही लडकी की शिक्षा थी । राजनैतिक परिस्थितियो के अनुसार माँ बाप अपने लड़की की शादी शीघ्र से शीघ्र चेष्टा करते थे । उस समय यह सामान्य प्रथा थी कि सात या आठ वर्ष पश्चात् वह अपने जन्म स्थान पर नही रहती थी, अर्थात्, वह प्रायः छः या सात वर्ष की अवस्था मे व्याह दी जाती थी । वेली के अनुसार— जो पिता अपनी पुत्री का विवाह ६ वर्ष की अवस्था तक कर देता है, वह भाग्यशाली एवं परमात्मा का कृपापात्र है[3] ।

इस प्रथा को रोकने के लिये अकबर ने प्रयास किया । उसने यह आदेश दिया कि २१ वर्ष से कम लड़के और १६ वर्ष से कम लड़की का विवाह नही हो सकता है । आयु कम होने के कारण, यह प्रश्न ही नही उठता था कि वे एक दूसरे को देख कर चुनाव कर सके[4] ।

लडके लडकी का चुनाव प्रायः माँ बाप तथा सगे सबधियो पर ही निर्भर था । दहेज प्रथा प्रचलित थी । इसके कारण लडके का बाप उचित कन्या तक को पैसे के लोभ के कारण ठुकरा देता था । निम्न जाति के लोगों मे दूल्हे को दुल्हिन के संरक्षक को धन देना पडता था[5] ।

धन के लोभ के कारण एक मनुष्य अपने से अधिक उम्र की स्त्री से विवाह कर लेता था । यह प्रथा इतनी अधिक हो गई कि अकबर ने आदेश दिया कि 'यदि पत्नी की आयु पति से १२ वर्ष से ज्यादा हुई तो शादी दडनीय होगी[6] ।

राजपूत स्त्रियो को अपना पति चुनने की पूर्ण स्वतत्रता थी । स्वयवरों का आयोजन होता था[7] ।

---

१. के० एम० असरफ, पृ० १७७ । २. वेली, पृ० १२५ ।
३. वही, पृ० १२८ ।
४. अबुल फजल, आईन, ३, (अनु०), पृ० ३०१ ।
५. वही, (अनु०), पृ० ३०२ ।
६. वही, पृ० ३०५ । ७. अशरफ, पृ० १७३ ।

. स्त्री की पति के रूप में स्थिति ठीक नही थी। विवाह हो जाने के बाद उसकी 'सास' का उस पर नियंत्रण रहता था। यदि वह उसे खुश नही कर पाती थी तो हिंदू परिवारों में उसका जीवन नारकीय और मुसलमानों मे तलाक हो जाता था। परिवार के सब सदस्यों को उसे प्रसन्न करना पड़ता था और घर के सब कार्य करने पड़ते थे। केवल 'गर्भवती' स्त्री से कोई कार्य नही लिया जाता था[1]।

स्त्री की दशा उसके पति पर निर्भर रहती थी। हिंदुओं में कोई शुभ कार्य बगैर स्त्री के नही होता था। उसे अर्द्धांगिनी समझा जाता था। जहाँगीर ने अपनी आत्म कथा 'तुजुक-ए-जहाँगीरी' मे लिखा है कि—'अधिकतर हिंदू अपनी स्त्रियो के साथ अच्छा व्यवहार नही करते थे, वह उन्हे सिर्फ गृह कार्य के लिये समझते थे[2]।'

तलाक एवं द्वितीय विवाह मुस्लिम स्त्रियो मे प्रचलित था परंतु हिंदू महिलाओ के लिये इसका निर्णय निषेध था। हिंदू अपनी पत्नी की मृत्यू या बाँझ होने पर पुनर्विवाह कर सकता था। परंतु, पत्नी के लिये इस प्रकार की व्यवस्था नही थी। यदि उसका पति उसके साथ दुर्व्यवहार करता था, तब भी वह ऐसा नही कह सकती थी। अशरफ के अनुसार—'बिना पति की इच्छा से स्त्री तलाक नही कर सकती थी, लेकिन पति जब चाहे उसे छोड़ सकता था।[3]

दूसरा विवाह निम्न वर्ग के लोगो मे प्रचलित था। उच्च वर्ग में पति की मृत्यु के पश्चात् यदि स्त्री दूसरा विवाह करना चाहती तो उसे इसकी आज्ञा नही थी। बहुधा उन्हे 'सती' होना पड़ता था। विधवाओ के बाल काट दिये जाते थे और वे रगीन वस्त्र इत्यादि नही पहन सकती थी। विधवा होना एक पाप समझा जाता था। बेली ने लिखा है कि—'विधवा स्त्रियाँ दूसरा विवाह नही कर सकती थी। उन्हे जीवनपर्यंत कटा हुआ बाल रखना पड़ता था तथा उन्हे पाप समझा जाता था, यहाँ तक कि वह रंगीन वस्त्र भी धारण नही कर सकती थी। समाज उन्हे दूषित समझता था।[4]

---

१. अशरफ, पृ० १७७-७८।

२ जहाँगीर, तुजुक-ए-जहाँगीरी, (अनु०), पृ० १५६।

३. के० एम० अशरफ, पृ० १६१। ४. बेली, पृ० १२५।

मुगल काल मे चाहे स्त्रियों की दशा कैसी भी रही हो लेकिन माता के रूप मे उसे बड़े संमान की दृष्टि से देखा जाता था। चोपडा ने लिखा है कि—'माताएँ पुत्रो का सब कुछ थी तथा उन्ही के अनुसार पुत्रो को चलना पडता था'।[1]

यही नही मुस्लिम परिवारो मे भी साधारण वर्ग से लेकर मुगल राजकुमारो तक कोर्निस, सिज़दा और तसलीम माँ को करते थे। जहाँगीर ने अपनी आत्मकथा मे लिखा है कि—'मैं अपनी माँ के पास 'धार' गया और वहाँ उसे कोर्निस, सिजदा एवं तसलीम किया।[2]

राजपूत अपनी माँ को विशेष आदर देते थे। उनका राजपूत परिवारों मे बड़ा समान होता था।[3]

संपत्ति का जहाँ तक तक प्रश्न है वहाँ मुस्लिम स्त्रियो की दशा हिंदू रमणियों की अपेक्षा अधिक अच्छी थी। उन्हे पिता की संपत्ति मे से बराबर का भाग मिलता था। विवाह के पश्चात् भी उन्हे सपत्ति लेने का अधिकार था। इससे यह ज्ञात हो जाता है कि उनकी दशा ठीक थी।[4]

बहुधा भारतीय नारियाँ घरो के कामो मे व्यस्त रहती थी। कृषक एव निम्न परिवारो की स्त्रियाँ अपने पति को सहायता प्रदान करती थी। अबुल फजल के अनुसार—'कुछ स्त्रियो ने नाचने और गाने का कार्य अपना रखा था।'[5]

यूसुफ हुसैन के अनुसार—'बगाली नृत्य मे विशेष आनंद लेते थे[6]।'

देवदासी प्रथा का प्रचलन था। अनेक मंदिरो मे स्त्रियाँ नाचने गाने के लिये रखी जाती थी। अलबेरूनी ने भी देवदासियो का उल्लेख किया है[7]।

वेश्यावृत्ति को हीन दृष्टि से देखा जाता था और उनका निवास बहुधा शहर से दूर होता था। कुछ स्त्रियाँ दाइयो का कार्य करती थी।

१. पी० एन० चोपडा, पृ० २२१।

२ जहाँगीर, तुजुक-ए जहाँगीरी, (अनु०), पृ० १६१।

३. अफरफ, पृ० १७८।

४. वही, पृ० १७६।

५. आईन, १, (अनु०), पृ० २२४।

६. युसुफ हुसैन, ग्लीपसेस आफ मीडिवल इंडियन कल्चर, पृ० २२७।

७. अलबेरुनी, अलबेरुनी कालीन भारत, (अनु०) पृ० २०५।

शिक्षित स्त्रियाँ मंत्रियों के यहाँ पढ़ाने का कार्य करती थी। गरीब रमणियाँ दूकान करती थीं तथा 'पान' बेचा करती थी। मुगल सम्राट् अकबर ने शाही शराबखाने का अधिकार एक द्वारपाल की पत्नी को दिया था[1]।

स्त्री शिक्षा

पर्दे की कठोर प्रथा होने पर भी स्त्री शिक्षा का प्रचार था। उच्च वर्ग की नारियाँ न केवल विदुषी थीं, वरन् साहित्य की सरक्षक भी थी। इनमे से अनेक कवियित्री एवं लेखिकाएँ थी। सोलहवी शताब्दी मे शिक्षा एवं साहित्य मे इनका काफी प्रभाव रहा[2]।

राज्य की ओर से कन्याओ की शिक्षा की कोई व्यवस्था नही की जाती थी, लेकिन संपन्न और शाही घरानो की कन्याओ को किसी प्रकार की सामान्य साहित्यिक शिक्षा दीक्षा अवश्य दी जाती थी। कई शाही घराने की महिलाये, जैसे—गुलबदन बेगम, माहम अगा और सलीम सुल्ताना बेगम खूब पढी लिखी और विद्वान् महिलाये थीं। गुलबदन फारसी की लेखिका भी थी[3]। अकबर ने पुत्रियो की शिक्षा के लिये बडी अच्छी व्यवस्था की थी। मांसरेट लिखता है कि—'अकबर उन शाहजादियो की जिन्हे कि मनुष्य की दृष्टि से बड़ी कटोरता से बचा कर रखा जाता था, शिक्षा पर बड़ा ध्यान देता है। उन्हे वृद्धाएँ पढ़ाना लिखाना सिखाती हैं और अन्य बातो में भी प्रशिक्षित करती है[4]।

इस युग मे शासन प्रबंध के क्षेत्र मे भी स्त्रियो का महत्वपूर्ण योग रहा है। अकबर की मुख्य आया माहम अंगा ने (१५६०-६४ ई०) तक शासन का संचालन किया एवं राज्य पर प्रभुत्व स्थापित किया[5]।

शाही एवं अमीर परिवार की स्त्रियाँ विशेषतया राजपूत परिवारो की अस्त्र एवं शस्त्र के प्रयोग मे कुशल होती थी। 'पन्ना' की माँ का नाम मेवाड के इतिहास में जगमगाता है, जिसने अपने १६ वर्षीय पुत्र को युद्ध मे लड़ने के लिये भेजा और स्वयं लड़ी[6]। दुर्गावती ने आसफ खाँ के विरुद्ध

---

१. अबुल फजल, आईन, १ (अनु०), पृ० २३१।
२. वही, पृ० २३३।
३. मांसरेट, कमेंटोरियस, पृ० २०३। ४. वही, पृ० २०५।
५. आईन, २ (अनु०), पृ० ३९५।
६. पी० एन० चोपड़ा, पृ० २०२।

अनेक युद्धों में विजय पाई[1] । चाँद बीबी ने स्वयं अहमद नगर के किले की रक्षा की, अकबर का किले पर अधिकार उसकी मृत्यु के पश्चात् ही हो पाया[2] ।

मुगलकाल में भी स्त्रियों का उच्च चरित्र एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। अनेक विदेशी यात्रियो ने भी उनके चरित्र की भूरि भूरि प्रशंसा की है। वास्तव मे वे पतिव्रता एवं आदर्श नारी होती थी। पति की मृत्यु के पश्चात् सती होना तथा विधवा के रूप में भी उच्च रूप से अपना सतीत्व बचाना उनके बायें हाथ का खेल था। रणभूमि में अपने पुत्रो को मातृभूमि की रक्षा के लिये हँसते हँसते भेज देना भी उन्ही का कार्य था। तत्कालीन भारतीय नारियाँ वास्तव में विश्व के लिये आदर्श होती थी[3] ।

युद्ध मे शासक के पराजित होने पर अपने सतीत्व की रक्षा के लिये राजपूत रमणियाँ जौहर किया करती थी। जौहर के लिये राजपूत रमणियाँ विश्व मे एक विशेष स्थान रखती है[4] ।

मुगलकाल में एक ओर तो स्त्रियों की दशा हीन थी, पर्दे की कट्टर प्रथा थी तथा दूसरी ओर उनकी दशा उच्च थी जहाँ उन्होने शिक्षा, शासन एव युद्धो में महत्वपूर्ण योग दिया[5] ।

भारतीयों का जीवन : खान पान

आधुनिक युग के समान मध्य काल मे भी भारतवासी खान-पान और वस्त्राभूपण के क्षेत्र में ससार के अन्य देशो की तुलना मे काफी बढे चढे थे। मध्ययुग में विभिन्न समुदायो एवं वर्गो का खान पान निम्न प्रकार का था।

हिंदू एवं मुसलमान दोनों वर्गो के साधारण स्थिति वाले मनुष्य श्रेष्ठ भोजन न करने की क्षमता के कारण जिस साधारण भोजन पर अपना निर्वाह करते थे, 'खिचड़ी' था, जिसका वर्णन सभी यात्रियो एवं इतिहासकारो ने किया है। दक्षिण के लोगो का मुख्य भोजन चावल था। गुजराती दही और

---

१. अबुल फजल, आईन, २ (अनु०), पृ० ३६५।
२. वही, पृ० ३६८।
३. जहाँगीर, तुजुक-ए-जहाँगीरी, (अनु०), पृ० २७८।
४. टाड, पृ० २०६। ३. पी० एन० चोपड़ा, पृ० २११-१२।

चावल पर अपना निर्वाह करते थे। चावल और खिचड़ी को दही एवं अचार के साथ खाया जाता था[१]। खाने के पश्चात् सभी वर्गों के मनुष्य 'पान' अवश्य खाते थे। अमीर एवं मध्य वर्ग के लोग पान मे सुगंधित मसालों का प्रयोग करते थे[२]।

उत्तरी भारत के निवासियों का मुख्य भोजन चपाती (रोटी) था, जो 'जौ' और 'गेहूँ' से बनाई जाती थी। इनको 'घी' मे डुबा कर खाया जाता था। अबुल फजल के अनुसार—'साधारण वर्ग प्रातःकाल भुने एवं पिसे हुए बाजरे में चीनी और पानी मिलाकर खाया करता था। यह वर्ग दोपहर के समय भुनी हुई दाल और अन्य अनाज खाया करता था। मध्य वर्ग के मनुष्य, जैसे—व्यापारी, दूकानदार और सौदागर इत्यादि, दिन में तीन बार भोजन किया करते थे। मुस्लिम परिवारो में 'कबाब' और रोटी दोनों का प्रचलन था[३]।

उच्च और मध्यम वर्गीय जनता चपाती, चावल और विभिन्न प्रकार की तरकारियाँ पकाती थी। पूरी और लुन्तई का प्रयोग विशेष अवसरों पर होता था। साधारणतया हिंदू निरामिष होने के कारण दही, मक्खन, तेल, दूध का प्रयोग करते और खीर तथा खोवा बनाते थे। घी और पनीर का प्रयोग भी आर्थिक स्थिति के अनुसार होता था[४]।

मास का प्रचलन था। हिंदू निरामिष होते थे। पेलसर्ट ने लिखा है कि—'हिंदू लोग मास को छूते तक नहीं थे[५]'। लेकिन यह कथन केवल जैन, ब्राह्मण, वैश्य और मद्रास, महाराष्ट्र, गुजरात और केंद्रीय भारत की कुछ जातियों पर ही लागू होता है, क्योंकि बंगाल और पंजाब के ब्राह्मण तक गोश्त खाते थे। राजपूत हिंदू भी विभिन्न पशुओं का मांस खाया करते थे। मुस्लिम परिवारो में सामान्य रूप से प्रचलन था[६]।

---

१. सर यदुनाथ सरकार, मुगल ऐडमिनिस्ट्रेशन, पृ० १३७।
२. वही, पृ० १३९।
३. अबुल फजल, अकबरनामा, २ (अनु०), पृ० २५१।
४. पेलसर्ट इंडिया, पृ० ३५-३६
५. वही, पृ० ३२।
६. वही, पृ० ३९।

मुसलमानो के भोजन के विषय में श्रीराम शर्मा ने लिखा है कि—'ये भेड़, बकरी, मछली और अन्य पक्षियो का मास खाते थे। इसको स्वादिष्ट बनाने के लिये विभिन्न प्रकार के मसालों का प्रयोग किया जाता था। यह स्मरणीय है कि कुछ मुगल शासको ने मांस-भक्षण को प्रोत्साहन नही किया। अकबर ने विशेष दिवसो पर पशु-वध का निषेध कर दिया था[1]।

अमीर वर्ग की चपाती सफेद गेहूँ के आटे मे १५ प्रतिशत घी के मिश्रण द्वारा बनती थी, जो रोगनी के नाम से प्रसिद्ध थी। मुसलमान हिंदुओं की तुलना मे बहुत कम पूरी और लुंतई खाते थे। निरामिष भोजन मुख्य रूप से हिंदू किया करते थे। मुसलमान पुलाव, कीमा, काबुली का प्रयोग किया करते थे। मीठे पदार्थो मे हलुआ तथा अन्य मिष्ठान्न अधिक प्रसिद्ध थे। दिल्ली, लाहौर और आगरे मे मिठाइयो की अनेक दुकानें स्थित थीं। मिठाइयों का इतना प्रचलन था कि काम करके लौटने पर सब लोग खाते थे। ट्रेवर्नियर ने लिखा है कि—'मजदूर काम से लौटने के पश्चात् उसका खाकर पानी पीते थे[2]।'

हिंदुओ के रसोई का ढंग विशेष था। हिंदू अपने रसोई-घर को विशेष स्वच्छता से रखते थे। उनके वर्तन स्वच्छ रहते थे। चौकों को गोवर से 'लीपा' जाता था तथा जूते पहनकर रसोई घर मे कोई भी प्रवेश नही कर सकता था। निम्न जाति के व्यक्तियो को उच्च कुल के व्यक्ति अपने वर्तन प्रयोग के लिये नही देते थे। भोजन वनाने का कार्य केवल ब्राह्मण ही करते थे। निम्न जाति का कोई व्यक्ति यदि रसोई घर मे प्रवेश कर जाता था तो समस्त भोजन को अशुद्ध माना जाता था। भोजन करने से पूर्व हिंदू स्नान करना आवश्यक मानता था। किसी के भोजन प्रारंभ करने से पहले खाने के कुछ अंश का भगवान् के आगे भोग लगाया जाता था[3]।

साधारण जनता 'पत्तलों' मे ही भोजन करती थी। खाना खाने के पश्चात् पत्तलें उठाकर फेंक दी जाती थी। स्त्रियाँ अपने पति के साथ भोजन नही करती थी, वरन् पति के भोजन करने के पश्चात् ही वे भोजन

१. श्रीराम शर्मा, मुगल गवर्नमेंट ऐडमिनिस्ट्रेशन,
२. ट्रेवर्नियर, ट्रेवेल्स इन इंडिया, पृ० १६३।
३. ट्रेवर्नियर, पृ० १६५-६६।

करती थी। मनूची ने लिखा है कि—'स्त्रियाँ अपने पति के साथ बैठकर कभी भी नही खाती थीं, पति के भोजन कर लेने के बाद ही खाना खाना अपना कर्तव्य समझती थी।[1]

मध्यकाल मे फलों का सामान्य सा प्रचलन था। अमीर और सामान्य स्थिति के मनुष्य मौसम में नारंगी, खीरा, ककड़ी, अमरूद, खजूर, आम और अगूर का आनंद उठाते थे। बाहर के देशो से फलो का आयात होता था, जिन्हे केवल उच्च वर्ग ही खाता था। जहाँगीर ने अपनी 'आत्म कथा', 'तुजुक-ए-जहाँगीरी' मे लिखा है कि—'उस काल मे बाहर के देशो के फल बाजार मे सुगमता से उपलब्ध हो जाते थे।'[2]

सूखे फलों मे नारियल, खजूर; मखाना, काजू, पिस्ता आदि सुगमता से उपलब्ध हो जाते थे। शुद्ध जल खाने के समय पीने के काम मे आता था। कुछ लोग गंगा जल का प्रयोग करते थे। बर्फ का प्रयोग गर्मियो मे होता था। शर्बत, गुलाब जल और लेमन, बर्फ सहित अमीरो के द्वारा प्रयोग मे लाया जाता था।[3]

—आलू, जिससे संभवतः तात्पर्य मीठे आलू (बनास अद्लिस या इयोमिवा बत्तातास) से है, जो ब्राजील से स्पेन मे १५१६ ई० में लाया गया था; शीघ्र भारत मे लोकप्रिय हो गया।[4] टेरी उत्तरी भारत मे गाज़रो के साथ आलू के बोए जाने की बात करता है और जब जहाँगीर के साले आसफ खाँ ने राजदूत को भेज दिया था, अत्युत्तम प्रकार से पकाये हुए आलू भी बहुसख्यक भोज्य वस्तुओ मे से थे। अंतःकरण से शुद्ध पादरी ने तुष्टिपूर्वक उन सभी का स्वाद चखा।[4]

मद्यपान

मादक द्रव्यों का खूब प्रचलन था। मद्य कुरान मे निषेध किया गया है, परंतु ईरानियो ने इसका समर्थन किया है। उनका कहना है कि यदि निश्चित मात्रा मे लिया जाय तो यह स्वास्थ्य के लिये लाभदायक सिद्ध

१. मनूची, स्टोरिया डीमोगोर (विलियम इर्विन द्वारा अंग्रेजी मे मुगल इंडिया के नाम से अनूदित), पृ० २८३।
२. जहाँगीर, तुजुक-ए-जहाँगीरी, (अनु०), पृ० २२३।
३. मनूची, पृ० २८९।
४. टेरी, पृ० ९२, १९७।

होता है। 'जवामी-उल्-हिकायत' के लेखक 'मुहम्मद औफी' ने लिखा है कि—'यदि यह प्रतिदिन औसत रूप मे सेवन की जाये तो स्वास्थ्य के लिये लाभकारी सिद्ध होती है।'[1]

भारतीय मुसलमानों मे इसका सामान्य रूप से प्रचलन था। मुसलमानो मे ऐसा वर्ग खोजना कठिन था जो शराव न पीता हो। स्त्रियाँ, वच्चो के शिक्षक, गुप्त रूप मे धार्मिक पुरुष और खुले मे सिपाही तथा सैनिक अधिकारी, सभी मद्यपान करते थे। उत्सवो के आयोजन तथा मित्र गोष्ठियो मे यह पी जाती थी। किसी शत्रु पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य मे सामूहिक रूप से शरावरी जाती थी।[2]

केवल औरगजेव को छोडकर सभी मुगल शासक मद्य के अनन्य प्रेमी थे। ये वादशाह दिन मे कई बार शराव पीते थे। वावर और जहाँगीर अद्भुत शरावी थे। जहाँगीर ने स्वयं अपनी आत्मकथा 'तुजुक-ए-जहाँगीरी' मे लिखा है कि—'मुझे आधा सेर मांस तथा एक सेर शराव से काम है और कुछ मुझे लेना-देना नही है'।[3]

हुमायूं कभीकभी शराव लेता था, क्योकि वह अफीम का प्रेमी था। अकबर शराव को कुछ मात्रा मे स्वास्थ्य के लिये लाभकारी समझता था। वह दूरस्थ स्थानो मे जाकर इसका सेवन किया करता था। इसलिये उसने सरकार के नियत्रण के अतर्गत 'मदिरालय' खुलवाए, जहाँ निश्चित मात्रा मे निश्चित दर के अनुसार शराव मिलती थी[4]।

विभिन्न प्रकार की मदिराओ का प्रचलन था। सवसे मुख्य और सस्ती शराव 'ताडी' थी जो नारियल, ताड या खजूर के द्वारा वनाई जाती थी। स्वादिष्ट होने के कारण यह सपूर्ण भारत मे अधिक रुचि के साथ पी जाती थी। 'नीरा' एक प्रकार की मद्य थी जो दूध के समान मीठी होती थी। मँहुवा, खेर्री इत्यादि अन्य प्रसिद्ध मद्य थी। चावल और अनन्नास के द्वारा

---

१. मुहम्मद औफी, जवामी-उल्-हिकायत, (अनु०), पृ० ७८।
२. यदुनाथ, स्टडी इन मुगल इडिया, पृ० ३५१।
३ जहाँगीर, तुजुक-ए-जहाँगीरी, (अनु०), पृ० ३३१।
४. सक्सेना शाहजहाँ, पृ० २७ (काजवीनी के ग्रथ)।

यह कमर तक का कोट, सामने खुला होता था। अकबर ने कुशल दर्जियों की नियुक्ति की थी, जो नये नये फैशन के वस्त्र बनाते थे। हुमायूँ और अकबर सितारों के अनुसार दिन में कई बार वस्त्र परिवर्तन करते थे। मांसरेट, अकबर की पोशाक के बारे में लिखता है कि—'अकबर तथा उसके दरबार सिल्क का वस्त्र तथा उस पर काफी सुंदर सोने के तार की कढ़ाई किया हुआ कपड़ा पहनते थे। पूरा मंत्रिपरिषद् तथा अधिकारी जूते और कपड़े से सुसज्जित दरबार में उपस्थित होते थे।'[1] इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि मुगल सम्राट् वस्त्रो के चयन करने में कितने पारंगत थे।

उस समय ११ प्रकार के कोटों का प्रचलन था, जिसका वर्णन अबुल फजल ने 'आईन-ए-अकबरी' मे किया है, 'ये कोट टकऔचिया, पेशवाज, शाहअजदा, गादर, हरगी, चकमन, फरगूल इत्यादि थे[2]।'

अमीर और उच्च वर्ग के लोग दरबार में खिलत पहनते थे। इस अवसर के लिये उन्हे सम्राट् द्वारा वर्ष में एक बार प्रदान किया जाता था। उच्च वर्ग के मुसलमान पायजामा पहनते थे। शरीर को ढांकने के लिये ये कमीज पहनते थे जो ऊपर से नीचे तक खुली हुई रहती थी। बंगाली कमीजें अधिक लंबी होती थी। जाड़ो मे इनके ऊपर बंडी पहनने का प्रचलन था। कभी कभी 'कावा' भी पहना जाता था। हिंदू कावे के बंद बाईं ओर, और मुसलमान दाहिनी ओर बांधते थे। अमीरों के कंधों पर विभिन्न रंगो का ऊनी शाल पड़ा रहता था। हिंदू धोती पहनते और उनके कंधों पर सफेद चादर तथा कान में बालियाँ होती थी। उच्च वर्ग द्वारा हाथों में सोने के कगन पहने जाते थे। पाँच या छः वर्ष तक के बच्चे प्रायः नंगे घूमा करते थे और उनकी कमर में एक जंजीर सोने या चाँदी की पड़ी रहती थी[3]।

सामान्य लोगो का पहनावा मजदूर, कलाकार और कुम्हार आदि

---

१. मासरेट, मंगोल्कि लेगासानिश कमेंटारियस, (अनु०), जे० एस० हालैंड एवं एस० के० बनर्जी, पृ० २१७।

२. आईन, १ (अनु०), पृ० १६३-६४।

३. एम० के० बनर्जी, 'बाकर ऐंड हिंदूज' इन द जर्नल आफ द यू० पी० हिस्टोरिकल सोसायटी, ६, भाग २, (१९३६)।

सामान्य स्थिति वाले मनुष्य एक सूती लंगोटा पहनते थे जो कमर से घुटने तक जाता था[1]।

वावर ने अपनी आत्मकथा 'तुजुक-ए-वाबरी' मे इसी बात को लिखा है। अबुल फजल के अनुसार—'बंगाल के स्त्री एवं पुरुष दोनों ही नग्न रहते और केवल एक लंगोट उनके नीचे के भाग को ढँके रखता था।' परंतु जाडे के दिनों मे यह सभव प्रतीत नही होता कि ये लोग पूर्णतया नग्न रहते हो।[2]

मोरलैंड के अनुमार—'लोगो द्वारा परिधारित किए जाने वाले विभिन्न वस्त्रों के वर्णन में पडने के बजाय उनकी वस्त्र हीनता पर वल दिया जाय।'[3] परंतु यह कथा पूर्णतया सत्य ज्ञात नही होता, क्योकि तत्कालीन यात्रियों के वर्णन के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है भारतीय पर्याप्त मात्रा में वस्त्रो का प्रयोग करते थे।

स्त्रियो का पहनावा साधारण था। गरीव स्त्रियाँ साड़ी पहनती थीं, जिसके एक छोर से उनका सिर ढँका रहता था। इसके अतिरिक्त चोली और अगिया भी पहनी जाया करती थी। कभी कभी सुदरता को वढाने के लिये इसका छोर कंधे के ऊपर डाला जाता था। हिंदू स्त्रियाँ लाल रंग पसंद करती और अपने वस्त्रों को इस रंग से रँगती थी। फरिश्ता ने लिखा है—'दक्षिण मे निम्न वर्ग के आदमी तथा स्त्रियाँ सर को नहीं ढंकते थे।'[4]

गरीव उडिया स्त्रियाँ कपड़ा प्राप्त न कर सकने के कारण पेड़ों की पत्तियों से अपने शरीर को ढँके रहती थी। अँगिया और जाकेट गरीव तथा अमीर दोनो के प्रयोग मे लाई जाती थी[5]।

उत्तर प्रदेश मे स्त्रियाँ लहँगा, चोली और अँगिया पहनती थी। कभी कभी सिर पर एक दुपट्टा भी पडा रहता था। मुसलमान महिलाएँ

---

१. वावर, तुजुक-ए-वावरी, (अनु०), पृ० १३२।
२. अबुल फजल, अकवरनामा, ३, (अनु०), पृ० ३८०-८१।
३. मोरलैंड, अग्रेरियन सिस्टम आफ मुस्लिम इडिया, पृ० २१९।
४. फरिश्ता, तारीफ-ए-फरिश्ता (अनु० विग्ज), २, पृ० १८८-८९।
५. फरिश्ता, तारीख-ए-फरिश्ता, (अनु ब्रिग्ज), २, पृ० १८८-८९।

पायजामा और कुर्ता पहनती थी। पायजामा चाँदी या रेशम के नाड़े द्वारा बँधा रहता था और कुर्ता आधी बाँहों का होता था। सलवारे सूती और रेशमी दोनो प्रकार की बनाई जाती थीं। अमीर वर्ग की महिलाओ का स्त्री पहनावा काश्मीरी शाल और कावा था। हिंदू एव मुसलमान दोनों वर्गो की स्त्रियाँ सिर को दुपट्टे द्वारा ढँकी रखती थीं। मुस्लिम महिलाएँ बाहर जाते समय बुर्के का प्रयोग करती थीं[1]।

सिर एवं पैर के पहनावे का भी प्रयोग किया जाता था। नगे सिर रहने वाले मनुष्य को मध्य युग मे आदर की दृष्टि से नही देखा जाता था। इस कारण हिंदू और मुसलमान दोनो ही बाहर जाते समय टोपी या पगड़ी पहना करते थे। हिंदुओ की पगड़ी रग बिरंगी और सीधी एव ऊँची होती थी। इसके विपरीत मुसलमान सफेद एवं गोल पगड़ी धारण करते थे। पगड़ी की लंबाई २५ से ३० गज होती और इसका वजन ४ औंस होता था। कभी कभी पगड़ी पर रेशमी और सुनहरी धागों का काम होता था। काश्मीरी टोपी कूल्हा का भी प्रचलन था। बर्नियर ने लिखा है—'गर्मी के कारण पैरो मे मोजे बहुत कम पहने जाते थे। जूते साधारणतया तुर्की शैली के होते थे। जिनका अग्र भाग नुकीला और ऊपरी भाग खुला हुआ रहता था, इनको पहनने और उतारने मे अधिक सुविधा रहती थी। जूतो की एंडी छोटी होती थी। कालीकट के ब्राह्मण भूरे स्लीपर जाड़ो में तथा गर्मियो मे खड़ाऊँ धारण करते तथा मध्य वर्गीय परिवार लाल चमड़े के जूते पहनते थे, जिनपर फूलो की आकृतियाँ बनी होती थी। इसके विपरीत उच्च वर्गीय मनुष्यो के जूतो पर सुनहरे और रेशमी फूलों का काम होता था। शाही परिवारो के जूते रत्न जटित होते थे[2]।'

सौंदर्य प्रसाधन

सौंदर्य प्रसाधन का खूब प्रचलन था। मध्यम और उच्च वर्गीय परिवार अपने को अधिक सुदर बनाने के लिये सौंदर्य प्रसाधनों का प्रयोग किया करते थे। सिर को धोने के लिये रीठे का प्रयोग किया करते थे। सिर के बालो के लिये विभिन्न प्रकार के तेलो का प्रयोग होता था। 'आईन-ए-

---

१. एस० के० बनर्जी 'बाबर ऐंड हिंदूज इन द जर्नल आफ द यू० पी० हिस्टोरिकल सोसायटी, ९, भाग २, (१९३६)।

२. बर्नियर, ट्रैवलर इन इंडिया, पृ० १७४-७६।

अकबरी' मे अबुल फजल[1] ने इन तेलों का विस्तृत वर्णन किया है। इन तेलो मे प्रसिद्ध अर्क चमेली, अर्क शेवटी, मौसरी और अवर-ए-आसव अधिक थे। सम्राट् अकबर ने सुगधित पदार्थो के निर्माण हेतु 'खुशबूखाना' नामक विभाग की स्थापना की थी। 'शेख मसूर' को इसका अध्यक्ष बनाया था। इसके कर्मचारी नवीन इत्र बनाने के बारे मे बरावर सोचा करते थे। पेलसर्ट इसी का समर्थन करते हुए लिखा है कि—'इस विभाग मे कार्य करने वाले कर्मचारी रात दिन नये नये इत्रो के बारे मे सोचा करते थे[2]।'

नूरजहाँ की माँ ने गुलाव से एक इत्र का निर्माण किया, जिसका नाम 'इत्र-ए-जहाँगीरी था। जहाँगीर ने 'तुजुक-ए-जहाँगीरी' मे इसका वर्णन करते हुए लिखा है कि—'यदि इसकी एक बूंद हाथो पर मली जाय तो उसकी खुशबू दूर दूर तक फैल जाती है।[3] 'आगरा, बनारस, जौनपुर, इत्यादि स्थानो पर सुगधित द्रव्यो के निर्माण के प्रमुख केंद्र थे। सुगधित तेलो का आयात बगाल से होता था। पान का प्रयोग स्त्री एव पुरुष दोनो अपने होठो को रगने के लिये किया करते थे। शीशा और कघा सामान्य सौदर्य प्रसाधन थे। कघा लकडी, धातु और हाथी दाँत के द्वारा बनाया जाता था। हाथ और पैरो को रँगने के लिये स्त्रियाँ मेहदी का प्रयोग करती थी।[4]

आभूषणो का खूब प्रचलन था। स्त्री एव पुरुष दोनो ही सुदरता वढाने के लिये आभूषणो का प्रयोग करते थे। ऊपर से नीचे तक स्त्रियों का सपूर्ण शरीर आभूषणो से ढँका रहता था। हिंदुओ मे आभूषण सुहाग का प्रतीक समझा जाता था।[5]

अबुल फजल[6] ने 'आईन ए अकबरी' में ३७ प्रकार के आभूषणो का जिक्र किया है जिसमे प्रमुख चौक, शीस-फूल था। कानो के लिये कर्णफूल, पीपल पट्टी, मोर भंवर, वोली और चंपाकली का प्रयोग होता था।

---

१. आईन, १, (अनु०), पृ० १६५-६७।
२. पेलसर्ट, इन्डिया, पृ० ६५।
३. जहाँगीर, तुजुक ए जहांगीरी, (अनु०), पृ० ८८-८९।
४. पेलसर्ट, इंडिया, पृ० ६६-६७। ५. वही, पृ० ६९।
६. अबुल फजल, अकबरनामा, ३ (अनु०), पृ० ३८७-८८।

मुस्लिम साम्राज्य के प्रारंभिक दिनो मे नाक में कोई जेवर पहनने का प्रचलन नही था। लेकिन उत्तर पश्चिमी विजेताओ के प्रभाव से इसका प्रयोग आरभ हो गया। नाक मे सोने की नथ या वेसर पहनी जाती थी। फैशनेबुल स्त्रियाँ 'लौग' का प्रयोग किया करती थी। गले मे स्वर्ण की जंजीर (नेकलेस) पाँच या सात लडो का पहना जाता था। इसके अतिरिक्त गले के दो अन्य आभूषण हार और गुलवंद का प्रयोग होता था। बाँहो में जेवर पहनने का अधिक प्रचलन था। नगी बाँहे असभ्यता एवं अभाग्य का प्रतीक समझी जाती थी। बाजुओ के लिये—बाजूबंद, गजरा, ककन, कडे, और चूड़ी बहुत प्रयोग में आती थी। ये स्वर्ण के द्वारा बनाए जाते थे और इसमे रत्न जड़े होते थे।[1] हाथो की उँगलियों में अँगूठियाँ पहनने का रिवाज था। 'कमर चुद्र कण्डिका', कटिमेखला इत्यादि पेटियों का प्रचलन था। पैरो मे घुँघरू, पायल, बिछुवा, मक आदि आभूषण पहने जाते थे।

पुरुषो मे भी आभूषण पहनने का प्रचलन था, परतु ये स्त्रियो के समान आभूषण धारण नही करते थे। मुसलमान तो केवल कभी कभी तावीज पहना करते थे। हिंदू कानों और अँगुलियों में बाली और अँगूठियाँ पहना करते थे। हिदू राजपूतों में कर्णफूल धारण करना सभ्यता की निशानी थी। गरीब से गरीब व्यक्ति आभूषण पहनना अपना धर्म समझता था।[2]

आभूषण बहुधा सोने और चाँदी के बनाए जाते थे, परंतु गरीब मनुष्य अन्य धातुओ के द्वारा निर्मित आभूषण पहनते थे। हाथी दाँत की चूड़ियाँ और कंगन भी बनाए जाते थे। गेंडे की चूड़ियाँ और अँगूठियाँ भी बनाने का प्रचलन था। सुनार सदैव नवीन प्रकार के आभूषण बनाने मे व्यस्त रहते थे एक तोले आभूषण की बनवाई सुनार ६४ दाम लेता था। हाथी के दाँत के कड़े बनाने मे कम्बोडिया के कारीगर अधिक प्रसिद्ध थे मध्य कालीन भारत मे पान, वस्त्राभूषण आदि पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध थी। अबुल फजल[3] ने 'आईन' मे ३७ प्रकार के आभूषणो का वर्णन किया है

---

१. अबुल फजल, अकबरनामा, ३, (अनु०), पृ० ३८८-८९।

२. वर्नियर, ट्रेवलर इन इंडिया पृ० २०५।

३. अबुल फजल, अकबरनामा, ३ (अनु), पृ० ३९५,९६।

जो कि उस समय प्रचलित थे। भारतीय स्त्रियाँ हर तरह की हर जगह की एक दूसरे से भिन्न आभूषणो का प्रयोग करती थी। सोने-चाँदी तथा अन्य धातुओ के गहनो को पहनती थी, जहाँ जैसा प्रचलन था। अपने मन के मुताविक लोग सुनारो से गहना वनवा कर प्रयोग करते थे।

शासकीय प्रयास

दिल्ली सल्तनत के सुल्तानो ने इस वात की चेष्टा नही की कि दोनों धर्मो एवं जातियो मे एकता स्थापित हो, केवल वादशाहो ने हिंदू कन्याओ से विवाह किए, जिसमे दोनो धर्मो की एकता का कोई प्रश्न नही था। इन विवाहो मे सवसे प्रसिद्ध विवाह राजा कर्ण की पत्नी कमला के साथ अलाउद्दीन खिलजी ने किया था[1]। मुगल काल मे प्रथम और अंतिम प्रयास दोनो जातियो को एक करने के लिये अकवर ने किया। अकवर ने राजा भारमल की पुत्री से अपनी शादी की[2]। यह प्रथम मुसलमान शासक था जिसने हिंदुओ को पूर्ण स्ववत्रता प्रदान करके मुसलमानो के समान अधिकार प्रदान किया। डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव ने लिखा है कि—'अकवर की इच्छा थी कि उसके अतर्गत विभिन्न धर्मो की धाराएँ परस्पर मिल कर वहे, जिससे कि सकुचित दृष्टिकोण, हठधर्मी, धार्मिक असहयोग और पारस्परिक कलह का अवसान हो जाय। यद्यपि वह अपने आदर्शो मे पूर्ण रूप से फलीभूत नही हुआ तथा वह अपनी अधिकाश प्रजा का स्नेह-भाजन वन गया और उसे एक राष्ट्रीय शासक की उपाधि मिली[3]।

अकवर ने राजनीतिक कारणों या किसी अन्य कारण से यह निश्चित कर लिया कि दोनो जातियो मे एकता स्थापित करना आवश्यक है। यह उसी समय संभव था जवकि हिंदू मुसलमानो को और मुसलमान हिंदुओं को क्रमशः हीन तथा काफिर न समझे। इसी कारण उसने हिंदू राजकुमारियो से विवाह कर उन्हे तथा उनके परिवार के सदस्यो को दरवार मे समुचित आदर एवं समान प्रदान किया। हिंदुओ को अपनी ओर मिलाने के उद्देश्य से उसने १५६३ ई० मे यात्राकर जो तीर्थ स्थानो की

---

१. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, मुगलकालीन भारत, पृ० ६३६।
२. सर यदुनाथ सरकार, स्टडी इन मुगल इंडिया, पृ० ३४०।
३. सर यदुनाथ सरकार, स्टडी इन मुगल इंडिया, पृ० ३५२-५३।

यात्रा करने वाले हिंदुओं पर लगाया जाता था, समाप्त कर दिया[1]। जिस 'जजिया' कर को पिता और दादा ने धार्मिक कर्तव्य समझ कर हिंदुओ पर लगाया था उसको अकबर ने समाप्त कर दिया। केवल इतना ही नही वह हिंदू रानियो से प्रभावित होकर हिंदुओं की पूजा रीति से विशेष सहानुभूति रखने लगा[2]।

अकबर प्रकट रूप से हिंदू विद्वानो एवं दार्शनिको के उपदेश भी सुनने लगा। राजपूत स्त्रियो से विवाह करने के कारण हिंदुओ का मुसलमानो के प्रति विद्वेष एव शत्रुता का भाव बहुत कम हो गया। इस प्रकार दोनों जातियाँ एक दूसरे के निकट आने लगी[3]।

हिंदू एवं मुसलमान ही नही, वरन् सव धर्मों मे एकता स्थापित करने का अकबर ने प्रयास किया। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसने अपनी राजधानी 'फतेहपुर सीकरी' मे सन् १५७२ ई० मे इबादतखाना (पूजागृह) की नीव डाली[4]। इसका वर्णन इतिहासकार बदायूँनी ने अपनी पुस्तक 'मुतखब-उत्-तवारीख' में किया है। अकबर ने सर्वप्रथम इस्लाम के सिद्धांतो को समझने के लिये ही ऐसा किया। इस्लाम के विभिन्न विद्वान् इस पर बहस करते, लेकिन अकबर को इससे निराशा ही हाथ लगी, क्योकि विद्वान् अपने विचारों की पूर्ति न होने पर एक दूसरे के प्रति अपमानजनक शब्दो का प्रयोग करने लगे।[5]

इन बातों से बादशाह को कष्ट हुआ और उसने सभी धर्मों को जानने के लिये इबादतखाने के द्वार सभी विद्वानो के लिये खोल दिए। इस प्रकार 'इबादत खाने' में हिंदू, जैन, पारसी, ईसाई, सिख आदि सभी धर्मों के विद्वान् एकत्र होकर शास्त्रार्थ करने लगे। इससे दोनों वर्गो की जनता एक दूसरे के सपर्क में आने लगी। शास्त्रार्थ सुनते सुनते अकबर का यह विचार

---

१. सर यदुनाथ सरकार, स्टडी इन मुगल इंडिया, पृ० ३५७।

२, स्मिथ, महान् मुगल अकबर, (अनु०) पृ० २१८।

३. वही, पृ० २१६।

४. स्मिथ, महान् मुगल अकबर, (अनु०), पृ० २१६।

५. बदायूँनी, मुंतखब-उत्-तवारीख, (अनु०), २, पृ० ३११।

बन गया कि सभी धर्मों में अच्छी बातें होती हैं, इसलिये उसने सभी धर्मों की अच्छी बाते सग्रहीत करके नवीन धर्म 'दीन-ए-इलाही' चलाया[1]।

अकबर ने 'दीन-ए-इलाही' धर्म इसलिये चलाया कि भारत के बहुसंख्यक हिंदुओ, प्राचीन और बहुत ही विकसित भारतीय धर्मो एवं दृढ भारतीय सांस्कृतिक परपराओ के कारण इस्लाम धर्म का राष्ट्रीय धर्म होने के अनुपयुक्त है। इसलिये वह सभी धर्मों का सावधानी से निरीक्षण किया। अकबर वर्षो से इस समस्या पर विचार कर रहा था और उसका मत था कि राष्ट्रीय ऐक्य और प्रगति इसके सही हल पर निर्भर है।[2]

अकबर के विचारानुसार इस समस्या का हल ऐसा ही धर्म हो सकता था जिसमें प्रचलित धर्मों की अच्छाइयाँ तो हो पर किसी की बुराइयाँ न हो। सम्राट् ने एक सभा का आयोजन किया, जिसमें सभी धर्मों के लोग अपने धार्मिक कानूनों के ग्रथ साथ लाए तथा विद्वान् आपस मे वाद-विवाद करें ताकि मै उन्हे सुन सकूँ और प्रत्येक निश्चित कर सके कि कौन-सा धर्म सबसे अधिक सत्य और शक्तिवान् है[3]।

विरोधी वक्ताओ ने अपने विरोधियो के धर्मो की बुराइयाँ वताई और इस प्रकार सभी प्रचलित धर्मो की राष्ट्रीय धर्म के रूप मे स्थापना करने की अनुक्तता असदिग्ध रूप से प्रमाणित हो गई[4]।

अकबर को अपनी योजना प्रकट करने का अब उचित अवसर आ गया था। उसने कुछ दिनो पश्चात् अपने अमीरो और उलमाओं की एक सभा संबोधित किया। एक सम्राट् द्वारा शासित, एक सम्राट के लिये, सदस्यो का आपस मे विभक्त रहना और एक दूसरे से मतभेद रखना उचित नही है, क्योकि जितने धर्म थे, उतने ही दल थे। अब वे जो उपस्थित है अपने सोचे हुए विचार प्रकट करें क्योकि जबतक वे बोल न चुकेगे, मै कुछ न करूंगा[5]।

---

१. स्मिथ, पृ० २२७-२८।

२. बदायूं, मुन्तखब-उत्-तवारीख. २, पृ० ३११, (अनु०)।

३. अबुल फजल, अकबरनामा, ३ (अनु), पृ० ३६५।

४. वही, पृ० १८०-८२।

५. वही, पृ० ३६७।

इस प्रकार यह कार्य समाप्त हुआ। सम्राट् ने शेखों में से एक सर्वश्रेष्ठ वृद्ध शेख को, सब ओर घोषित करने भेजा कि अल्प काल में ही मुगल-सम्राज्य मे, जो धर्म माना जायगा वह दरबार से प्रचारित होगा। लोग इसे सर्वश्रेष्ठ मान कर अपनाने को तैयार रहें और जैसा कुछ भी हो श्रद्धापूर्वक स्वीकार करे[1]।

इस सभा में केवल आमेर के राजा भगवान दास की विरोधी आवाज उठी। वह इस प्रस्ताव के विरुद्ध बोले और कहे—मैं यह स्वेच्छापूर्वक स्वीकार कर लूंगा कि हिंदुओ और मुसलमानो में प्रत्येक का धर्म खराब है, पर हमे केवल यही बताएँ कि नया धर्म क्या है ? और वे क्या रखते हैं, ताकि मै विश्वास कर सकूं[2]। बदायूंनी के द्वारा मालूम होता है कि—"इस कथन पर अकबर ने कुछ सोचा और राजा से आग्रह करना बद कर दिया[3]।"

इस प्रकार हिंदुओ के विरोध करने पर, यह योजना पूर्ण रूप से त्यागी नही, लेकिन फिर भी अकबर ने इसे अंत तक कार्यान्वित करने की चेष्टा नही की। और यही अकबर की व्यावहारिक सूझ-बूझ है। इस संबंध में अबुल फजल का मौन रहना, इसका सूचक है कि 'दीन-इलाही' की जो योजना प्रारंभ मे सोची गई थी, वह सफल नही हुई[4]।

सब धर्मो मे निश्चित सत्य पर विश्वास कर एक साथ एक स्थान पर एकत्र हो सकते थे। इसमे संदेह है कि दीन-इलाही से किसी उपयोगी राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति हो सकी, क्योंकि इसकी सदस्यता कुछ सहस्त्र से आगे नही बढी। बीरबल को छोड़ कर दूसरे सब सदस्य मुसलमान ही थे। बदायूंनी कहता है कि—"अकबर कुछ प्रमुख हिंदुओं को दीन-इलाही में लेनें को अधिक उत्सुक था। उन मुसलमानो पर जो इनमें संमिलित थे, होने की सच्ची इच्छा प्रकट करते थे, भौहे चढा लेता था[5]।', अकबर की यह इच्छा पूरी नही हुई, क्योंकि भगवान दास, मानसिंह और टोडरमल जैसे प्रमुख हिंदुओ ने इसमे शामिल होना अस्वीकार कर

---

१. स्मिथ, पृ० २२६।
२. वही, पृ० २३१।
३. अबुल फजल, अकबरनामा, ३ (अनु), पृ० १८३।
४. बारतोली, पृ० ७५-७७, पृ० २११-२१२ (बंगाल अंडर द मुहमडन)।
५. बदायूंनी, मुन्तखब-उल-तवारीख, २, (अनु०), पृ० ३१३।

दिया। इस प्रकार अकबर चाहते हुए भी दोनों जातियों को एक न कर सका[1]।

मध्यकाल में हिंदू और मुसलमानो को एक करने के लिये बहुत प्रयास किए गए, परंतु फिर भी दोनो में एकता स्थापित न हो सकी। इसका मुख्य कारण यह था कि हिंदू रूढिवादी परंपरा को त्यागने के पक्ष मे नही थे और मुसलमानों को म्लेच्छ समझते थे। केवल अकबर के काल में यह आभास होता था कि दोनो जातियो में एकता स्थापित हो गई है, परंतु यह भ्रम था। अकबर के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों ने उसकी नीति का अनुसरण किया और एकता स्थापित न रह सकी।[2]

मनोविनोद एवं मनोरंजन

मध्यकालीन भारत में देश के धन-धान्य से परिपूर्ण और शासकों के मनोरंजनप्रिय होने के कारण मनोविनोद और मनोरंजन के पर्याप्त साधन उपलब्ध थे। उस समय के मनोरजन एवं मनोविनोद के साधनों को अशरफ महोदय ने तीन भागो मे विभाजित किया है।[3]

(१) सैनिक एवं शारीरिक खेल,

(२) घर के भीतर खेले जाने वाले खेल,

(३) प्रचलित और लोकप्रिय मनोरंजन।

सैनिक एवं शारीरिक खेल, चौगान या पोलो उस समय का प्रमुख खेल था। मध्यकालीन भारत में कुलीन परिवारों का प्रिय खेल चौगान था, जिसे आधुनिक युग मे पोलो कहा जाता है। इसका प्रचलन कहाँ से हुआ, इसके विषय में कुछ नही कहा जा सकता है। भारत मे इसको लाने का श्रेय मुसलमानों को है, जिनके प्रभाव के कारण यह विभिन्न वर्गो मे शीघ्र ही लोकप्रिय हो गया।

१, अबुल फजल, आईन, १, (अनु०), पृ० १७२-७३।

२. स्मिथ, अकबर द ग्रेट, पृ० ३२८-२९।

३. के० एम० अशरफ, लाइफ ऐंड कंडीशन पीपुल आफ हिंदुस्तान पृ० १५९।

मुगल बादशाहो को चौगान प्रिय खेल था, इस युग मे साधारण मनुष्य, इसको केवल देख ही सकते थे। अबुल फजल ने 'अकबरनामा' मे इसका वर्णन किया है—'अकबर इस खेल को अधिक पसंद करता था तथा अपना अमूल्य समय भी देता था।'[1]

एस० के० बनर्जी[2] के अनुसार—'इसमें कभी कभी शाही महिलाएँ भी भाग लिया करती थी। इस खेल में एक तरफ ५ खिलाड़ी होते थे। इस प्रकार दोनो दलो के खिलाड़ियो की संख्या १० होती थी। चौगान के प्रसिद्ध मैदान फतेहपुर सीकरी और आगरा के मैदान थे।' अबुल फजल[3] ने दो प्रसिद्ध खिलाड़ियों का वर्णन किया है। 'मीर शरीफ' और 'मीर गयासुद्दीन'। यह खेल आधुनिक हाकी से बहुत कुछ मिलता जुलता था।

शिकार दिल्ली सुल्तानो का सर्वाधिक प्रिय मनोरंजन था। दिल्ली सुल्तानो ने इसके लिये एक विभाग की स्थापना की, जिसका प्रधान 'अमीर-ए-शिकार' होता था। इसका प्रधान किसी अमीर या योग्य व्यक्ति को ही बनाया जाता था। अध्यक्ष के अतिरिक्त 'शाही बाज' और अन्य शिकारी जानवरों को सुरक्षित रखने के लिये 'आरिज़न-ए-शिकार' 'खस्सादान' और 'मिहतान' आदि कर्मचारियों की नियुक्ति की जाती थी। विभिन्न प्रकार के शिकारी पक्षी एवं जानवर जैसे—हाथी और बाज इत्यादि बड़ी संख्या में एकत्र किए जाते थे। दिल्ली के निकट १४ मील के क्षेत्र में 'शाही शिकारगाह' थी। हिरन, नील गाय, और जंगली सुअरों का शिकार विशेष रूप से होता था। शेर का शिकार बादशाह द्वारा होता था। फिरोज तुगलक के इतिहासकार अफीफ[4] ने शिकार पार्टियों का विस्तृत वर्णन अपनी 'तारीखे फीरोज शाही' में किया है।

मुगलकाल में भी अमीरो एवं शाही परिवारों के सदस्यों का प्रिय मनोरंजन 'शिकार' ही था। सभी मुगल शासक इसे पसद करते थे। हाथी, शेर, चीते और जंगली बकरियो का शिकार किया जाता था।

---

१. अबुल फजल, अकबरनामा, १, (अनु०) पृ० २४२।
२. एस० के० बनर्जी, हुमायूँ, पृ० १३१।
३. अबुल फजल, अकबरनामा, २ (अनु०), पृ० २५०।
४. अफीफ, तारीखे-ए-फिरोजशाही (अनु०), पृ० ८१।

शेर का शिकार केवल बादशाह ही कर सकता था। हाथी के शिकार की आज्ञा केवल कुशल और पेशेवर शिकारियों को प्रदान की जाती थी। विभिन्न प्रकार के जानवर जैसे—कुत्ता, हिरन, हाथी इत्यादि शिकार के लिये प्रशिक्षित किए जाते थे।[1] अबुल फजल ने 'अकबरनामा' में अकबर के विषय मे लिखा है कि—'यह एक नवीन प्रकार के शिकार 'कमरगाह' का आविष्कार किया जो मुगल शासको मे अत्यत लोकप्रिय हुआ। इसमे शिकार के लिये ऐसे स्थान को चयन किया जाता, जहाँ जगली पशु अधिक मात्रा मे पाए जाते थे। ४० कोस से घेरा डालकर ढोल बजाते हुए, मनुष्य उस पशु को निर्दिष्ट स्थान मे लाएँ जहाँ बादशाह अपने दो या तीन सहयोगियो के साथ घोड़े की पीठ पर बैठकर उसका शिकार करता था। इसके लिये कभी कभी ढोल पीटने वाले ५००० कर्मचारियों को नियुक्त किया जाता था। इस युग मे हाथी को पकडना भी मनोरजन का एक प्रमुख साधन समझा जाता था।[2]

चिडियो का शिकार गरीब और अमीर दोनो ही विशेष रुचि से करते थे। अमीर एव कुलीन वर्ग इसके लिये बंदूक और गरीब वर्ग तीरों को प्रयोग में लाते थे। टेरी के अनुसार—'इनकी कमाने भैंस के सीगो एवं तीर मुश्कवेत के द्वारा बनाए जाते थे। ये इतने कुशल तीरदाज थे कि उड़ती हुई चिड़ियो को भी सुगमता से मार सकते थे।[3]

मछली पकडने का कार्य सल्तनत काल मे कुछ ही बादशाहो को प्रिय था। अफीफ[4] ने 'तारीख-ए-फीरोजशाही' मे फीरोज तुगलक द्वारा मछली के शिकार का वर्णन किया है। मुगल कालीन बादशाहो को यह विशेष रूप से प्रिय थी।[5] बाबर ने अपनी आत्मकथा 'तुजुक-ए-बाबरी में गोगरा नदी में मोमबत्तियो के प्रकाश मे मछलियो के शिकार का उल्लेख किया है। पेशेवर शिकारी भी मछली पकडते थे। एक विशेष प्रकार का जाल 'सफरा' जिसे हिंदी मे 'भँवर जाल' कहते है, मछली पकडने के प्रयोग

---

१. अशरफ, पृ० १६१।
२. अबुल फजल, अकबरनामा, २, (अनु०), पृ० २५५।
३. टेरी, व्हायेज टू ईस्ट इडिया, पृ० २७३।
४. अफीफ, तारीख-ए-फीरोजशाही, (अनु०), पृ० १७६।
५. बाबर, तुजुक-ए-बाबरी, (अनु०), पृ० २८१।

में लाया जाता था। इस खेल को सबसे अधिक मुगल बादशाह जहाँगीर पसंद करता था, जिसने एक अवसर पर ७६६ मछलियों को पकड़ी थी। जहाँगीर[1] ने 'तुजुक-ए-जहाँगीरी' में वर्णन किया है। वह भारत की सर्वाधिक मछली 'रोहू' के शिकार का अत्यंत शौकीन था। मछलियों का भक्षण होने के कारण मछुए इसे मनोरंजन के साधन के अतिरिक्त जीविका के लिये पकड़ते थे।

कुश्ती और मुक्केबाजी का अधिक प्रचलन था। दो व्यक्तियो मे किसकी शारीरिक शक्ति अधिक है? इसके लिये कुश्ती और दंगल के आयोजन किए जाते थे। कुश्ती का प्रचलन मध्ययुग मे इतना अधिक था कि अमीर एवं सामान्य वर्ग दोनों ही इस कला में कुछ न कुछ ज्ञान रखते थे। सुल्तानो मे धार्मिक साधुओं ने इसे प्रोत्साहन दिया और पहलवानो को संरक्षण दिया। मुगलकाल मे बाबर से लेकर सभी सुल्तान इस खेल के प्रेमी थे। इस खेल के कुछ नियम थे। यदि कोई पहलवान इन नियमों का उल्लंघन करता तो उसे भविष्य मे इस खेल मे भाग लेने से निषेध कर दिया जाता था।[2]

कुश्ती के साथ साथ मुक्केबाजी भी मुगलकाल मे समय व्यतीत करने का प्रिय साधन था। 'डीलाइट' के अनुसार—'इस खेल के द्वारा मनोरंजन तथा समय दोनो का साथ-साथ इस्तेमाल हो जाता था'।[3] अबुल फजल ने 'अकबरनामा' में इसका वर्णन विस्तार से किया है, 'अकबर को इस खेल से विशेष प्रेम था। उसने पर्शियन और तूरानी मुक्केबाजो को अपने दरबार मे नियुक्त किया था।'

पशु-दौडो में सबसे अधिक आधुनिक युग के समान मध्यकाल में भी 'घुड़दौड़' ही थी। यह अमीर एवं दरबारियो का प्रिय मनोरंजन था, जिसके द्वारा वे हार-जीत भी किया करते थे। घुड़दौड़ के अतिरिक्त कुत्तों की भी दौड होती थी, जिससे अकबर बहुत आनंद लेता था।[4]

---

१. जहाँगीर, तुजुक-ए-जहाँगीरी, (अनु०), पृ० १०५।
२. डीलाइट, द इंपोरिओमेग्नीमोगोलिस (द एम्पायर आफ द ग्रेट मुगल्स,) के नाम से जे० एम० हायलैण्ड एवं एस० के० बनर्जी), पृ० ३१३।
३. अबुल फजल, अकबरनामा, ३ (अनु०), पृ० ३६६।
४. वही, ३, पृ० ३७१।

इस काल मे पशु-युद्ध मनोरंजन एवं मनोविनोद का प्रिय साधन था। सामान्य व्यक्ति पशु युद्ध, जैसे कुत्ते, हिरन, मुर्गे, भैंस इत्यादि की लड़ाई में आनंद लेते थे। इसके विपरीत सुल्तान तथा अमीर वर्ग के सदस्य हाथी, चीते, हिरन जंगली सूअर आदि की लड़ाइयो द्वारा आनंदित होते थे। युवक 'बुलबुलो' की लड़ाई मे विशेष रुचि रखते थे।[१] तुजुक-ए-जहांगीरी मे, चीते और सांड़ की लडाई का उल्लेख जहांगीर ने किया है। ऊँटो की लड़ाई उस काल का असाधारण खेल था, जिसके लिये ऊँट अजमेर, जोधपुर बीकानेर और गुजरात आदि से मँगवाए जाते थे।[२]

मुगल शासक निःशस्त्र मनुष्य और जंगली जानवर के युद्ध मे भी आनंदित होते थे। यदि मनुष्य इस युद्ध मे विजयी होता तो उसे 'मन-सबदार' का पद प्रदान किया जाता था। कभी कभी अपराधियों को जंगली और भूखे हाथी या शेर के समुख एक कतार देकर छोड दिया जाता था। यदि अपराधी जानवर को मार देता तो उसे मुक्त कर दिया जाता था।[३]

सामान्य वर्ग मुर्गे और बकरियों की सस्ती लड़ाई से जो उनके घर के सामने मैदान मे हुआ करती थी, आनंदित होते थे। मुर्गे का युद्ध उच्च वर्ग मे भी अत्यंत प्रसिद्ध था। आगरा, दिल्ली और फतहपुर सीकरी पशुओं के प्रमुख युद्धस्थल थे। अबुल फजल ने लिखा है कि—'अकबर को हाथियों का युद्ध विशेष रूप से प्रिय था। इसके लिये वह कभी कभी शाही हाथियों 'फौहा' और 'लोगा' को प्रयोग में लाता था'।[४] इश्कबाजी या क़बूतर उड़ाना एक साधारण खेल था, जिसके लिये अमीर तूरान और ईरान से कबूतर मँगवाते थे। अकबर को इस खेल मे असीम आनद आता था और इसलिये उन्होने कबूतरबाजी की कला का विशेष अध्ययन किया था जैसा कि इनकी आत्मकथा से प्रतीत होता है।

अन्य खेलों मे प्रसिद्ध 'घुड़सवारी' और हाथी की सवारी थी। इसके अतिरिक्त नाव चलाना भी उस काल का प्रिय मनोरंजन था। मनोरंजन

---

१. जहांगीर, तुजुक-ए-जहांगीरी, (अनु०), पृ० १२९।

२. डीलाइट, पृ० ३६८।

३. अशरफ, लाइफ ऐंड कंडीशन आफ पीपुल आफ हिंदुस्तान, पृ०१६१।

४. अबुल फजल, अकबरनामा, ३ (अनु०), पृ० ३६९।

के लिये विशेष प्रकार की नावें बनाई जाती थीं। जिन्हें 'बजरा' या 'मोरपांत' कहा जाता था। तैरना भी उस समय का एक मनोरंजन का साधन था। बाबर ने अपनी आत्मकथा 'तुजुक-ए-बाबरी' में स्वयं लिखा है कि—'भारत की अधिकांश नदियाँ तैर कर पार की थी।'[1]

घर के भीतर खेले जाने वाले खेलो का खूब प्रचलन था। अमीर खुसरो, हसन निजामी और जायसी ने इसके अनेक स्थलो पर वर्णन किया है, जिससे सिद्ध होता है कि यह खेल सभी वर्गों में प्रचलित था, क्योंकि शतरंज कुलीन-वर्ग-प्रिय मनोरंजन था। मुगलकाल मे बादशाह अमीर और सामान्य पुरुष, सभी इसे खेल कर आनंदित होते थे।[2]

दिल्ली के लाल किले के पुरातत्व विभाग में एक शतरंज का टेबुल है, जिससे ज्ञात होता है कि यह किस प्रकार खेला जाता था। यह ६४ वर्गों मे विभाजित है, जिसके प्रत्येक ओर ८ वर्ग है। प्रत्येक खिलाड़ी १६ सदस्यों की एक छोटी सी सेना रखता था, जिसमे बादशाह से लेकर पैदल सैनिक तक होते थे। कभी-कभी शतरंज की अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता भी हुआ करती थी। जहाँगीर ने अपनी आत्मकथा 'तुजुक-ए-जहाँगीरी' में वर्णन किया है कि, उसके एक दरबारी 'खान-ए-खाना' का परसिया के शाह सफी के यहाँ मुकाबला हुआ जिसमें तीन दिन पश्चात् खान पराजित हुआ।[3]

चौपड़, यह प्राचीन भारतीय खेल है, जो अब भी पच्चीसी, चौसर और चौपड़ तीन विभिन्न नामो के अंतर्गत खेला जाता है। चौपड़ आधुनिक युग के समान मध्य काल मे भी १६ गोटियों द्वारा खेला जाता था। जो विभिन्न टंगो के चार हिस्सों मे होती थी। साधारणतः यह चार खेल चार खेलाड़ियो द्वारा खेला जाता था, जो २-२ सदस्यो के दलो में विभक्त होते थे। प्रत्येक खिलाड़ी के हिस्से में चार गोटियाँ आती थी, जो पासे के अनुसार उन्हे चौपड़ के खाते पर चलता था। असरफ महोदय के अनुसार—"दो सीट को दो आदमी ग्रहण करते थे, बराबर वाली कतार में तथा सही कतार के मध्य में होती थी। अदर का हिस्सा चार प्रकार

१. बाबर, तुजुक-ए-बाबरी, (अनु०), पृ० २८७।
२. असरफ, पृ० १६७।
३. जहाँगीर, तुजुक-ए-जहाँगीरी, (अनु०), पृ० १६१।

का होता था, यह केन्द्र के वरावर कतार होती थी तथा इसके बाद भी चार कतार वरावर की होती थी, इस प्रकार के २४ भागों में बाँट दिया जाता था, क्योंकि तीनों कतार ८-८ की होती थीं इस कारण २४ हो जाती थी[1]।

ताश या गंजफे का प्रचलन सर्वप्रथम मुगल शासक वावर के द्वारा भारत मे हुआ। अकबर ने इसमें कुछ परिवर्तन किया, जिसके कारण यह लोकप्रिय मनोरंजन हो गया। प्राचीन मुगल शासकों मे ८ सूट होते थे, जिसमे एक सूट के अंदर १२ ताश हुआ करते थे। उस युग मे एक वजीर होता था, जिसका स्थान आधुनिक युग में वेगम और गुलाम ने ले लिया है। इनके द्वारा विभिन्न प्रकार के खेल एवं जुआ खेले जाते हैं।[2]

पर्व तथा त्योहार

प्रचलित एवं लोकप्रिय मनोरंजन के अंतर्गत विभिन्न उत्सव, त्योहार, मेले आदि हैं—

(१) हिंदू त्योहार।
(२) मुस्लिम त्योहार।
(३) शाही त्योहार और नाच एवं गान।

हिंदू त्योहार, दशहरा या विजयादशमी क्षत्रियो का प्रसिद्ध त्योहार था। यह क्वार शुक्ल दशमी (सितंबर अक्तूबर) को होता था। इस दिन राजपूत और क्षत्री शक्ति अर्थात् दुर्गा की पूजा किया करते थे। इसको

---

१. असरफ, पृ० १७८।
मुगलकाल में विशेपतया १७ वी शताब्दी में चौपड़ का खेल शाही दरवार का सर्वप्रिय मनोरंजन वन गया था। मुसलमानों एवं शाही परिवार के अतिरिक्त चौपड़ का खेल हिंदुओं, विशेषकर राजपूतो में भी प्रसिद्ध था। 'मुगल सम्राट् अकवर ने इसी के आधार पर चंदन मंडल' जैसे प्रसिद्ध खेल का आविष्कार किया था। इसमे ६४ गोटियाँ होती थी, जो १६ खिलाड़ियों मे विभाजित की जाती थी। इसके अतिरिक्त नई, पचीसी, गौटी, मुगल, पठान, लाभ, तुर्की, भाग, दाल, भेंड़, वकरी और गोलकुस इस काल के प्रिय मनोरंजन के साधन थे। (अशरफ, पृ० १८०-८१)।
२. अशरफ, पृ० १८२।

मनाने का एक कारण यह भी था कि इसी दिन 'राजा रामचंद्र' ने 'रावण' जैसे राक्षस पर विजय प्राप्त की थी। अन्य वर्ग अपने अपने हथियारों तथा औजारो का पूजन करता था। राजपूत अपने घोड़ों को सजा कर जो कि बालियो द्वारा उनकी पूजा करते थे।[१]

दशहरे का त्योहार मुगल दरबार में भी मनाया जाता था। प्रातःकाल समस्त शाही हाथियों एवं घोड़ों को नहलाकर और सुसज्जित करके बादशाह के पास निरीक्षण के लिये लाते थे। जहाँगीर ने अपनी आत्म कथा मे इस विषय में लिखा है कि—'घोड़ों तथा हाथियो को ठीक प्रकार सुसज्जित करने पर निरीक्षण कराया जाता था तथा मैं खुद ही उनका निरीक्षण करता था'।[२]

इसी अवसर पर बादशाह को उपयुक्त भेटे प्रदान की जाती थी और वह योग्य व्यक्तियों को शाही संरक्षण प्रदान करता था।[३]

बसंत पंचमी, माघ सुदी ५वी को पड़ती है। यह उत्सव गान, सामूहिक नृत्य एवं उल्लास के लिये विशेषरूप से उल्लेखनीय है। समस्त भारत के हिंदू इसे आधुनिक युग के समान पूर्ण साज एवं सज्जा के साथ मनाते और कला तथा विद्या की देवी 'सरस्वती' की पूजा करते थे।[४]

होली, हिंदुओं का प्राचीन त्योहार होने के कारण आधुनिक युग के समान विशेषतः शूद्र और निम्न वर्ग के हिंदुओ द्वारा बड़ी धूम धाम से मनाया जाता था। यह विशाल प्रज्वलित अग्नि, प्रसिद्ध गानो और गुलाल के मध्य मनाया जाता था। होली फागुन के महीने में होती थी और एक-दूसरे पर रंग फेंकने की इस त्योहार की विशेषता थी। यूरोपीय यात्रियों ने इसका विस्तृत वर्णन किया है, जो आधुनिक युग के होली से मिलता जुलता है।[५]

दीपावली या दीवाली कार्तिक माह की अमावस्या को (अक्तूबर-नवंबर) मनाई जाती थी। इस अवसर पर घर की सफाई तथा सफेदी

---

१. टेरी, पृ० २७८।

२. जहांगीर, तुजुक ए जहाँगीरी, (अनु०), पृ० २०३।

३. वही, पृ० २०४। ४. असरफ, पृ० १६३।

५. टेरी, पृ० १६५।

होना आवश्यक समझा जाता था। आजकल के समान इस दिन धन की देवी 'लक्ष्मी' की पूजा की जाती थी। इस अवसर पर जुवा खेलना एक पवित्र एवं धार्मिक कृत्य माना जाता था। रातभर जागरण कर पासों के द्वारा मनुष्य अपने भाग्य की परीक्षा करता था। अबुल फजल ने 'अकबरनामा' मे वर्णन किया है कि—'अकबर इस दिन महल को 'दीप-मालिकाओ' से सुसज्जित देखकर आनद प्राप्त करता था।'[1] जहांगीर इस दिन जुआ खेलने में विशेष रुचि रखता था और कभी कभी अपनी उपस्थिति मे अपने कर्मचारियों को जुआ खेलवाता था।[2]

शिवरात्रि का त्योहार माघ के अंत और फागुन के प्रारंभ में पड़ता है। इस दिन व्रत करके योगी एवं संन्यासी शिव की उपासना करते हैं। मुगलकाल में बादशाह भी इसको मनाते थे। अकबर ने इसमे विशेष रुचि दिखलाई।[3]

अबुल फजल ने 'अकबरनामा' इसके विषय में लिखा है कि साल में एकबार रात मे सभी योगीगण तथा सम्राट् एकत्रित होते थे और इस व्रत में एक दूसरे के प्रति निष्ठा प्रतिनिष्ठा और भगवान शिव के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करते थे।[4] जहांगीर[5] ने भी इस उत्सव का वर्णन 'तुजुक-ए-जहाँगीरी' में किया है।

रक्षाबंधन ब्राह्मणों का सबसे अधिक महत्वपूर्ण त्योहार है। रक्षा बंधन सावन (जुलाई अगस्त) के महीने में मनाया जाता है। इस अवसर पर रेशम या सूत की राखियाँ बहने अपने भाइयों के दाहिने कलाइयों पर पर बांधती है, भाई अपने बहन को जीवन और इज्जत की रक्षा का वचन देता है। यह प्रथा इतनी अधिक प्रचलित हो गई कि स्त्रियाँ दूसरी जाति के मनुष्यों को राखियाँ भेजने लगी। इसके अतिरिक्त पुरोहित अपने यजमानों को राखी बांध कर धन प्राप्त करते थे। अबुल फजल ने 'अकबरनामा' मे लिखा है कि—'अकबर ने इसे राष्ट्रीय त्योहार की संज्ञा दी और वह

१. अबुल फजल, अकबरनामा, ३ (अनु०), पृ० ३५१।
२. जहांगीर तुजुक ए जहाँगीरी, (अनु०), पृ० २१७।
३. टेरी, पृ० १६८।
४. अबुल फजल, अकबरनामा, ३, (अनु०), पृ० ३५८।
५. जहांगीर, पृ० २३३।

अपनी कलाई पर राखी बँधवाने लगा'।[1] यह नियम हो गया था कि दरबारी तथा अन्य लोग बादशाह की कलाई पर बहुमूल्य राखियाँ बाँधते थे।

हिंदुओं के अन्य प्रमुख त्योहारों में 'रामनवमी' जो भगवान श्री राम का जन्म दिन है जो चैत्र (मार्च अप्रैल) में मनाया जाता है। जन्माष्टमी योगिराज श्री कृष्ण का जन्म दिवस है। भादो (अगस्त सितंबर) की अष्टमी को मनाया जाता है।[2]

मुस्लिम त्योहारों में शब-ए-बरात, सबान के १४वें दिन मनाया जाता है। जनसाधारण का यह विश्वास है कि इस रात आगामी वर्ष के लिये मनुष्यों का जीवन तथा भाग्य 'उन्नत' (स्वर्ग) में दर्ज हो जाता है। मुसलमान इस दिन विभिन्न मिष्ठान बनाकर उसके कुछ अंश पर रात में फतीहा पढ़ कर खाते है। इस अवसर पर विशेष रूप से आतिशबाजी होती है और रात्रि में इसके कारण दिन का आभास होता है।[3]

मुगलकाल में मुसलमान इस दिन अपने घरों एवं दूकानों को प्रकाश-युक्त रखते थे तथा आतिशबाजी व पटाखे छुटाते थे।[4]

'ईदुल जुहा' ना 'बकर ईद' बलिदान की दावत है। जो मुसलमानों के बारहवें माह जु ए हिज्जा के दशवे दिन या रात्रि को मनाई जाती है। बकरी, भेड़ और कही कहीं गायों का बलिदान होता था। जहाँगीर[5] ने अपनी आत्मकथा 'तुजुक-ए-जहाँगीरी' मे वर्णन किया है कि—'वह स्वयं एकबार इस अवसर पर अपने हाथो द्वारा तीन बकरियों का बलिदान किया था।' मुगलकाल मे यह त्योहार बड़े धूम धाम से मनाया जाता था। राजधानी तथा अन्य प्रांतों मे इसके लिये बड़ी धूम धाम से तैयारियाँ होती थी। जनता तथा अन्य सरकारी कर्मचारी बड़ी संख्या ईदगाह पर एकत्रित होते और बादशाह की उपस्थिति मे ऊँट का बलिदान किया जाता था। प्रातीय राज्यों मे बादशाह का प्रतिनिधित्व वहाँ का गवर्नर

१. अकबरनामा, ३, (अनु०). पृ० ४०३।
२. एस० के० बनर्जी, पृ० १३९।
३. के० एम० अशरफ, पृ० १९३।   ४. वही, पृ० १९५।
५. जहाँगीर, पृ० २३५-३६।

करता था। जो यह उत्सव घर पर मना सकते थे, वे अपने घर में ही बकरी इत्यादि का बलिदान करते थे। इस अवसर पर ईदगाह मे प्रार्थना की जाती थी।[1]

नौ रोजे या नौ वर्ष का त्योहार मध्यकालीन भारत का एक राष्ट्रीय त्योहार था। यह वसत के आगमन के समय २०-२१ मार्च को होता था। यह पर्सियन त्योहार है और १६ दिन तक इसका उत्सव चलता था। सर्वप्रथम और अंतिम दिन इस उत्सव में विशेष उल्लास व धूम धाम रहती थी और पुरस्कार, रुपया, भेंट एक दूसरे को प्रदान की जाती थी। महीनों पूर्व इसकी तैयारियाँ होना आरंभ हो जाती तथा बाजार और लोक हितकारी इमारतों को साटन इत्यादि बहुमूल्य वस्त्रो द्वारा सुसज्जित किया जाता था। मकानो को विविध प्रकार से सँवारा जाता और इन दिनो जुआ खेलने की स्वतंत्रता थी। इस अवसर पर सप्ताह मे एक बार व्यक्ति बादशाह से मिल सकता था[2]।

बादशाह तथा अन्य दरबारी इस राष्ट्रीय त्योहार को शाही रीति के अनुसार मनाया करते थे। शाही टकसाल मे एक विशेष प्रकार के सिक्के जिसे 'निसार' कहते है, ढाले जाते और इनका वितरण गरीब मनुष्यो के मध्य में होता था। नर्तकियो तथा अन्य प्रकार के विभिन्न मनोरंजनों के साधनों द्वारा दरबारी तथा अन्य वर्गों के सदस्यो का मनोरंजन हुआ करता था[3]।

इसी अवसर पर बादशाह का तुलादान होता और उसके भार के बराबर की वस्तुएँ गरीबो मे बाँट दी जाती थी। बादशाह अपने दरबारियों मे नवीन सिक्के तथा मंसब आदि प्रदान करते थे। विभिन्न ग्रामों से इस उत्सव को देखने के लिये जनता एकत्रित होती थी[4]।

'अन्य मुस्लिम त्योहार' मुसलमानो के अन्य प्रसिद्ध त्योहारो में 'बारावफात' प्रमुख है, जो खलीफा के जन्म एवं मृत्यु की यादगार मे मनाई

---

१. अशरफ, पृ० १६७।
२. वही, पृ० १६७-८; आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, मुगलकालीन भारत, पृ० ५६३।
३. टेरी पृ० २८२।
४. टेरी, पृ० २८७।

जाती है। इसके अतिरिक्त आखिरी चहर, शम्भा तथा चेलम त्योहार हैं, जो ईद तथा सब-ए-बरात के समान प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण नहीं थे[१]। मध्य युगीन उत्सवों तथा त्योहारों के विषय में डा० आशीर्वादी लाल जी लिखते हैं कि—'मध्य भारत के व्यक्ति उत्सवों, मेलों तथा त्योहारो से बहुत आनंद प्राप्त करते तथा उसमें रुचि रखते थे। अकबर राष्ट्रीय त्योहार का केंद्र था। रक्षा बंधन, दशहरा, दीपावली तथा वसंत आदि त्योहारों को सभी दरबारियो ने स्वीकार किया था तथा वे बडे धूम धाम से मनाए जाते थे। फारस का त्योहार नौ-रोज भी अकबर की अध्यक्षता में दरबारियों द्वारा एक सप्ताह तथा अधिक मनाया जाता था[२]।

'अब-ए-पेशान' यह उत्सव मुगल दरबार मे बड़ी धूम धाम मे मनाया जाता था, जो कि हिंदुओं के त्योहार होली से मिलता जुलता है। इस अवसर पर शाहजादे तथा प्रमुख अमीर तथा मंत्री एक दूसरे पर 'गुलाब जल' छिडकते थे। बादशाह को उपहार भेंट स्वरूप प्रदान किए जाते थे। अब्दुल हमीद लाहौरी[३] ने इसका नाम 'ईद-ए-गुलाबी' रखा था।

'मीना बाजार' हुमायूं[४] ने सर्वप्रथम इसको प्रारंभ किया। अकबर के समय मे इसकी अधिक उन्नति हुई। यह बाजार हरम की बारादरी मे लगता था और उसमें अमीरो की स्त्रियाँ तथा पुत्रियाँ दूकाने लगाकर बैठती थी। राजपूत स्त्रियाँ भी इसमे भाग लेती थी। बादशाह राज-कुमारियो तथा हरम की अन्य स्त्रियों के साथ बाजार मे जाता और इन दूकानो से दुगुने तिगुने मूल्य देकर सौदा खरीद लेता था। बादशाह जिस स्त्री से प्रसन्न हो जाता, उससे अधिक वस्तुएँ खरीद कर आवश्यकता से अधिक धन प्रदान करता था। इसमें उच्च परिवारों सौंदर्यमयी रमणियाँ भाग लेती और ऐमा प्रतीत होता था कि सुदरता एवं अप्सराएँ धरती पर उतर आई हैं।[५]

---

१. टेरी, पृ० ५६६। अशरफ, पृ० २०३।

२. डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, मुगलकालीन भारत, पृ० ५६३-६४।

३. अब्दुल हमीद लाहौरी, बादशाहनामा, (अनु० इलियत), ७, पृ० ४०४।

४. अबुल फजल, अकबरनामा, ३, (अनु०) पृ० ३६३।

५. वही, पृ० ३६४।

'जन्म दिन' शासन करने वाले सुलतान का सम्पूर्ण राज्य में बड़ी धूम धाम से मनाया जाता था। अकबर के समय मे यह उत्सव ५ दिन तक निरंतर मनाया जाता था। भेटे प्रदान की जाती थी तथा आपस मे बदली भी जाती थीं। बादशाह इस अवसर पर अमीरो को दावत देता तथा कवि अपनी कविताओ का पाठ, जो उस अवसर के लिये विशेष रूप से लिखी गई होती, करते थे। हिंदू प्रथा के अनुसार बादशाह अपना तुलादान कराकर उन वस्तुओं को गरीबों मे बाँट देता था। प्रमुख उत्सव 'दीवान-ए-आम' मे होता था। यहाँ विभिन्न वर्गो के मनुष्य बादशाह का दर्शन करके भेट प्रदान करते थे[1]।

---

१. अबुल फजल, अकबरनामा, ३, पृ० ४०७।
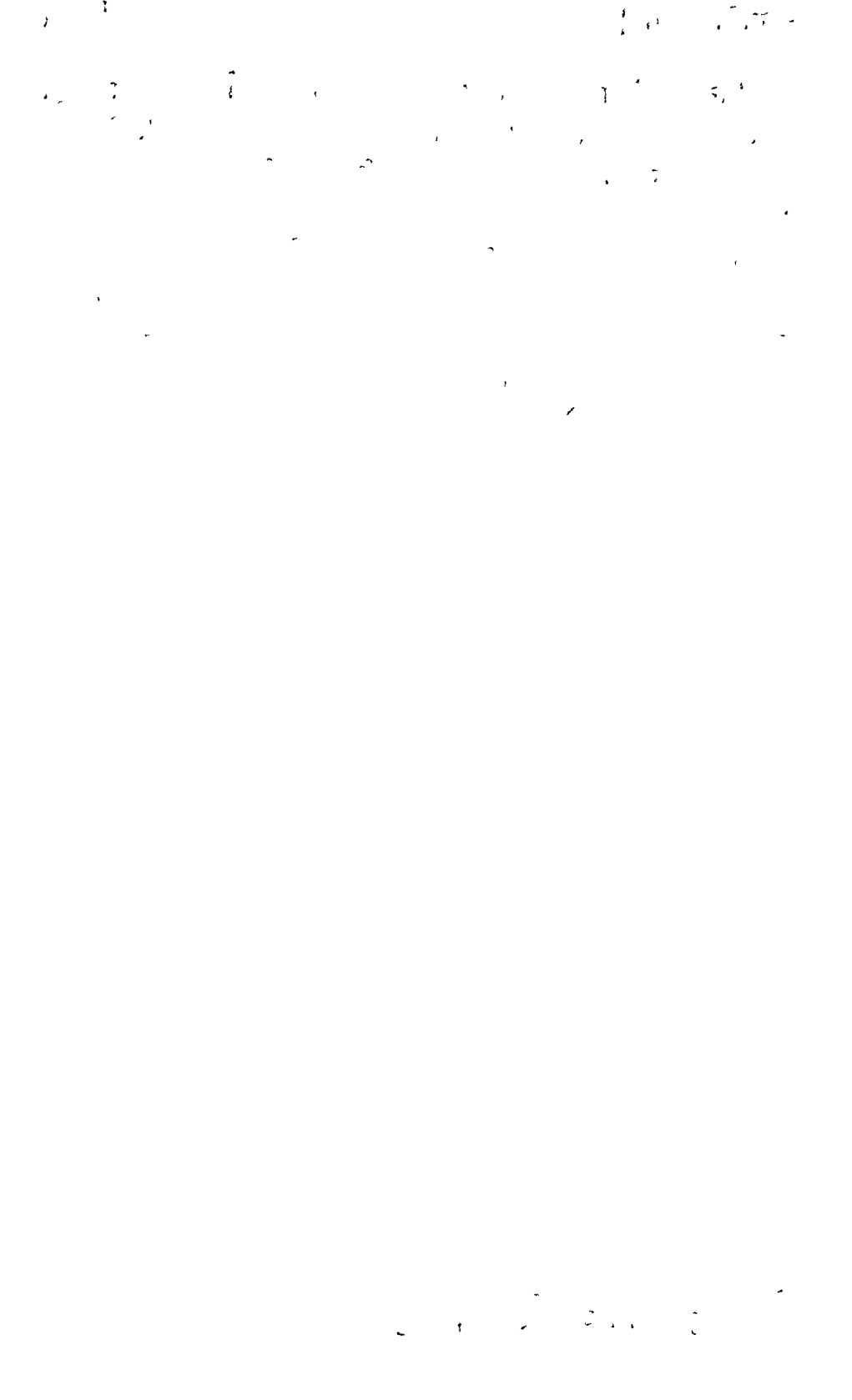
अष्टम अध्याय

धार्मिक दशा

धार्मिक नीति

मध्ययुगीन इतिहास मे सोलहवी सदी उदारवादी युग माना जाता है। इस युग की पृष्ठभूमि मे सूफी संतों का एक महान् योगदान था। चिश्ती तथा सुहरावर्दी सिलसिला के प्रमुख संतों ने इस्लाम की रूढ़िवादिता का परित्याग करके भारतीय सामाजिक परिवेश मे समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाया। इस प्रकार मुस्लिम समाज मे एक ऐसे वर्ग का आविर्भाव हुआ, जिसका दृष्टिकोण उदारवादी था। हिंदू समाज में भी क्रांति की चिनगारी सुलग रही थी। रामानुजाचार्य, रामानंद, कबीर, चैतन्य आदि ने हिंदू समाज मे सुधार करने का प्रयास किया। इन लोगो मे जातिवाद, वाह्याडम्बर का विरोध करके एकेश्वरवाद, मानववाद तथा समन्वयवाद का नारा लगाया। सोलहवी सदी के मुगल शासक अपने को इसी वातावरण और परिस्थितियो मे पाए। उन लोगो ने अपने को परिस्थितियों के अनुकूल बनाकर अपनी बुद्धिमानी तथा राजनीतिक दक्षता का परिचय दिया।

सल्तनत काल के सुल्तानो की भाँति बाबर अनुदार नही था। सुन्नी धर्मावलंबी होने पर भी उसने शिया से मित्रता की। ईश्वर के प्रति उसका अटूट विश्वास था। उसका कहना था कि ईश्वर ही उसे आगे बढ़ने के लिये प्रेरित करता है। राणासाँगा के विरुद्ध उसने जिहाद किया। श्रीराम शर्मा ने लिखा है कि—'राणासाँगा के विरुद्ध उसने धर्मयुद्ध (जिहाद) आरंभ किया था और उसने सैनिको को यह कहकर, उसके विरुद्ध लड़ने के लिये भड़काया कि वह काफ़िर है, उसके खिलाफ युद्ध करना हमारा धार्मिक कर्तव्य है।'[१]

बाबर ने धर्म के नाम पर विजय प्राप्त की और धर्म के नाम पर पुस्तक भी लिखा, जिसका नाम 'रिसाला' था।[२] वह कहता था कि सुन्नी

---

१. श्रीराम शर्मा : रीलिजस पालिसी आफ़ मुगल्स, पृ० १९३।

२. बाबर, बाबरनामा—(अनु० बेवरिज़), पृ० ४३७-३८।

ही हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और इस्लाम के लिये अनुयायी कहलाने के अधिकारी है ।[1]

बाबर केवल सुन्नी को ही इस्लाम का पथ प्रदर्शक मानता था। समरकंद के जामा मस्जिद मे सुन्नी ही खुतबा पढते थे। इसका कहना था कि पर्शिया सबसे महान् है क्योकि इतने इस्लाम के सच्चे तथा मानने वाले दुनियाँ मे कही नही है। हुमायूँ की बीमारी मे उसकी चारपाई के चारो तरफ घूम करके, यही वरदान माँगा कि इसकी बीमारी मुझे मिल जाय तथा उसका अस्वस्थ पुत्र अच्छा हो जाय। उसकी प्रार्थना स्वीकार हो गई ।[2]

बाबर के ऊपर ईरान के शाह तथा वहाँ के साहित्य का अत्यधिक प्रभाव पडा था। इस बात के लिये बडा गौरव था क्योकि यहाँ का सम्राट् 'शहबानी खाँ' 'इसका बड़ा दोस्त था[3]। बाबर कहता था कि 'शहबानी खाँ' केवल शासक ही नही है, बल्कि वह धार्मिक विचारो का पडित भी है। अत उसे हम धर्म गुरु कहे तो कोई आपत्तिजनक बात न होगी क्योकि उसी की धार्मिक प्रेरणा से हमने विजयश्री पाई है और जो भी धर्म की चर्चा करते है या नारे लगाते है, वह कुछ भी धर्म के बारे में नही जानते ।[4]

पर्शिया के शाह ने एक सस्था की स्थापना करके शिया तथा सुन्नी के विचारो का अध्ययन किया लेकिन वह कुछ भी हल नही निकाल सका। बाबर शिक्षित होने के साथ साथ बहुत सूझबूझ वाला सम्राट् था। वह सुन्नी परिवार मे जन्म पाया था लेकिन उसे अपने को निखारने का अवसर शियो के साथ ही प्राप्त हुआ था ।[5]

---

१. श्रीराम शर्मा रीलिजस पालिसी आफ़ मुगल्स, पृ० १९७।
२. गुलबदन बेगम, हुमायूँनामा (अनु० बैवरिज) पृ० १७।
३. हसन . इस्लामिक कल्चर (हैदराबाद, १९१४), पृ० ४३।
४. ब्राऊन, लिटरेरी हिस्ट्री आफ पर्सिया, भाग ४, पृ० ५६१।
५. वही, भाग ३, पृ० २०४।
ग्वालियर क़िले की घेराबंदी करके उसने जिहाद के नाम पर विजय प्राप्त की। (ब्राऊन, लिटरेरी हिस्ट्री आफ पर्सिया, भाग ३, पृ० २११)।

वावर ने अफगानों से सत्ता प्राप्त किया था, वह उनसे धार्मिक विचारों को सीखा। ग्वालियर के मंदिर मे जाकर उसे नष्ट किया।[1] वहाँ की इमारतो को ध्वस्त करके मस्जिद मे परिवर्तन करके अपने को कट्टर मुसलमान सिद्ध किया।[2]

वावर ने अयोध्या मे उस स्थान पर मस्जिद का निर्माण करवाया, जहाँ लोग रामचद्र का स्थान मानकर पूजन करते थे। परतु उसने किसी हिंदू को धर्म परिवर्तन के लिये वाध्य नही किया।[3]

श्रीराम शर्मा ने लिखा है कि 'वावर ने प्रचलित धार्मिक नीति की कठोरता मे किसी प्रकार की शिथिलता नही आने दी'।[4]

धार्मिक नीति में हुमायूँ ने अपने पिता के पदचिन्हो का ही अनुसरण किया। राजनैतिक लाभ के लिये उसने फारस मे शिया धर्म अपना लिया। पिता के समान विशाल हृदयी तथा शिया संतो मे श्रद्धा रखने के कारण उसने शिया मत अपनाने मे कोई सकोच नहीं दिखाया।[5]

गुलवदन वेगम के अनुसार—'हुमायूँ अपने पिता के समान नही था, वह सवको कुछ न कुछ प्राथमिकता जरूर देता था।'[6]

हुमायूँ की माता माहम वेगम खुरासान[7] की रहने वाली थी और पत्नी हमीदा वानू वेगम[8] शिया धर्म मानने वाली थी। हुमायूँ अपनी माता और स्त्री दोनो से वहुत प्रभावित रहता था। माहम वेगम का पति और पुत्र दोनो पर समान प्रभाव था और इसी के कारण वे राजनीति से भी प्रभावित हुए।[9] हुमायूँ अपनी माता तथा पिता के सुखी जीवन का अलग अलग अनुभव प्राप्त किया था, लेकिन माता के प्रभाव के कारण शिया धर्म की तरफ ज्यादा झुकाव था।

---

१. ब्राऊन, लिटरेरी हिस्ट्री आफ पर्सिया, भाग ४, पृ० ६१२।
२. जी० एच० कीन, दि तुर्क इन इंडिया, पृ० १३।
३ जी० एच० कीन, दि तुर्क इन इंडिया, पृ० १५।
४. श्रीराम शर्मा, पृ० १६३। ५. कीन, पृ० १७।
६. वही, पृ० २१७। ७. ब्राऊन, भाग ४, पृ० ६३।
८. वावरनामा, पृ० ६।
९. कीन, पृ० २१६।

हुमायूँ का जन्म तैमूर वंश मे हुआ था जो जन्मजात लड़ाकू तथा बहादुर थे। यह विवादग्रस्त है कि 'तैमूर' शिया[1] धर्म को मानने वाला था या सुन्नी, दोनो में से क्या था। वावर का पिता उमरशेख मिर्जा किस धर्म को मानने वाला था यह भी विवादग्रस्त प्रश्न है। उसके समय के विद्वान् 'ख्वाजा अब्दुल्ला अहरार' का कहना है कि 'सम्राट् समय के अनुसार हर प्रकार की सभ्यता तथा धर्म को ढालता गया, जैसा देखा वैसा किया।'[2]

वावर ने हुमायूँ की शिक्षा के लिये वहुत सुंदर प्रबंध किया था क्योंकि अपनी आंख के सामने अपने पुत्र को एक शासक, सैनिक तथा विद्वान् के रूप मे देखना चाहता था और उसकी धारणा भी थी कि हुमायूँ मे यह सव गुण जन्मजात है, थोड़ा सा प्रयत्न करने पर सव कुछ हासिल हो सकता है और इस प्रकार की आशा भी करता था कि शिक्षित होने पर ही संवंधो को निभा पायेगा।[3] इस प्रकार की उम्मीद होने के कारण वह हुमायूँ को दरवेश की उपाधि से विभूपित किया।[4]

हुमायूँ ने मुस्लिम धर्म के अनुसार तीन शादी की थी। पहली पत्नी— 'वेजा वेगम' थी, दूसरी पत्नी का नाम हमीदावानू था, इसके पिता शेख अली अकवर जामी, शिया धर्म के अनुयायी थे। तीसरी पत्नी का नाम गुलवर्ग वरलास था, वह खलीफा निजामुद्दीन की पुत्री थी।[5]

हुमायूँ अपनी पहली पत्नी 'वेजा वेगम' को विल्कुल पसंद नही करता था।[6] हमीदा वानू के प्रति प्रगाढ प्रेम था। शाह की सहायता से यह भारत पर पुनः अपना अधिकार जमा पाया और उनकी ही प्रेरणा से वहाँ पर शिया धर्म का प्रभाव था।

हुमायूँ के ऊपर मरियम मकानी तथा हमीदावानू का प्रभाव पड़ा था।[7] यह दोनो शिया धर्म की अनुगामी थी। इस कारणवश हुमायूँ के ऊपर शिया धर्म का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।

---

१. केट्रो, हिस्ट्री आफ दि मुगलस डाइनेस्टी, पृ० २८५।
२. गुलवदन वेगम, पृ० ३१। ३. वही, पृ० ४१।
४. कीन, पृ० ३७।
५. एस० के० वनर्जी, हुमायूँ, पृ० ७१।
६. गुलवदन वेगम, पृ० ३०। ७. वही पृ० ६७।

हुमायूँ का सबसे बड़ा मित्र वा सेनापति बैरम खाँ[1] था। यह बाबर के समय से ही शाही सेवा मे पदो पर आसीन रहा। बाबर की मृत्यु के पश्चात् बैरम खाँ, हुमायूँ का पथप्रदर्शक बना।[2] इसकी नीति जो निर्धारित होती थी, उसे सम्राट् तथा मनसबदार सभी स्वीकार करते थे। खलीफा से सनद इसी की प्रेरणा से सम्राट् को मिली थी तथा इसी के अरक्षण काल में हुमायूँ को पुत्र भी हुआ।

हुमायूँ अपने पिता तथा बैरमखाँ के विचारो का हमेशा अनुसरण किया तथा उसे ही अपना पथ प्रदर्शक समझा। राजधानी दिल्ली उसका दीनपनाह, विद्वानो और उदारवादी व्यक्तियो के लिये आश्रय स्थान था।[3] हुमायूँ दूसरे धर्म के मानने वालो से भी प्यार करता था क्योकि चित्तौड की महारानी कर्णावती की राखी स्वीकार की और अपनी बहन के रूप मे उसे समान प्रदान किया।[4] बहादुर शाह का मुकाबिला करने के लिये अपनी सेना तथा राजपूतो की सेना के साथ प्रस्थान किया। अपनी राजधानी मे केवल विद्वान् न्यायाधीशो की नियुक्ति की, वे केवल पर्शिया और तुर्किस्तान के ही नही थे, वल्कि ज्यादा भारतीय थे। उसने कवियों तथा विद्वानो को संरक्षण प्रदान किया।[5]

हुमायूँ ने जब भारत के लिये प्रस्थान किया तो उसके साथ मुहम्मद का दामाद सद्रद्दीन और अन्य उसके साथ साथ आए।[6] ये लोग शिया तथा इमाम की शिक्षा देने लगे, जिस कारण से हुमायूँ बहुत प्रभावित हुआ। उसके अनुसार शिया ही सच्चा धर्म है। परंतु हुमायूँ शिया को ही सही रूप मे स्वीकार नही किया।[7] शिया धर्म के प्रति कृतज्ञता जरूर प्रकट की क्योंकि शाह की सहायता से दूसरी बार भारत लौट पाया था।[8] इसकी सेना मे सैनिक तथा सलाहकार सुन्नी धर्म वाले थे तथा सम्राट् स्वयं

१. अब्दुल बाकी निहावदी (नहवदी) मासिर-ए-रहिमी, भाग १, पृ० ६४।
२. कीन, पृ० १६६।
३. इलियट, भाग ५, पृ० १०३।
४. गुलबदन बेगम, पृ० १३७।
५. बदायूँनी, मुन्तखब उत तवारिख (अनु०), भाग २, पृ० ५७।
६. गुलबदन बेगम, पृ० १३६। ७. वही, पृ० १४१।
८. एस० के० बनर्जी, हुमायूँ, पृ० १२६।

सुन्नी मुसलमान था। उमर शेख इसके दादा तथा हैदरअली इसके साथी कट्टर सुन्नी विचारधारा के थे।[1] इन सब चीजो के कारण हुमायूँ का काफी प्रभाव था।

हुमायूँ धार्मिक विचारधारा का व्यक्ति था, उसके हृदय मे पर्शियनों के प्रति बड़ी श्रद्धा थी, अपने महल मे अलग इसके लिये प्रबंध करवाया था। जब कांधार लौटा और इसके बाद फिर भारत तो इसके लिये इसने बहुत कार्य किया।[2]

हुमायूँ की तुलना अगर 'कामरान' से की जाय तो पता चलता है कि दोनो मे कितना अतर है। कामरान सुन्नी विचारधारा का व्यक्ति था लेकिन हुमायूँ शिया सुन्नी दोनो प्रकार की विचारधारा रखता था। इस बात को लेकर उन दोनो मे कई बार मतभेद भी हो गया।[3] कामरान अपनी धर्मावलंबी नीति के कारण ज्यादा दिन नही रह सका।[4] इसी कारण जो हुमायूँ का अनुसरण करने वाले थे, कामरान को छोड़ दिए।[5]

हुमायूँ के चरित्र की यह सबसे बडी महानता थी कि वह शिया तथा सुन्नी दोनो के प्रति आदर रखता था। यही उसकी सबसे बडी देन कही जा सकती है। हुमायूँ की उदारता के कारण ही, उसे सभी लोग प्यार करते थे।

हुमायूँ अपने व्यवहार तथा धर्म निरपेक्षता के कारण जनता का प्यारा बन गया। उसने राजा तथा मनुष्य दोनों रूपो मे बडी प्रसिद्धि प्राप्त की। उसने जब दूसरी बार भारत विजय प्राप्त की तो दिल्ली मे सबको बडी आसानी से मिला लिया। वह स्वयं कहता था कि 'मैं भगवान का भेजा हुआ एक सैनिक हूँ तथा उसी के आदेशानुसार जनता की सेवा करता हूँ'।[6]

हुमायूँ के ही कारण उसका पुत्र अकबर धर्म निरपेक्ष साम्राज्य की स्थापना की, किसी धर्म मानने वाले के लिये कोई रुकावट नही थी, उसे

---

१. बदायूँनी, भाग ३, पृ० ७६।

२. ब्राउन, भाग ४, पृ० ६६-६७।

३. अर्सकिन, हुमायूँ, २, पृ० ३३६, ३४७ तथा अकबरनामा २, पृ० ५०२, ५१०।

४. एस० के० बनर्जी, पृ० २११। ५. वही, पृ० २१३-१४।

६. कीन, पृ० १६७-१६८।

पूर्ण स्वतंत्रता थी। हुमायूँ अपनी उदारवादी नीति के कारण हमेशा परेशान रहा।

धर्मनिष्ठ सुन्नी मुसलमान के लिये कोई भी धर्म विरुद्ध बात कुफ्र के समान थी, किंतु बैरम खाँ की स्वामिभक्ति के कारण, शिया मत के प्रति मुगल साम्राज्य की धार्मिक नीति मे परिवर्तन हुआ। ईरान की यात्रा के समय हुमायूँ को वहाँ पर शिया मत के प्रति कुछ न कुछ आदर भाव प्रदर्शित करना पडा। अतः पूर्ववर्ती सुल्तानो की अपेक्षा हुमायूँ ने अपने धार्मिक विश्वासो से भिन्न मतो की ओर अधिक उदारता प्रदर्शित की।[1]

शेरशाह की धार्मिक नीति के विषय मे आधुनिक विद्वानो के भिन्न भिन्न मत है। डा० कानूनगो ने लिखा है कि 'हिंदुओ के प्रति धार्मिक सहिष्णुता की समझदारपूर्ण नीति के लिये उसकी प्रशसा की है। उनके अनुसार हिंदू धर्म के प्रति शेरशाह का झुकाव घृणा पूर्ण सहिष्णुता से ओत प्रोत नही, बल्कि आदरपूर्ण व्यवहार था।[2]

प्रो० श्रीराम शर्मा ने इसका विरोध करते हुए लिखा है कि 'शेरशाह का धार्मिक दृष्टिकोण दिल्ली सल्तनत के तुर्क अफगान शासकों से अच्छा नही था।'[3] उक्त दोनों इतिहासकारों सहित यह सबने स्वीकार किया है कि, शेरशाह अपने व्यक्तिगत जीवन में एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था। नित्य पांच बार 'नमाज' पढने, 'रमाजान' का उपवास करने और अपने तिहवार के अनुसार बहुत से धार्मिक कृत्यो मे भाग लेने में वह नियमित रूप से सतर्क रहता था। वास्तव मे वह इस देश मे इस्लाम की ज्ञान और महत्ता का प्रबल समर्थक था। राजपूत राजाओ के विरुद्ध धर्म-युद्ध (जिहाद) छेड़कर उसने अनेक बार अपने मुस्लिम अनुयायियो की धार्मिक भावनाओं का सफलता पूर्वक पोषण किया।[4]

शेरशाह और उसके उत्तराधिकारियो ने सोलह वर्ष के दीर्घकाल तक हुमायूँ को भारत शासन से दूर रखा। अकबर महान् के पूर्ववर्ती मुसलमान शासको मे शेरशाह सबसे महान् और योग्य हुआ है। यह हिंदू-धर्म पर कभी

१. ब्राऊन, पृ० ९८-१००।
२. डा० कानूनगो, शेरशाह एंड हिज टाइम (अनु०), पृ० १५२।
३. श्रीराम शर्मा, पृ० १३१।
४. एस० के० बनर्जी, पृ० २१३।

प्रतिबंध लगाने का दुष्परिणाम नहीं सोच सकता था। 'शेरशाह अपनी धार्मिक उदारता सिद्ध करने के लिये हिंदू सेनापति तथा डाक घरों में हिंदू कर्मचारियो की नियुक्ति की थी'।[1] लेकिन शेरशाह ने जिन डाकघरों की एवं विश्रामगृहों की स्थापना की, उनके संचालन के लिये मुसलमान उपलब्ध नहीं थे, क्योंकि हिंदुओं की आज भी एक ऐसी जाति है, जिसका व्यवसाय एक स्थान से दूसरे स्थान पर समाचार पहुँचाना है। उच्च श्रेणी के हिंदू इस कार्य को करने को तैयार नही थे।[2]

विश्राम गृहों में हिंदुओं के लिये जो व्यवस्था थी, वह भी सरकारी कर्मचारियों की एक श्रेणी के लिये ही थी, हिंदू जाति के नियम भी ऊँची जाति के लोगों द्वारा, इन विश्राम गृहो के उपयोग की अनुमति प्रदान नही करते। अतः डाक घरो में हिंदुओं की नियुक्ति तथा विश्राम गृहों में हिंदुओं के लिये की गई व्यवस्था के आधार पर शेरशाह की धार्मिक नीति को उदार नही कहा जा सकता, यह तो केवल सरकारी कार्य को चलाने की व्यवस्था मात्र थी।[3]

---

1. डा० कानूनगो, पृ० १५३-५४।
2. एस० के० बनर्जी, पृ० २१७-१८।
3. श्रीराम शर्मा, पृ० १३३।

   यह धारणा भी ठीक नहीं है कि शेरशाह ने किसी हिंदू मदिर अथवा मूर्ति का विध्वंश नहीं किया। जोधपुर की विजय के उपरांत वहाँ के दुर्ग में स्थित हिंदू मंदिर को मस्जिद में परिणित करवा दिया (एस० के० बनर्जी, पृ० २२१)।

   तारीख़-ए-दाऊदी के अनुसार जोधपुर के राजा मालदेव पर शेरशाह के आक्रमण के कारण अन्य बातो के साथ साथ, उसका धार्मिक उन्माद तथा वहाँ के मंदिरो को मस्जिद बनाना भी था (अब्दुल्ला, तारीख-ए-दाऊदी, (अनु०), पृ० १७८)।

   शेरशाह ने पूरनमल के साथ भी विश्वासघात किया। इस धार्मिक कार्य को करने के उपरांत शेरशाह ने एक प्रार्थना सभा की। आक्रमण के पूर्व शेरशाह रोगग्रस्त हो गया था और उसने अपने अधिकारियों को बुलवा कर कहा कि, वह सिंहासन पर बैठने के समय से ही पूरनमल को पराजित करने का तथा धार्मिक कार्य संपन्न करने के

जहाँ तक धार्मिक नीति का संबंध है, शेरशाह अपने ही युग की उपज था। फिरोजशाह की भाँति उसने अपनी प्रशासनिक दक्षता को धार्मिक असहिष्णुता से मिला दिया था। उसको इतिहास मे जो स्थान प्राप्त है, वह धार्मिक सहनशीलता और निष्पक्षता की नीति को जन्म देने पर निर्भर नही है।

उसके उत्तराधिकारी सलीम शाह ने भारत को पूर्ण रूप से मुल्लाओं के अधीन कर दिया था। अतः वह धार्मिक नेताओ के वश मे था।[1] सिकंदर शाह के सिंहासन पर बैठने के बाद, जो गृह युद्ध हुआ, उसमें हेमू नामक एक साधारण दूकानदार आदिल शाह का सेनापति एवं प्रधानमंत्री बन गया तथा इस प्रकार धार्मिक असहिष्णुता की परंपरा टूट गई।[2]

१५५६ ई० मे जब अकबर महान् सिंहासन पर बैठा तो उसे वही शासन प्रणाली उत्तराधिकार मे मिली। महान् सम्राट अकबर एक उदार, धर्म सहिष्णु समन्वयवादी सम्राट् था। अकबर की उदारता साथ उत्पन्न नही हुई थी, बल्कि परिस्थितियो तथा वातावरण की ऐसी उपज थी, जो क्रमागत् विकसित हुई थी।

कार्य व्यवहार मे अपूर्व बुद्धिमान होने के साथ अकबर एक आदर्शवादी और स्वप्नद्रष्टा था।[3] जैसा कि अबुल फजल ने लिखा है 'उसका उद्देश्य जनता के शिष्टाचार का सुधार करना भी था।'

अकबर की अपने प्रारंभिक शासन के वर्षों मे अपने पूर्वजों की भाँति धार्मिक नीति थी क्योकि पानीपत के द्वितीय युद्ध मे पराजित हेमू की, जो शस्त्रहीन हो चुका था, हत्या करना, अकबर का प्रथम राजकीय कार्य था, जिसका उद्देश्य केवल धार्मिक महत्ता एवं गाजी की उपाधि धारण करना था।[4]

लिये चिंतित रहा है इस अभियान से पता चलता है कि वह कार्य धार्मिक कारणो से ही किया गया था, अतः किसी भी तर्क से सच्चाई को छिपाया नही जा सकता (श्रीराम शर्मा, पृ० १३६-३७)

१. एस० के० बनर्जी, पृ० २२३।

२. श्रीराम शर्मा, पृ० १३३।

३. वही, पृ० १३५-३६।

४. बारतोली के अनुसार, स्मिथ, द्वारा उद्धृत, अकबर, पृ० २११-१२।

कालातर में अकवर के विचारों में धीरे धीरे परिवर्तन होने लगा और उसका धार्मिक दृष्टिकोण क्रमशः उदार होता गया। इस प्रकार एक ओर तो उसने वालहत्या, सती, अत्यधिक मद्यपान, गो हत्या आदि वद करवाई और दूसरी ओर उसने विधवा विवाह जारी किया। कई प्रकार के असहनीय तीर्थ यात्रा कर,[1] जजिया कर[2] उठा दिए और अपनी प्रजा के दोनो मुख्य वर्गों के पारस्परिक भेदों को मिटाने का यत्न किया। उसने दोनो जातियो मे परस्पर विवाह की प्रथा का उदाहरण उपस्थित किया। ऊँचे पद और उपाधियों को देने मे उसने सबको वरावर समझा और सवसे वड़ा कार्य किया, उसने एक नया धर्म चलाया, जिससे एक नये ससार की सृष्टि होगी।[3]

अक्वर ठीक कहता था, 'एक शासक के अधीन साम्राज्य मे यदि जनता परस्पर विभक्त है और एक इधर जाता है और दूसरा उधर जाता है तो यह वडा दोष है। अतः हमको चाहिए कि हम सवको एक कर दे, परंतु इस प्रकार कि वे एकता के साथ एक और सपूर्ण हों, ताकि किसी धर्म के गुण से वंचित न रह जायँ—एक धर्म के गुण के साथ साथ उन्हे दूसरे धर्म की अच्छाई का भी लाभ मिल जाय। इस प्रकार ईश्वर का संमान होगा, लोगो को शांति प्राप्त होगी और साम्राज्य की रक्षा होगी।'[4]

अकवर के इस कीर्तिमय आदर्शवाद को गलत समझा गया है और विकृत रूप मे प्रस्तुत किया गया है। वारतोली को इसमे 'चालाकी और धूर्तता की नीति' ही दिखाई देती है। स्मिथ भी कहता है 'यह धार्मिक कट्टरता का उन्माद था जो मई, १५७८ के आरंभ मे अकवर को आया। यह उसकी विभिन्न धर्मों में गहन रुचि का लक्षण था जो आगामी वर्ष के सितवर मे उसने अपनी अचूक व्यवस्था जारी की थी।'[5]

स्मिथ कहता है कि 'दीन-ए-इलाही' अकबर की 'मूर्खता का स्मारक' है, बुद्धिमत्ता का नही। यह समस्त योजना हास्यास्पद दंभ का

१. स्मिथ, पृ० २१६। २. वही, पृ० २१६-२६।
३. श्रीराम शर्मा, पृ० १३८।
४ वारतोली के अनुसार, स्मिथ द्वारा उद्धृत अकबर, पृ० २१२-१३।
५. वही, पृ० ११२।

परिणाम था, उसकी अनियंत्रित निरंकुशता की उपज थी।'[1] इस विस्तृत आलोचना को देखते हुए यह आवश्यक है कि अकवर के धार्मिक और सामाजिक सुधारो का पूर्ण निरीक्षण किया जाय।[2]

अकबर के ऊपर धार्मिक तथा अधार्मिक बातो का प्रभाव पडा। १६वीं शताब्दी मे भक्ति आदोलन के परिणामस्वरूप, एक ऐसा वातावरण तैयार कर लिया गया था, जहाँ पर हिंदू तथा मुसलमान मिल सकते थे। नानक, रामानंद, ब्रह्माचार्य, कबीर तथा सूफी सतो ने हिंदू तथा मुसलमानो के बीच समानता तथा अल्ला और ईश्वर के बीच एकता का जोर दिया था। उन्होने कहा था कि 'हिंदू तथा मुसलमान एकाई है और एकाई ईश्वर है'। इस प्रकार अकबर ने अपने को इस वातावरण मे उपजाया।[3]

प्रत्येक मनुष्य अपने वातावरण तथा परिस्थितियो की उपज होता है। अकबर भी इसी प्रकार का था। अकवर के माता पिता का प्रभाव इसके ऊपर पडा। उसकी माता सूफी संत की पुत्री थी पिता उदारवादी सुन्नी था। अब्दुल लतीफ गुरु था। उसपर शातिप्रिय शिकना का भी प्रभाव पड़ा था।[4] स्त्री का प्रभाव मनुष्य पर पडता है, यह राजपूत राजकुमारियो से शादी किया था। अपनी राजपूत रानियो की पूजा की व्यवस्था अलग करवाई थी।[5] इसमे सुन्नी मुसलमान की कट्टरता नही थी। दोस्तो का प्रभाव पड़ा, बैरमखाँ का प्रभाव पड़ा, रहीम खान खाना का प्रभाव पडा, अबुल फजल का भी प्रभाव पडा।[6]

इस प्रकार अकवर जन्म से लेकर शासक होने के बाद तक, कई लोगों के वर्गो से मिला। इनके प्रभाव मे आकर, कट्टरता की नीति छोड करके उदारवादी नीति ग्रहण करना चाहा। अकवर की माँ शिया सत की लड़की थी, शिया मे धार्मिक कट्टरता बिलकुल नही होती है। बैरम खाँ प्रारंभिक अवस्था मे शिक्षक था तथा अब्दुल लतीफ शिक्षक था।

---

१. बारतोली के अनुसार, स्मिथ द्वारा उद्धृत अकबर, पृ० २२२।
२. एस० एम० जाफर, मुगल एंपायर, पृ० ६३, सी० एच० आई० ४, पृ० १२९-३२।
३. श्रीराम शर्मा, पृ० १३९। ४. स्मिथ, पृ० २२५।
५. ब्राऊन, पृ० १०१। ६. वही, पृ० १०२-१०३।

इस प्रकार अकवर के ऊपर वातावरण तथा परिस्थितियों का विशेष प्रभाव पडा। राजपूतों के साथ विवाह, जजिया आदि करों को माफ करना। इससे स्पष्ट होता है कि वह बहुत पहले उदारवादी नीति सोच रहा[1] था उस समय दो प्रमुख नेता थे, टर्की का सुल्तान सुन्नी संप्रदाय का, ईरान का शाह शिया संप्रदाय का नेता समझा जाता था। अकवर के सामने यह कठिनाई थी कि वह सुन्नी स प्रदाय को स्वीकार करे या शिया संप्रदाय को। वह किसी को नेता नही मानना चाहता था, वह स्वय अपनी नीति को निर्धारित करेगा, अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति धर्म के क्षेत्र मे निर्धारित करेगा।[2]

समकालीन मुगल नेताओं को विश्वास था कि, इस्लाम ही एक सच्चा धर्म है और अन्य मे यथार्थता नही है। अकवर ने इसके विषय मे जानने के लिये, इस्लाम, जैन, बौद्ध, हिंदू धर्म तथा ईसाई धर्म के विषय मे अध्ययन किया। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि सभी धर्मो मे कुछ न कुछ तथ्य अवश्य है।[3]

अकवर भारतीय इतिहास से पूर्ण परिचित था, उसके पूर्वजो का एकमात्र आधार हिंदू प्रजा को दवाना था। परिणामस्वरूप हिंदू प्रजा का प्यार तथा सहानुभूति न प्राप्त कर सका। हिंदू प्रजा ने इन शासकों को विदेशियो के रूप मे देखा तथा उसके साथ सहयोग नहीं किया। वह हिंदू प्रजा का भी शासक होना चाहता था, उसकी एकमात्र अभिलाषा थी कि वह संपूर्ण भारत का शासक वने, इस्लाम धर्म स्वीकार करने पर, हिंदू प्रजा को नहीं प्राप्त कर सकता था। अतः धर्म के क्षेत्र में स्वतंत्रता अपनाने का निश्चय किया।[4]

इवादत खाना की स्थापना

अकवर ने सन् १५७५ में धार्मिक शास्त्रार्थ के लिये इवादतखाना वनवाया।[5] प्रारभ मे इसका उपयोग केवल शेख शैय्यद, उलमा और अमीर

१. यूसुफ हसन, ग्लीपसेसे आफ मिडीवल इंडियन कल्चर, पृ० १३२।
२. श्रीराम शर्मा, पृ० १४६। ३. स्मिथ, पृ० २२६-२७।
४. वही, पृ० १५६।
५. रेवरेंड एच० हेरास, दी मुगल पेंटिंग्ज आन अकवर्स रिलिजियस डिस्कशंस, पृ० जे० वी० व० आर० ए० एस०, भाग ३, अध्याय १ और २ (सन् १९२८), सी० एच० आई०, ४, पृ० ११३-११४।

ही करते थे। वृहस्पतिवार की रात्रि को शास्त्रार्थ शुरू होता था और प्रायः शुक्रवार की दोपहर तक चलता था। लेकिन मुस्लिम मुल्ला छोटी और निस्सार बातो पर झगडा करते थे। इससे अकबर को संतोष नही होता था।

बदायूँनी ने उन अवस्थाओ का वर्णन किया है जिनके कारण अकबर ने दूसरे स्रोतो से अपनी प्यास बुझाई—

'इन शास्त्रार्थो मे सम्राट् प्रत्येक वृहस्पतिवार की रात्रि को बारी बारी से सैय्यद, शेख, उलमा और उमरावों को बुलाया करता था। आने वाले लोग प्रायः अपने स्थान और पद के अनुसार बैठने मे झगडा करते थे। इसलिये बादशाह ने आदेश दिया कि उमराव लोग पूर्व की ओर, सैय्यद लोग पश्चिम की ओर, उलमा दक्षिण और शेख उत्तर की ओर बैठे। सम्राट् एक ओर से दूसरी ओर जाया करता था। एक रात को उलमाओ ने एकाएक शोर मचाना शुरू किया और गड़बड़ी मच गई। उनके असभ्य व्यवहार पर सम्राट् को क्रोध आया और मुझसे (बदायूँनी) कहा 'भविष्य मे यदि कोई उलमा भलीभाँति व्यवहार न करे और मूर्खता की बात करे तो इत्तिला दो कि मैं उसको सभा भवन से निकाल दूंगा'। मैंने आसफ खाँ से नम्रतापूर्वक कहा 'यदि मैं इस आज्ञा का पालन करूँ तो अधिकांश उलमाओ को निकल जाना पडेगा।' सम्राट् ने पूछा—'तुमने क्या कहा? मेरे उत्तर को सुनकर उसको बडी प्रसन्नता हुई और उसके पास बैठे हुए जितने भी लोग थे, उन्हे सुनाया।'[1]

उलमाओ के दो दलो मे मतभेद हुआ। एक दल दूसरे को काफिर बताने लगे जबकि दूसरा अपने विचारो को सही बताता था। इससे अकबर को विश्वास हो गया कि दोनो दल गलत हैं। सत्य उनके विवादों से परे होना चाहिए।[2] इसलिये सत्य की खोज के निमित्त उसका ध्यान पारसी, जैन, ईसाई और हिंदू की ओर गया। अबुल फजल कहता है 'इस प्रकार सात देशो के सत्यान्वेषक बादशाह के दरबार मे आ पहुंचे। उसका दरबार प्रत्येक धर्म और संप्रदाय के विद्वानो का सभा बन गया।'[3]

---

१. आइन-ए-अकबरी, भाग १ (अनु० ब्लाखमैन), पृ० १७१, इलियट एंड डाउसन, भाग ४, पृ० ५९-६०।
२. स्मिथ, पृ० १६१।
३. अकबरनामा, भाग ३ (अनु०), पृ० ३६६।

पारसी

स्मिथ लिखता है 'अकबर के अजीबोगरीब व्यवहार द्वारा अनेक धर्मों की जाँच के फलस्वरूप उसको सबसे अधिक संतोष पारसियो के धर्म से हुआ।[१] सन् १५८० के बाद अकबर सब लोगो के समक्ष सूर्य और अग्नि को साष्टांग दंडवत किया करता था। सायंकाल को जब दीपक जलाए जाते थे तो आदरपूर्वक सारा दरबार खडा हो जाता था। बदायूँनी लिखता है कि सम्राट् ने यह आदेश दे दिया था कि दफनाते समय मुर्दों का सिर पूर्व की ओर रखा जाय। सम्राट् ने इसी प्रकार सोना भी शुरू कर दिया था।[२]

जैन

डा० हीरानंद शास्त्री ने लिखा है 'उपलब्ध प्रमाणों से प्रकट होता है कि अकबर ने अपने किसी जैन गुरु से 'सूर्य-सहस्रनाम' सीखा था। अबुल फजल ने ऐसे तीन जैन गुरुओ के नाम लिखे है, जिनका अकबर बहुत आदर करता था। स्मिथ ने ठीक लिखा है 'अकबर ने मास खाना बंद कर दिया था और ऐसा आदेश जारी किया था जो अशोक की आज्ञाओं से मिलते-जुलते थे।[३]

ईसाई

बदायूँनी अकबर पर दोषारोपण करता है कि उसने कौस अपना लिया था और उनकी बहुत सी छिछोरी बाते भी ग्रहण कर ली थी। स्मिथ कहता है 'अकबर के साथ शास्त्रार्थ में ईसाइयो का बड़ा योग था। उनकी बाते सुनकर ही अकबर ने इस्लाम धर्म को त्याग दिया था।[४] जब अकबर ईसाई धर्म के प्रति श्रद्धा प्रकट करता तो वह निष्ठा से नही करता था। यह सच हो सकता है कि इस धर्म को अधिक पसंद करता हो, उसकी रुचि अब ऐसे धर्म मे थी, जिसको अब 'तुलनात्मक-धर्म' कहा जाता है।'[५]

---

१. स्मिथ, पृ० १६२।

२. आईन-ए-अकबरी, भाग १ (अनु० ब्लाखमैन), पृ० २०६।

३. अकबर ऐज-ए-सन वरशियर, 'दि इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली' (कलकत्ता, मार्च, सन् १९३३, पृ० १३७-४०)।

४. 'जैनिज्म अंडर मुस्लिम रूल' के० पी० जैन, न्यू इंडियन एंटीक्वेरी, भाग १, पृ० ५१९-२०।

५. स्मिथ, पृ० १६८। ६. वही, पृ० १५५-५६।

अकबर प्रत्येक धर्म के इतना निकट पहुँच गया था कि सभी लोग अपने ही धर्म के समझते थे। वह प्रत्येक धर्म के कुछ सिद्धातो को चाहे जितना मानता हो और उसको क्रियान्वित भी करता हो, तो भी यह नही कहा जा सकता कि इन चारो धर्मों में से किसी धर्म को उसने स्पष्ट रूप से ग्रहण कर लिया था।[1]

स्वभाव से अकबर रहस्यवादी था। अपने मित्रो की भाँति वह ईश्वर से सीधा संपर्क स्थापित करके आनंद का अनुभव करना चाहता था। वह एक साधारण व्यक्ति नही था, और सतपाल, मोहम्मद, दाते तथा अन्य महापुरुषो की भाँति उसकी मिश्रित चेतना रहस्यवाद की ओर झुकी हुई थी, जिनसे परेशानी होती है।'[2]

हिंदू

अकबर की प्रकृति हिंदूओ के उदार आदर्शवाद से बच नही सकती थी, क्योकि वे लोग उसके चारो ओर इस प्रकार घिरे रहते थे, जैसे श्वास वायु। हिंदू और मुसलमानो मे गहरी एकता करना चाहता था। इस कारण उसने हिंदूओ से वैवाहिक संबध स्थापित किया। उसने राजा मानसिह, भगवानदास, बीरबल और टोडरमल को साम्राज्य मे ऊँचे पदो से विभूपित किया जो बहुत कम लोगो को नसीब थे। बदायूँनी जैसे कट्टर मुसलमान को हुक्म देकर 'महाभारत' जैसे काफिरों के पवित्र ग्रंथ का फारसी मे अनुवाद करवाया। रविवार के दिन जानवरों का वध करना बद करवा दिया। मास स्वयं नही खाता था।[3] वह अपने ललाट पर हिंदुओ का सा तिलक लगाता था और मध्य रात्रि तथा उपा वेला मे संगीत का आदेश दिया। साल मे एक बार शिवरात्रि के दिन योगियो की सभा करवाता था। धोखेबाज ब्राह्मण कहते थे कि वह काफिरो के लिये राम, कृष्ण की तरह अवतार है।[4]

अध्यादेश—मजहर

अकबर ने सितंबर १५७९ ई० को एक क्रातिकारी कदम उठाया, परंपरा और प्रथा के अनुसार किसी मुस्लिम राज्य मे इमान-ए-आदिल के

१. स्मिथ, पृ० १६८-६९। २. वही, पृ० १६९-७१।
३. डी० सी० भट्टाचार्य, स्कालर्स आफ अकबर्स टाइम्स, पृ० ७८। आई० एच० क्यू०, १३ १, सन् १९३६।
४. ब्लाचमैन, पृ० २००-२०१।

नाम से खुतबा पढता था। (आध्यात्मिक गुरु) अकबर ने स्वयं आध्यात्मिक गुरु बनने का निश्चय किया। अकबर न केवल संपूर्ण राज्य बनाना चाहता था बल्कि इमाम-ए-आदिल बनना चाहता था। कट्टर मुसलमानो ने विरोध किया। वह इस्लामिक प्रथा तथा परंपरा के विरुद्ध था।[१]

अकबर के समर्थको ने सुझाव दिया कि पैगबर मुहम्मद तथा उत्तराधिकारी और अन्य शासको ने खुतबा पढा था, अतः अकबर ने उसका अनुकरण करने का निश्चय किया। अकबर का उद्देश्य खुतबा पढना नही बल्कि मुजतहिद उपाधि चाहता था। सितम्बर १५७६ शुक्रवार के दिन अकबर ने सम्राट् के नाम स्वय खुतबा पढा।[२]

इसपर टीका करते हुए बदायूँनी लिखता है 'ज्यो ही सम्राट् ने यह कानूनी साधन प्राप्त कर लिया अपेक्षाकृत किसी भी धार्मिक प्रश्न को हल करने का मार्ग खुल गया। इमाम की बुद्धि सर्वोपरि मान ली गई और उसका विरोध करना असंभव हो गया। हमारे समस्त कानून जिसमें मान्यताएँ और निषेध थे, रद्द हो गए तथा इमाम की सर्वोपरि बुद्धि ही कानून बन गई।'[३]

अकबर ने स्पष्ट घोषणा की थी 'मनुष्य की बाह्य धर्मांधता से और इस्लाम के मानने से कोई लाभ नही है, जब तक कि हृदय मे पूरा विश्वास न हो। पुनः पुनः कलमा पढना, खतना करवाना और सम्राट् के डर से भूमि पर सिजदा करना ईश्वर की दृष्टि मे कुछ भी महत्व नही रखता।'[४]

इस साल (हिजरी ९८८) नीच और निकम्मे लोगों ने, जो विद्वान होने का दंभ भरते थे, लेकिन वास्तव मे मूर्ख थे, इस बात के प्रमाण इकट्ठे किए कि बादशाह साहिब-ए-जमा (युगस्वामी) हो गया है जो इस्लाम के ७२ संप्रदायो के भेदो को मिटा देगा। शिया लोगो ने इसी प्रकार की मूर्खता की बाते कही। इस प्रकार की बातों से सम्राट् पैगबर होने का दावा करने लगा, बल्कि मुझे कहना चाहिए, शायद उससे भी बडा पद चाहता था।[५]

१. स्मिथ, पृ० १७१-७२।
२. आईन-ए- १ (अनु०), पृ० १६९-७०।
३. वही, पृ० १८४-८७।
४. इलियट एंड डाउसन, ६, पृ० ६०-६१।
५. आईन-ए-अकबरी, १ (अनु०), पृ० १९०।

इसी समय वादशाह के प्रति विश्वास की चार सीढियों की परिभाषा की गई। ये चार सीढियाँ थी संपत्ति, जीवन, संमान और धर्म वादशाह को समर्पण कर देना। जो इन चारो पदार्थो को अर्पण कर देता था, उसे चार सीढियाँ मिलती थी। जो एक पदार्थ अर्पण करता था, उसे एक सीढी। सव दरवारियो ने अपने नाम सिहासन के वहवूद शिष्यो की सूची मे लिखवा दिए थे।[1]

सितंवर १५७९ मे शेख मुवारक ने एक अध्यादेश तैयार किया, जिसे मजहर कहते है। उसका उद्देश्य अकबर को विवादग्रस्त विषयो मे न्याय देने का सर्वोच्च अधिकार देना था। इस अध्यादेश के अनुसार अकवर को इमाम-ए-आदिल का अधिकार दिया गया। अकवर शासन के मामले में सर्वश्रेष्ठ था, वह धार्मिक मामलो में सर्वोच्च है, यह स्पष्ट कर दिया।[2]

दीन इलाही

कावुल से लौटने के वाद अपने सामंतो की स्वामिभक्ति की ओर से आशंका और गुजरात[3] के विद्रोहियो की तरफ से चिंता से उत्पन्न आतंक से छुटकारा पाकर अकवर ने जिस योजना को गुप्त रूप से दीर्घकाल तक अपने मन में सँजोए रखा था, उसका खुलेआम प्रयोग करना आरंभ कर दिया। यह योजना थी अपने को एक नवीन धर्म का संस्थापक और मुख्याधिष्ठाता वनाना, जो विभिन्न तत्वो का सम्मिश्रण था, जो आशिक रूप से मुम्मद के कुरान से लिया गया था, आशिक रूप से ब्राह्मणो के धर्म शास्त्रों से तथा कुछ सीमा तक जितना उसके लिये सुविधाजनक था, ईसा की शिक्षा से भी।[4]

ऐसा करने के लिये एक साधारण सभा वुलवाई और आस-पास के नगरों से समस्त विद्वानों तथा सिपहसालारो को निमंत्रित किया। जव उसने उन सवको अपने संमुख एकत्रित कर लिया तो चतुरता और प्रवंचना-पूर्णनीति में वात कही—

---

१. आईन-ए-अकवरी, १ (अनु०) पृ० १९१।
२. स्मिथ, पृ० १७१-७२।
३. वही, पृ० १७६।
४. आइन-ए-अकबरी, १ (अनु० ब्लाखमैन), पृ० ७५-७७।

'एक व्यक्ति द्वारा शासित साम्राज्य के लिये यह बुरी बात थी कि उसके सदस्य परस्पर विरोधी और विभाजित हों, अर्थात उसने उस विस्तरता का जिक्र किया जो मुगल राज्य मे प्राप्त अनेक प्रकार के (धार्मिक) नियमों में फैली हुई थी, जिनमें से कुछ न केवल दूसरो से भिन्न थे, वरन् उनके विरोधी भी थे, इस कारण वस ऐसा हुआ कि यहाँ उतने ही गुट है जितने कि धर्म है। इसलिये हमे चाहिए कि हम उन सभी को एक मे मिला लें, किंतु इस प्रकार से कि वे एक और समस्त दोनो ही एक साथ रहे, जिसका महान लाभ यह रहे कि एक धर्म मे जो अच्छाई हो, वह न खोने पाए, साथ ही दूसरे में जो बात श्रेष्ठतर हो वह उपलब्ध हो जाय। इस तरीके से ईश्वर के प्रति समान प्रदर्शित होगा, लोगों को शांति प्राप्त होगी, मेरे साम्राज्य की सुरक्षा होगी।'[1]

अब जो व्यक्ति यहाँ उपस्थित है, वे अपनी सुनिश्चित समति व्यक्त करे, कारण कि वह हटेगा नही जब तक कि वे बोलेगे नही।'[2]

इस प्रकार उसने कहा और प्रतिष्ठित व्यक्तियो ने विशेष रूप से सेनानायको ने, जिनका बादशाह के अतिरिक्त दूसरा ईश्वर नही था और उसकी इच्छा के अतिरिक्त दूसरा कोई कानून नही था, सभी ने एक स्वर मे उत्तर दिया 'सच है, वह जो पद-मर्यादा तथा प्रकांड बुद्धिमत्ता दोनो ही के कारण देवी सत्ता के निकटतर है, उसी का पूरा साम्राज्य के लिये देवताओ, संस्कारो, कुर्बानियो, गूढतत्वों, नियमो उत्सवो और जो भी सर्वागीण सार्वभौम की स्थापना के लिये आवश्यक हो उसे निर्धारित करना चाहिए।[3]

इस प्रकार कार्य समाप्त हो जाने पर बादशाह ने सभी दिशाओ में यह घोषित करने के लिये समस्त मुगल साम्राज्य मे अनुसरित होने के लिये थोडे ही समय में राजदरबार से (धार्मिक) कानून प्रसारित किया जायगा, शेखो मे से एक अत्यत प्रतिष्ठित, वृद्ध व्यक्ति को भेजा और साथ ही वह भी जीवित करने के लिये कि सभी लोगो को उसे सर्वश्रेष्ठ मानकर

---

१. आइन-ए-अकबरी, १ (अनु० ब्लखमैन), पृ० १९८।
२. आइन-ए-अकबरी, १, पृ० १९९।
३. वही, पृ० १००-१०१।

ग्रहण करने के लिये तत्पर हो जाना चाहिए और वह चाहे जिस प्रकार का हो श्रद्धापूर्वक स्वीकार कर लेना चाहिए।'[1]

उक्त विवरण के अनुसार सभा का प्रस्ताव सर्वसमति से स्वीकार कर लिया गया, किंतु हमे वदायूँनी से ज्ञात होता है कि, जो वहाँ संभवत. उपस्थित था कि एक क्षीण विसम्मत स्वर सुना गया था, यद्यपि वक्ता उस पुरुषोचित दृढता के साथ अपना वक्तव्य प्रस्तुत नही कर पाया था, जिस प्रकार की प्रायः तीन शताब्दियो पूर्व उग्र प्रकृति सुल्तान के संमुख अलाउलमुल्क ने अपना मत व्यक्त किया था।[2]

साम्राज्य के धर्म को नवीभूत करने के लिये, आयोजित एक सभा मे राजा भगवानदास ने कहा—'मै स्वेच्छापूर्वक यह विश्वास कर लूंगा कि हिंदुओ और मुसलमानो का प्रत्येक धर्म खराव रहा है, किंतु हमे यह वता दीजिए कि यह नया संप्रदाय क्या है और वे क्या धारणा रखते है, जिससे कि मै विश्वास उत्पन्न कर सकूं। 'आला हजरत' ने कुछ सोचा और राजा से आग्रह करना छोड दिया। किंतु हमारे गौरवपूर्ण धर्म के निर्णयो मे परिवर्तन होता रहा है और उसकी तिथि प्रदान करने के लिये 'इहदास-ए विदअत' धर्मद्रोह का नवाचार वाक्याश खोजा गया।'[3]

यह रोचक तथ्य की प्रस्तावित नवीन धर्म के प्रसारण को अनुशासित करने के लिये एक सभा विधिवत आयोजित की गई थी, केवल वदायूँनी के साक्ष्य से ज्ञात होता है और आधुनिक इतिहासकारो की दृष्टि से वच गया है।[4] शेख मुवारक को प्रचार कार्य करने के लिये जो उत्तरदायित्व दिया गया था और संभवत. उसने संपन्न किया था, वह क्षणिक थी।[5]

कुछ वर्षो वाद राजा भगवानदास के दत्तक पुत्र कुँवर मान सिंह ने वस्तुतः अपने पिता की भावनाओ को दुहराया। यह घटना वदायूँनी से मालूम होती है। १ दिसंवर १५८७ की तारीख मे वह कहता है कि जव

---

१ वदायूँनी, १, पृ० ३७५।
२. वदायूँनी, १, पृ० २६६।
३. वही, १, पृ० २७७, अवुल फजल, आ० ए० अ०, १ (अनु०), पृ० १८१।
४. स्मिथ, पृ० १८८।
५. स्मिथ, पृ० १८८-८६।

मानसिंह हाल ही में बिहार, हाजीपुर और पटना के पूर्वी प्रांतों का शासक नियुक्त हुआ था और अकबर, खान खाना तथा मानसिंह के साथ दोस्ती के प्याले में शरीक हो रहा था।[१]

आला हजरत ने शिष्यत्व का विषय छेड़ा और मानसिंह की परीक्षा करने लगा। उसने किसी शिष्टाचार के बिना उत्तर दिया—'यदि शिष्यत्व का अर्थ है स्वेच्छा से जीवन का बलिदान कर देना तो, मैंने पहिले ही अपना जीवन अपनी मुट्ठी मे रख छोड़ा है, इसमे अधिक प्रमाण की और क्या आवश्यकता है, किंतु इस शब्द का अर्थ कुछ और है, इसका संबंध धर्म से कुछ और है तो निश्चय ही मैं हिंदू हूँ। यदि आप मुझे ऐसी आज्ञा देंगे तो मैं मुसलमान हो जाऊँगा किंतु इन दो के अतिरिक्त अन्य किसी धर्म के अस्तित्व की बात मैं नही जानता।'[२] इस स्थल पर प्रसंग समाप्त हो गया और सम्राट् ने कोई प्रश्न नही किया, 'बल्कि उसे बंगाल भेज दिया'।[३] किसी भी सूफी संप्रदाय की तरह दीने इलाही की अपनी अलग प्रवेश विधि थी। इसमे केवल उन्ही लोगो को सदस्य बनाया जाता था, जिनकी लगन और निष्ठा संदेह रहित होती थी। अकबर सभी तरह के लोगो को इसमे शामिल नही करना चाहता था। उसका कहना था कि 'किसी को शिष्य बनाने के तात्पर्य से उसे व्यक्तिगत सेवक बनाना नही, अपितु उसे परमात्मा की भक्ति में दीक्षित करना है। जब कोई शिष्य बनने की बड़ी लगन दिखाता था तो रविवार के दिन उसे सदस्य बना लिया जाता था। पहले प्रार्थी दीने इलाही के प्रधान पुरोहित अबुल फजल के पास जाता था और फिर अबुल फजल उसका परिचय अकबर से करवाता था। प्रार्थी तब अपनी पगड़ी उतार कर अपने हाथों मे ले लेता था और अपना मस्तक उसके चरणों पर रखकर अकबर को वह आश्वासन देता था कि उसने सभी कुविचार अपने हृदय से निकाल दिए हैं और फिर वह उससे दीने इलाही में ले लिए जाने की प्रार्थना करता था। तब अकबर अपने हाथों से उसके सिर पर पगड़ी रखता तथा उसे एक शस्त्र देता था। यह

१. अबुल फजल, आ० ए० अ०, १, पृ० १८७।
२. यूसुफ अली, जनरल आफ ई० इ० एसोशियेसन, जुलाई, १९१५, पृ० ३०४।
३. अबुल फजल, आ० ए० अ०, १ (अनु०), पृ० १८८-८९।

शस्त्र सोने की एक गोल सी अंगूठी जैसी चीज होती थी, जिसपर खुदा का नाम तथा अकबर का इष्ट वाक्य अल्लाह अकबर खुदा रहता था। शस्त्र देने का तात्पर्य यह था 'शुद्ध शस्त्र और शुद्ध नजर कभी धोखा नही खाती।' दीने इलाही के सदस्य अकबर की सोने की मूर्ति रत्नजटित सिक्के के टुकड़े मे लपेट कर अपनी अपनी पगडियो मे रखते थे।'[1]

दीक्षा समारोह के अवसर पर दीन इलाही के सदस्य सम्राट् की प्रतिछवि भी प्राप्त करते थे जो कि अपनी पगडियो मे धारण करते थे।[2] "महान नाम' ईश्वर की विशेष सज्ञाओ अथवा नामो मे से कोई एक होता था। इनमे से कौन सा प्रमुख माना जाये, इस सबंध मे टीकाकारो मे मतभेद है। यह ज्ञात नही होता कि अकबर ने कौन सा चुना था। शस्त्र का प्रदान करना तथा 'महान नाम' का मत्र देना हिंदू पद्धति से अनुसरित प्रतीत होता है। गुरु अथवा आध्यात्मिक उपदेशक अपने शिष्य के कान मे सदैव एक गुप्त मत्र फूँकता था। अल्लाह वाक्यांश मे द्वयार्थकता, जिसका अर्थ यह हो सकता है कि ईश्वर महान् है अथवा अकबर ईश्वर है। अनेक व्यक्तियो का विश्वास था कि अकबर ने अपने को दैवी मानने का साहस किया था और यद्यपि उसने इस आरोप का तीव्रतापूर्वक खंडन किया था, यह विचार निराधार नही था। उसकी अकित उक्तियाँ प्रमाणित करती है कि वह राजाओ के अपने पद के नाते, ईश्वर से संबध की निकटता के विषय मे अबुल फजल द्वारा व्यक्त विचारों से पूर्ण सहमत था।[3]

अबुल फजल ने दीने इलाही का विवरण कतिपय अध्यादेशों जिनका सम्प्रदाय के सदस्य पालन करते थे, के निम्नाकित वर्णन से समाप्त करता है।[4]

'दीने इलाही' के सदस्य एक दूसरे को देखने पर निम्नाकित रीति का पालन करते है—एक कहता है 'अल्लाह अकबर' और दूसरा उतर देता है—'जल्ला जलालहू'।[5] अभिवादन का यह रूप निर्धारित करने मे आला-

---

१. स्मिथ, पृ० १९१-९२, आईने अकबरी, ३ (द्वितीय सस्करण), पृ० ४२९।

२. अबुल फजल, आ० ए० अ०, १ (अनु० ब्लाखमैन), पृ० २०१।

३. एस० एम० जाफर, मुगल एपायर, पृ० १२८-१२९।

४. स्मिथ, पृ० २०१।

५. आईने अकबरी, १, पृ० २०८।

हजरत का तात्पर्य यह था कि लोग अपने जीवन के मूल स्रोत पर विचार करने को याद रखें और ईश्वर की अभिनव, सजीव, कृतज्ञ स्मृति बनाए रखें।'[1]

'आलाहजरत द्वारा यह भी आदेश दिया गया कि जो भोज मनुष्य की स्मृति में बहुधा उसकी मृत्यु के बाद दिया जाता है, उसके स्थान पर प्रत्येक को अपने जीवनकाल ही में भोज की तैयारी करनी चाहिए और इस प्रकार अंतिम यात्रा के लिये सामग्री एकत्रित करें।'[2]

'प्रत्येक सदस्य को अपने जन्म दिवस पर गोष्ठी आयोजित करना है। उसे दान देना है और इस प्रकार उसे दीर्घ यात्रा के लिये सामग्री की तैयारी करनी है।'[3]

'आलाहजरत ने यह भी आदेश दिया है कि सदस्यों को मांसाहार से वंचित रहने का प्रयत्न करना चाहिए। वे स्वयं स्पर्श किए बिना, अन्य व्यक्तियों को मांसाहार की अनुमति दे सकते हैं किंतु अपने जन्म-मास के समय उन्हें मांस के निकट नहीं जाना है। न ही सदस्य ऐसे जीव के निकट जायेंगे, जिसका वध उन्होंने स्वयं किया है, न ही उसका भक्षण करेंगे, न ही वे कसाइयों, मछुओं और चिड़ीमारों के साथ एक ही भोज-पात्रों का उपयोग करेंगे।'[4]

'सदस्यों को गर्भिणी, वृद्धा और बंध्या स्त्रियों के साथ संभोग नहीं करना चाहिए न ही यौवनारंभ की वय से नीचे की कन्याओं के साथ।'[5]

'यदि दर्शनियां शिष्यों में से किसी की मृत्यु हो जाय, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, तो उन्हें मृतक के गले में कुछ कच्चे अनाज के दाने और एक पक्की ईंट बांध देना चाहिए और फिर उन्हें शव को नदी में निकाल लेना चाहिए तथा ऐसे स्थान में दाह देना चाहिए जहां जल न हो।'[6]

---

१. आईने अकबरी, १ पृ० २०९-१०। २. वही, पृ० १४८-४९।

३. वही, पृ० १६३-६४।

४ आईन-ए-अकबरी, १, पृ० १६३-६४।

५. बदायूंनी, मुतखब-उत-तवारीख, १, पृ० ३१०।
आईने अकबरी, १ पृ० १६५-६७।

६ आईने अकबरी, १ पृ० १६७-६९।

'किंतु यह आदेश एक आधार भूमि पर आधारित है, जिसे आलाहजरत ने इंगित किया था।'[1]

'मृतकों का, उनका सिर पूर्व की ओर रखकर दफनाना चाहिए और उनके पाँव पश्चिम की ओर रहे। आलाहजरत ने सोने तक के लिये, इस आसन का अनुमोदन किया था।'[2]

इसका दोहरा तात्पर्य था उगते हुए सूर्य के प्रति संमान प्रदर्शित करना तथा मुसलमानो का अपमान करना, जो मक्का की ओर अभिमुख होते है।[3]

आलोचना

१५८२ की सभा के अनतर दरवार से नवीन विनियमो का ताँता सा वँध गया, अनेक विनियमों का प्रसरण १५८३ और १५८४ मे हुआ। १५८८ से १५९४ तक अनेक नये अनर्गल आदेश जारी किए गए। सम्राट् के शिष्य होने के नाते इलाही के सदस्यो से यह आशा की जाती थी कि वे प्रत्येक आदेश पर विशेष ध्यान देगे। दीन इलाही के अनुयायियो का संगठन का रूप धर्म की अपेक्षा एक संघ का था। वह धर्म जहाँ तक कि इसे धर्म कहा जा सकता है, एकेश्वर, एकेश्वरवाद का समर्थन करता था, जिसमे अनेक देवतावाद का पुट था, ईश्वर के उपराज्य के रूप मे सम्राट् को वस्तुतः देवत्व प्रदान करना एक विशिष्ट अंग पूरित करता था और सूर्य पूजा तथा गौण रूप मे अग्नि और कृत्रिम ज्योति की उपासना का भी उसमे विशिष्ट स्थान था। पशु-पक्षियो के मासाहार का पाक्षित निषेध, विशेष रूप से जन-प्रभाव के कारण अधिक था।[4]

किसी वालक का मुहम्मद नाम नही दिया जाता था। यदि उसका यह नाम पहिले रख दिया गया था तो उसका परिवर्तन आवश्यक था। नवीन मस्जिदो का निर्माण निषिद्ध था और न ही पुरानी मस्जिदो की मरम्मत वा जीर्णोद्धार की आज्ञा ही थी। शासन के उत्तर-काल मे मस्जिदों को ध्वस्त कर देने की आज्ञा दी गई थी।[5]

---

१. वदायूँनी, मुतखव-उत-तवारीख, १, पृ० ३१६।
२. वही, पृ० ३०८। ३. वही, पृ० ३२१-२२।
४. स्मिथ, अकवर, पृ० १५६।
५. वही, पृ० २५८-५९।

गो-वध वर्जित कर दिया गया था, जिसका दंड प्राणदंड था, जैसा कि हिंदू राज्यो में प्रचलित था। १५८३ ई० के वर्ष में सौ दिवसों से अधिक दिनो तक के लिये मांसाहार निषिद्ध कर दिया गया था। पूरे साम्राज्य के लिये यह आदेश प्रयुक्त किया गया था और जो भी इस आज्ञा का उल्लंघन करता था उसे प्राण दंड दिया जाता था। अनेक परिवारो का सर्वनाश और संपत्ति अपहरण सहन करना पड़ता था।[1] ये नियम बहुसंख्यक मुसलमानो के लिये भारी रूप से उत्पीडक प्रमाणित हुए।

दाढियाँ मुडवा देना, लहसुन और प्याज तथा गोमांस भी, हिंदुओ के प्रतिकूल होने के कारण वर्जित कर दिया गया था।[2]

सुनहरे तथा रेशमी वस्त्रों का उपयोग जो मुसलमानों में वर्जित था, सार्वजनिक समाज के समय अनिवार्य घोषित कर दिया गया। यहाँ तक कि नमाज 'रमजान' के व्रत तथा मक्का की तीर्थयात्रा भी निषिद्ध कर दिए गए।[3]

अरबी के अध्ययन, मुसलमानी विधान कुरान के भाष्यो के अध्ययन पर प्रतिबंध आरोपित किया गया, विशेष रूप से अरबी वर्णमाला को बहिष्कृत कर दिया गया इत्यादि।[4]

इन सब नियमों का सार यह था कि हिंदू, जैन, पारसियो की रीतियो के ग्रहण करने मे प्रोत्साहन दिया जाय, साथ ही मुसलमानी प्रथाओ को निरुत्साहित अथवा निश्चित रूप से वर्जित कर दिया जाय।[5]

इस्लाम को निराहत और उत्पीड़ित करने की नीति, जो बाद मे बहुत अधिक सीमा तक पहुँच गई थी १५८२ से १५८५ ई० की अवधि में सक्रिय रूप से प्रयुक्त की गई।[6]

१५८१-८२ के वर्ष के बहुसंख्यक शेख और फकीर, प्रकट रूप से, वे जिन्होने नवाचारो का विरोध किया था, निष्कासित कर दिए गए थे,

१. बदायूँनी, मुतखब-उत-तवारिख, १,पृ० ३०९।
२. वही, पृ० ३१०-११।
३. वही, पृ० ३१७।
४. अबुल फजल, आ० एंड अ०, १, पृ० ४८६, नं० १९४।
५. स्मिथ, पृ० २५९।
६. श्रीराम शर्मा, पृ० २१३।

अधिकांशतः कंदहार मे घोड़ों के बदले में बेचे गए थे, संभवत दासों के रूप मे।[1]

शेखो के एक संप्रदाय के मतावलंबी, जिन्होने सम्राट् के अनुयायियो के समान अपने को शिष्य घोषित करने का दुःसाहस किया था और जो सामान्यतः इलाही कहलाते थे, सिंध और कंदहार भेज दिए गए तथा तुर्की घोड़ों के एवज मे व्यापारियो को दे दिए गए।[2]

बदायूँनी ने दीन ए-इलाही अपनाने वाले केवल सोलह दरबारियो का नाम उल्लेख किया है जबकि अबुल फजल ने अन्य और नाम दिए है। ब्लाखमैन कहता है—'बीरबल के अतिरिक्त वे सब मुसलमान थे'। लेकिन बदायूँनी के कहने से यह मालूम होता है कि अनुयायियो की संख्या और अधिक होगी।[3] स्वयं बदायूँनी ने लिखा है 'राजा भगवानदास और मानसिंह ने दीन-ए-इलाही के अनुयायी बनने से इंकार कर दिया था।[4] इस कारण उनको सताया नही गया बल्कि उनकी प्रतिष्ठा और विशेष अधिकार ज्यो के त्यो बने रहे।

दीन-ए-इलाही के सदस्य वे ही बनते थे जिन्हे पद प्रतिष्ठा तथा धन प्राप्त होता था। फादर पिन्हीरो, ३ सितंबर १५९५ ई० को लाहौर से लिखते समय वर्णन करता है कि नगर मे राजकीय संप्रदाय के अनेक अनुयायी थे, किंतु वे सभी उस धन के कारण बने थे, जो उन्हे दिया गया था।[5]

यह संगठन जैसा कहना चाहिए, उसके प्रधान धर्माध्यक्ष, अबुल फजल की हत्या के बाद भली प्रकार नही पनप सका होगा और निश्चय ही अकबर की मृत्यु के साथ समाप्त हो गया था।[6]

यह संपूर्ण योजना हास्यास्पद अहमन्यता का प्रतिफल था, अबाध निरंकुशता का प्रतिकुत्सित प्रस्फुटन। इसकी अवमानात्मक असफलता कोतवाल के प्रतिवाद की बुद्धिमता को चरितार्थ करती है, जो तीन

१. आईने अकबरी, १, पृ० ३।
२. बदायूँनी, २, पृ० ३५५-५६, ३९०-९५। आईने अ०, २, पृ० ४४-४५, आईने अकबरी, ३, पृ० ४२४, ४६, ४९, ५०, ५१।
३. वही, १, पृ० २०९। ४. वही, पृ० १९८-२०६।
५. वही, ३, पृ० ४३१। ६. स्मिथ, पृ० २१३।

शताब्दियों पूर्व दिल्ली के सुल्तान को संबोधित किया गया था, और उन बादशाहो की मूर्खता को, जो पैगंबर की भूमिका धारण करने का प्रयत्न करते है।[1]

डा० स्मिथ का कहना है कि 'दीने इलाही अकबर की बुद्धिमत्ता का नही, अपितु उसकी मूर्खता का प्रतीक था।'[2] दीने इलाही एक धर्म न होकर केवल एक सूफी संप्रदाय मात्र था।[3] लेकिन फिर भी वे कहते है कि अकबर के लिये एक पैगंबर का पद ग्रहण करना मूर्खतापूर्ण था।[4] एक सूफी संप्रदाय के संस्थापक को पैगबर नही शेख कहा जाता है, और स्पष्टतः अकबर ने पैगंबर का पद ग्रहण नही किया था। वह स्वयं कहा करता था कि 'मैं मनुष्यों के पथ निर्देशन का दावा क्यो करूँ जबकि मैं स्वयं निर्देशित हूँ।'[5] वह कहता था कि यह सोचना ही अविवेकपूर्ण है कि कोई मनुष्य देवत्व का एक अक मात्र प्राप्त करने का दावा कर सकता है। फिर मेरे मस्तिष्क में ऐसा विचार आ ही कैसे सकता है?'[6]

विशेषताएँ

अकबर ने १५८३ ई० तक राजनीतिक और प्रशासकीय समस्या को संतोषजनक रूप से हल कर लिया था। उसने राजसत्ता की जो नवीन व्यवस्था की थी, उससे सम्राट् का पद इतना ऊँचा हो गया था कि कोई उसे चुनौती नही दे सकता था।[7] अबुल फजल लिखता है कि 'राजत्व ईश्वर से उद्भापित एक प्रकाश, सूर्य की किरण, विश्व को प्रकाशित करने वाला, पूर्णता के ग्रंथ और तर्क और सब गुणो का केंद्र है। यह राजाओं को बिना किसी मध्यस्थ की सहायता के ईश्वर से प्राप्त होता है। इसकी उपस्थिति मे लोग प्रशंसा के मस्तक को अवनिता की भूमि की ओर नत मस्तक कर देते है।[8] दैवी अवस्था की इस व्याख्या ने राज्य की इस्लामी व्याख्या तथा उसकी दुहरी नागरिकता के उपसिद्धात को रद्द कर दिया और सम्राट् को

---

१. स्मिथ, पृ० २१७-१८।

२ वही, पृ० २१९-२१। ३. वही, पृ० ३१०।

४. वही, पृ० २१०। ५. आईने अकबरी, १, पृ० १७४।

६. अकबर नामा, ३, पृ० २७१-७४।

७. अकबर द ग्रेट, १, पृ० ३१२-१४। श्रीराम शर्मा, पृ० ३५-३८।

८. आईने अकबरी, १, पृ० २८८-८९।

अपनी संपूर्ण प्रजा का बिना भलाई ही सम्राट् का मुख्य कर्तव्य बन गया।[1] अभी तक गैर मुसलमानो के प्रति भेद भाव पूर्ण वर्ताव होता रहा था, पर अब प्रशासन और सेना दोनो मे ही गैर मुस्लिमो के विरुद्ध किसी प्रकार के भेद भाव का राज की नीति के रूप मे बरता जाना समाप्त कर दिया गया।[1] मजहर और दीने इलाही की स्थापना ने धार्मिक विषमता कम कर दी और इनसे राजनीति तथा प्रशासन के कुछ सौ उच्च पदाधिकारी एक समान धार्मिक एव सामाजिक स्तर पर एक हो गए। इस प्रकार एक नवीन अवस्था का उदय हुआ।[2]

अकबर ने समाज की बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया तथा नियम बनाया। वह भिक्षा माँगने, स्त्रियो के अनैतिक आदि जैसे कार्यों पर प्रतिबंध लगाया। वेश्याओ और बदनाम स्त्रियो को पृथक कर नगर के बाहर गृहो मे रखा। अधिकारी ऐसे लोगो के नाम लिखने लगे, जो इन स्त्रियो के पास जाते आते थे या उन्हे अपने घर बुलाते थे। इसी प्रकार बहेलियो तथा मेहतरों को अलग अलग स्थान दिए गए। उन्हे अन्य लोगो से मिलने जुलने की मनाही कर दी गई। कब्रगाहों को बस्तियो से दूर, उनके पश्चिम मे स्थापित करने की व्यवस्था की गई।[3]

समाज को बढावा देने के लिये शिक्षा मे परिवर्तन किया गया। अच्छी अच्छी पुस्तको का फारसी भाषा मे अनुवाद कराया गया।[2] छोटे बच्चो का मन लगाने के लिये उसके उद्यान मे छोटे छोटे पौधे हैं, उन्हे प्रेम करना उदार-विधाता के प्रति अपना ध्यान लगाना है।[4] धार्मिक तथा लौकिक ग्रथो को दरबारी भाषा मे अनूदित करवाया। कृषि को प्रोत्साहन देने और उद्योग तथा व्यापार को नियंत्रित करने के भी प्रयत्न किए। नगरो के कोतवालो को व्यापारिक संघो के प्रधानो और कारीगरो के प्रत्येक दल के लिये एक दलाल को नियुक्त करने के अधिकार दिए गए। धार्मिक तथा

---

१. आईने अकबरी, १, पृ० २६१।

२. श्रीराम शर्मा, पृ० ३६-४०।

३. बदायूँनी, ३, पृ० ३६३। २. आईने अकबरी, ३, पृ० ५५७।

४. फायर फेलिक्स, जनरल आफ पंजाब हिस्टोरिकल सोसायटी भाग ५, पृ० २६।

आर्थिक कारणों से बैलो, भैंसों, घोड़ो और ऊँटो का वध करने पर प्रतिबंध लगा दिया गया।[१]

अकबर का जन्म ऐसे कुल मे हुआ था जो परम धार्मिक थे। बाबर और हुमायूं वास्तव मे बड़े धार्मिक थे और वह बाह्य रूपो की बहुत कम चिंता करते थे, जैसा राजनीतिक आवश्यकतानुसार अपने विचार बदल दिए थे। इस प्रकार अकबर को जन्म से ही इसका प्रभाव पड़ा था। उसका गुरु अब्दुल लतीफ बड़ा विद्वान् था। 'सुलह-ए-कुल' यानी सबके साथ शांति के साथ मिल-जुलकर रहना उसके जीवन का सिद्धांत था।[२]

स्मिथ ने लिखा है[३] 'यौवन के आरंभ से ही अकबर जानना चाहता था कि ईश्वर और मनुष्य का क्या संबंध है और इस विषय के समस्त क्या-क्या प्रश्न हैं। वह कहता था 'दर्शनशास्त्री का मुझ पर जादू का सा असर होता है कि अन्य सब बातो को छोड़कर मैं इस विषय की ओर झुक जाता हूँ चाहे मुझे आवश्यक कामों की उपेक्षा करनी पड़े।' ईश्वर के प्रति उसके हृदय मे श्रद्धा थी तथा जनता को उस तरफ मोड़ना चाहता था।

अकबर ने दीने इलाही धर्म इसलिये चलाया कि भारत के बहुसख्यक हिंदुओ के प्राचीन और बहुत ही विकसित भारतीय धर्मो मे एवं दृढ भारतीय साम्कृतिक परंपराओं के कारण इस्लाम देश का राष्ट्रीय धर्म होने के अनुपयुक्त है। दिल्ली मे १२०६ ई० मे मुस्लिम सल्तनत स्थापित होने के समय से इस्लाम राज्य धर्म श्रेष्ठ पद पर प्रतिष्ठित था, जिसका कुपरिणाम यह हुआ कि प्रजा मुसलमानो और गैर मुसलमानो मे विभाजित हो गई थी तथा इससे दूसरी नागरिकता प्रचलित हो गई थी।[४] अकबर इस अनीतिपूर्ण व्यवस्था को दूर करने के लिये एक ऐसे धर्म की खोज में था जो न केवल इसकी आध्यात्मिक पिपासा को ही शात करे बल्कि सबको पद समानता का आश्वासन प्रदान करे। इसलिये वह सभी धर्मों का अध्ययन किया, जिससे इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि सभी धर्मो मे कुछ न कुछ

---

१. आईने अकबरी, १ पृ० ७२-७३, ४६-४७।
२. आईने अकबरी, ३, पृ० ३८६।
३. वही, ३, पृ० २८७, स्मिथ, पृ० १३०-३१।
सी० एच० आई० ४, पृ० ११६-२५।
४. स्मिथ, पृ० १४३।

अच्छाई और बुराई दोनो है। इस कारण उसकी दृष्टि में इनमें से कोई भी राष्ट्रीय धर्म पर प्रतिष्ठित करने योग्य नही था।[1]

अकबर ने यह भी लक्ष्य किया था स्पष्ट कमियाँ होने पर हिंदू धर्म के सिवाय अन्य धर्मो के लोग अपने धर्म को सही समझते है। इन धर्मो के रीतिरिवाज एक दूसरे के इतने विरोधी थे कि आपस मे कटुता पैदा हो जाती थी। अकबर वर्षो से इस समस्या पर ईमानदारी से विचार कर रहा था और उसका मत था कि राष्ट्रीय ऐक्य और प्रगति इसके सही हल पर ही निर्भर है।[2]

अकबर के विचारानुसार, इस समस्या का हल एक ऐसा ही धर्म हो सकता था, जिसमें प्रचलित धर्मो की अच्छाइयाँ तो हों, पर किसी की बुराइयाँ न हो। इसमें केवल बाधा यह थी कि लोगो को कैसे स्वीकार कराया जाय। अकबर ने एक सभा का आयोजन किया क्योकि यह किसी पर बल पूर्वक नही थोपना चाहता था।[3] मार्च, १५८२ ई० मे विभिन्न धर्मो के आचार्यो, अपने अमीरों, अधिकारियों और उलेमाओं की एक सभा आयोजित की। यह सम्राट की उपस्थिति में कई दिनो के वाग्विवाद पर सभा बुलाई गई थी।[4] सम्राट् कहता था कि "मैं चाहता हूँ कि सभी धर्मो के लोग अपने धार्मिक कानूनों के ग्रंथ साथ लाएँ तथा विद्वान् आपस मे वाद-विवाद करे ताकि मैं सुन सकूं और प्रत्येक निश्चित कर सके कि कौनसा धर्म सबसे अधिक सत्य और शक्तिमान है।"[5]

विरोधी वक्ताओ ने अपने विरोधियों के धर्मो की बुराइयाँ बताई और इस प्रकार सभी प्रचलित धर्मो की राष्ट्रीय धर्म के रूप मे स्थापना करने की अनुक्तता असंदिग्ध रूप से प्रमाणित हो गई।[6]

अकबर को अपनी योजना प्रकट करने का अब उचित अवसर आ गया था। उसने कुछ दिनो पश्चात् अपने अमीरो और उलेमाओ की सभा को इन शब्दो मे संबोधित किया—'एक सम्राट् द्वारा शासित एक साम्राज्य के

---

१. आइन-ए-अकबरी, ३, पृ० ३९३, १३३, बदायूँनी, २, पृ० २८८।
२. अबुल फजल, २, पृ० ३९५।
३. स्मिथ, पृ० १३४-३५।
४. वही, पृ० १७३।
५. आईने आवरी, १, पृ० १८०-८२। ६. वही, पृ० १८३।

लिये सदस्यों का आपस मे बँटा रहना और एक दूसरे से मत भेद रखना बुरी बात है क्योंकि जितने धर्म थे उतने ही दल।'[1]

इनका विकास धीरे धीरे विभिन्न परिस्थितियो में हुआ था। अकबर के समय मे हिंदुस्तान और यूरोप में बड़ी धार्मिक जागृति हो रही थी। प्रोफेसर सिन्हा ने लिखा है 'सोलहवी शताब्दी संसार के इतिहास मे धार्मिक जागृति का युग है। धार्मिक पुनर्जागरण की विशाल लहरो की तुलना भारतीय नवजागरण के तेज बहाव रूपी नवजीवन मे की जा सकती है। हिंदुस्तान मे एक जैसी जागृति हुई, जिससे उसकी प्रगति को प्रेरणा मिली और राष्ट्रीय जीवन को बल प्राप्त हुआ। इस जागृति का मुख्य स्वर था—प्रेम और उदारता—ऐसा प्रेम जो मनुष्य और ईश्वर को एक करता था और इसलिए मनुष्य को मनुष्य के निकट लाता था और ऐसी उदारता जिसके कारण जाति, संप्रदाय और व्यवसाय के भेद मिट गए थे और जो मानव अस्तित्व और समस्त धर्मो के मूल तत्व पर आश्रित थी अर्थात् विश्व-बंधुत्व। इन महान् उद्देश्यो के द्वारा हिंदू और मुसलमान दोनों को प्रेरणा मिली और वे अपने सम्प्रदायों की हल्की बातो को कुछ समय के लिये भूल गए। हिंदू और मुसलमान दोनो के लिये नये युग का उदय हो गया। मुसलमान समझते थे कि महदी का जन्म होने वाला है और हिंदूओ मे ईश्वर के प्रति सर्वव्यापी भाव उमड़ा पड़ा था।[2]

सम्राट् दीने इलाही का सदस्य उन्ही को बनाता था, जिनपर उसे विश्वास होता था कि वह व्यक्ति पूरी लगन के साथ चाहता है। यह कार्य रविवार के दिन सम्पन्न होता था।[3]

नवीन शिष्य पहले अबुल फजल के पास आकर उसे अपने इरादों की पवित्रता और सच्चाई से सहमत करता था। तब सम्राट् से अबुल फजल उसका परिचय कराता था। सभी प्रकार की सदस्य प्रतिज्ञा करता था, जो नियम था। दीने इलाही के सदस्य अकबर का एक सोने की रत्न-जटित प्रतिमूर्ति को सिल्क के टुकड़े मे लपेट कर अपनी पगड़ी मे भी रखते थे।[4]

---

१. आईने आकबरी, १, पृ० १८७।
२. प्रो० एच० एन० सिन्हा 'जनरल आफ इंडियन हिस्ट्री' (मद्रास, दिसंबर सन् १९२०), पृ० ३०६-२९।
३. बदायूंनी, २, पृ० ३१३।
४. आईने अकबरी, १, पृ० १७४-७५। बदायूनी, २, पृ० २२८-३५६।

तोहीद-ए-इलाही

दीने इलाही का राजकीय नाम तोहीद-ए-इलाही या दैवी एकेश्वरवाद था।[1] इसका मुख्य सिद्धांत एक सर्व प्रमुख परमात्मा मे विश्वास और दूसरा आदर्श वाक्य 'सुलह कुल' था। जिसके अर्थ सबके साथ शाति और सबके लिये सहन-शीलता है। दूसरा कोई मदिर, मस्जिद या कोई उपासना गृह या कोई धर्म ग्रंथ नही था।[2] सदस्यों को दिन मे तीन वार, सूर्योदय, दोपहर और सूर्यास्त होने के समय प्रार्थना करनी पडती थी और संभवतः मुसलमानो की नमाज की तरह कोई एक सी प्रार्थना निश्चित नहीं थी। अकबर उस संगठन का आदर्श और वही इसके पैगंबर के पद पर आसीन था, वही नेता था, उसको पूर्ण मनुष्य माना जाता था और उसे आदमी के रूप मे अपनाया जाता था।[3]

तौहीद-ए-इलाही के दस गुणो का पालन करना पड़ता था।[4]—

(१) उदारता और दानशीलता।

(२) दुष्कर्मियों को क्षमादान और क्रोध का नर्मी से निराकरण करना।

(३) सासारिक इच्छाओ का त्याग।

(४) सासारिक अस्तित्व के वंधनो से मुक्ति पाने और परलोक के लिये पुण्य संचित करने की इच्छा।

(५) अपने कर्मो के फलो पर मनन करना।

(६) अच्छे और सद्भाव कार्य करने की इच्छा।

(७) कोमल-वाणी, भली वात और मधुर भाषण

(८) अपने वंधुओ के साथ सद्व्यवहार और उनकी इच्छा को अपनी इच्छा के ऊपर महत्व देना।

(९) जीवो के पूर्ण विरक्ति और परमात्मा से लगाव।

(१०) परमात्मा के मप्रे मे आत्मा का उत्सर्ग और उसका परमात्मा से सयोग।

---

१. स्मिथ, पृ० १३९।

२ आईने अकवरी, ३, पृ० ३८७-८८।

३. वही, १, पृ० १६३-६४।

४. वही, पृ० १७४-७६।

दीनेइलाही का नियम था कि, अभिवादन का अपना ही तरीका होता था। स्व दीन-ए-इलाही के अनुयायी एक दूसरे से मिलते थे तो वे सलामे अलेक और वालेकुम-इ-सलाम कहकर अभिवादन करने के वजाय 'अल्लाहो अकबर' और 'जल्ले जलाल्हू' कहते थे।[१] ऐसा माना जाता था कि इस प्रकार अभिवादन करने का उद्देश्य मनुष्यो को उनके जीवन की उत्पत्ति पर सोचने और परमात्मा को कृतज्ञ स्मृति मे ताजा एव सजीव रखना था। किसी की मृत्यु के पश्चात उसकी स्मृति में भोज देने के आम-रिवाज के स्थान पर हर सदस्य को अपने जीवन काल मे ही एक सुदर भोज देना पडता था, जिससे कि वह अतिम यात्रा के लिये पुण्य सचय कर सके। हर सदस्य को अपने जन्म दिन पर दावत देनी पड़ती थी और दान-पुण्य करना पडता था।[२] सदस्यो को मास-भक्षण छोड़ने का प्रयत्न करना पडता था और अपने जन्म के महीने मे तो वे इसे विल्कुल ही छू नही सकते थे। वे तरुणावस्था से कम आयु की कन्याओ, गर्भवती और वृद्ध तथा वंध्या स्त्रियों से सहवास नही कर सकते थे।[३]

सदस्यो की वृद्धि मे सम्राट् की तरफ से न कोई प्रलोभन, न कोई दावत दिया जाता था। जिसकी इच्छा होती थी वह स्वेच्छा के साथ इसे स्वीकार करता था न इच्छा होने पर स्वीकार नही भी करता था।[४]

अकबर के दीन-ए-इलाही उद्देश्यो को लेकर बडा मतभेद है। समकालीन और आधुनिक यूरोपीय लेखको ने इसे एक धर्म माना है।[५] इतिहासकार बदायूंनी का भी यही मत है।[६] दरबारी जीवन लेखक अबुल फजल इस बात पर मौन है।[७] लगभग सभी आधुनिक भारतीय लेखको का मत है कि दीन-ए-इलाही एक धर्म नही था और अकबर कभी एक धार्मिक संप्रदाय की स्थापना नही करना चाहता था और यह कहना कठिन है

---

१. स्मिथ, पृ० ३०६, आईने अकबरी, ३ (द्वि० सं०) पृ० ४२६।
२. वही, पृ० ३१०।
३. श्रीराम शर्मा, पृ० १७४।
४. वही, पृ० १७५-७६।
५. आईने अकबरी, १, पृ० १७५-७६।
६. वही, पृ० ४२६।
७. बदायूंनी, २, पृ० ३१३।

कि अकबर का असली उद्देश्य क्या था। अगर उसे इस योजना मे वास्तविक प्रारंभिक सफलता मिलती तो वह क्या करता। पर इसमे संदेह नही कि अकबर का विश्वास था कि औसत हिंदू, मुसलमान और ईसाई संतो से इसकी आध्यात्मिक देन श्रेष्ठ है।[1] उसने स्वयं को धर्म प्रणेता समझ लिया और रोगों तथा बिमारियो को दूर करने का प्रयत्न किया। वह स्वयं को ईश्वरीय पैगंबर के समकक्ष समझता था। संभवतः पहले दीन-ए-इलाही को पूर्ण विकसित राष्ट्र धर्म के रूप मे प्रचलित किए जाने की योजना रही हो लेकिन दीन-ए-इलाही प्रारंभ से ही एक प्रकार का सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक भाई चारे का संगठन बना रहा।[2] इसका कोई धर्म ग्रंथ, कोई निश्चित प्रार्थना, कोई मंदिर या निश्चित उपासना का स्थान या कोई पुजारी वर्ग न था। इसका उद्देश्य केवल ऐसे समझदार और उदार हृदय भारतीयो को समीप लाना था, जो अकबर को अपना राजनीतिक और साथ ही साथ आध्यात्मिक नेता भी मानते थे।[3]

सब धर्मों में निहित सत्य पर विश्वास कर एक साथ, एक स्थान पर एकत्र हो सकते थे। इसमें संदेह है कि दीन-ए-इलाही से किसी उपयोगी राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति हो सकी क्योकि इसकी सदस्यता कुछ सहस्र से आगे नहीं बढ़ी। बीरबल को छोड़कर इसके सब सदस्य मुसलमान ही थे।[4] बदायूंनी कहता है कि अकबर कुछ प्रमुख हिंदुओ को दीन-ए इलाही मे लेने को अधिक उत्सुक था।[5] उन मुसलमानो पर जो इनमे संमिलित थे, होने की सच्ची इच्छा प्रकट करते थे, भौहे चढ़ा लेता था। अकबर की इच्छा पूरी नही हुई क्योकि भगवानदास, टोडरमल, मानसिंह जैसे प्रमुख हिंदुओ ने अस्वीकार कर दिया।[6] फिर भी दीन-ए-इलाही उन शक्तिशाली

१. अकबर दि ग्रेट मुगल (१९१७ का संस्करण), पृ० २१९-२१।
२. वही, पृ० ३१०।
३. वही, (१९१७ का संस्करण), पृ० ३२२।
४. आईने अकबरी, १, पृ० १७२-७३।
५. वही, १, पृ० १७४।
६. अकबरनामा, ३, पृ० २७१-७४।

दलो मे से एक था ही, जिन्होने सम्राट् के चारो ओर महानता और आध्यात्मिक प्रभा मडल खीच कर उसके प्रति दृढ भक्ति को परिपोपित किया। इस संप्रदाय को कभी औपचारिक रूप से समाप्त नही किया गया, पर अकबर की मृत्यु के पश्चात् इसका अस्तित्व ही धीरे धीरे लोप हो गया।[1]

---

1. श्रीराम शर्मा, पृ० १८०-८१।

नवम अध्याय

उद्योग-व्यापार

उद्योग-व्यापार

उद्योग

मध्य कालीन भारत में महत्वपूर्ण उद्योग जैसे—कपड़ा, धातु, पत्थर, चीनी और कागज आदि का विकास हो चुका था। अमीरों की विलासिता संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति बाहर से होती थी। इनके किसी कस्बे या शहर में कारखाने होते थे, जो वस्तुओं की पूर्ति करते थे। कही कही स्वयं जनता का कोई व्यक्ति इनको अपने साहस से संचालित करता था और बहुधा दिल्ली के सुलतान इसे शाही कारखानों के रूप में चलाते थे। वे कारखाने किसी अमीर के नियंत्रण मे रखे जाते थे और शाही आवश्यकता संबधी वस्तुओं का निर्माण कराया जाता था। मुगल काल मे भी शाही कारखाने बादशाहो द्वारा संचालित होते थे। इन कारखानो का विकास सबसे ज्यादा अकबर के समय मे हुआ। उस युग में कारीगरो को राज्य की ओर से निश्चित वेतन मिलता था। अबुल फजल[1] ने अपनी पुस्तक आईन-ए-अकबरी में लिखा है कि—'राज्य की ओर से जो जिस श्रेणी का कर्मचारी होता था, सरकार इसके लिये एक अलग वित्त विभाग खोल रखी थी।'

वस्त्र उद्योग

कपड़ा बुनने का उद्योग भारत का सबसे बडा उद्योग था। इसके अंतर्गत सूती, ऊनी और रेशमी तीनो प्रकार के वस्त्र बुने जाते थे। कपास की पैदावार भारत में बहुत होती थी। ऊन भी भेड़ों के द्वारा पहाडी प्रदेशों से उपलब्ध हो जाता था। ऊन की श्रेष्ठ किस्मे बाहर से मँगाई जाती थीं, जिन्हे केवल अमीर घरानो के व्यक्ति ही प्रयोग करते थे। रेशम का काम बंगाल मे होता था, परतु अधिकाश रेशम बाहर से आयात होता था। कशीदा, सोने के तागे और रंग का काम भी हिंदुस्तान के बड़े शहरों में होता था। कपड़े का उद्योग उन्नति पर था और देश की आवश्यकता को पूर्ण कर देता था। बंगाल और गुजरात से सूती तथा अन्य प्रकार के वस्त्रों का निर्यात होता था।[2]

---

१. अबुल फजल, अकबरनामा, भा० १, (अनु० ब्लाखमैन), पृ० ३७८।
२. अशरफ, लाइफ एंड कंडीशन आफ दि हिंदुस्तान, पृ० ६१।

अमीरों के वस्त्र रेशम, श्रेष्ठ मसलिन, श्रेष्ठ सन, किमखाब और साटन के द्वारा निर्मित होते थे।' जाडे के दिनो मे 'अमीर 'फर' और ऊनी वस्त्र पहनते थे और गरीब सूती और मोटा धुस्सल पहनते थे। श्रेष्ठ कपड़ों का निर्माण अपनी चरम उन्नति पर था। 'अशरफ'[1] के वर्णन से इस बात की पुष्टि हो जाती है। देवगिरि और महादेव नगरी उत्तम वस्त्रों के निर्माण के प्रमुख केंद्र दक्षिण मे थे। उत्तर प्रदेश में मऊ, काशी और आगरा।

दक्षिण में निर्मित श्रेष्ठ कपड़ो मे 'बोरामिया', सलाहिया, शीरीन, कद्दून-ए-रूमी, सिराज और विवाव आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। उत्तर में दिल्ली तथा आगरा कपडे का मुख्य केंद्र था, परंतु इसकी प्रसिद्धि कपड़े के उत्तम बाजार के कारण थी। 'इब्नबतूता' के अनुसार 'मसलिन' के सपूर्ण श्रेष्ठ कपड़े का मूल्य १०० टक से भी अधिक होता था। दिल्ली, आगरा तथा अन्य बड़े शहरो मे कपड़े विशेषकर रेशम और मसलिन का बड़ा माल इकट्ठा होता था।'[2]

सूती एवं रेशमी दोनो प्रकार की साड़ियो का निर्माण यहाँ पर होता था। बंगाल के समान गुजरात भी वस्त्र निर्माण का प्रमुख केंद्र था। खंभात का रेशम उस काल का प्रसिद्ध कपड़ा था। छपे हुए वस्त्रो का निर्माण भी यही पर होता था। इन कपड़ो के अतिरिक्त दरी, कालीन, चटाइयाँ, चादरें इत्यादि का आगरे मे सबसे ज्यादा सख्या मे निर्माण होता था।[3]

मुगलकाल मे कपड़ा बुनने का उद्योग चरमोत्कर्ष पर था। सूती कपड़ा देश की आवश्यकता के लिये संपूर्ण देश मे बनता था। लेकिन आगरा, बनारस, श्रेष्ठ वस्त्रों के निर्माण के प्रमुख केंद्र थे। सुनहरी कपडा (जरी) अयोध्या और खानदेश मे तथा रेशमी वस्त्र, श्रेष्ठ मसलिन विशेष प्रगति पर था। सुदर तथा उच्च कोटि के शालों का निर्माण काश्मीर तथा लाहौर मे होता था। इतिहासकारों के अनुसार एक रुपए मे चार कंबल तक प्राप्त किए जा सकते थे। संभवतः कच्चे माल के अभाव के कारण ऊनीवस्त्र के व्यवसाय ने विशेष प्रगति नही की

---

१. अशरफ, पृ० ६९।

२. इब्नबतूता, रेहाला आफ इब्नबतूता (अनु० मेहदी हुसेन), पृ० २७३ ६.

३. बर्नियर, ट्रेवेल्स, पृ० ६९।

थी। परंतु 'यात्री वर्नियर'[1] के वर्णनों से ज्ञात होता है कि कारीगर कुशल और चतुर होते थे।

सल्तनत युग के समान मुगलकाल में भी बादशाहों के निजी कारखाने थे जो बादशाह के हरम (रनिवास) और निजी आवश्यकताओं की पूर्ति किया करते थे।[2]

ऐसा प्रतीत होता है कि कच्चे माल के अभाव के कारण इस व्यवसाय मे अधिक उन्नति नही हो सकी क्योकि विदेशी यात्रियों इब्नवतूता तथा वर्नियर और व्यापारियो के वर्णनो से विदित होता है कि कारीगर बहुत होशियार थे और वे किसी भी विदेशी डिजाइन से मिलता हुआ सामान तैयार करने मे अत्यंत दक्ष थे।[3] ऊनी कपड़ो के अतिरिक्त गलीचे भी बनते थे। अबुल फजल ने लिखा है कि 'सम्राट् ने गलीचो का अच्छा से अच्छा कारखाना आगरे मे निर्मित किया लेकिन फारस की तुलना में घटिया होते थे।[4] इस कारण बाहर का सामान बराबर आता रहा।

धातु का उद्योग

कपड़े के पश्चात् मध्य युग में दूसरा महत्वपूर्ण उद्योग धातुओ की वस्तुओ के निर्माण का था। यह उद्योग प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध था। भारत मे लोहे इत्यादि की खाने उपलब्ध होने के कारण इसके विकास में सुगमता हुई। अबुल फजल[5] का कथन है कि 'भारतीय विभिन्न धातुओं जैसे—लोहा, पीतल, चाँदी, काँसा तथा अन्य मिश्रित धातुओ के निर्माण एवं प्रयोग मे सिद्धहस्त हैं'। तलवार बनाने का उद्योग प्राचीन काल के समान मध्य युग मे भी उन्नति पर था।

---

१. वर्नियर, ट्रेवेल्स, पृ० ७१। २. अशरफ, पृ० ७३।
पजाव, काश्मीर तथा पहाड़ी क्षेत्रो मे ऊनी कपड़े के व्यवसाय केंद्रित थे। मोटे और खुरदरे कंबल रुपए मे चार मिलते थे। सुदर शाल काश्मीर तथा लाहौर मे बनते थे। अबुल फजल ने लिखा है कि लाहौर मे सम्राट् के एक हजार कारखाने स्थापित किये थे—
अबुल फजल, अकबरनामा, भाग १ (अनु०), पृ० ३८३।

३. अबुल फजल, अकबरनामा, (अनु०), भा० २, पृ० १२३।

४ अशरफ, पृ० १०१।

५. अबुल फजल, अकबरनामा, (अनु०), भा० २, पृ० १२७।

वर्तनों, तलवारों वंदूकों तथा अन्य औजारों के अतिरिक्त जुड़ाई एवं खुदाई का भी उत्तम कार्य मध्य युग में होता था। वर्नियर[1] के अनुसार 'सोने एवं चाँदी के वर्तनों का निर्माण और जड़ाई का काम गुजरात के सुनार करते थे। अपने आक्रमण के पश्चात् इनमे से कुछ को तैमूर अपनी राजधानी समरकंद में ले गया था। अकवर के राज्यकाल में इस उद्योग की अभूतपूर्व उन्नति हुई। अवुल फजल[2] लिखता है कि—'कारीगर ऐसी वस्तुएँ वनाते थे कि उन्हें उस धातु से १० गुना अधिक मूल्य प्राप्त हो जाता था।'

पत्थर और ईटों का उद्योग

देश में वड़ी संख्या मे मजदूर पत्थर, ईंट तथा अन्य सामग्री जो गृह तथा अन्य इमारतों के निर्माण में प्रयुक्त होती थीं, व्यस्त रहते थे। वावर ने अपनी तुज्के वावरी में लिखा है[3]—

'केवल आगरा मे मैं वहाँ की संगतराशों में प्रतिदिन ६८० व्यक्तियों को अपने महलों में काम करने के लिये लगाया था और आगरा, सीकरी, वयाना, धौलपुर, ग्वालियर तथा धौली में मेरी इमारतों पर प्रतिदिन १४६१ संगतराश काम करते थे।'

मुसलमानो के अतिरिक्त हिंदू राजा और महाराजाओं ने भी इन्हे प्रोत्साहन दिया। 'माउंट आवू' का दिलवारा मदिर, चित्तौड़ तथा ग्वालियर की इमारतें इसकी साक्षी है। पत्थर एवं ईंटों के कार्य के अतिरिक्त टाइल्स एवं विभिन्न रंगो का प्रयोग वंगाल के अतिरिक्त अन्य सभी स्थानो मे होता था।[4]

कागज का उद्योग

मुगलकाल में कागज का उद्योग उन्नति पर था। कागज का निर्माण सियालकोट, काश्मीर और गया में तैयार होता था। तथा मानसिंगी कागज का निर्माण होता था, जो लिखने में अत्यंत सुविधा प्रदान करता

---

१. वनियर, ट्रेवेल्स, पृ० १०३।
२. अवुल फजल, अकवरनामा, (अनु०), भा० ३, पृ० ४१३।
३. वावर, तुजुक-ए-वावरी (अनु०), पृ० १५१।
४. यदुनाथ सरकार, मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृ० ५३-५४।

था। सबसे उत्तम श्रेणी के कागज का निर्माण शाहजुदपुर में होता था, जिसका आयात देश के विभिन्न भागों में होता था। अधिकतर कागज चीड़ के पेड द्वारा बनाया जाता था।[1]

चीनी का उद्योग

चीनी का उद्योग, भारत में गन्ने की खेती बहुत होने के कारण बहुत विशाल पैमाने पर होता था। इसका निर्माण आधुनिक युग के समान ही होता था और खाँड की प्रसिद्धि इस युग मे अधिक थी। बगाल में इसका उत्पादन इतना अधिक था कि संपूर्ण देश की समस्त आवश्यकताओं को पूर्ण कर देने के पश्चात् इसका निर्यात बाहर के देशों के लिये होता था। चीनी का प्रयोग संपूर्ण देश मे मिठाइयाँ तथा अन्य मीठे पदार्थ बनाने के लिये होता था। चीनी के अतिरिक्त शहद भी देश मे इकट्ठा किया जाता था, परंतु इसका न तो अधिक प्रयोग और न ही निर्यात होता था।[2]

गुड साफ करके चीनी तथा मिश्री बनाई जाती थी। गुड की अपेक्षा चीनी तथा चीनी की अपेक्षा मिश्री का भाव अधिक था। मिश्री का प्रयोग धनी वर्ग के अतिरिक्त अन्य लोग न कर पाते होगे, क्योंकि अबुल फजल ने लिखा है कि 'अकबर के समय मे मिश्री रुपए मे सिर्फ ५ सेर मिलती थी। अन्य लोग उसे औषधि के रूप मे व्यवहार करते थे।'[3]

चमड़े का उद्योग

बहुत बडी सख्या मे भारतीय चमडे के उद्योग पर निर्भर रहते थे और इनकी अपनी एक जाति थी, जिन्हे 'चमार' के नाम से पुकारा जाता था। चमडे की माँग अधिक सख्या में न होने के कारण सामान्यतः पूर्ण हो जाती

---

१. कमेंटैरियस; पृ० ६८।

२. अशरफ, पृ० ७६।

३. अबुल फजल, अकबर नामा, भा० १ (अनु०), पृ० ३६१।

अशरफ ने लिखा है कि 'बंगाल से चीनी की पार्सलो के निर्यात के लिये भी चमडा प्रयोग मे लाया जाता था।' औसत किसान के पास एक चमडे की मशक पानी भरने के लिये, पैर मे जूते तथा अन्य छोटी छोटी वस्तुएँ जो कृषि प्रयोग मे लाई जाती थी, हुआ करती थी— (अशरफ, पृ० ८१)।

थी। वैसे चमड़े का प्रयोग तलवार की 'म्यान' किताबों की जिल्द और जूते के लिये होता था। श्री पांडेय के अनुसार—'चमड़े का व्यवसाय उन्नत दशा मे नही था। उच्च वर्ग के लोग जूते पहनते थे। जीन प्रायः चमड़े की नही थी, मश्क और कुओं से सिचाई के लिये 'पुर' चमड़े से तैयार किए जाते थे। यह व्यवसाय उन्नत दशा में नही था।'[1]

अफीम

विहार और मालवा मे अफीम तैयार की जाती थी तथा उसका उपयोग औषधियों के लिये किया जाता था और समान्य मादक द्रव्यो के रूप मे होता था। अफीम विदेशो में भी भेजी जाती थी।[2]

नील

वियाना के पास नील का उत्पादन वड़े पैमाने में होता था। अन्य स्थानो मे नील की खेती होती थी। इसका प्रयोग देश के भीतर भी होता था तथा वाहर भेजी जाती थी।

मिट्टी का सामान

कुम्हार और वढई एक आय वाले कुटीर उद्योगो के मालिक थे। इनके सामान की खपत काफी थी। परंतु उनका सामान कला की दृष्टि से वहुत उच्चकोटि का नही होता था। दिल्ली, काशी, चुनार आदि स्थानों में मिट्टी की सुदर वस्तुएँ वनती थी। मिट्टी के खिलौने भी[3] अच्छी कोटि के वनते थे, परंतु उनकी खपत अच्छी नही थी।

मत्स्य पालन

वंगाल, उडीसा और सिंध में मछली वड़ा ही प्रिय खाद्य था। दक्षिणी भारत मे भी इन्हे खाया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि मछलियो की खाद से भी लोग अपरिचित न थे और मछली का तेल भी निकाला जाता था। आईने अकवरी के विवरण से यह स्पष्ट है कि मछलियों की वड़ी मांग थी और नदियो तथा समुद्रो के किनारे मछली पकडने के लिये निश्चित स्थान थे।[4] इससे यह अनुमान होता है कि मछलियां भी राज्य

---

१. अवुल फजल, अकवरनामा, भाग १ (अनु०), पृ० ८३।
२. अवुल फजल, आईन, भा० १ (अनु०) २३२।
३. वर्नियर, ट्रेवेल्स, पृ० १०७।
४. अवुल फजल, आईन, भा० १ (अनु०), पृ० २८५-८६।

की आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत थी। इस संबंध मे यह बात और जोड़ी जा सकती है कि 'मोती' निकालना भी एक आय का साधन था। दरबार में और अमीरों के घरो मे मोतियो की बड़ी माँग रहती थी, क्योकि तब मोतियो और कीमती रत्नो के आभूपण पहनने का फैशन था और लोग उनका सग्रह भी किया करते थे।[१]

कारखाने

अकबर के समय में कारखानों की संख्या १०० से भी अधिक थी। ये एक ही स्थान पर न होकर लाहौर आगरा, फतेहपुर सिकरी में स्थित थे।[२] हर कारखाने में अलग अलग एक विशेष प्रकार की ही वस्तु तैयार की जाती थी, जैसे अलग अलग किस्म और काम के कपडे, शस्त्र, कालीन, ऊनी और सूती वस्त्र, सोने और चाँदी के आभूपण आदि। हर कारखाने के काम की देखभाल के लिये दो विशेष कर्मचारी नियुक्त किए जाते थे। एक तो मुशी और दूसरा मुशरिफ[३]। कुछ कारखानो मे केवल तरह तरह की दूर और पास मार करनेवाली बदूकें और सेना के लिये गोलाबारूद तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ ही बनाई जाती थी। ऐसे ही कुछ अन्य प्रकार के कारखाने सिर्फ पत्थरों को काट छाँट कर उन्हे नये रूप दिया करते थे। इनके सिवाय कुछ ऐसे कारखाने भी थे जिनमें अधिक संमाननीय और कलात्मक काम जैसे चित्राकन, स्वर्ण आभूपण निर्माण कढ़ाई किए वस्त्रो, कालीनो, परदो आदि की छपाई बुनाई और अस्त्रशस्त्रो का निर्माण रहता था।[४]

हर कारखाना एक छोटा नगर या फोर्ट से राज्य जैसा लगता था।[५] और यह एक ऐसे अधिकारी के अतर्गत होता था जो कि उनमे बनाई जाने वाली वस्तु का विशेष ज्ञान रखता था। इन कारखानो मे से प्रत्येक मे मुशी, लिपिक और अन्य कई प्रकार के कर्मचारी होते थे। दीवाने बयुतात इन सारे कारखानो का सर्व प्रमुख अधिकारी होता था और स्वयं सम्राट की निगरानी मे काम करता था। अकबर इनमे से कुछ न कुछ कारखानो का रोज निरीक्षण करता था। अकबर के इन निरीक्षणो के

१. अबुलफजल आईन भा० १, अनु०, पृ० १३४-१३८-१३९।
२. आईन भा० १ (अनु०), पृ० १२-९३। ३. वही, पृ० २७२।
४. कमेटेरियस, पृ० २०१। ५. आईन, भा० १ (अनु०) पृ० १२।

समय उपस्थित एक दर्शक आखों देखा विवरण के अनुसार कहता है—'एक साधारण से कारीगर को काम करते हुए देखने में थकता नहीं था और यहाँ तक कि अपने मनोरंजन के लिये स्वय उसे करने लगता था।' वही दर्शक आगे लिखता है कि 'यहाँ (कारखानों में) अक्सर ही आता है और जो इन कार्यों को करते है उन्हें अपना काम करते हुए देखकर मानसिक शांति का अनुभव करता है'।[1]

बाबर के समय में कारखाने में तोपें तैयार की जाती थीं। बाबर को सबसे अधिक अपने तोपखानों एवं बंदूकों पर विश्वास था। रशब्रुक विलियम्स ने लिखा है कि अगर किसी एक साधन से हिंदुस्तान को जीतने में बाबर को सहायता मिली तो वह साधन उसका तोपखाना था।[2]

एक बार उस्ताद अली कुली ने तोप तैयार कर ली तो बाबर उससे पत्थर चलाने का दृश्य देखने स्वयं पहुँचा।[3] अलीकुली बराबर उन्नत तोपें बनाने का प्रयत्न किया करता था।[4] अन्य तोपो की परीक्षा तथा पत्थर चलाने के दृश्य को देखने के लिये, जब भी बाबर को अवसर मिलता वह पहुँच जाता था।[5]

लकड़ी के कारीगर

बढ़ई साधारण काम भी करते थे और कुछ बारीक काम भी करते थे। खेती के यंत्र, बैलगाड़ी, नाव, चारपाई, संदूक तख्त आदि तथा इमारतों मे काम आने वाली सामग्री वे ही तैयार करते थे। इनमे से अधिकाश वस्तुएँ शादी के काम मे आती थी। शाही कारखाने मे सिर्फ उच्चकोटि के कारीगर रहते थे। काश्मीर, कर्नाटक तथा आगरा मे अलंकारिक काम काफी अच्छा होता था। इस काल मे तटीय व्यापार के लिये नावे तैयार की जाती थी।[6]

लोहार

लोहारो का कार्य अपेक्षाकृत अधिक महत्व का था। क्योंकि वे ही युद्ध सामग्री तैयार करते थे। अबुलफजल[7] ने इसका वर्णन किया है 'तीर,

---

१. कमेटेरियस, पृ० २०१। २. रशब्रुक विलियम्स, पृ० १११।
३. बाबरनामा, (अनु०), पृ० २२६। ४. वही, पृ० २६२।
५. वही पृ० २६६-६७।
६. अबुल फजल, आईन, भा० २ (अनु०), पृ० १७८। ७. वही, पृ० १८२।

तलवार, कटार, वर्छे, भाले, वंदूक, तोप आदि का वनाना उनको आता था, तलवार और कटारें वे वहुत अच्छी वनाते थे। परतु वे तोप और वदूक के वनाने मे दक्ष नही थे। सम्राटो ने अपने कारखानो मे उत्कृष्ट युद्ध सामग्री तैयार करने की समुचित व्यवस्था नही की और वे विदेशो मे अपने सैनिक इजीनियर भेजकर, वहाँ की कला सीखने पर विचार नही किया, परतु सम्राट् अकवर ने इस वात पर जोर दिया। लोहारो का काम सर्वत्र ही पडता था। परतु वडे नगरो मे ही अधिक कुशल कारीगर रहते थे। युसुफ हसन[1] ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि 'उनको वडे नगरो मे रहने का मुख्य कारण था कि उन्हे कार्य करने के लिये आसानी प्राप्त हो जाता था तथा अपनी मजदूरी वे ठीक प्रकार से पाते थे।'

धातुओं का व्यवसाय

कुछ लोग पीतल ताँवे, काँसे, कस्कुट आदि के वर्तन वनाते थे। इसके भी अनेक केंद्र थे। दिल्ली के पास ताँवे के कारीगर थे। काशी मे पीतल के वर्तन वनते थे और वंगाल में काँसे के सुदर वर्तन तैयार किए जाते थे। हिंदुओं के घरो में धातु के वर्तनो का प्रयोग अधिक होता था। छोटी जाति के हिंदुओ और मुसलमानो के यहाँ मिट्टी के वर्तनो का उपयोग अधिक होता था। उच्च वर्गो मे चीनी मिट्टी के कलापूर्ण वर्तन तथा धातु के फैसी वर्तन काम मे आते थे। परंतु चीनी मिट्टी के वर्तन वाहर से मँगाए जाते थे।[2]

शराब तथा ताड़ी

मध्य युग मे मादक वस्तुओ का प्रयोग काफी वढ़ा हुआ था। इसीलिये अनेक लोग शराव तथा ताड़ी तैयार के व्यवसाय मे लगे थे। भारतवर्ष मे उच्चकोटि की शराव नही वनती थी। साधारणतः महुआ और सीरे से शराव वनाई जाती थी। अच्छी शराव वाहर से आयात की जाती थी। ताड़ी का प्रयोग भी काफी किया जाता था।[3]

कुछ अन्य उद्योग

मध्य युगीन भारत के छोटे-छोटे उद्योगो मे प्रमुख उद्योग मूँगे, हाथी के दाँत तथा नकली जवाहरात के निर्माण के थे। मूंगे का काम गुजरात और

---

१. युसुफ, हुसैन, ग्नीम्पसेस आफ मेडवल इंडिया कल्चर, पृ० १३७।
२. युसुफ हसम, पृ० १४१। ३. अशरफ, पृ० १०७।

बंगाल मे होता था। गुजरात के मूँगे श्रेष्ठ होने के कारण भारत के बाहर भी भेजे जाते थे। हाथी दांत की वस्तुओं मे प्रसिद्ध कडे, तलवार की मूँठ, पासे, शतरज की मोहरें, शतरंज आदि थी। नकली जवाहरातों के निर्माण का कार्य भी अधिक उन्नति पर था। अबुल फजल ने लिखा है कि 'नकली चिड़िया, वृक्ष एव फूल इत्यादि बनाए जाते थे'। फूल का उत्तम काम देश के समस्त भागो मे हुआ करता था।[1] युसुफ हसन ने लिखा है कि 'लकडी का प्रयोग घर की विभिन्न आवश्यकताओ मे होता था। दरवाजो, खूँटियो, खिलौनो, पलंग इत्यादि के लिये होता था।[2] काँच का उद्योग फतेहपुर सीकरी, बिहार और बरार में होता था।

मजदूर वर्ग

कारीगरो एवं मजदूरों का कार्य वंशानुगत चलता था। पुत्र अपने पिता के समान उसी के पेशे को सीखकर कार्य करता था। मजदूरो के हितो की रक्षा, इस युग मे नही हो पाई, क्योकि शाही कारखाने के कर्मचारियो एवं मजदूरो को छोड़कर शेष मजदूर व्यक्तिगत कारखानों में काम करने के कारण दुखी थे। अनेक कारीगर ऐसे भी थे, जिन्हे मजदूरी करके ही रोटी कमाना सभव था। इस वर्ग मे, राज, संगतराश, माली आदि आते थे। उनके अतिरिक्त अनेक बढई लोहार, स्वर्णकार आदि भी मजदूरी के आधार पर कार्य करते थे। 'अबुल-फजल'[3] की 'आईन-ए-अकबरी' से कुछ लोगो की मजदूरी मालूम होती है जो निम्न प्रकार से है—

(१) साधारण मजदूर	२ दाम प्रति दिन
(२) कुशल मजदूर	३—४ दाम प्रतिदिन
(३) बढ़ई	३—७ दाम प्रतिदिन
(४) राज	५—७ दाम प्रतिदिन

मासिक वेतन पर रखे जाने वाले नौकर प्रायः तीन रुपया प्रतिमास पर मिल जाते थे। इससे प्रतीत होता है कि उस समय मजदूरी काफी कम

१. अबुल फजल, आईन, भा० १ (अनु०), पृ० ४०३।
२. युसुफ हसन, पृ० १४६।
३. अबुल फजल, आईन, भा० २ (अनु०), पृ० २०५।

थी। परतु साधारण समय मे इस मजदूरी से ही उसका भरण पोषण हो जाता था क्योकि उस समय आवश्यक वस्तुओं के दाम वहुत कम थे।

अशरफ महोदय के अनुसार एक परिवार का (जिसमे एक पुरुष, उसकी स्त्री, एक दास और एक या दो वच्चे होगे) ५ टका प्रति माह पर सुगमता से निर्वाह हो सकता था। इसलिये यह कहना उचित जान पड़ता है कि कृषकों की दशा शोचनीय थी। वैसे इस युग मे मजदूरी कम मिलती थी। इब्नवतूता[1] और वर्नियर[2] के वर्णनों से पता चलता है कि साधारण लोगो की दशा सोचनीय थी लेकिन शायद ये लोग उन लोगो की स्थिति का वर्णन करते हो, जिनका परिवार वड़ा हो और उन्हे वेतन कम प्राप्त होता हो। अमीरो की अपेक्षा इनकी स्थिति काफी दयनीय थी।

इस प्रकार मजदूरी कम प्राप्त होने के कारण प्रायः मजदूर वर्ग काफी दुःखी तथा परेशान रहता था। सिर्फ उन्ही मजदूरो की हालत अच्छी थी जो कि शाही कारखाने मे कार्य करते थे।

आर्थिक जीवन

व्यापार

व्यापार आर्थिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है। सभी युग मे व्यापारी तथा शासक वर्ग ने इसके विकास मे महत्वपूर्ण योगदान दिया है। मध्यकाल मे आतरिक तथा वाह्य दोनो प्रकार का व्यापार उन्नति पर था। देश की आवश्यकताओ को पूर्ण करने के पश्चात् जो सामग्री शेष वचती थी, उसका निर्यात कर दिया जाता था। यातायात और परिवहन की समस्या व्यापारियो तथा सामान ले जाने वाले साधनों के द्वारा पूर्ण हो जाती थी। देश मे व्यापार के लिये सड़के तथा रास्ते थे, जो सरकार द्वारा सुरक्षित रखे जाते थे। सरकार का इन्हे सुरक्षित तथा ठीक दशा मे रखना इसलिये आवश्यक था कि इन सड़कों से युद्ध के समय, उसकी विशाल सेनाएँ गुजरती थी। उस समय 'भाप' के जहाज के अभाव के कारण समुद्री व्यापार खतरनाक था परतु फिर भी व्यापारी तथा विदेशी सौदागर माल को वाहर ले जाते थे।[3]

---

१. इब्नवतूता, रेहाला आफ इब्नवतूता, (अनु० मेहदी हुसैन), पृ० २८१।
२. वर्नियर, ट्रेवेल्स, पृ० १४७।
३. जर्नल आफ यू० पी० हिस्टा० सोसा०, भा० १, पृ० १६९-७०।

प्राचीन काल से चली आ रही व्यापारी परंपरा के अनुसार वैश्य ही इस काल के मुख्य व्यापारी थे। उत्तर भारत मे व्यापार गुजरातियो या मारवाडियो, तथा दक्षिण मे चैतियो के द्वारा होता था। इसके अतिरिक्त राजपूताने के बंजारे अपने बैलो के द्वारा अनाज का व्यापार करते थे। छोटी छोटी वस्तुओ का व्यापार गाँवो मे होता था। कुछ दुकाने चलती फिरती रहती थी, जो कि घोडे की पीठ पर लगाई जाती थी। महत्वपूर्ण व्यापार शहर की मडियो मे होता था।[1]

बड़े पैमाने पर व्यापार कुछ विशेष वर्ग तक ही सीमित था। भारत के महत्वपूर्ण व्यापारी गुजराती और मुलतानी थे। विदेशी मुसलमान व्यापारियो को खुरासानी कहकर पुकारते थे। ये देश के समस्त भागो में अपना व्यापार करते थे। बडे उद्योगों पर दलालो का प्रभाव था। गाँवो में मंडियो तथा शहर मे बाजार व्यापार के केंद्र थे। कपडा, अनाज तथा अन्य खाद्य पदार्थो का व्यापार होता था।[2]

व्यापार में शासकों की अभिरुचि

बाबर तथा हुमायूँ के काल मे इस क्षेत्र मे (व्यापारिक क्षेत्र में) कोई उन्नति नही हो सकी, क्योकि यह दोनो ही सम्राट् की विजय तथा उस विजय को सुरक्षित करने मे ही परेशान रहे। इन्हे किसी प्रकार का कार्य करने का अवसर ही न प्राप्त हो सका।[3]

शेरशाह तथा इस्लाम शाह के राज्यकाल मे मुकद्दम अपने अपने गाँवों की सीमाओ की रक्षा करते थे जिससे कोई चोर या डाकू किसी यात्री को हाँनि न पहुँचाए और उसको मार न दे या नष्ट न कर दे। उसने अपने सूबेदारो और आमिलो को हिदायत दी थी कि प्रजा को इस बात पर विवश किया जाय कि यात्री और व्यापारियो के साथ सब भाँति अच्छा व्यवहार हो और उनको किसी प्रकार की हानि न पहुँचे और यदि किसी यात्री की मार्ग मे ही मृत्यु हो जाय तो अन्याय और अत्याचार न हो तथा उसके माल पर कोई हाथ न डाले और यह न समझे कि वह लावारिस है। क्योकि शेख निजामी (ईश्वर उसपर दया करे) ने कहा है—'तुम्हारे देश में

---

१. श्रीराम शर्मा, पृ० १२६।

२. सरकार, पृ० ७६। ३. स्मिथ, पृ० ४१७।

कोई व्यापारी मर जाय तो उसकी संपत्ति पर हाथ डालना धोखे का काम है।[१]

उसके राज्य भर मे व्यापारिक माल पर दो जगह ही कर लगता था। जब माल वंगाल से आता था तो गढी (सिकड़ी गली) पर और जब यह खुरासान की ओर से आता था तो राज्य की सीमा पर कर लिया जाता था। दूसरा कर विक्री के स्थान पर लिया जाता था। किसी को साहस नही था कि इसके अतिरिक्त मार्ग पर, नाव घाट पर, गाँवो मे या कस्बो मे और कोई कर वसूल कर सके।[२] इसके अतिरिक्त शेरशाह ने अपने राज्य कर्मचारियो को कठोर निर्देश दे रखा था कि जो चीज खरीदी जाय वह वाजार भाव पर ही खरीदी जाय।[३]

शेरशाह तथा इस्लाम शाह के समय में व्यापारिक क्षेत्र मे काफी उन्नति हुई। इन दोनो का व्यापारिक संवंध गाँव से लेकर केंद्र तक, तथा सीमावर्ती देशो तक था। राजा का गवर्नर से, तथा गवर्नर का व्यापारी और व्यापारी का संवंध गांव में रहने वाली जनता से था। यह एक दूसरे से जुडे हुए थे। इतना होते हुए भी व्यापार की अवनति थी। क्योकि डा० कानूनगो ने लिखा है कि—'शेरशाह के समय मे व्यापार एक तरह से मरे हुए के समान था। इसका कारण यह था कि यह सव सपत्ति अपने हाथो में ले रखा था। इसके समय मे जितने भी व्यापारी थे वह सिर्फ वंगाल मे आते थे तथा रहते थे। इन्हे सिर्फ निर्देशन खुराशान से मिलता था। व्यापारी देश की सीमा पर रहते थे तथा माल लेते देते थे। कोई व्यापारी से लेवी नही ली जाती थी। किसी भी सड़क पर जो जाती थी या शहर को जाती थी वे जा सकते थे।[४]

शेरशाह का व्यापार सरकारी रूप से लेन देन का होता था। वह वाजार को स्वीकार करता था, वाजार का भाव एक समान होता था। उसमे किसी भी प्रकार का फर्क नही रहता था।[५]

---

१ श्रीराम शर्मा, पृ० १३२।

२. डा० कानूनगो, शेरशाह, पृ० ३८६।

३. श्रीराम शर्मा, पृ० १३३।

४. डा० कानूनगो, पृ० २८६। ५. वही, पृ० २८६-८७।

इस प्रकार शेरशाह तथा इस्लाम शाह के समय में व्यापारिक उन्नति नही हो सकी क्योंकि इनका क्षेत्र बहुत सीमित था, इस कारण व्यापार उन्नति नही कर सका।[1]

अकबर के समय मे जो राज्य की ओर से व्यापार होता था उससे भी काफी आय होती थी। लगभग १०० सरकारी कारखाने थे।[2]

फिंच ने आगरा से सतगाँव की यात्रा १५८५ ई० के शीत काल में जमुना नदी मे, नमक, अफीम, हीग, सीसा कालीन तथा अन्य विविध प्रकार की सामग्रियो से लदी एक सौ अस्सी नावो के साथ की थी। वह कहता था कि 'सूती कपडे बहुत बडी मात्रा मे बनारस मे तैयार किए जाते थे।' टेरी उल्लेख करता है कि 'अनेक विचित्र प्रकार की पेटियाँ संदूक, कलमदान, कालीन तथा अन्य प्रकार की अत्युत्तम निर्मित सामग्रियाँ मुगल साम्राज्य मे उपलब्ध थी।[3] सामान्य ग्रामीण उद्योग भी निश्चय ही प्रचलित थे, जैसे कि वे सदैव युगो से पल्लवित होते आए।[4]

आगरा मे तथा साम्राज्य के बडे बड़े नगरो मे कारखानो मे वस्तुएँ तैयार की जाती थी। जो कि राजदरबार के काम आती थी। जिन्हे बेच भी दिया जाता था। वे कारखाने अस्त्र शस्त्र और गोला बारूद, कई प्रकार के यंत्र गाडियाँ, हल्की पालकियाँ, जीने, सोने चाँदी के बर्तन,

---

१. श्रीराम शर्मा, पृ० १२७। २. आईन, भा० १, पृ० १४।

अकबर के साम्राज्य मे व्यापार उन्नति पर था। सुविख्यात कश्मीरी दुशालो के निर्माण मे, जो लाहौर मे बडे स्तर पर बनाए जाते थे, बड़ा प्रोत्साहन दिया। कालीन तथा अन्य उत्तम प्रकार के कपडे आगरा और फतेहपुर सिकरी मे बुने जाते थे। अच्छे प्रकार के सूती कपडे गुजरात मे, पटना मे तथा खानदेश मे, बुरहानपुर मे बनाए जाते थे। पूर्वी बंगाल मे ढाका जिला कपड़ो की महीन बुनावट के लिये प्रसिद्ध था, सूती कपड़े जो संपूर्ण भारत मे सर्वोत्तम और सर्वोत्कृष्ट होते थे।

फिच, इंगलैड्स पायोनियर टू इंडिया, पृ० ९४, ११९।

पटना मे कपास, सूती कपडो, शर्करा, अफीम तथा अन्य वस्तुओ का विस्तृत व्यवसाय होता था। बंगाल मे टाँडा भी कपास का व्यस्त व्यावसायिक केंद्र था। वही, पृ० ११९-२०।

३. टेरी, पृ० १११। ४. वही, पृ० ११३।

शाल पगडियाँ और दवाएँ आदि बनाते थे। इन चीजों को राज्य के विभिन्न विभागो मे भेज दिया जाता था और बाजारू दर पर उनके मूल्य निर्धारित कर दिए जाते थे।[1]

कुछ वस्तुओ पर जैसे नमक, हीरे की खानो और ताडी आदि पर केवल राज्य को ही एकाधिकार प्राप्त था। 'देश के उत्तरी पहाड़ो मे सोना प्रचुर मात्रा मे पाया जाता था। गावर मे एक जस्ता की खान थी और राजस्थान मे माडल के निकट तावे की खान थी'।[2] इन वस्तुओ पर राज्य का एकाधिकार होने से क़ाफी आय थी। इसलिये यह सब स्वय देखने वाला व्यक्ति लिखता है कि वह (अकबर) अपना व्यापार भी करता है, और इस प्रकार अपने धन मे कमी नही करता, क्योकि वह लाभ के हर स्रोत का आतुरतापूर्वक उपयोग करता है।'[3]

जो कारखाने सम्राट स्वय निरीक्षण करता था और प्रतिदिन कारीगरों और कलाकारो को उसमे कार्य करते हुए देखता था। कभी कभी परिवर्तन के लिये वह स्वय साधारण मजदूर की तरह काम में जुट जाता था।[4] अकबर ने इन शाही कारखानो की कार्य प्रणाली को व्यवस्थित रूप प्रदान

---

१ आईन, भा० १, पृ० ३८।

२. वही, पृ० ३९।

३. मासरेट, कमेटेरियस, पृ० १०७।

४. वही, पृ० २०१।

साम्रज्य का विदेशी व्यापार जहाँ तक कि आयात का सबंध था, मुख्यतः विलास सामग्रियो मे काफी बड़े स्तर पर था, और उसके विस्तार मे अकबर ने बडी ही रुचि दर्शित की थी। समुद्र पत्तन जैसा कि टेरी ने उल्लेख किया है, अधिक सख्या मे नही थे। (टेरी, पृ० ३९७)।

पश्चिमी तट पर सुरक्षित और व्यस्त, सर्वाधिक महत्वपूर्ण पत्तन था। पूर्वी तट पर हुगली के निकट सतगाँव प्रतीत होता है कि मुख्य व्यावसायिक केंद्र था। (कमेटेरियस, पृ० ५५१)।

फिच कहता है कि 'मुसलमानों के नगरों मे सुंदर नगर है और सभी वस्तुओ से भरा पूरा है। (फित्त, पृ० ११७-११८)।

किया और बराबर रुचि लेकर कई उद्योगों को अधिक उन्नतिशील बनाया। इस काम के लिये वह रोज कुछ समय निकाल ही लेता था।[1]

टेरी लिखता है कि 'सीमा कर अधिक नही थे, समस्त देशो के आगंतुको को वहाँ उसके साथ (अर्थात् महान मुगल) व्यापार करने मे अधिक प्रोत्साहन प्राप्त हो सकता था।[2] किंतु उस समय मान्य वित्तीय सिद्धात के अनुसार व्यापारियों को किसी भी मात्रा मे चाँदी ले जाने के लिये कठोरता पूर्वक वर्जित कर दिया गया था। चाँदी का प्रचुर मात्रा में आयात होता था। जैसा कि हमेशा से होता आया है, और अब भी होता है, और टेरी के समय में अँग्रेजी क्रय का भुगतान उसी धातु मे होता था।[3] इंगलैड के साथ व्यापारिक संबंध अकबर की मृत्यु के पूर्व स्थापित नही हुए थे।[4]

वह पादरी नील और रुई को सर्वप्रधान द्रव्य मानता था, अर्थात् साम्राज्य मे निर्यात के मुख्य पदार्थ थे।[5] अबुल फजल सीमा करों की प्रणाली का विवरण नही देता है। पत्तन करो का एकमात्र स्पष्ट संदर्भ आईन मे एक तालिका मे मिलता है।

अकबर स्वयं व्यापारी था और व्यावसायिक आय अर्जित करने मे उसे हिचक नही थी।[6]

आयात के अतिरिक्त भारतीय वस्तुओं का निर्यात भी समुद्री मार्ग द्वारा हुआ करता था। भारत के खाद्य पदार्थ और सूती कपड़े बाहर

---

१. मासरेट, कमेन्टेरियस, पृ० १०६। २. वही, पृ० ११०।
३. वही, पृ० ११०। ४. वही, पृ० ११२।
५ वही, पृ० १०५।
गुजरात के सोरठ सरकार में दस छोटे पत्तनों से प्राप्त राजस्व का हवाला दिया है, जिसकी तुच्छ संख्या १२५, २२८ महमूदी आती है, जो ६००० पाउंड के तुल्यांक है। (आईन, भा० २, पृ० २५९)। सतगांव सरकार मे बदरबन मांडवी महालों से सकलित अथवा फुटकर राजस्व की संख्या १,२००,००० दाम अथवा ३०,००० रुपए होती थी, जो चुगी अथवा निर्यात कर रहे होगे। (आईन, पृ० ४४१)। 'कर' की अल्पता टेरी के कथन की पुष्टि करती है कि चुगी का दर कम था। (स्मिथ, पृ० ४४४)।
६. कमेटेरियस, पृ० २४६।

भेजे जाते थे। मुगल काल मे भारत का मुख्य निर्यात सूती वस्त्र, विशेषतः छीट, रेशमी वस्त्र, नील, काली मिर्च, अफीम, हीग, चीनी, लाख इत्यादि था। इगलैड आदि विदेशी देशो को व्यापारिक केद्र भारत के विभिन्न स्थानो मे स्थापित हो चुके थे, जिसमे भारत के व्यापार मे और भी अधिक वृद्धि हुई। सोना, चाँदी, कालावत्तू, हाथी दांत, मूंगा, अम्बर, कीमती पत्थर, बनात, इत्र, औषधि आदि और विशेषकर चीनी वर्तन, अफ्रीकी दारू और यूरोपीय शराब आदि निर्यात की मुख्य वस्तुएँ थी। शाही (केंद्रीय) और प्रातीय दरबारो मे अद्भुत और दुर्लभ वस्तुओ की माँग बहुत अधिक रहती थी। काँच के वर्तन विदेशों से, विशेपकर वेनिस से आते थे।[१]

समुद्री मार्ग के अतिरिक्त भू मार्ग द्वारा भी सीमात देशो से व्यापार होता आया है। लेकिन मगोलो के प्रादुर्भाव से इसम अभूतपूर्व प्रगति हुई। ये ऊँट, घोडे, हथियार आदि का व्यापार भारत मे आकर करते थे। इसके अतिरिक्त खुराशानी व्यापारी तुर्की गुलामो और सुस्ली नामक कपडे का व्यापार करते थे। बाबर, हुमायूँ और अकबर के शासन काल मे इसकी चरमोन्नति हुई।[२]

घोडे आयात के प्रमुख वस्तु थे। इसके अतिरिक्त विलासिता संबधित सामग्री और 'फर' तथा 'हथियार' अन्य प्रमुख वस्तुएँ आयात की जाती थी। मुगलो के समय मे घोडो का अधिक संख्या मे आयात होता था। उनका मूल्य भी दिल्ली के घोडो की तुलना मे कम होता था। आयात कर भी लगता था।[३]

इस युग मे उद्योग एवं व्यापार की पर्याप्त उन्नति हुई। किंतु हमारे देश मे धन के वितरण की बहुत विपमता थी। वास्तव मे सपूर्ण व्यापार कुछ लोगो के हाथो मे ही केंद्रित था, इसलिये अधिकाश जनता दरिद्र थी। यातायात के साधनो की कठिनाई के कारण देश के विभिन्न भागो में वस्तुओ के मूल्य एक से नही थे। साधारण समय मे वस्तुएँ सस्ती रहती थी, परतु दुर्भिक्ष के कठिन समय मे उनका मूल्य बढ़ जाया करता था।[४]

---

१. सरकार, पृ० ८०-८१। २. श्री राम शर्मा, पृ० १३४।

३. मासरेट मंगोलिक लेगागानिस कमेटेरियस (अनु० एस० एन० बनर्जी एव जे० एस० हायलेड), पृ० १०७।

४. सरकार, पृ० ८०-८१।

चुगियाँ राज्य की आय का एक बहुत ही महत्वपूर्ण स्रोत थी। विदेशो से आने वाले और विदेशो को भेजे जानेवाले माल पर बदरगाहों और सीमातो पर चुगियाँ लगा करती थी। साम्राज्य के अन्य प्रवेशीय स्थानो पर चुगियाँ देनी पडती थी। इसी प्रकार साम्राज्य की विभिन्न सीमाओ पर कई चुगी केद्र थे। सामान्यत. चुगी की दर बढ कर साढे चार प्रतिशत तक हो जाती थी।[1]

देश के भीतरी भाग मे माल को ले जाने और लाने मे कर वसूल किया जाता था। इस कर को राहदरी कहते थे। यद्यपि अकबर ने इस कर को वर्जित कर दिया, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि यह कर बराबर वसूल किया जाता रहा। चुगी कर स्थानीय भी होते थे और नगरो मे माल लाने पर लगते थे। यह कर कई प्रकार की वस्तुओं से वसूल किया जाता था। इसके सिवाय बाजार मे माल की बिक्री पर, बिक्री कर अलग देना पड़ता था। इसमे से कुछ करो की आय का सही अनुमान तक करना सभव नही है, लेकिन फिर भी इतना तो माना ही जा सकता है कि इससे लाखो की आय होती होगी।[2]

कुछ मुख्य मार्गो को छोड़कर, सडके अच्छी नही थी, और छोटी नदियो पर भी स्थायी पुल अत्यल्प थे। जिस कारण से व्यापारिक सुविधा ठीक नही थी। व्यापारियो को माल ले जाने और ले आने मे असुविधा हो जाती थी।[3]

---

१. आईन, भाग १ (अनु० ब्लाखमैन), पृ० ३९।

२. स्मिथ, पृ० ४४६।

३. ई० और डा०, भा० ६, पृ० १८८।

दसम अध्याय

शिक्षा एवं साहित्य

शिक्षा एवं साहित्य

शासकों की व्यक्तिगत अभिरुचि

इस काल मे शिक्षा की भी पर्याप्त उन्नति हुई। मुगलकालीन शासक शिक्षा एव विद्या प्रेमी होने के कारण इस ओर विशेष ध्यान देते थे। सभी सम्राटो ने इसके प्रसार के लिये आवश्यक प्रयत्न किए।

बाबर फारसी, अरबी तथा तुर्की का प्रकाड विद्वान् था। इसकी शिक्षा के संबध मे ऐसा कोई तथ्य नही मिलता जिससे यह जाना जा सके कि इसने शिक्षा कहाँ से पाई थी। परतु इसकी प्राप्त कथा (तुज्के बाबरी) मे किए गए उल्लेखो से ऐसा ज्ञात होता है कि उसके प्रारभिक जीवन मे दो व्यक्तियो का उस पर गहरा प्रभाव पडा और वे थे—उसके शिक्षक शेख मजीद और उसकी नानी इसान दौलत बेगम।[1] अपने शिक्षक से उसने फारसी, अरबी, तुर्की और कविता सीखी थी। इसने नानी से राज्य प्रबध की शिक्षा ग्रहण की थी।

बाबर स्वयं विद्वान् था और विद्वानो का आदर भी करता था। बाबर तुर्की मे कविता करता था।

बाबर ने अपनी आत्मकथा 'तुज्के बाबरी' तथा छंद विद्या पर एक पुस्तक 'मुफस्सल' की रचना की। हँसमुख प्रकृति का होने के कारण वह सदैव गोष्ठियो मे विद्वानो के साथ दिखलाई पडता था। उसकी आत्मकथा मे एक नौका विहार' का वर्णन है, जिसमे उसने अन्य विद्वानो के साथ बैठकर, कविताएँ, की थी।[2] पंजाब के अमीर गाजी खाँ के पास बहुमूल्य पुस्तकालय था। बाबर ने उस पर अधिकार करके सन् १५२५ ई० मे उसकी पुस्तके अपने पुत्रो हुमायूँ और कामरान को भेज दी। बाबर के एक मंत्री सैय्यद मकबर अली ने उस काल मे अनेक मकतबो (स्कूलो) और मदरसो (कालेजो) का निर्माण कराया। उस काल के प्रसिद्ध विद्वानो में 'वाकयात-ए-बाबरी' के लेखक शेख जैन खफी, मौलाना बकी और मौलाना

---

१. बाबर, तुज्के-ए-बाबरी (अनु० बेवरिज, पृ० ४३७-३८।

२. वही, पृ० ४३९।

शाहबुद्दीन आदि के नाम उल्लेखनीय है।[1] इस प्रकार बाबर ने शिक्षा के क्षेत्र मे काफी प्रसार किया।

हुमायूँ विद्वान् था। वह अरबी, फारसी तथा तुर्की भाषा मे बातचीत कर सकता था। मुगल सम्राटो की मातृभाषा चगताई तुर्की थी, किंतु अपना देश त्यागने के पश्चात् उन्होने धीरे धीरे यह भाषा त्याग कर फारसी भाषा अपना ली। उस समय फारसी दक्षिण पश्चिम एशिया के प्रदेशो मे सभ्य लोगो की भाषा समझी जाती थी। सल्तनत काल मे राजसी भाषा फारसी थी। मुगलो को यह वसीयत के रूप मे प्राप्त हुई थी। इस तरह फारसी भाषा मुगल अमीरो तथा दरबार की मुख्य भाषा बन गई थी। फिर भी मुगलों ने इस समय तक अपनी मातृभाषा त्यागा नही था। अवसर मिलने पर वे तुर्की भाषा में बातचीत करते थे। विशेषतया जब वे चाहते थे कि कोई अन्य उनकी बात न समझे तो, वे तुर्की भाषा मे बोलते थे। हुमायूँ भी ऐसे अवसरो पर इस भाषा का प्रयोग करता था। सन् १५४८ मे जब कराचा खाँ समर्पण करने के लिये गले मे तलवार बाँध कर उसके सामने उपस्थित किया गया तो हुमायूँ ने तुर्की भाषा मे कहा कि 'सैनिक अपने जीवन काल में इस प्रकार की भूले करते ही रहते हैं' तथा उसे क्षमा करने का आदेश दिया।[2] इसी तरह कामरान के समर्पण करने पर (२२ अगस्त १५४८) जब वह दरबार मे उपस्थित किया गया तो वह सम्राट् से हट कर बैठा। हुमायूँ ने तुर्की भाषा मे कहा 'और निकट बैठो'[3]। इस तरह हुमायूँ तुर्की भाषा के ज्ञान का सदुपयोग अन्य अवसरो पर भी करता था।[4]

हुमायूँ अरबी भाषा भी जानता था। जौहर तथा नफायसुल मआसिर के लेखक अलाउद्दौला बिन याह्या कजवीनी उसके कुरान पढ़ने तथा स्मृति

१. शेखजेन खफी, वाकयात-ए-बाबरी (अनु०), पृ० ६१।

२. अकबर नामा, भाग १, पृ० २८०।

३. वही, पृ० २८१।

४. गनी-ए हिस्ट्री आफ पर्सियन लैंगवेज ऐंड लिटरेचर सेट दि मुगल कोर्ट, भाग २, हुमायूँ, पृ० ७-९।

से कुरान के वाक्यों का भिन्न भिन्न अवसरो पर उद्धरण करने का उल्लेख करते है।[1]

हुमायूँ को फारसी भापा का वहुत ज्ञान था। वह इस भापा मे सरलता से वातचीत करता था। ईरान में उसको इस ज्ञान से वडी सुविधा हुई। वह फारसी मे भी कविता लिखता था। अवुल फजल लिखता है कि उसे कविता एव कवियो से रुचि थी। उसमे कविता करने की वडी योग्यता थी। समय समय पर वह आध्यात्मिक तथा सासारिक विपयो पर कविता किया करता था। उसका दीवान अकवर के पुस्तकालय मे था।[2] जो अव प्राप्त है। इसके अतिरिक्त उसकी कुछ कविताओ को अवुल फजल तथा अन्य लेखको ने अपनी पुस्तको मे उद्धृत किया है। इन कविताओं मे प्रमेय का रहस्यवाद की कविताएँ भी है। इसकी कविताएँ स्पष्ट, सक्षिप्त तथा सुगठित है। उसकी कविताओ मे गजले, रुवाइयाँ सवसे अच्छी समझी जाती है।[3] उसमे अन्य कवियो की कविताओं को सुधारने की योग्यता थी। वदायूँनी ने इस तरह के उदाहरण दिए है[4]। जिससे उसकी योग्यता तथा वुद्धिमत्ता का पता चलता है। कुछ कविताओं मे उसने अपना उपनाम 'हुमायूँ' दिया है। हुमायूँ की लगभग सभी रचनाएँ फारसी भापा मे है। उसके कुछ पत्र तथा केवल एक कविता तुर्की भापा मे वताई जाती है।[5]

हुमायूँ केवल कवि ही नही वरन कवियो तथा विद्वानो का पोपक तथा आश्रयदाता भी था। उसकी रुचि तथा प्रोत्साहन से प्रभावित होकर ईरान, तुर्किस्तान, वुखारा तथा समरकंद के कवि अपना देश छोडकर उसके दरवार की शोभा वढाते थे। वुखारा के जाही यजमान तथा मावराउन्नहर के

---

१. अकवरनामा, भाग १, पृ० ३६८, हादी हसन 'दि यूनिक दीवान आफ हुमायूँ, जनरल विहार एड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, १९३९, पृ० ७१, ईश्वरी प्रसाद, हुमायूँ, पृ० ३७१, टिप्प० २।

२. गनी. हिस्ट्री आफ पर्सियन लैंगवेज़, भाग २, पृ० १०-२३।

३. मुंतखवुतवारीख, भाग १, पृ० ४७८-७१।

४. गनी, हिस्ट्री आफ पर्सियन लैंगवेज, पृ० ६।

५. वही, पृ० १४९-५०।

हैराती काबुल मे ही उसके दरबार मे आ गए थे। मौलाना अब्दुल बाकी सद्र तुर्किस्तानी, मीर अबुल हई बुखारी, ख्वाजा हिजरी जामी, मौलाना बज्मी, मुल्ला मुहम्मद सालीह तथा मुल्ला जान मुहम्मद उसके दूसरे भारतीय अभियान मे उसके साथ आए। मीर अबुल लतीफ कजवीनी, मौलाना इलियास, मौलाना अब्दुल कासिम अस्तारबादी, ख्वाजा अयूब, शेख अबुल वाहिद फारिगी शिराजी तथा शौकी तबरीजी ईरान के सफवी दरबार तथा वहाँ के नगरो मे आए थे।[1]

सीदी अली रेईस हुमायूँ के कविता प्रेम की प्रसंशा करता है। वह लिखता है कि हुमायूँ शाही तीरदाज खुशहाल भी इन कवि गोष्ठियो में भाग लेता था।[2] शेख अमानउल्ला पानीपती हुमायूँ का प्रमुख कवि था। वह सूफी तथा धर्मशास्त्री भी था। इसने हुमायूँ की प्रसशा मे अनेक कसीदो की रचना की। उसकी कविताएँ मधुरता, दर्द तथा सरलता के लिये प्रसिद्ध थी। मौलाना कासिम शाही विद्वान् तथा कवि था। हुमायूँ की प्रसशा मे उसने कसीदे, मसनवी तथा गजलो की रचना की। वह कामरान के साथ हज्ज को भी गया था। वहाँ से वह पुनः लौट आया। हुमायूँ तथा कामरान की मृत्यु पर उसने बड़े ही सुंदर तिथिपत्रों की रचना की। मौलाना जुनूनी बदख्शाँ का प्रसिद्ध कवि था। हुमायूँ की बदख्शाँ विजय के पश्चात् उसने उसकी सेवा स्वीकार की। शेख जैनुद्दीन खाफी 'वफाई' के उपनाम से कविता करता था। यह बाबर का सद्र रह चुका था। इसने आगरे में यमुना के पार तक मस्जिद तथा एक मदरसा बनवाया था। यह आशु कवि था। इसकी मृत्यु १५३३-३४ मे चुनार के निकट हुई और वह अपने ही बनवाए हुए मदरसे मे दफनाया गया। अन्य प्रमुख कवियों मे ख्वाजा अयूब, शाह ताहिर हैदर बुनियाई, जाही यतमान तथा मौलाना नादिरी समरकंदी प्रमुख हैं।[3]

---

१. गनी, हिस्ट्री आफ पर्सियन लैंगवेज, पृ० १४६-५०।

२. वंबे, दि ट्रैवेल एंड एडवेंचर्स आफ दि टरकिस एडमिरल सीदी अली रेइस, पृ० ४६-५३।

३. गनी, भाग २ पृ० ५५-६२ तथा १४६-६०, बायजीद, पृ० १७६-८७, मुंतखबुतवारीख, भाग १, पृ० ४६६-६२, ला, प्रोमोशन आफ लर्निंग, पृ० १३४।

साहित्य के अतिरिक्त हुमायूँ को गणित, नक्षत्र, ज्योतिषशास्त्र तथा इतिहास का भी ज्ञान था। ज्योतिष तथा नक्षत्र शास्त्र मे तो वह दक्ष था। उसके आविष्कार, जो ज्योतिष तथा नक्षत्र शास्त्रो से प्रभावित थे। अबुल फजल लिखता है कि हुमायूँ एक वेधशाला का निर्माण करना चाहता था। इसके लिये उसने बहुत से यत्रो की व्यवस्था भी कर ली थी तथा कई स्थानो को वेधशाला के लिये चुना भी था।[1]

ताजे इज्जत, बिसाते निशात, विभागो का विभाजन वाणो के बारह वर्ग, प्रत्येक दिन के लिये विशेष वस्त्रो का निर्माण इत्यादि नक्षत्रो से बचने के लिये ही थे। फरिश्ता लिखता है कि हुमायूँ ने एक ऐसा ग्लोब तैयार कराया था, जिसपर पचभूत एव आकाश का वर्गीकरण अकित था तथा उन्हे भिन्न भिन्न रगो मे रंगा गया था।[2] उसके दरबार मे नक्षत्र शास्त्र के भी कई विद्वान् थे। इन विद्वानो मे शाह ताहिर दक्खिनी, मौलाना इलियास उल्लेखनीय है। मौलाना इलियास ने हुमायूँ को नक्षत्र शास्त्र की शिक्षा दी थी। वह अपने विषय का ज्ञाता था तथा वेधशाला स्थापित करने का भी विशेषज्ञ था।[3]

कवियों तथा नक्षत्र शास्त्रियो के अतिरिक्त अन्य विषयो के विद्वान् भी उसके दरबार की शोभा बढाते थे। मीर अब्दुल लतीफ कजवीनी, जिसे काबुल मे अकबर का शिक्षक नियुक्त किया गया था, बहुत ही उच्चकोटि का विद्वान् था। अपने पिता राजी दह्या की भाँति वह भी उच्चकोटि का इतिहासकार था, हुमायूँ ने इसे भारत आने के लिये निमत्रित किया, किंतु वह सम्राट् की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली पहुँचा। इतिहासकार बायजीद, जौहर तथा रव्लंदमीर उसके दरबार की शोभा बढाते थे।[4] मौलाना मुहम्मद ने 'जवाहिरुल उलूम' (विज्ञान का मणि) की रचना फारसी भाषा मे इसी समय मे की। इसमें इतिहास नक्षत्र शास्त्र, गणित, वैद्यक शास्त्र, दर्शन शास्त्र, न्याय शास्त्र इत्यादि १२० विषयो पर चर्चा है। यह हुमायूँ के समय का सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ है। उस युग मे इस तरह के विश्वकोष (इनसाइक्लोपीडिया) की रचना करना बडे साहस का काम था।[5]

---

१. अकबर नामा, भाग १ (अनु०), पृ० ३६८।
२. फिरिश्ता, ब्रिग्स, भाग २, पृ० ७१। ३. गनी, भाग २, पृ० ५३।
४. वही, पृ० ५४। ५. वही, पृ० ७८-१००।

विद्या को प्रोत्साहन देने के लिये उसने बृहस्पतिवार और शनिवार दो दिन निश्चित किया था। इन्ही दो दिन वह विद्वानो से भेंट करता था। विद्वान् उसे 'शनि' और 'जुपीटर' को महल के अन्दर ही मिल सकते थे। 'लुब्ऊल तवारीख' के लेखक 'मीर अब्दुल लतीफ' को उसने दरबार मे आने का निमंत्रण दिया परंतु लेखक उसकी मृत्यु के पश्चात् दरबार मे पहुँचा।[1] प्रसिद्ध फारसी इतिहासकार खोदमीर उसका मित्र था, जो गुजरात में बादशाह के कैंप मे मरा। जौहर ने 'तजकिरातुल वाक्यात' इसी काल मे लिखा। यह बादशाह का नौकर था, जो हुक्का भरा करता था।[2]

हुमायूँ को पुस्तकों के साथ विशेष लगाव था और अपने अभियानो में भी, वह अपने साथ पुस्तकालय भी ले जाया करता था। जब वह भारत से भागा, उस समय भी वह अपनी चुनी हुई पुस्तकें फारस ले गया। दिल्ली मे उसकी मृत्यु पुस्तकालय की सीढियों से गिर कर हुई। हुमायूँ ने दिल्ली मे एक मदरसे की स्थापना की जिसका एक अध्यापक शेख हुसैन था। शेख जैनुद्दीन खाँफी की स्मृति में एक मदरसा यमुना के दूसरी ओर आगरे मे हुमायूँ द्वारा बनवाया गया।[3] यह दो मदरसे मुगल शासक द्वारा बनवाए गए।

हुमायूँ को पुस्तको से भी प्रेम था। अबुल फजल लिखता है कि ये उसके आध्यात्मिक साथी थे। अभियान तथा यात्राओं मे भी पुस्तकालय उसके साथ रहता था।[4] मिराते सिकंदरी का लेखक लिखता है कि पुस्तके बराबर हुमायूँ के साथ रहती थी तथा लेखक के पिता को व उसकी सेवा मे उपस्थित रहकर सदा पुस्तके पढना पड़ता था। सन् १५४८ मे 'तालिकान' के युद्ध के पश्चात् जब उसे अपनी सेना की पराजय की सूचना

---

१ मीर अब्दुल लतीफ, लुब्ऊल-ए-तवारिख (अनु०), पृ० २१३।

२ फिरिश्ता, भाग २, पृ० ७३।

३. गुल बदन बेगम, हुँमायूनामा (अनु० बेवरिज), पृ० ५१।

४ अकबरनामा, भाग १, पृ० १३६, काउंटस आफ नोअर दि एंपरर अकबर (अ० अनु०), पृ० १३६, जहाँगीर अपनी आत्मकथा मे (रोज से द्वारा—अं० अनु०, पृ० १७) हुमायूँ के लाइब्रेरियन निजाम का उल्लेख करता है। इसका पुत्र जहाँगीर द्वारा सपादित हुआ। ला, प्रोमोशन आफ लर्निंग, पृ० १३२, सूफी, अलमिनहाज, पृ० ५१।

मिली तो उसने पूछा कि उसकी पुस्तकों का क्या हुआ। यह जानकर कि वे सुरक्षित है, उसे प्रसन्नता तथा सतोष हुआ।[1] कुछ दिन बाद जब 'किवचाक' के युद्ध मे खोई हुई पुस्तकों के बक्स प्राप्त हुए, तो उसकी प्रसन्नता की सीमा नहीं थी।[2] दिल्ली पर पुन अधिकार करने के पश्चात् उसने शेरशाह के विनोद-गृह, शेरमण्डल, को पुस्तकालय मे परिवर्तित कर दिया, जहाँ से गिरकर उसकी मृत्यु हुई।[3]

हुमायूँ हमेशा परेशानियो मे फँसा रहा, लेकिन फिर समय निकाल करके, वह पढाई का कार्य किया करता था। हुमायूँ स्वयं कविता किया करता था तथा कवियो तथा लेखको का बडा ही समान करता था। हुमायूँ के अभियान या यात्राओ मे भी पुस्तकालय उसके साथ रहता था। इसके प्रोत्साहन से शिक्षा की भी उन्नति हुई। उसने दिल्ली मे एक मदरसा भी स्थापित किया। इस मदरसे का मुख्य अधिकारी शेख हुसेन थे। इसके अतिरिक्त लोगो ने व्यक्तिगत मदरसे भी खोले थे।[4]

शिक्षा मुस्लिम समय मे इस्लाम से परिपूर्ण थी, तथा मकतब से सबधित थी। मस्जिद और इमाम मे होती थी। मुख्य जलसा इमाम मे होता था, पढे-लिखे लोग उपस्थित होते, जो फारसी भाषा के ज्ञाता होते थे। यह पद्धति धीरे-धीरे समाप्त होने लगी और १६वी शती तक उत्तर प्रदेश मे भी समाप्त हो गई।[5]

हुमायूँ के प्रोत्साहन से शिक्षा की भी उन्नति हुई। उसने दिल्ली मे एक मदरसा भी स्थापित किया। इस मदरसे का मुख्य शिक्षक शेख हुसेन था।[6]

शेरशाह अपने समय मे सिर्फ मुस्लिम शिक्षा पद्धति को पसद करता था तथा इसी को उसने प्रश्रय भी दिया। सर्व प्रथम उसने मदरसा का प्रसार किया। मदरसा मे उसने केवल इस्लाम संबधी पढाई का बदोबस्त कराया। प्रत्येक गाँव मे खुले रूप से मुल्ला रहते थे तथा मदरसे मे बच्चो को धर्म

---

१. जौहर, स्टीवर्ट, पृ० १३२।
२ अकबरनामा, भाग १, (अनु०), पृ० ३०५।
३. गुलबदन बेगम, हुमायूँनामा पृ० ५४।
४. गुलबदन बेगम, हुमायूँनामा (अनु० बेवरिज), पृ० ५५।
५. आर्च, सूर रिपोर्ट, १३, पृ० १३।
६. ला, प्रोमोशन आफ लर्निंग, पृ० १३४।

सबंधी उपदेश पढाते लिखाते थे।[1] सर्व प्रथम उसने जौनपुर[2] मे मदरसे के मातहत जागीर दी, जिससे इस्लामिक शिक्षा के प्रसार के लिये रास्ता खुला।

कोई भी प्रमाण उपलब्ध नही है, जिससे कि यह अनुमान लगाया जाय कि शेरशाह के समय मे शिक्षा पद्धति का वातावरण अच्छा था, तथा ठीक प्रकार से मदरसो मे पढाई की जाती थी।[3] शेरशाह के समय मे शिक्षा पद्धति जो थी, वह बिल्कुल पुरानी थी, इसने किसी प्रकार का परिवर्तन नही किया। इसके समय में 'थीओलाजी' जानने वाले इस पद्धति के वही सब कुछ थे, उन्ही के अनुसार सब कार्य होता था। सम्राट इस्लामिक विचार का था, इस कारण हर प्रकार से इन्ही लोगो की करता था।[4] यही पद्धति इस्लाम शाह के समय में भी चलती रही। इस्लाम शाह पर्शियन भाषा को अपनी कानून भाषा बनाया तथा यहीं कचहरी के कार्य में प्रयोग की जाती थी।[5]

शेरशाह के समय मे जायसी, सूरदास तथा मदन कवि थे, ये लोग हिंदी मे कविता करते थे तथा हिंदी भाषा को इन लोगों ने प्राथमिकता दी। ये कवि जिसमे जायसी ने पद्मावत शेरशाह के आदेश पर लिखा और शेरशाह की प्रशंसा उसने इस काव्य में की और इसमे सम्राट् के प्रति कृतज्ञता का भाव प्रदर्शित किया।[6]

जो सरकारी शिक्षा स्कूल नही थे, उसमे किसी प्रकार का आनंद नही लेते थे, सूरवंश के शासक द्वारा हिंदुओ के प्रति किसी प्रकार की उदारता नही बर्ती जाती थी। शिक्षा पद्धति का नियम स्वतत्र तथा मदरसे और स्कूल जनता की तरफ से होते थे। सरकार से कुछ सहायता दी जाती थी।[7]

---

१. अब्बास, तारीख-ए-शेरशाही, (अनु), पृ० १२।

२. वही, पृ० १४।

३. अब्बास, तारीख-ए-शेरशाही, पृ० १७।

४. वही, पृ० २०६, इलिएट, भा० ४, पृ० ५४६, ओरियंटल कालेज मैगजीन, १९३३, पृ० ११५-२८।

५. बदायूँना, मुतखब-उत-तवारीख (अनु०), भाग १, पृ० ४१५-१६।

६. मलिक मुहम्मद जायसी, पद्मावत, १, पृ० ८-१२ (हिंदी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, १९२८)।

७. अबुल फजल, आईन, भाग १, (अनु०), ब्लाखमैन, पृ० ३१७।

शेरशाह सूरवंश का महान् शासक था, जो कुछ शिक्षा का प्रसार हुआ, इस वंश मे इसी के समय मे, इसके बाप तो केवल अनुकरण करने वाले ही थे। इसने अपने दरबार मे विद्वानो तथा कवियो को प्रश्रय दिया तथा हर सभव सुविधा देने का प्रयास किया, लेकिन जो कुछ भी इसने शिक्षा क्षेत्र मे किया, वह सब इस्लामिक कानून कायदे से परिपूर्ण था।

उस समय शिक्षा का केंद्र तो बहुत जगह था जैसे—जौनपुर,[1] लेकिन सस्कृत् का मुख्य केद्र बनारस था तथा सस्कृत् के विद्वान् बनारस मे रहते थे और अपनी पाठशालाएँ चलाते थे और अपने विद्यार्थियो को शिक्षा देते थे।[2]

इस्लाम शाह ने शिक्षा के क्षेत्र मे किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नही किया, सिर्फ शेरशाह के पदचिह्नो का अनुकरण किया। इस वंश का साम्राज्य बहुत कम समय तक रहा। इस कारण कुछ कर सकना भी मुश्किल था तथा इस तरफ ज्यादा झुकाव भी इस वंश का नही था।

शिक्षा के क्षेत्र में नवीन प्रयास

एक कुशल सेना नायक तथा राजनीतिज्ञ होने के साथ साथ अकबर ने शिक्षा को सबसे अधिक प्रोत्साहन दिया। यद्यपि वह स्वयं अशिक्षित था, तथापि उसने इसके प्रसार के लिये पर्याप्त प्रयत्न किए। उसके पुत्र जहाँगीर ने अपनी आत्मकथा 'तुजुक-ए-जहाँगीरी' में लिखा है कि 'मेरे पिता सिर्फ सेना नायक तथा राजनीतिज्ञ ही नही थे, बल्कि वह दूर दूर के विद्वानो को सरक्षण प्रदान करते थे'।[3]

अकबर मध्य युगीन भारत का प्रथम शासक था, जिसने शिक्षण पद्धति और पाठ्यक्रम मे सुधार की आवश्यकता को समझा। उसे इस्लामी शिक्षण सस्थाओ का एक सा पन नही आया। मदरसो मे जो विषय पढाए जाते थे उनसे छात्रो मे उदार मनोवृत्ति और दृष्टिकोण विकसित नही हो पाता था, जिसकी भारत जैसे हिंदू प्रधान देश के नागरिको को अतीव आवश्यकता थी। अत. अकबर ने पाठ्यक्रम को सुधारने की सोची और यह निश्चित किया कि 'हर लड़के को नैतिक शिक्षा, गणित, गणित के विशेष कायदे,

१. अब्बास, तवारीख-ए-शेरशाही (अनु०), पृ० १२।
२. आर्च, सूर रिपोर्ट, १३, पृ० १३-१४।
३. जहाँगीर तुजुक-ए-जहाँगीरी, भाग १ (अनु०, आर० बी०), पृ० ६१।

कृषि, ज्यामिति रेखागणित, शरीर विज्ञान, गृह विज्ञान, राजनीति शास्त्र, औषधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, तव्वी (भौतिक विज्ञान), रियाजी (भाषा-विज्ञान), इलाही (धर्मशास्त्र), अन्य विज्ञान और इतिहास पर पुस्तके पढ़नी चाहिए और इन सबका ज्ञान धीरे धीरे प्राप्त कर लेना चाहिए।'[१] अकबर ने निर्देश दिए कि सस्कृत पाठशालाओ के विद्यार्थियो को व्याकरण, न्याय, वेदात और पतंजलि का भाष्य पढ़ना चाहिए। उसने इसपर विशेष जोर दिया कि 'किसी को भी इन बातो (विषयो) को, जिनकी इस समय आवश्यकता है, उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।'[२]

यह वास्तव मे इन मदरसो के पाठ्यक्रम मे एक क्रातिकारी परिवर्तन ही था, जो अकबर के समय के पहले से केवल मुस्लिम धर्मशास्त्र और पाठ्यक्रम विषयो को, तो पढाते चले आ रहे थे, पर भारत से सबंधित विषयो की अवहेलना करते रहे थे। अकबर ने हिंदी, भारतीय इतिहास और हिंदी दर्शन के पढाए जाने पर विशेष जोर दिया। वह अपने इन सभी निर्देशो को गंभीरता से पालन कराने को उत्सुक था, जैसा इस बात से पता चलता है कि उसने स्वयं अपने पुत्रों को इन विषयो के पढाए जाने की व्यवस्था की थी। उदाहरण के लिये, अकबर का सबसे छोटा पुत्र 'दानियाल' हिंदी का विद्वान् था और हिंदी मे कविता करता था।[३] इसके पौत्र शाहजादा खुसरो को शिवदत्त हिंदू दर्शन पढाता था। शिवदत्त को अपने युग का भट्टाचार्य कहा जाता था और उस 'शास्त्र मे कुछ ही उसके जोड़ के थे।'[४] शिक्षा के मामले मे अकबर किन्ही भी जातीय धार्मिक, भाषावार और भौगोलिक, सीमाओ को नही मानता था। यहाँ तक कि उसने जैसुइट पादरी मासरेट को अपने पुत्र मुराद का शिक्षक नियुक्त कर दिया था और वह उसे पुर्तगाली भाषा सिखाता था।[५]

अकबर केवल पाठ्यक्रम मे ही सुधार करके सतुष्ट नही हुआ। उसने शिक्षण पद्धति को भी सरल करने की सोची। उसका विचार था कि

---

१. आईन, भाग १ (अनु०), पृ० २८९। २. वही, पृ० २८९।

३ तुजुक-ए-जहाँगीरी (फारसी प्रति), पृ० १६-१७, अग्रेजी अनुवाद, भाग १, पृ० ३६।

४. अकबरनामा, भाग ३, पृ० ६४७, अं० अनु०, ३, पृ० ९९५।

५. आईन, भाग १, अनु०, पृ० २८८-८९।

विद्यालयो के बालकों को बहुत सी पुस्तकें पढाकर और उन्हे घुटाकर काफी समय व्यर्थ नष्ट किया जाता है। इसलिये उसने आदेश दिया कि पहले बालक को अक्षर लिखना सिखाया जाय और फिर उनके विभिन्न रूप याद कराए जायें। इसके पश्चात उसे मिले जुले शब्द लिखना सिखाया जाय और उसे एक सप्ताह तक उन्हे लिखाया जाय। फिर उसे गद्य और कविता पढाई जाय और 'ईश्वर की प्रशसा मे कुछ कविता की पक्तियाँ अथवा अलग अलग लिखे कुछ वाक्य रटा दिए जायें। पर इसका ध्यान रखा जाय कि वह हर बात स्वयं ही समझना सीखे, शिक्षक उसकी थोडी सी सहायता कर सकता है।'[1] अकबर ने इस ओर जोर दिया कि शिक्षण मे प्रमुख भाग शिक्षक का नही अपितु विद्यार्थी का होना चाहिए। उसने इस प्रकार जैसे आधुनिक शिक्षण पद्धति की पहल की, जिसके अनुसार विद्यार्थियो को ज्ञान प्राप्त करने के लिये स्वय परिश्रम करना पड़ता है और शिक्षक का कार्य उनका कार्य करना नही, बल्कि केवल उन्हे सहायता देना होता है।[2]

अनुवाद विभाग एक व्यवस्थित विभाग था और उसका उद्देश्य केवल सम्राट् की सनक, अहं अथवा उसकी धार्मिक जिज्ञासा को ही तुष्ट करना न था। अनुवाद किए जाने वाले ग्रथो का चयन एक सुनिश्चित योजना के अनुसार विभाग के लक्ष्य को ध्यान मे रखते हुए किया जाता था। दरबार के अमीर और दरबारी अपने अपने लिये, इन अनुवादो की नकले करा लेते थे। अकबर स्वयं इन ग्रंथो को पढवा कर सुनता था और फिर उन्हे शाही पुस्तकालय मे बडी हिफाजत से रखवा दिया जाता था। जब शाहजादा मुराद को १५९१ ई० मे मालवा का सूबेदार नियुक्त किया था, तब उसके पास महाभारत के अनुवाद की एक प्रति भेजी गई थी और उसे अपने चरित्र को इस ग्रंथ की शिक्षाओ के अनुसार ढालने को कहा गया था।[4]

जिन पुस्तकों का अनुवाद अकबर ने विद्वानो से करवाया, उन पुस्तकों को तीन भागो मे विभाजित कर दिया।

प्रथम भाग में कविता, चिकित्सा शास्त्र, खगोल और संगीत विषय की

---

१. आईन, पृ० २८८-८९।
२. वही, पृ० २८८-८९।
३. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, अकबर महान्, पृ० ३०८।
४. अकबरनामा, भाग ३ (अनु०), पृ० ९१४, पाद टिप्पणी।

पुस्तकें। द्वितीय भाग मे दर्शन, सूफी, ज्योतिष, रेखागणित की पुस्तकें तथा तीसरे भाग मे न्यायशास्त्र और धर्म इत्यादि की पुस्तकें।

फैजी के संग्रह 'नल दमन' कविता की १०१ प्रतिलिपियाँ की, आगरे के किले में एक कमरा है, जिसमे अकवर का पुस्तकालय था। 'हैवेल' महोदय ने इसकी स्थिति का निम्न प्रकार से वर्णन किया है[1]—

'यह कमरा देखने में छोटा है तथा झुककर जाना पड़ता है लेकिन अंदर चले जाने पर विशाल दिखलाई पड़ता है। देखने मे पुस्तकालय दिखलाई पड़ता है, लेकिन सफल तथा सजावट पूर्ण नही मालूम पड़ता है।

अकवर ने पुस्तको को आकर्षित वनाने के लिये, उन्हे चित्रित भी करवाया। इन पुस्तको का चित्र वनाने के लिये सैकड़ो चित्रकारों की नियुक्तियाँ की गई।[2]

राज परिवार की शिक्षा व्यवस्था

अकवर ने अपने पुत्रों और पौत्रों को शिक्षा देने की जो योजना निर्धारित की थी वह वास्तव मे प्रशंसनीय थी। 'शाही शाहजादों को केवल फारसी और अरवी ही नही पढाई जाती थी, वल्कि संस्कृत और हिंदी भी तथा अन्य भारतीय रुचि के वे विषय भी पढाए जाते थे, जिनकी उसके पूर्व के शासक लोग अवहेलना करते रहे थे। शाहजादा मुराद को पढाने के लिये पुर्तगाली मिशनरी पादरी फादर ऐंथनी मांसरेट को नियुक्त किया गया था। वह उसे पुर्तगाली भाषा और साहित्य पढ़ाता था। अकवर के पौत्र शाहजादा खुसरो को शिवदत्त हिंदू दर्शन पढ़ाता था। उसे भट्टाचार्य की उपाधि दी गई थी और वह इस विषय का पंडित समझा जाता था।[3]

अकवर अपने परिवार की शिक्षा के साथ साथ जनता की शिक्षा की ओर भी सम्राट् ने ध्यान दिया। अपनी शिक्षा प्रणाली को सही रूप मे कार्यान्वित करने के लिये उसने अनेक मदरसों का निर्माण करवाया। फतहपुर सिकरी मे पहाड़ी के ऊपर एक वड़े मदरसे का निर्माण करवाया।[4]

---

१. जहाँगीर, तुजुक-ए-जहाँगीरी (अनु० आर० वी०), भाग १, पृ० ६३।
२. अकवरनामा, भाग ३ (अनु०), पृ० ९२७।
३. वही, पृ० ६४७, अं० अनु०, भाग ३, पृ० ९९५।
४. स्मिथ, अकवर दि ग्रेट, भाग १, पृ० २३९-४०।

इस मदरसे के अतिरिक्त शहर मे भी मदरसे अकबर की सहायता के द्वारा बनाए गए थे। आगरे मे भी अनेक मदरसे थे, जिनके लिये सिराज जो मुस्लिम विद्या का केंद्र है, से शिक्षको को बुलाया गया था। दिल्ली के मदरसो मे शिक्षकों का रहना अनिवार्य नही था।[1]

मदरसो के अतिरिक्त विद्वान् लोग घरो पर भी विद्यार्थियो को पढ़ाया करते थे। सम्राट् के अतिरिक्त उसके अमीरो एव दरबारियों ने भी शिक्षा के विकास मे सहयोग दिया। एक मदरसे का निर्माण अकबर की दाई 'माहम अनगा' ने करवाया। इसका निर्माणकाल ६६६ ए० एच० (सन् १५६१ ई०) है। यह मदरसा अब खडहर के रूप मे विद्यमान है। माहम अनगा के अतिरिक्त कई लोगो ने मदरसे की स्थापना करवाई।[2]

अकबर विद्वानो को पुरस्कार प्रदान करके प्रोत्साहन दिया करता था। काश्मीर विजय के बाद उसने काश्मीरी विद्वानो को इस दयालुता का परिचय दिया। उसकी दयालुता की चर्चा चारो ओर फैलने के कारण दूर दूर से विद्वान् उसके दरबार मे आया करते थे। 'तबकाते अकबरी' मे उन समय के विद्वानो की सूची मिलती है।[3] जिन्हे अकबर से पुरस्कार एवं प्रोत्साहन प्राप्त हुआ करते थे। इनमे ये मुख्य थे—अमीर मीरता की शरीफी, मुल्ला शैय्यद समरकदी, शेख अबुल फजल, मुल्ला अलाउद्दीन हिंद्दी, मुल्ला सादिक हलवाई, मिर्जा मुफलिस, हफीज ताशकदी, मुलना अब्दुल्ला सुल्तानपुरी, शेख अब्दुल नबी देहलवी, काजी जलालुद्दीन हिंदवी, बैरम खां का पुत्र अब्दुर्रहीम खानखाना था।

अकबर ने जाति पाँति और सप्रदाय का भेद भाव न करते हुए समान रूप से हिंदू और मुसलमानो की शिक्षा के लिये कार्य किया। प्रोफेसर एन० एन० ला ने लिखा है कि 'अकबर ने अपने समय मे शिक्षा को संसार मे स्थान दिलाया क्योंकि यह हर सुल्तानो की तरह शिक्षा जगत् मे किसी प्रकार का भेद भाव नही करता। यह केंद्र तथा हर प्रांतो मे शिक्षा पर

---

१. स्मिथ, पृ० २३६-४०।

२. अकबर नामा, भाग १ (अनु० ब्लाखमैन) पृ० १०३।

३. वही, भाग १, पृ० १०७।

समान रूप से ध्यान दिया। यह एक शासक राजनीतिक तथा सेना नायक के साथ साथ एक साहित्यकार भी था।[1]

पाठ्यक्रम

अकबर मध्ययुगीन भारत का प्रथम शासक था, जिसने शिक्षण पद्धति और पाठ्यक्रम मे सुधार की आवश्यकता को समझा। उसको भारत में इस्लामी शिक्षण संस्थाओ का एक सा पन नही भाया। मदरसो मे जो विषय पढाए जाते थे, उनसे छात्रो मे वह उदार मनोवृत्ति और दृष्टिकोण विकसित नही हो पाता था, जिसकी भारत जैसे हिंदू प्रधान देश के नागरिको को अतीव आवश्यकता थी। अतएव अकबर ने पाठ्यक्रम सुधारने की सोची और यह निश्चित किया कि हर लडके को नैतिक शिक्षा, गणित, गणित के विशेप कायदे, कृपि, ज्यामिती, रेखागणित, शरीर विज्ञान, गृह विज्ञान, राजनीति शास्त्र और औपधि शास्त्र, तर्कशास्त्र, भौतिक विज्ञान, भाषा विज्ञान, धर्मशास्त्र, अन्य विज्ञान और इतिहास पर पुस्तके पढनी चाहिए और इन सबका ज्ञान धीरे धीरे प्राप्त कर लेना चाहिए।[2] उसने इस पर विशेप जोर दिया कि किसी को भी इन विषयो की जिनकी इस समय आवश्यकता है, उपेक्षा नही करनी चाहिए।[3]

अकबर केवल पाठ्यक्रम मे ही सुधार करके संतुष्ट नही हुआ, उसने शिक्षा पद्धति को भी सरल करने की सोची। उसका विचार था कि विद्यालय के बालकों को बहुत सी पुस्तके पढा कर और उन्हे घुटा कर काफी

१. ला, पृ० १२१।
प्राचीन भारतीय इतिहास मे बौद्ध युग के पश्चात् एक निश्चित शिक्षा पद्धति की स्थापना हो चुकी थी। उस युग में तक्षशिला तथा नालंदा आदि जगत् प्रसिद्ध विश्वविद्यालय थे, जहाँ दूर दूर के विद्यार्थी आकर शिक्षा प्राप्त किया करते थे। सल्तनत युग मे भी मदरसे तथा मकतबो द्वारा शिक्षा व्यवस्था हो जाती थी (इलियट एंड डाउसन, हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग ५, पृ० १४७)।
डाउसन ने लिखा है कि 'ब्राह्मण पढाने का कार्य करते थे तथा बच्चे लिखते और पढते थे।' (इ० एंड डा०, भाग ५, पृ० १४८)।
२. अबुल फजल, आईन, भाग १ (अनु ब्लाखमैन), पृ० २८९।
३. वही, पृ० २९०।

समय व्यर्थ नष्ट किया जाता है। इसलिये उसने आदेश दिया कि पहले बालक का अक्षर लिखना सिखाया जाये और फिर विभिन्न रूप याद कराए जायँ। इसके पश्चात् उसके मिले जुले शब्द लिखना सिखाया जाय और एक सप्ताह तक उन्हे लिखाया जाय। फिर उसे गद्य और कविता पढाई जाय और 'ईश्वर की प्रसंशा मे कुछ कविता की पंक्तियाँ अथवा अलग अलग लिखे कुछ वाक्य रटा दिए जायँ, पर इसका ध्यान रखा जाय कि वह हर बात स्वयं ही समझना सीखे, शिक्षक उसकी थोड़ी सी सहायता कर सकता है।'[1]

पाठ्य विषय—पाठचक्रम के विषय मे बहुत कम सूचनाएँ उपलब्ध होती थी। व्याकरण, नीति, धर्म, साहित्य, न्याय और अलकार शास्त्र आदि मुस्लिम संस्थाओ मे पढाए जाते थे। हिंदू प्रभाव के कारण ज्योतिष शास्त्र, गणित और चिकित्सा शास्त्र का अध्ययन भी आरंभ हो गया था। इन कठिन विषयो मे विशेषता प्राप्त करने के लिये मुस्लिम विद्यार्थी हिंदू शिक्षा संस्थाओ में आश्रय लेते थे। पाठचक्रम मे गणित को प्रथम स्थान दिया गया और अकबर ने एक फरमान के द्वारा मदरसो मे इनका पढाया जाना अनिवार्य कर दिया।[2]

डा० प्राणनाथ[3] चोपडा अपनी पुस्तक 'ऐन आसपेक्ट आफ सोसाइटी एंड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल ऐज' मे उन पुस्तको की सूची दिए है जो उस काल मे मदरसों मे पाठ्य पुस्तक के रूप मे पढ़ाई जाती थी। ये पुस्तके निम्नलिखित है :—

गद्य

रुक्वात-ए-अबुल फजल, चंद्र भान ब्राह्मण के पत्र, मुल्ला मुनीर के पत्र, इशा-ए-युसूफी, इसा-ए-माधोराम, शेख इनायत उल्ला की हस्त पुस्तक, बहार-ए-सुखन, इशा-ए-खलीफा, लालचंद्र की कहानी, लीलावती अनुवाद, शेख फैजी आदि पुस्तके।

---

१. अबुल फजल, आईन, भाग १, पृ० २८८-८९।
२. डा० प्राणनाथ चोपडा, 'ऐन आसपेक्ट्स आफ सोसाइटी एंड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल ऐज, पृ० २३०।
३. वही, पृ० २३१-३२।

पद्य

फिरदौसी का शाहनामा, अमीर खुसरो की कविताएँ, मुल्ला जामी की रचनाएँ, निजामी की रचनाएँ आदि।

उपन्यास

तृतीया नामा, अकवर-ए-दानिश, वहार-ए-दानिश आदि।

इतिहास

जफर नामा-ए-कांगडा, अकबर नामा, इकवाल नामा, ए जहाँगीरी, जफर नामा, तारीख-ए-फीरोजशाही आदि।

नीतिशास्त्र

अखलाफ-ए-नासिरी, अखलाफ ए-जलाली, अखलाफ-ए-मुहसनी, शरीफ उद्दीन मनीरी के कार्य, नसनवी, हदीका आदि।

उस समय हस्तलिखित पुस्तके होती थी। जो ज्यादा कीमती होती थी। इसलिये यह आशा नही की जा सकती थी कि प्रत्येक विद्यार्थी के पास पुस्तक की प्रतिलिपि हो। इसलिये विद्यार्थी पुस्तको के लिये पुस्तकालयों तथा शिक्षको पर निर्भर रहते थे।[1]

पुस्तकालय की व्यवस्था

अकवर के पूर्वजो को, उनके तूफानी जीवन के बावजूद पुस्तकों से बड़ा प्रेम था और वे उनका संकलन करते थे। यद्यपि अकवर ने लिखना सीखने का कष्ट नही उठाया था, फिर भी विचित्र परिग्रहण शीलता द्वारा और चुनाव कर सकने की क्षमता के कारण, जो किसी भी प्रकार से साधारण नही थी, उन्होने जो कुछ भी पुस्तको मे होता और पढा जा सकता था, अपना लिया था।[2] जिससे कि कान के माध्यम से शिक्षा अर्जित करने की सामग्री मे न्यूनता न हो, अकवर ने असाधारण व्यय से अति विशाल पुस्तकालय सकलित किया था, जिसकी उस समय कोई समता नही थी, और न ही कोई समता ही रही होगी।[3] जव अक्टूवर १६०५ मे उसकी मृत्यु के वाद आगरा के दुर्ग मे सुरक्षित निधि कोष की तालिका तैयार की

---

१. डा० प्राणनाथ चोपड़ा, पृ० २३३।

२. वदायूँनी, भाग २, पृ० २६३ (ब्लाखमैन)।

३. स्मिथ, महान मुगल अकवर, पृ० ४५८।

गई थी, तब उसमें पुस्तकें थी, जो जिल्दों से बँधी तथा चित्रकारों द्वारा अंकित थी। उनकी संख्या २४,००० थी, जो प्राय. साढे पचास लाख रुपयों के मूल्य की थी। (६, ४६३, ७४१) इस प्रकार प्रत्येक पुस्तक का औसत मूल्यांकन, वर्णित विनियम दर के अनुसार, २७ से ३० पाउंड तक आता था। मूल्य का सपूर्ण योग ६४६३७३ से लेकर ७३७, १६६ पाउंड होता था। १५६५ मे फैजी की मृत्यु के पश्चात् उसके पुस्तकालय की ४३०० चुनी हुई पाडुलिपियाँ वहाँ स्थानान्तरित कर दी गई थी।[1]

यद्यपि प्रधान सद्र अभी भी पहले की तरह शिक्षा का सर्वेसर्वा था, फिर भी अकबर ने १५८० ई० मे इस पद पर एक उदार दृष्टिकोण का व्यक्ति नियुक्त किया और उसे सभी जातियो के विद्वानो को भूमि और नकद अनुदान देने का काम सौप दिया। इस प्रकार मध्ययुग मे प्रथम बार हिंदू शिक्षण संस्थाओं और विद्वानों को भी राजकीय अनुदानों से लाभान्वित होने का अवसर मिला। अकबर की इस नीति के कारण शिक्षा का शीघ्रता से प्रसार हुआ और संस्कृत का पुनः अध्ययन किया जाने लगा।[2]

प्रौढ शिक्षा सुधार मे भारतीय अधिकारियो और प्रशासको की तीन पीढियो के चरित्र और उनके दृष्टिकोण का निर्माण किया था। अकबर ने यह कार्य अनुवाद विभाग द्वारा स्थापित करके किया था। वह स्वयं इसका निर्देशन करता था। हिंदू धर्म, दर्शन इतिहास के प्राचीन सस्कृत के ग्रथो का फारसी मे अनुवाद किया गया। इसी प्रकार मुस्लिम धर्म, न्यायशास्त्र और सूफी धर्म पर अरबी मे लिखे ग्रंथो को भी फारसी में अनुमोदित किया गया। अकबर इसके लिये वडा उत्सुक था कि इन अनुवादो का खूब प्रचार हुआ हो, और अमीर तथा अधिकारी अपने लिये इन ग्रथों की प्रतियाँ प्राप्त करें। इसमे अकबर के जो उद्देश्य थे उनका उल्लेख अबुल फजल महाभारत की प्रस्तावना मे किया है।[3]

---

१. लेखक है मानरिक और दलात। जे० आर० ए० एस०, अप्रैल, १६१५, मे 'ट्रेजर आफ अकबर'। मदेलस्लो, जो वही आंकड़े देता है, महत्त्वपूर्ण नही है कारण कि उसके सपादक ने मानरिक या दलात से नकल की थी। फैजी के पुस्तकालय के लिये, आईन मे ब्लाखमैन, ख० १, पृ० ४६१, स्मृति पृ० ४५८।

२. स्मिथ, अकबर दि ग्रेट, भाग १, पृ० २४०-४१।

३ नवल किशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित लिथोग्राफी।

दोनों जातियों को एक दूसरे की निर्बलताओ से परिचित कराकर स्वयं को सुधारने के लिये प्रेरित करना। एक दूसरे के धार्मिक और दार्शनिक सिद्धातो के गलत प्रस्तुतिकरण को रोकना। मुसलमानो को हिंदू धर्म और संस्कृति का स्वयं ज्ञान प्राप्त करने और हिंदुओ को दुराग्रह पूर्ण विरोध छोडने को प्रेरित करना। दोनो जातियों के बुद्धजीवियो को एक दूसरे के प्राचीन साहित्य के श्रेष्ठतम विचारों मे परिचित कराना और सही हिंदू धर्म तथा सही इस्लाम की भावना को समझाना।[1]

अकबर ने अपने पुत्रो और पौत्रों को शिक्षा देने की जो योजना निर्धारित की थी वह वास्तव मे प्रशंसनीय थी। शाही शाहजादों को केवल फारसी और अरबी नही पढाई जाती थी, बल्कि संस्कृत और हिंदी भी तथा अन्य भारतीय रुचि के वे विषय भी पढ़ाए जाते थे, जिनकी उसके पूर्व के शासक लोग अवहेलना करते रहे थे।

इन शाहजादो को दी जाने वाली शिक्षा दीक्षा की जो योजना अकबर ने बनाई थी, उसका कुछ अनुमान शाहजादा मुराद को दिए गए, उसके निर्देशनो से हो सकता है। यह निर्देशन मुराद को मालवा सूबेदार (१४ सितंबर, १५६१) नियुक्ति करते समय दिए थे।[2]

प्रथम कर्तव्य, ईश्वर की प्रार्थना करना और उसकी इच्छा को समझना ताकि उसके अनुसार काम किया जा सके। उसके बाद शरीर शुद्ध करना चाहिए।

खान पान और वस्त्रो को ही साध्य नही समझना चाहिए।

अत्यधिक वार्तालाप और अधिक हँसने से बचना चाहिए। चौबीस घटे मे आठ घटे से अधिक नही सोना चाहिए। सेना मे सुधार करना, मार्गो को सुरक्षित रखना और उपद्रवी लोगो का दमन करना चाहिए।

आत्मसुधार की ओर ध्यान देना, क्रोध और विलासिता से बचना तथा क्या सही और क्या गलत है, इसका ज्ञान बढाना चाहिए।

प्रेम और घृणा तथा धमकियो और प्रोत्साहन की सीमा पार न होने देना चाहिए।

---

१. अबुल फजल, महाभारत प्रेसीडेंसी आफ दि इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, १९५०, पृ० १९६-२०१।

२. स्मिथ, पृ० २६१।

नीति मे धार्मिक-भेद भावो को आडे मत आने देना और सजा देने में हिंसक नही वनना चाहिए।

अपने विचारो मे कट्टर नही वनना चाहिए, क्षमा याचना की जाय तो स्वीकार कर लेना चाहिए।

आराम से वचना चाहिए। असफलता से निरुत्साहित नही होना चाहिए। अपने वचन पर, स्वयं के सभी स्वार्थो से परे रहकर, दृढ रहना चाहिए।

साधारण मनुष्य से वह जितना कर सकता है, उससे अधिक की आशा नही करनी चाहिए और अपने अनुयायियो की अलग अलग निष्ठा की सीमा परखना चाहिए।

बुद्धि वृद्धि करने वाली पुस्तको का अध्ययन करना और अपने ज्ञान का उपयोग करना चाहिए।

सत और सन्यासियो का आदर करना चाहिए। सैनिको के प्रति मैत्रीपूर्ण व्यवहार करना चाहिए तथा उनका वेतन ठीक समय पर देना चाहिए।

सु-सेवा को पुरस्कृत करना और अपने पुराने सेवको को नजर की ओट न होने देना चाहिए।

किसानो को प्रोत्साहित करने मे न चुकना चाहिए। सत्य, प्रिय, सक्रिय बुद्धिवाले और निष्ठावान लोगो को नियुक्त करना और उनके कार्य तथा व्यवहार पर नजर रखना चाहिए।

सही चिंतन करने वाले व्यक्तियो की पदोन्नति करना और मूर्खो को दड देना चाहिए।

न्याय करने मे पूर्णरूप से केवल शपथो और गवाहो पर ही निर्भर नही रहना चाहिए। शारीरिक गठन के अध्ययन सहित विभिन्न तरीको से भी जांच पडताल करना चाहिए।

समृद्धि मे विपत्ति को याद रखना चाहिए और हर वात के लिये उपचार तैयार रखना चाहिए।

अच्छे साथी को चुनना और सत्यवादिता को बुरा नही मानना चाहिए।

हर बात को तर्क की कसौटी पर रखना चाहिए और उत्तेजित नहीं होना चाहिए।[1]

इन सबके सिवाय शाहजादों को साहित्य, गणित, तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र राजनीति शास्त्र तथा धर्मशास्त्र भी पढ़ाए जाते थे। इनके सिवाय सैनिक शिक्षा और शासन की कला में प्रशिक्षण तो अनिवार्य विषय था।'[2]

स्त्री शिक्षा

राज्य की ओर से कन्याओं और स्त्रियों के शिक्षा की कोई व्यवस्था नही की जाती थी, लेकिन संपन्न और शाही घरानो की स्त्रियों को किसी प्रकार की सामान्य साहित्यिक शिक्षा दीक्षा अवश्य ही दी जाती थी। कई शाही घराने की महिलाएँ जैसे—गुलबदन बेगम, माहम अनगा और सलीमा सुल्ताना बेगम, खूब पढी लिखी तथा विद्वान् महिलाएँ थी। गुलबदन फारसी की लेखिका भी थी। अकबर ने पुत्रियो की शिक्षा के लिये बड़ी अच्छी व्यवस्था की थी। मांसरेट लिखता है कि अकबर उन शाहजादियों की, जिन्हें कि मनुष्य की दृष्टि से बड़ी कठोरता से बचाकर रखा जाता था, शिक्षा पर बडा ध्यान देता था। उन्हें वृद्धाएँ पढाना लिखाना सिखाती थीं और अन्य बातो मे भी प्रशिक्षित कराती थीं।'[3]

उच्च वर्ग की अनेक स्त्रियाँ शासन कार्य मे परामर्श भी दिया करती थी।[4] गुलबदन बेगम ने 'हुमायूँनामा' की रचना की, यह ज्ञात नही हो सका कि उसने कहाँ तक शिक्षा पाई, परन्तु उसके 'नामे' का अध्ययन करने के पश्चात् यह सिद्ध हो जाता है कि वह विदुषी महिला थी।[5] उसने अनेक पुस्तकों को एकत्रित करके एक पुस्तकालय की स्थापना कर ली थी, जिसने फारसी में अनेक कविताएँ लिखीं।[6] अकबर की दाई 'माहम अनगा' ने विद्वान् होने के साथ साथ दिल्ली में एक मदरसे की स्थापना की थी।[7]

---

१. अकबरनामा, भाग ३, (अनु०), पृ० ५६८-६९।
२. डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, अकबर महान्, पृ० ३१२।
३. कमेंटैरियस, पृ० २०३।
४. गुलबदन बेगम, हुमायूँनामा (अनु० बेवरिज), पृ० ६२।
५. एन० एन० ला, प्रमोशन आफ लर्निंग इन इंडिया, पृ० ८१।
६. गुलबदन बेगम, पृ० ६४।
७. अकबरनामा, भाग ३ (अनु०), पृ० ७२९।

अकबर के शासन काल मे शाही स्त्रियो को नियमित रूप से शिक्षा दी जाती थी। इसलिये अकबर ने फतहपुर सिकरी मे एक गर्ल्स स्कूल की स्थापना की थी।[1]

मुगल काल मे शाही महिलाओ को शिक्षा दी जाती थी। स्त्रियो के सबध मे एक बात स्मरणीय है कि इनकी कविता एवं साहित्यिक रचनाएँ पुरुषो की अपेक्षा ठीक नही होती थी। डा० बनर्जी[2] ने 'गुलबदन बेगम' के 'हुमायूँनामा' के लिये लिखा है कि 'हुमायूँनामा के न तो शब्द सही है और न ही उसकी उच्चारण रचना ही सही है।'

बाबर की पुत्री गुलबदन बानू बेगम, मुगलकाल की प्रथम महिला थी, जिसने साहित्य की रचना की। हुमायूँनामा जो इसकी उत्कृष्ट रचना है। इसके अध्ययन से हुमायूँ के साम्राज्य की सब बाते ज्ञात होती है।[3]

सलीमा सुल्ताना, हुमायूँ की भतीजी थी। उसने फारसी मे अनेक कविताओ को लिखा। वह पर्शियन भाषा की भी जानकार थी, तथा उसी भाषा मे दीवान नामक कविता का सग्रह किया था।[4]

अकबर की दाई 'माहम अनगा' शासन कार्य के साथ साथ शिक्षा की तरफ ज्यादा ध्यान देती थी, क्योकि काफी पढी लिखी महिला थी। वह दिल्ली मे अपनी सूझ बूझ के कारण एक मदरसे की स्थापना की थी। यह अकबर के समय की सबसे पढी लिखी महिला थी।[5]

इस युग मे तीन प्रकार के स्कूल थे—प्रथम वे जिसमे व्याकरण, कविता, पुराण, और स्मृति का, द्वितीय वे जिसमे न्यायशास्त्र तथा तृतीय मे पुराण का अध्ययन कराया जाता था। बनारस मे विभिन्न विद्यालयो मे विशेष विषयो का विस्तार से अध्ययन होता था। कक्षाएँ 'सुबह तथा शाम' दोनो समय लगा करती थी। एक शिक्षक के अधीन कम से कम पांच और अधिक से अधिक पद्रह विद्यार्थी हुआ करते थे। शिक्षको को किसी प्रकार

---

१. आईन, भाग १ (अनु०), पृ० २६१-६२।
२. डा० बनर्जी, हुमायूँ, पृ० ३४-३५।
३. गुलबदन बेगम, पृ० ७६।
४. आईन, भाग १ (अनु०), पृ०, ३०६, जे० बी० मेलेसन, अकबर, पृ० १८५।
५. डा० की, ऐन्सीऐट इंडियनएजुकेशन, पृ० १३८।

की फीस नही दी जाती थी, वरन् अमीर तथा बादशाह उन्हें समय समय पर पुरस्कृत किया करते थे। विद्यार्थी शिक्षकों को आदर की दृष्टि से देखते थे तथा उनके चरण स्पर्श करते थे। त्रुटियाँ होने पर विद्यार्थियो को यथा संभव दंड भी दिया जाता था। प्रारंभिक पाठशालाओ तथा मकतबों के अतिरिक्त मुसलमान एवं हिंदुओं के उच्च शिक्षा के भी केंद्र थे।[1]

उच्च शिक्षा के लिये हिंदुओं का प्रमुख विद्यालय बनारस मे था। तीन शताब्दियो (१२००-१५०० ई०) तक बनारस के विद्वानो को हानि उठानी पड़ी, पर वे अन्य स्थानो मे जाकर बस गए। मुगलो के प्रादुर्भाव से १६ वी शताब्दी मे पुन. बनारस मे सस्कृत की अपार उन्नति हुई। दूर दूर से छात्र यहाँ अध्ययन के लिये आने लगे। कबीरदास तथा तुलसीदास ने अपनी रचनाएँ यही लिखी।[2]

शिक्षा केंद्र

मुस्लिम शिक्षा के केंद्र, मदरसे उच्च माध्यमिक कालेज शिक्षा के उच्च स्थान थे। कभी कभी ये मस्जिदो से ही संबद्ध होते थे। मुस्लिम शिक्षा के उच्च केंद्र निम्नलिखित थे[3]—

सपूर्ण मुगल युग मे आगरा मुस्लिम शिक्षा का प्रमुख केंद्र रहा है। यहाँ इस्लामी शिक्षा के बहुत से विद्यालय मुगल बादशाहो अमीरों और विद्वानों द्वारा बनवाए गए थे। यहाँ अच्छे विद्यार्थी तथा शिक्षकों की भरमार थी। शाही राजधानी दिल्ली मे प्राचीन काल से चली आ रही, परंपरा के समान मुगल काल में भी शिक्षा की उन्नति हुई। सैकडो विद्यार्थी दूरस्थ स्थानो से आकर यहाँ पढते थे, जौनपुर तथा आगरा के समान शिक्षा का केंद्र नही था। यह भारत के कुछ भागो मे शिक्षकों की आवश्यकताओ की पूर्ति करता था। इसके अतिरिक्त और जगह भी शिक्षा दी जाती थी।

स्नातक होने के लिये पाठ्यक्रम १० से १२ वर्ष तक का होता था। इसके पश्चात् विशेष अध्ययन के लिये किसी विद्वान् के पास जाना आवश्यक होता था।

---

१. इलियट एंड डाउसन, हिस्ट्री आफ, इंडिया, भाग ५, पृ० १४७।
२. वही भाग ५, पृ० १४८।
३. अकबरनामा, भाग ३ (अनु०), पृ० ६२७।

१६ वी शताब्दी मे अनेक महत्वपूर्ण ग्रथों की रचना हुई, जिनसे मुगल वंश के बाबर, हुमायूँ और अकबर के शासनकाल के विषय मे अच्छा प्रकाश पड़ता है। इनमे से प्रमुख ऐतिहासिक ग्रथ निम्नलिखित है :—

तुज्के बाबरी, बाबर के शासनकाल का इतिहास जानने के लिये मुख्य साधन, उसके (बाबर) द्वारा लिखित यह आत्मकथा है, जो वाक्यात-ए-बाबरी या तुजुक-ए-बाबरी के नाम से प्रसिद्ध है। यह तुर्की मे लिखी गई है और इसका अनुवाद अकबर के शासनकाल के मध्यकाल मे अब्दुर्रहीम खान खाना के द्वारा हुआ।

इस रचना कार्य ने बाबर को 'आत्मकथा लेखको' का सम्राट् बना दिया है।

बाबर की पुत्री तथा हुमायूँ की बहन गुलबदन बेगम द्वारा लिखित हुमायूँनामा, बाबर के अंतिम काल और हुमायूँ के शासन काल के लिये महत्वपूर्ण ग्रंथ है। यह प्रथम इतिहास है जो किसी स्त्री के द्वारा लिखा गया है। इस ग्रंथ से खलीफा के षड्यंत्र पर अच्छा प्रकाश पडता है।

शेख जैनुद्दीन द्वारा लिखित तबकाते बाबरी भी बाबर के अतिम काल के लिये एक महत्वपूर्ण ग्रथ है।

हुमायूँनामा खोदमीर कृत, इसके द्वारा हुमायूँ की शासन प्रणाली, चरित्र एवं व्यक्तित्व पर अच्छा प्रकाश पडता है। शेरशाह और गुजरात के शासक बहादुर शाह के साथ उसके संबध का उल्लेख किया गया है।

तजकिरात-उल-वाकयात, इसमे कुछ संस्मरण है, जो हुमायूँ के आफताबर्ची (हुक्का भरने वाले) जौहर ने लिखा है।

आईन-ए-अकबरी तथा अकबरनामा, दोनों ग्रंथ अबुल फजल द्वारा लिखे गए है। इनकी विशेषता यह है कि इसमे उस काल की सांस्कृतिक दशा का अच्छा वर्णन मिलता है, परतु अकबर के प्रति सहिष्णु होने के कारण पक्षपात पूर्ण दृष्टिकोण से ऐतिहासिक तथ्यो पर प्रकाश डाला गया है

इसके अतिरिक्त बदायूंनी की मुंतखत-उत-तवारिख, निजामुद्दीन अहमद की 'तबकाते अकबरी' और अब्बास खाँ शेरवानी की 'तारीखे शेरशाही' भी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रंथ है।

अकबर का मुख्य लक्ष्य दोनो जातियो को तथा बुद्धिजीवियो को एक

दूसरे के प्राचीन साहित्य के श्रेष्ठतम विचारो से परिचित कराना और सही हिंदू धर्म और सही इस्लाम की भावना को समझाना था।''[1]

शेख फैजी (सन् १५४७-९५)

शेख फैजी अकबर के युग के प्रसिद्ध विद्वान् शेख मुबारक के ज्येष्ठ पुत्र थे। इनका जन्म १५४७ मे आगरा में हुआ था। बाल्यकाल से ही यह अपनी काव्य प्रतिभा और विद्वत्ता के लिये प्रसिद्ध हो रहे थे। एक कवि और विद्वान के रूप मे फैजी की प्रशसा अकबर ने सुनी थी। इसलिये १५६७ ई० मे अकबर ने फैजी को अपने दरबार मे आमन्त्रित किया। जब फैजी बादशाह के संमुख दरबार मे उपस्थित हुआ, तब बादशाह जालीदार कटघरे के पीछे था और फैजी उसके बाहर खडा किया गया। पर्दे की आड से बात करने मे फैजी को बुरा मालूम होने लगा। इसलिये उसके मुंह से सहसा निकल पड़ा[2]—

बादशाहा दरुने पंजर अस्त।
अजु सरे-लुत्फे-खुद मरा जावेह।
जाँकि मन तूतिये-शूकर खायम्।
जाये-तूती दरुने पजरा बेह॥

(बादशाह पिंजड़े के भीतर है, इससे आनंद नहीं आता। मैं मिस्री खाने वाली तूती हूँ, जिसके लिये अच्छा स्थान पिंजड़े के भीतर है।)

अकबर इस आशु कविता को सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ, इसके बाद फैजी ने १९७ शेरो का अपना प्रथम कसीदा (प्रशस्ति) पढा। फैजी के काव्य माधुर्य और गंभीरता से अकबर काफी प्रभावित हुआ। इसके पश्चात् फैजी निरंतर अकबर के संपर्क मे रहा। उदार हृदयी मुसलमान होने से उसने अकबर के धार्मिक विचारो को प्रभावित किया। उस युग के धर्मांध और संकीर्ण हृदयी मुल्ला और मुसलमा न यह मानते थे कि अकबर को काफिर बनाने का उत्तरदायित्व फैजी और उसके भाई अबुल फजल पर है।

---

१. स्मिथ, पृ० २३९-४०, प्रोसीडिंग्स आफ दि इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, १९५०, पृ० १९७-२०१।
२. राहुल सांकृत्यायन, अकबर, पृ० ७९।

अकवर ने फैजी की विद्वत्ता से प्रभावित होकर राजकुमारी की शिक्षा के लिये नियुक्त किया। उस युग मे शाहजादों का उस्ताद होना वडे संमान की वात थी।

जव अकवर १५८७-८८ ई० मे गुजरात विजय से लौटकर आया था, तव फतेहपुर सिकरी मे उसके अभिनदन के समय फैजी ने वधाई देते हुए एक गजल पढी थी—

'नसीमे-खुश दिली अज फतेहपुर मीआयद।
कि वादशाहे-मन अज-राहे-दूर मीआयद।'

(खुशदिली की प्रातःकालीन वायु फतेहपुर से आ रही है क्योकि मेरा वादशाह दूर के रास्ते से आ रहा है।)

फैजी अपने युग का सर्वश्रेष्ठ कवि, विद्वान और सिद्धहस्त लेखक था। 'वदायूँनी' ने अपनी पुस्तक 'मुनखव-उत-तवारिख'[1] मे लिखा है कि 'काव्य, इतिहास. कोप, चिकित्सा शास्त्र और निवध रचना मे फैजी अपने समय मे अद्वितीय था। फैजी का स्वयं अपना पुस्तकालय था। उसकी मृत्यु के समय इस पुस्तकालय में ४६०० ग्रंथ थे। इनमे काव्य, चिकित्सा शास्त्र, ज्योतिप, दर्शन, सूफी मत, गणित, प्राकृतिक विज्ञान, कुरान, स्वास्थ्य, पैगंवर वचन (हदीस), फिका (धर्मशास्त्र) आदि पर विविध ग्रथ थे। उसने फारसी भाषा में कविताएँ और काव्य ग्रंथ लिखे हैं। उसके फारसी भाषा के ग्रंथों में दीवान (कविताओ का सग्रह), कशीदे (प्रशस्ति), नलदमन मकजे अदवार सवाते-उल अलहाम (कुरान पर भाष्य), मवारिद-उल-कलम (छोटे छोटे वाक्यो मे शिक्षाएँ) दशाय फैजी (फैजी निवध) आदि प्रमुख है। फैजी की गजलों और कशीदो की संख्या २० हजार है। उसकी गजले परिमार्जित सुदर फारसी भाषा मे है। सव मिलाकर फैजी ने कविता की पचास सहस्त्र पंक्तियाँ फारसी में लिखी है। फैजी ने कविता मे जो कहा है, अत्यंत सयत कहा है। भास्कराचार्य द्वारा संस्कृत पद्य में रचित 'लीलावती' नामक गणित के ग्रथ का फारसी मे फैंजी ने अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य मुल्लाओ द्वारा 'महाभारत' के कुछ पर्वों

---

१. वदायूंनी, मुंतखब-उत-तवारिख, (अनु०), भाग ३, पृ० २११।

का फारसी गद्य में जो अनुवाद किया गया था, उसे ठीक करने का कार्य भी अकबर ने फैजी को ही सौंपा था।

अर्थशास्त्रों मे फैजी की विशेष अभिरुचि थी और अकबर के दीन इलाही का यह एक संमाननीय सदस्य था। वह विद्वानों, कवियों और गुणी जनों का खूब आतिथ्य सत्कार करता था। फैजी का संमान और यश प्रधानतः एक श्रेष्ठ कवि और एक सिद्धहस्त लेखक तथा उदार पुरुष के रूप मे सदा ही विद्यमान रहेगा।

अबुल फजल (सन् १५५०-१६०२)

अबुल फजल का जन्म १४ फरवरी सन् १५५० ई० मे आगरा मे हुआ था। वह शेख मुबारक का छोटा पुत्र और शेख फैजी का कनिष्ठ बंधु था। सन् १५७४ ई० में अकबर के निमंत्रण पर उसके दरबार में उपस्थित हुआ। अपनी योग्यता तथा स्वामिभक्ति के कारण कुछ समय बाद अकबर का परामर्शदाता बन गया। अकबर की उपस्थिति में फतेहपुर सिकरी के इबादतखाने में यह धार्मिक विचार गोष्ठियों और वाद विवादो मे भाग लेता था। वहाँ उसने अपनी आलोचना तर्क और ओजस्वी भाषणों से कट्टर पंथी धर्मांध मुल्लाओं का विरोध किया। वह उदार धार्मिक विचार का 'दीन इलाही' का सदस्य और उच्च आचार्य था। अबुल फजल प्रशासन के कार्यों में भी रुचि लेता था और अकबर ने इसे ऊनी वस्त्रो के बाजारो की देख रेख और नियंत्रण का कार्य सौंपा था।

इतिहासकार के रूप में अबुल फजल का यश अधिक स्थायी है। उसने भारत के मुस्लिम इतिहास तथा एशिया और यूरोप के इस्लामी इतिहास का अच्छा अध्ययन किया था। फारसी में लिखे उसके दो प्रसिद्ध ग्रंथ— 'अकबरनामा' और 'आईन-ए-अकबरी' है। ये दोनों ही ग्रंथ उसकी प्रतिभा, असीम परिश्रम तथा महान पांडित्य के कीर्ति स्तंभ है। यद्यपि अकबरनामा की भाषा अत्यंत क्लिष्ट है तथा अलंकारो के बाहुल्य से वह अत्यधिक जटिल हो गई है, तथापि वह अकबर के शासन काल का सर्वश्रेष्ठ और प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रंथ है। आईन-ए-अकबरी, ग्रंथ एक प्रकार से अकबर के शासन के विविध अंगों का ही नहीं, अपितु आर्थिक, सामाजिक तथा अन्य बहुत सी बातो का कोश है। अबुल फजल का यह ग्रंथ उस युग के ऐतिहासिक साहित्य मे अपने प्रकार का अनूठा और एकाकी ग्रंथ है।

पाश्चात्य इतिहासकार 'स्मिथ' ने अबुल फजल पर यह दोषारोपण किया है कि 'उसने अपने अनुचित प्रभाव से सम्राट् अकबर को अपनी मुट्ठी मे रखा था तथा उसके धार्मिक विचारों और नीति को भी प्रभावित किया। लेकिन श्रीराम शर्मा ने अपनी पुस्तक 'मुगल गवर्नमेंट एंड एडमिनिस्ट्रेशन' मे लिखा है कि 'अबुल फजल के प्रति पाश्चात्य विद्वानो का दृष्टिकोण संकुचित और दूषित रहा है।'[१]

ऐसा कोई दोष अबुल फजल के विरुद्ध नही लगाया जा सकता, जो निस्सदेह, शासन के फारसी भाषा के लेखको मे योग्यतम था। उसकी साहित्यिक शैली की चाहे कितनी ही कठोर आलोचना की जाय, वह अशुद्धता से नितात मुक्त था। उसकी गद्य शैली, जैसी मिस्टर बेवरिज द्वारा अकबरनामा के अनुवाद में पढी जाती है, मुझे असह्य है। सीधी सादी बातों को प्राय: अर्थहीन आलकारिक भाषा के जाल मे उलझा दिया गया है और पाठक के मन पर अमिट प्रभाव पड जाता है कि ग्रंथकार मे निश्छलता की कमी है।[२] फिर ब्लाखमैन ने मासिर-उल-उमरा के लेखक के निर्णय की पुष्टि की है कि लेखक के रूप मे अबुल फजल अद्वितीय है। उसकी शैली अपूर्व है, और अन्य मुशियो की तकनीकी उलझनो और सतही बारीकियों से मुक्त है, और उसके शब्दों की प्रभावोत्पादकता, उसके वाक्यो का विधान, उसके समासो की उपयुक्तता, उसके अलकारो की भव्यता ऐसी है कि किसी भी व्यक्ति के लिये उनका अनुकरण करना कठिन है।[३]

बहुत ही कम यूरोपीय व्यक्ति ईमानदारी के साथ इस आलोचना से सहमत होगे। अबुल फजल की कृतियो मे, मेरे निर्णयानुसार और सभवत: अधिकाश पाश्चात्य पाठको के विचारानुसार सर्वाधिक सतोपजनक रचना उसकी रोचक आत्मकथा है, जो आईन-ए-अकबरी के तृतीय खड मे संलग्न है। उसकी शैली, यद्यपि क्लांतकारी कृत्तिमता से, जिसमे वह आनद लेता था, नितात मुक्त नही है, तथापि अकबरनामा की अपेक्षा कही अधिक स्पष्टवादी और निश्छल है।[४]

---

१ श्रीराम शर्मा, मुगल एंपायर इन इडिया, (अनु० मथुरा प्रसाद शर्मा), पृ० २३९।

२. स्मिथ, पृ० ४४६।

३. आईन, भाग १, जीवनी पृ० २९।

४. स्मिथ, पृ० ४५०।

कुल मिलाकर, जहाँ तक मैं देख सकता हूँ, अकवर के समय की भारतीय फारसी कृतियो का साहित्य कला के कीर्ति स्तभो के रूप मे क्षीण महत्व है।[1]

मुल्ला अब्दुल कादिर वदायूँनी (१५४०-१५९६)

इनका जन्म १५४० ई० मे हुआ था। ये वचपन से ही प्रतिभासंपन्न और धर्मनिष्ठ सुन्नी मुसलमान थे। सन् १५७४ ई० मे जब अकवर धार्मिक, आध्यात्मिक और साहित्यिक वाद विवादो मे और गोष्ठियो मे अधिक रुचि ले रहा था, तभी इनसे सम्राट् का परिचय हुआ।

वदायूँनी सस्कृत, फारसी और अरवी का अच्छा विद्वान् था। इनका प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रथ 'मुतखब-उत-तवारिख' है। यह रूढिवादी मुस्लिम दृष्टिकोण वाला अनुदार धर्माध सुन्नी था, जिसे अकबर के युग की प्रगतिशील विचारधाराओ से किंचित भी सहानुभूति नही थी। इस कारण अकबर के उदार, व्यापक, धार्मिक विचारो और नीतियो का कटु आलोचक वन गया और अपने ग्रंथ मे उसके शासन काल की अतिशयोक्ति से निंदा की है। वदायूँनी का 'मुतखब-उत-तवारिख' अकवर के शासन काल के ऐतिहासिक अध्ययन का एक प्रमुख और महत्वशाली साधन है।

५७ वर्ष की आयु मे १५९६ ई० में वदायूँनी का देहावसान हो गया। यह फारसी और अरवी का अच्छा विद्वान् था। उसने कई ग्रथ लिखे और कुछ संस्कृत ग्रथो का फारसी मे अनुवाद भी किया। उसके ग्रथो मे निम्नलिखित प्रमुख है :—

(१) नामये-खिरद अफजा (प्रज्ञादीपिका)—यह सस्कृत के प्रसिद्ध ग्रथ 'सिहासन वत्तीसी' का फारसी मे अनुवाद है। विक्रमादित्य के सिंहासन के संवध मे उसके न्याय की ३२ कहानियाँ इस ग्रथ मे संमिलित हैं। एक ब्राह्मण विद्वान की सहायता से १५७६ में फारसी मे अनुवाद किया गया।

(२) अथर्व वेद—१५७५-७६ से मुल्ला ने अथर्ववेद का अनुवाद किया। फैजी और हाथी सरहिंदी, पहले इस अनुवाद कार्य को प्रारंभ कर चुके थे, और वदायूँनी ने इसे पूर्ण किया।

(३) तारीख अलफी—१५८२ मे उसे विचार आया कि हजरत मुहम्मद के हिजरत करने का हजारवाँ वर्ष पूरा होने वाला है। अतः इस समय

१. स्मिथ, पृ० ४५०।

ऐसा इतिहास लिखा जाय, जिसमे एक सहस्र वर्ष के मुसलमानी वादशाहों का इतिहास हो, और विद्वानों के साथ वदायूँनी ने कुछ भागों को स्वयं लिखा और उसकी तीन जिल्दों मे से दो जिल्दो के संशोधन का कार्य किया।

(४) महाभारत—महाभारत का फारसी मे अनुवाद 'रज्मनामा, (युद्ध ग्रंथ) के नाम से हुआ। अन्य विद्वानों के साथ वदायूँनी ने काफी सहयोग दिया।

(५) रामायण—१५८४ मे अकवर ने वाल्मीकि रामायण का फारसी अनुवाद करवाना चाहा, तव उसने वदायूँनी को ही यह कार्य सौंपा।

(६) मुअजमुल वलदान—दो सौ जुजो (लगभग चालीस सहस्र श्लोको के वरावर) को अरवी से फारसी मे अनुवाद करने का कार्य अकवर ने विभिन्न विद्वानो मे विभाजित किया। वदायूँनी के हिस्से मे दस जुज आए और उसने वडी विद्वत्ता से यह कार्य पूर्ण किया।

(७) मुतखव-उत-तवारिख—वदायूँनी का यह सवसे महत्वपूर्ण मौलिक ग्रथ है। यह ग्रथ ३ भागों मे है। खाफी खाँ[1] ने अपनी पुस्तक 'मुतखव-उल-लवाव' मे लिखा है कि 'समस्त कड़ाई के वावजूद भी 'मुतखव-उत-तवारिख' ग्रंथ उस समय सवसे अधिक विकने वाला ग्रथ था।'

यदि स्वतत्र विचारक अवुल फजल ने अकवर के शासन का वर्णन सत्य और चापलूसी पूर्वक किया है तो वदायूँनी ने इसका दूसरा पहलू अपने ग्रथ मे प्रस्तुत किया है। इसलिये 'मुतखव-उत-तवारिख' का अधिक महत्व है।

अकवर के आदेशानुसार वदायूँनी तथा अन्य व्यक्तियो द्वारा संस्कृत की पुस्तको के इतने श्रम पूर्वक किए गए अनुवादो को शायद आज कोई नही पढता।[2]

मध्ययुगीन भारत मे महत्वपूर्ण साहित्यिक उन्नति हुई लेकिन अधिकतर साहित्य अरवी और फारसी मे लिखा गया और वह धर्म से सवधित था। इस्लाम मे मूल ग्रथों का अभाव था, इसलिये इनपर जो भी साहित्य सृजन हुआ है, वह टीकाओ की या टीका की ही श्रेणी का है। फारसी का धार्मिक

---

१. खाफी खाँ, मुतखव-उल-लवाव, पृ० ७।

२. स्मिथ, पृ० ४४८।

मूल साहित्य सूफी संतो के वार्तालापो या उपदेशों के रूप में था। इस श्रेणी के साहित्य का इतना अधिक सृजन हुआ कि सल्तनत या मुगल काल में लिखे गए इस प्रकार के ग्रथो की क्रमबद्ध सूची देना संभव नही है।

मुगल युग के आविर्भाव ने फारसी साहित्य को और बढावा दिया। तैमूर वंश के शासक स्वयं विद्वान् और विद्या प्रेमी थे। बावर तुर्की और फारसी का अच्छा कवि होने के साथ ही साथ इन दोनों भापाओ का श्रेष्ठ लेखक भी था। तुजुक-ए-बावरी नामक उसकी आत्मकथा मूल रूप से उसकी मातृ भापा तुर्की में लिखी गई थी। हुमायूँ और अकबर के शासन काल में, इसके तीन फारसी अनुवाद हुए और इसका चौथा अनुवाद शाहजहाँ के काल मे हुआ।

फारसी भापा भी यहाँ पर वाहर से आने वाली मुस्लिम पर्यटको अथवा आक्रमणकारियो के साथ किसी प्रकार पहुँची थी। किंतु इसकी साहित्यिक परपरा मूलत. उसी प्रकार की नही रही जैसी अरवी की रह चुकी थी। इसका पुराना संबंध ईरान देश के साथ रहा। जहाँ पर इसके प्राचीन साहित्य का निर्माण अपने निजी ढंग से हो चुका था।

अरव एवं ईराक जैसे देशो की ओर से आने वाले मुस्लिम धर्मानुयायियों द्वारा पीछे विजित होकर धर्मांतरित कर दिए जाने पर जव वहाँ के निवासियो के जीवन मे विशिप्ट परिवर्तन आ गया तो उनके समाज एवं साहित्य पर भी इसका स्पप्ट प्रभाव पड़े विना न रह सका। इसका एक परिणाम यह भी हुआ कि एक ओर जहाँ इनके साहित्य के अंतर्गत इस्लाम धर्म विपयक वातो का क्रमशः अधिकाधिक समविष्ट होता गया और वहाँ दूसरी ओर उस पर अरवी साहित्य वाली कतिपय विशेषताओ का प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा। फिर भी ईरानी समाज मे इस्लाम धर्म वाले वैसे प्रमुख तत्वो को ही विशेप सुविधा मिल सकी, जो ईरानी संस्कृति से अधिक अनुकूल पड़े। इस कारण यहाँ की नवनिर्मित अथवा किंचित परिवर्तित साहित्यिक परपरा मे तदनुसार भिन्नता आ गई। ईरान के निवासियों द्वारा शिया शाखा को अधिक महत्व की दृष्टि से देखे जाने के कारण फारसी साहित्य एव उनके अनेक विषयो तथा रचना शैलियो को ही अपनाने की ओर अग्रसर हुआ, जो उस विचार से उपयुक्त सिद्ध हो सकते थे तथा अंत में वैसे ही आदर्शो को लेकर प्रस्तुत किए गए वांगमय के साथ मुसलमानो का

इस देश मे प्रवेश हुआ और उसकी साहित्यिक परंपरा के अनुसार प्रचार का प्रारंभ हुआ। मुस्लिम शासको का सरक्षण पाकर इसके रचयिताओं को बहुत प्रोत्साहन मिला। इस कारण न केवल इसमे समृद्धि होती गई, अपितु इसकी लोकप्रियता ने अनेक वैसे साहित्यकारो की अपेक्षा इसकी एक विशेषता इस बात मे देखी गई कि इसके निर्माण मे, यहाँ के निवासियो ने भी अधिक सहयोग किया तथा इसमे उन अनेक भारतीय ग्रंथो का अनुवाद भी करा दिया, जिन्हे गौरव दिया जाता है।

हिंदी साहित्य का विकास

हिंदी साहित्य के क्षेत्र मे शायद सबसे अधिक कीर्ति अर्जित की गई। भारतीयो की बहुमुखी प्रतिभा ने साहित्य के क्षेत्र मे ऐसे उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किए है कि उनका आज भी संमान होता है तथा उनके कारण देश तथा विदेश मे भारत का मस्तक ऊँचा हुआ है और हो रहा है। इस सास्कृतिक निधि का अनुचित मूल्याकन अनेक स्वतत्र ग्रथो में किया गया है और किया जा रहा है। मध्य युग के भारतीयो ने अपने अन्य दोषो के बावजूद उसे कैसी अनुपम थाती छोड़ी है।

हिंदी साहित्य मे ब्रजभाषा तथा हिंदी मे अनेक उत्कृष्ट रचनाएँ हुईं। इस काल के हिंदी कवियो को पाँच भागो मे विभक्त किया जा सकता है—

(१) प्रेम मार्गी सूफी शाखा,

(२) निर्गुण पंथी संत शाखा,

(३) राम भक्ति शाखा,

(४) कृष्ण भक्ति शाखा,

(५) रीति कालीन शाखा।

जब मुगलो का अभ्युदय हुआ तो साहित्यिक भाषा के रूप मे हिंदी का विकास बड़ी तेजी से होने लगा। अकबर का राज्यकाल हिंदी काव्य का स्वर्ण युग था। उसके अपूर्व शासन, उसकी हिंदू विचार धारा, उसकी पूर्ण सहिष्णुता की नीति और गुण ग्राहकता तथा आंतरिक और बाह्य शाति के बौद्धिक और साहित्यिक दोनो ही प्रकार की प्रगति के लिये अनुकूल

वातावरण निर्मित कर दिया था। इसका परिणाम यह हुआ कि कई प्रथम श्रेणी के हिंदी कवियो ने ऐसे सुंदर हिंदी काव्य लिखे जो कि हिंदी के उच्चकोटि के ग्रंथ माने जाते है।

मध्य कालीन साहित्य तथा कवियों का परिचय

मध्यकाल मे भारत पर मुसलमानो के आक्रमण हुए। मुहम्मद गोरी ने मुस्लिम राज्य की नीव डाली और भारत वर्ष मे मुस्लिम शासन का युग आरंभ हो गया और हिंदू पराधीनता की बेडियो में आवद्ध हो गए। इस प्रकार इन परिस्थितियों मे हिंदू जन-समुदाय पर उदासी छायी हुई थी। इन परिस्थितियो मे हताश होकर जनता केवल भक्ति के सहारे रह गई थी। इस प्रकार जन समुदाय भक्ति की ओर आकृष्ट हुआ। हिंदू धर्म की प्राचीन मान्यताओं के प्रति विद्रोह की भावना ने जन्म लिया। इसी समय रामानंद, कबीर, रैदास जैसे संत हुए जिन्होंने जाति पाँति, मूर्ति पूजा, कर्मकाण्ड, आदि प्राचीन मान्यताओं का विरोध किया। इन संतो ने निराश हिंदू जनता के हृदय मे एक नवीन ज्योति प्रज्ज्वलित की तथा समाज की प्राचीन रूढिवादी मान्यताओं को समाप्त करके जीवन क्रांति को जन्म दिया।

संतो मे कुछ निर्गुण ईश्वर के उपासक थे, जैसे—कबीर, नानक, मलूक दास, सुंदर दास आदि। कुछ भक्त सगुण ईश्वर के उपासक थे। इनमे से कुछ राम के तथा कुछ कृष्ण के भक्त थे, जैसे—तुलसी, सूर आदि कुछ भक्त प्रेम के द्वारा ईश्वर की प्राप्ति करने मे विश्वास करते थे। इसी आधार पर भक्त कवियो का परिचय दिया जायेगा।

निर्गुण धारा

१५वी शताब्दी वि० से लेकर २० वी शताब्दी वि० पूर्वार्द्ध लगभग ३०० वर्षों की लंबी अवधि के बीच भारतवर्ष एक विशिष्ट विचार धारा, एक विशेष आध्यात्मिक और साधना सबंधी विचार परंपरा से ओत प्रोत रहा है। इस अवधि मे भक्त कवियो ने भेद भाव को निर्दिष्ट करने वाले उपासना के बाहरी विधानों को अलग रखकर अंतस्साधना पर जोर दिया। आचार्य रामचद्र शुक्ल ने अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' नामक ग्रंथ में इस धारा के कवियो को 'ज्ञानाश्रयी निर्गुण शाखा' कहा है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने इसी आधार पर अपनी पुस्तक 'उत्तरी भारत की संत परंपरा' मे संत कवियो और उनकी धाराओ का उल्लेख किया है। संत

काव्य या निर्गुण काव्य द्वारा का जो माप दंड स्थिर हो चुका है, उसी को आधार बनाकर सत कवियों का परिचय किया जायेगा।

ज्ञानाश्रयी शाखा

संत कबीर—भारतीय चिंता और साधना के क्षेत्र में कबीर का अद्वितीय स्थान है। मध्य कालीन निर्गुण चिंता धारा का मुख्य प्रवेशद्वार कबीरदास और उनकी वाणी है। इन्होंने एक नये युग का सूत्रपात किया।

कबीरदास निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। उन्होने सगुण वाद तथा मूर्ति पूजा का खंडन किया तथा निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति का माध्यम ज्ञान को स्वीकार किया है।[1]

कबीरदास जी ने ज्ञान का नया अर्थ बताया, उन्होंने पुस्तकों के ज्ञान को व्यर्थ कहा है। वेद, पुराण, स्मृति आदि पढने का अर्थ अपने को भ्रम मे डालना है। 'पोथी पढ पढ जग मुआ पडित भया न कोय, एकै आखर पीउ का पढे सो पडित होय'। वे इस सिद्धात का प्रतिवाद करते थे। विभिन्न मत मतातरो धर्म आदि मे न पडकर ईश्वर की शरण मे जाना चाहिए।[2]

कबीरदास जी ने आध्यात्मिक साधना का एक ऐसा नवीन मार्ग प्रशस्त किया जिसमे साधना सोते जागते, उठते बैठते तथा दैनिक जीवन का कार्य करते हुए संभव है। योगियो ने सहज समाधि के लिये प्राणायाम के द्वारा वायु को ब्रह्मरध्र मे चढाने को कहा, पर कबीर ने तन के योग की अपेक्षा मन के योग को सफलता प्राप्ति के लिये अधिक उपयुक्त समझा। उनके

---

१. सतो आई आई ज्ञान की आँधी रे।
 भ्रम की टाटी सबै उडायी माया रहै न बाँधी
 हितचत की द्वैधूनी गिराती, मोह बलोडा टूटा।
 —कबीर ग्रयावली, पृ० ९३।

२. पडिया कौन कुमति तुम लागे।
 तू राम न जपहि अभागी।
 वे पुराण पडत अस पडि, गुन रवर चदन अस मारा।
 राम नाम तत् समझत नाही, अन्ति पड़ै मुख छारा॥
 —कबीर ग्रथावली, पृ० १००।

अनुसार सच्चा योगी वही है जो मन में ही ब्रह्म साधना करता है।[1] कबीरदास जी रामानद से प्रभावित थे। उन्होने जनता मे ऐसी भक्ति का प्रचार किया जिसमे तीर्थ, मदिर, मस्जिद, मूर्ति पूजा को कोई स्थान नहीं दिया गया।

उनकी भक्ति निष्काम भक्ति थी।[2] कबीर के मतानुसार ब्रह्म सबके हृदय मे विद्यमान है केवल अतंर्दृष्टि प्रेम के द्वारा प्रत्येक जीव मे दिखाई देता है।

ब्रह्म के स्वरूप के विषय मे कबीरदास जी का कहना है कि ब्रह्म न निर्गुण है न सगुण, वह निर्गुण सगुण सीमा से परे है।[1]

संक्षेप में कबीरदास जी ने ज्ञान को सत्य की प्राप्ति के लिये उपयोगी माना। वह सत्य चाहे निर्गुण राम से सबंधित हो, या उसकी प्राप्ति के साधनो के विषय मे। कबीरदास जी भक्ति मे विश्वास करते थे, उनका मत

---

१. सन्तो, सहज समाज भली।
साईं ते मिलन भयो जा दिन ते, सुरत न अन्त चली।
आँख न मूँदू, कान न रूँधूँ, सुदर रूप निहारूँ।
कहूँ सो नाम सुनू सो सुमिरन, जो करूँ कुछ करूँ सो पूजा।
गिरह उद्यान एक सम देखूँ, भाव मिटाऊँ दूजा।
जहँ जहँ जाऊँ सोई परिकरमा, जो कुछ करूँ सो सेवा।
जब सोऊँ तब करूँ दडवत, पूजूँ और न देवा।
याद्व निरंतर मनुआँ राता मलिन वचन का त्यागी।
उटत बैटत कबहूँ न बिसरे, ऐसी तारी लागी।
कहै कबीर यह उन्मनि रहनी, सोई पर गट करि गाई।
सुख दुःख के इक परे परम सुख, तेहि मे रहा समाई।

—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी : कबीर, पृ० २४६।

२. संतो धोखा कासूँ कहिये।
गुण मे निरगुण निरगुण मे गुण है, बाट छोड़ि क्यूँ बहिये।

—कबीर ग्रंथावली, पृ० १४६।

१. गोब्यंदे तू निरंजन तू निरंजन तू निरंजन राया।
तेरे रूप नही रेख नहीं मुद्रा नही माया।

—कबीर ग्रंथावली,

था कि भक्ति के द्वारा ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है।[1] कबीरदास जी ने हिंदू मुसलमानो मे एकता स्थापित करने की चेष्टा की। उनके अनुसार हिंदू तथा मुसलमान दोनो ही एक ब्रह्म द्वारा निर्मित हैं। दोनो मे कोई अंतर नही है।[2]

इस प्रकार कबीर ने मध्ययुग मे व्याप्त कुरीतियो तथा अराजकता को हटाने का प्रयत्न किया। उन्होने लोभ, मोह, कपट, तृष्णा को हटाकर दया, क्षमा, सहनशीलता, विश्वबंधुत्व का सदेश दिया। कबीरदास जी ने हिंदू मुसलमानो मे भी सामजस्य स्थापित करने का महान प्रयत्न किया, उस समय धर्म के नाम पर घोर अत्याचार हो रहे थे, धर्म मे ईश्वर साधना से अधिक कर्मकाड पर बल दिया जा रहा था, ऐसे समय मे कबीर ने, जिस धर्म का मार्ग जनता को दिखाया वह नैतिक तथा मानवता वादी था। कबीर ने जनता को अमर सदेश दिए और उनकी वाणी भी अमर हो गई।

रैदास—सत रैदास जाति के चमार थे। उन्होने अपने कई पदों में अपने को चमार कहा है।

'ऐसी मेरी जाति विख्यात चमारा। हृदय राम गोविंद गुन सारा।'[3]

ये काशी मे रहते थे और अपने भगवत भजन में लीन रहा करते थे, इन्होने अपनी जाति का व्यवसाय कभी नही छोडा।[4] रैदास जूते बनाया करते थे और आडबर युक्त जीवन से दूर रहा करते थे। भक्तमाल के अनुसार ये बड़े सिद्ध सत थे।[5]

इनके दिखाये हुए मार्ग मे किसी प्रकार की वक्रता या अटपटापन नही है। इन्होने ज्ञान के दिखावे का आडबर भी नही किया। इनके मत से

---

१. मन रे हरि भजि हरि भजि हरि भजि भाई।
जा दिन तेरो कोई नाही, ता दिन राम सहाई।
—कबीर ग्रथावली, पृ० १२७।

२. कहे कबीर एक नाम जपहु रे, हिंदू तुरक न कोई।
—कबीर ग्रंथावली, पृ० १०६, ५७।

तू हिंदू तुर्क का कर्त्ता एकै, ताकी गति लखी न लाई।
—कबीर ग्रथावली, १०६-५८।

३. रैदास जी की बानी, पृ० २१।

४. आदि श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी, पृ० ६९८।

५. भक्तमाल, नाभादास कृत, पृ० ४५२।

मनुष्य गृहस्थ जीवन मे रहते हुए भी अपनी साधना के मार्ग की ओर अग्रसरित हो सकता है।

दादू दयाल—इन्होने अपना अलग पंथ चलाया। जो दादू पंथ के नाम से प्रसिद्ध है। पंडित सुधाकर द्विवेदी के अनुसार इनका जन्म जौनपुर मे हुआ था।[1] लेकिन क्षिति मोहन ने कहा है कि जन श्रुतियों से ऐसा नही लगता कि, इनका जन्म अहमदाबाद मे हुआ था। लेकिन इनके पंथ मानने वाले अहमदाबाद मानते हैं।[2]

आचार्य क्षिति मोहन ने उन्हे मुसलमान कहा है।[3] दादू दयाल प्रायः धुनियाँ मुसलमान कहे जाते है। इनके शिष्य रज्जब उन्हे पीर कहते है।

प्रेमाश्रयी शाखा

ज्ञानाश्रयी शाखा के सत और भक्ति के द्वारा ईश्वर को प्राप्त करने मे विश्वास रखते है। पर प्रेमाश्रयी शाखा के कवियो ने, यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि प्रेम के द्वारा सरलता से ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है।[4]

मलिक मुहम्मद जायसी—सूफी कवियो मे जायसी सर्वश्रेष्ठ माने जाते है। इनका जन्म कब हुआ यह कहना कठिन है। अखरावट मे जो कि १५२८ मे लिखी गई थी, जायसी ने अपने जन्म के विषय मे लिखा है—

भा अवतार मोर नव सदी।
तीस बरस ऊपर कवि बदी।[5]

अपने प्रसिद्ध ग्रंथ पद्मावत मे शेरशाह की प्रशसा की है। इससे जान पडता है कि कवि ने कुछ पद्यो की १५२० ई० मे रचना की थी। पर ग्रंथ को १९-२० वर्ष बाद शेरशाह के समय मे पूरा किया।

---

१. पंडित सुधाकर द्विवेदी, दादू दयाल की बानी, प्रस्तावना।
२. क्षिति मोहन सेन . दादू, उपक्रमणिका।
३. वही, पृ० ११।
४. हरिकान्त श्रीवास्तव : भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, पृ० १३३।
५. जायसी ग्रंथावली (स० रामचद्र शुक्ल), ना० प्र० सभा० काशी, आखिरी कलाम दो० ४, पंक्ति १।

आचार्य रामचद्र शुक्ल ने लिखा है—इन कवियों ने लौकिक प्रेम के बहाने, जिस प्रेम तत्व का आभास दिया है, वह प्रियतम् ईश्वर को मिलाने वाला होता है।[1] इसी तथ्य को जायसी एक पद्य मे कहते है कि इस प्रेम तत्व द्वारा ही मनुष्य उस अव्यक्त सत्ता से समरस हो जाता है।[2]

मुसलमान होते हुए भी जायसी ने हिंदू कथा को लिया तथा तत्कालीन हिंदू समाज, हिंदुओ के तीर्थ स्थान और देवताओ, उनके सामाजिक विश्वासों का विस्तृत वर्णन किया है। कबीर ने हिंदू मुसलमानो के वैमनस्य को दूर करने का जो प्रयत्न किया, उसका प्रभाव स्थायी न हुआ क्योंकि उनकी उक्तियाँ हृदय स्पर्शी नही थी पर जायसी ने शुद्ध प्रेम का मार्ग रखा और यह प्रमाणित करने की चेष्टा की कि हिंदू हो या मुसलमान प्रेम के द्वारा सभी ईश्वर को प्राप्त कर सकते है। इन्होंने हिंदू तथा मुसलमानो मे सामजस्य स्थापित करने की चेष्टा की। दोनो के हृदय की अजनबीपन मिटाकर एक रागात्मक सबध स्थापित करने वाले सतों मे जायसी का नाम प्रमुख है।

सगुण धारा—राम भक्ति शाखा—उत्तरी भारत में

तुलसीदास—रामानद के बाद राम भक्ति के प्रचारको मे तुलसीदास जी का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। मध्यकाल मे ईश्वर भक्ति करने वालो की दो प्रधान धाराएँ थी—सगुण, निर्गुण। दोनो ही एक दूसरे को अमान्य समझती थी, पर तुलसीदास ने सगुण तथा निर्गुण मे कोई भेद नही माना। इस प्रकार इनका दृष्टि कोण समन्वयवादी था। तुलसीदास के द्वारा निर्गुण सगुण ब्रह्म मे कोई भेद नही है।[3]

सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा,
गावहि मुनि पुरान बुध वेदा।

---

१. रामचद्र शुक्ल . हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० १७८।

२ मानुप प्रेम भएउ वैकुठी।
नाहि त काह, छार भरि मूठी॥
जायसी ग्र थावली : पद्मावत मडपगमन, खंड दो० १६६, पक्ति २।

३. वालकांड, दो ११६, चौ० १।

जो ब्रह्म निर्गुण निराकार अव्यक्त तथा अजन्मा है, वही निर्गुण ब्रह्म कभी कभी भक्तो के प्रेमवश सगुण रूप धारण कर लेता है—

अगुन अरूप अलख अज जोई।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई ॥[१]

तुलसीदास जी ने गुरु की महिमा को स्वीकार किया है। गुरु के द्वारा ही अज्ञान, अनित, अंधकार दूर होता है। इसलिये गुरु के द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलने से ही मन के सब पाप नष्ट होते हे।[२] तुलसीदास जी कहते हैं कि गुरु के क्रोधित होने से उनके कोप से कोई रक्षा नही कर सकता है। यदि विधाता कोप करे तो गुरु बचा सकता है, पर यदि गुरु से विरोध हो, तो ससार मे कोई रक्षा नही कर सकता—

राखै गुरु जो कोप विधाता।
गुरु विरोध नहि कोउ जगत्राता।[३]

तुलसीदास जी के विचार क्रातिकारी थे। उन्होने सगुण, निर्गुण के झगडो में न पडकर एक परम शक्ति राम की उपासना का संदेश दिया। उन दिनो शैव तथा वैष्णवों मे वैमनस्य था। तुलसीदास जी ने शिव को भी राम का भक्त बताया तथा राम को भी शिव की आराधना करते हुए दिखाया।[४]

डा० नाहर के अनुसार भक्ति आंदोलन को तुलसीदास जी की महान् देन है। तुलसीदास जी ने अपने व्यक्तित्व एवं साहित्य से संपूर्ण उत्तर भारत को अपने जीवन काल ही मे प्रभावित किया था। वैष्णव धर्म मे उन दिनों वाह्याडंवर तथा दुर्गुण आ गए थे। उनके निवारण का जो कार्य आचार्यो तथा भक्त कवियो ने प्रारभ किया था, उसे तुलसी ने पूरा किया।[५] उन्होने वाह्याडंवर तथा छल कपट से रहित भक्ति का सरल मार्ग जनता के सामने प्रस्तुत किया।

---

१. रामचरित मानस · बालकाड, दोहा ११६, चौ० २।
२. उत्तर काड दोहा ११२, चौ० ३-४।
३. तुलसी मानस : उत्तरकाड दो० १६६, चौ० ३।
४. रतिभानु सिंह नाहर : भक्ति आदोलन का अध्ययन, पृ० ३२२।
५. वही, पृ० ३२२।

कृष्ण भक्ति शाखा

श्रीकृष्ण की लीलाओं का गान करने की परंपरा भारत वर्ष मे १०वी ११ वी शताब्दी से प्रारभ हो चुकी थी। श्रीकृष्ण की कथा भी प्राचीन काल से भारत वर्ष मे प्रचलित थी। वल्लभाचार्य के आगमन से कृष्ण भक्ति को नई प्रेरणा मिली।

वल्लभाचार्य ने पुष्टि मार्ग का प्रचार किया। पुष्टि का अर्थ है भगवान की भक्ति करके उनकी कृपा प्राप्त करना।[1] पुष्टि का विशेष वर्णन वल्लभाचार्य ने पुष्टि प्रवाह मर्यादा भेद मे किया।[2] अनुभाष्य मे वल्लभाचार्य जी कहते है कि शास्त्रों के अनुसार ज्ञान से मुक्ति प्राप्त होती है तथा भक्ति भी ज्ञान के साधन से मिलती है, इन साधनो के द्वारा प्राप्त हुई मुक्ति का नाम मर्यादा है। ये साधन सर्वसाध्य नही है। अतः अपनी ही शक्ति से ब्रह्म को मुक्ति भक्तो को देता है, वह पुष्टि कहलाती है।[3] वल्लभाचार्य के विचारों से यह स्पष्ट है कि पुष्टि का संबंध शरीर से नही, भगवान के अनुग्रह से है।

वल्लभाचार्य ने गोपिकाओ की भक्ति को अपना आदर्श माना है, गोपीकाएँ भी शुद्ध प्रेम की प्रतीक है, अतः पुष्टि मार्गीय भक्तो को गोपीकाओ को गुरु मान कर उन्ही के आचरण का अनुकरण करना चाहिए[4]।

वल्लभाचार्य के अनुसार 'सृष्टि जडात्मक तथा जीवात्मक इन दो तत्वों के संमिश्रण से निर्मित हुई है जो कुछ संसार मे दिखाई देता है, वह चैतन्य है तथा जड प्रकृति है, इन दोनो के मिलने से सृष्टि उत्पन्न हुई है। ससार मे जो कुछ वस्तुएँ है, नष्ट नही होती। केवल उसका रूप परिवर्तित हो

---

१. तत्वदीप निबंध, शास्त्रार्थ प्रकरण, श्लोक ४६।

२ कश्चिदेव हि भक्तो हि योमद् भक्त इतीरणात्।
सर्वत्रोत्कर्ष कथनापुष्टि रस्तीति निश्चयः ॥४॥
षडस ग्रथ . पुष्टि प्रवाह मर्यादा भेद पृ० २-४।

३ कृति साध्यं साधनं ज्ञान भक्ति रूप शास्त्रेण बोध्यते।
ताभ्वा विहिताभ्या मुक्ति मर्यादा।
तद्रि हितानामपिस्व स्वरूप बलेन स्वप्रायण पुष्टिरित्युच्येत।

४. षोडश ग्रथ : निरोध लक्षणम्, पृ० २-४।

जाता है। वस्तुओं का एक रूप से दूसरे में परिवर्तित हो जाना अविर्भाव तथा तिरोभाव कहलाता है।[1]

वल्लभाचार्य ने श्रीकृष्ण को परब्रह्म माना है। श्रीकृष्ण सत्, चित्, आनंद है तथा सर्वत्र व्याप्त है। श्रीकृष्ण मे अनेक दिव्य गुण है। वही ब्रह्मा, विष्णु, शिव के रूप में संसार की उत्पत्ति, पालन तथा प्रलय करते है।[2] यही कृष्ण कभी कभी सगुण रूप मे शक्तियों राधा, चन्द्रावली, श्री स्वामिनी के साथ अवतार लेते हैं। वल्लभाचार्य जी के मतानुसार श्रीकृष्ण का स्वरूप निर्गुण है, परंतु निर्गुण होते हुए भी वे सगुण हैं। भक्तों के लिये वे सगुण रूप धारण कर संसार मे लीलाएँ करते है।

इस प्रकार वल्लभाचार्य ने कृष्ण भक्ति की धारा देश में प्रवाहित की। उस समय समाज मे अनेक कुरीतियाँ आ गई थी। धर्म मे भी अनेक वाह्याडंबर तथा कर्मकाड आ गए थे। देश की सत्ता मुसलमानो के हाथ मे थी। ऐसे समय मे जब जनता दुःखी तथा निराश्रित थी, वल्लभाचार्य जी ने श्रीकृष्ण की भक्ति का उपदेश दिया। इससे उत्तरी भारत मे क्रांति की एक लहर दौड गई। उन्होने श्रीकृष्ण को परम ब्रह्म बताकर जनता को श्रीकृष्ण की शरण मे जाने को कहा। निराश्रित जनता को एक आश्रय प्राप्त हुआ और कृष्ण की उपासना करने लगे। इसी समय कुछ प्रतिभाशाली कवि भी, इस ओर आकृष्ट हुए तथा उस मत का प्रसार देश के बहुत बडे भाग मे हुआ।

सूरदास—सूरदास का नाम अष्ट छाप के कवियो मे सर्वोपरि है।[3] सूरदास जी ने श्रीकृष्ण को ब्रह्म माना है जो आदि, अनादि, अविनाशी तथा अनंत है।[4] ब्रह्म के द्वारा ही ये सृष्टि निर्मित हुई है तथा ब्रह्म अपने विराट रूप मे चौदहों लोको मे व्याप्त है।[5] ब्रह्म निर्गुण तथा निराकार है पर भक्तों की रक्षा के लिये सगुण रूप मे अवतार लेता है।[6] सूरदास जी ने श्रीकृष्ण के बालरूप की आराधना की थी. उन्होने श्रीकृष्ण

१. रामचंद्र शुक्ल : सूरदास, पृ० २३८।
२. सिद्धांत मुक्तावली, श्लोक ३-१०।
३. रामकुमार वर्मा : हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ५१५।
४. सूरसागर, ६६-३।
५. वही, ३-१३। ६. वही २-३६।

की बाललीलाओं का गान किया है।[1] सूरदास का वात्सल्य वर्णन हिंदी साहित्य में बेजोड़ माना जाता है। उन्होने बाल चेष्टाओं का चित्र उपस्थित किया है।

राधा कृष्ण के प्रेम को लेकर कृष्ण भक्ति की जो काव्य धारा चली, उसमें लीला पक्ष की प्रधानता है। कृष्ण के पक्ष मे गोपियाँ इतनी लीन है कि मुरली तक उन्हें नही सुहाती।[2]

जब उद्धव गोपियों के निर्गुण ब्रह्म की उपासना करने को कहते है तब वे निर्गुण ब्रह्म का खंडन करती है तथा सगुण ब्रह्म को श्रेष्ठ बताती है।[3]

अंत में वे ये कहती है कि उन्हे श्रीकृष्ण का सगुण रूप निर्गुण निराकार ब्रह्म की अपेक्षा अधिक रास आता है।[4]

सूरदास ने यज्ञ, तप, जप को स्थान दिया है पर भक्ति के बिना वे इन सबको निरर्थक मानते है—

यज्ञ, जप, तप नहिं कीन्हयो, अल्प मति विस्तारी।[5]

अत में यही कहा जा सकता है कि कृष्ण काव्य का प्रतिनिधि कवि सूरदास को माना जा सकता है। सूरदास ने उस काल के व्यक्ति के जन्म से मृत्यु तक का चित्रण किया है। इनमे इन्होने स्पष्ट किया है कि मध्य काल मे व्यक्ति विलासिता, झूठी व्याप्त शान, छल कपट आदि से युक्त था। ऐसे समय में जबकि मनुष्य व्याप्त विनाश की ओर जा रहा था। सूरदास ने जनता को भक्ति संदेश दिया। सूरदास ने सासारिक दु.खो का कारण भक्ति-अभाव बताया है। सूरदास के अनुसार भगवद्‌भजन मे लीन व्यक्ति सांसारिक दुःखो से मुक्ति प्राप्त कर चरम आनंद का अनुभव प्राप्त करता है।[6]

कुंभनदास—इनका लिखा कोई ग्रंथ नही है। इनके रचे हुए कुछ फुटकर पद हैं। इनकी संख्या लगभग २०० है। इन्होने ब्रजभाषा का प्रयोग

---

१. सूरसागर, पृ० ११६ पद १४।
२ वही, पृ० ३१६, पद १६३, दशम स्कंध।
३. वही, दशम स्कध, पद ६५५। ४. वही १५०४।
५. ऊनो कर्म कियो मातुल वधि, मदिरा मत्त प्रवाद।
सूर श्याम एते अवगुन मे निर्गुन ते मति स्वाद॥
६. सूरसागर, पद ६०।

किया है। अन्य अष्टछापी कवियो की भाँति कुभनदास ने भी श्रीकृष्ण को अपना परमाराध्य माना है।[१] उनकी लीलाओं का गान किया है।[२]

हित हरिवंश—हित हरिवंश वल्लभ संप्रदाय के प्रवर्तक माने जाते है। इनके पिता का नाम व्यास मिश्र तथा माता का नाम तारा रानी था। इनका जन्म मथुरा के पास एक गांव मे हुआ था।[३] राधा वल्लभ संप्रदाय के पडित गोपाल प्रसाद शर्मा ने अपनी पुस्तक मे इनका जन्म सं० १५३०माना है।[४]

इनका जन्म रामचंद्र शुक्ल के अनुसार सं० १५५६ मे हुआ था।[५]

हित हरिवंश की अराधा राधा हैं, वे राधा की अराधना इसलिये करते है क्योकि भगवान कृष्ण भी राधा के भक्त है।

सुनि मेरी बचन छबीली राधा, तैं पायो रस सिंधु अगाधा।
जाहि विरंचि रमापति नाये तापे ते वनफूल विनाये।
जो रस नेति नेति श्रुति भाख्यो ताको तैं अधर सुधारस चाख्यो।
तेरो रूप कहत नहिं आवे (जैश्री) हित हरिवंश कछुक जस गावे।[६]

इस संप्रदाय की भक्ति सखी भाव की है। 'सखी भाव' का तात्पर्य है कि जीवात्मा या साधक की राधा वल्लभ की सखी रूप मे स्थिति अर्थात् जिस प्रकार ललिता आदि अतरंग सखियाँ राधा कृष्ण की प्रेम लीलाओ को देखकर आनंदित होती थी, उसी प्रकार जीव भी सब सखी रूप मे राधा कृष्ण की लीला का दर्शन कर प्रसन्न होता है तथा सखियो के मार्ग से ही राधा कृष्ण की उपासना करता है, तो राधा कृपा कर उसे अपनी सहचरी बना लेती है। राधा वल्लभ सप्रदाय की भक्ति इसी भाव की है।[७]

हित हरिवंश जी के मतानुसार श्रीकृष्ण राधा की भक्ति करने में ही सुख प्राप्त होता है।[८] उन्होने नववी भक्ति का वर्णन किया है। श्रवण,

---

१. कुभनदास, १, सं० ब्रजभूषण। २. वही, ३१।
३. मीरा वृहद् पद संग्रह : पद ३१२, पृ० १६३। ४. वही २३३।
५. विजयेंद्र स्नातक : राधा वल्लभ सप्रदाय, सिद्धात और साहित्य, पृ० ८७।
६. गोपाल प्रसाद शर्मा : श्रीहित चरित्र, पृ० ५-६।
७. रामचंद्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० १७४।
८. हित्त चौरासी पद संख्या १८।

कीर्तन, तन्मयता, वृंदावन में निवास, नाम स्मरण आदि द्वारा भक्ति करनी चाहिए।[1]

नाम का महत्व भी हित हरिवंश जी ने स्वीकार किया है।[2]

हितहरिवंश संसार को छोड़कर, लोक-लज्जा की परवाह न कर श्रीकृष्ण के ध्यान में डूबे रहना चाहते हैं। इस भाव का आश्रय एक गोपी के माध्यम से उन्होने प्रकट किया है[3]—

हित हरिवंश ने लौकिक कर्मकांडो को कोई महत्व नही दिया, केवल प्रेम भक्ति द्वारा राधा कृष्ण की आराधना का मार्ग दिखाते रहे। राधा वल्लभ संप्रदाय में इस प्रेम मार्ग को अत्यंत दुरूह बताया गया है—

प्रेम पंथ ऐसो कठिन सब कोए निबहत नाहिं।

अकबर का समय हिंदुओं के लिये हर्ष और उल्लास का युग था। लगभग ३५ वर्ष बाद उनके शाति की साँस आई थी। अब वे स्वतंत्रता पूर्वक अपने धर्म का पालन कर सकते थे। इसलिये उनकी साहित्य सरिता भी उमड़ पडी थी। इस काल मे भट्टोजी दीक्षित ने 'सिद्धान्त कौमुदी' लिखी और शुद्धाद्वैत संप्रदाय के आचार्य वल्लभाचार्य ने भगवान टीका लिखी और 'अनुभष' नामक वेदात सूत्र का भाष्य लिखा गया। सास्कृतिक दृष्टि से तुलसीदास और वल्लभाचार्य अकबर से भी महान् थे। इन दोनों की देन, इस समय भी हिंदू जाति को अनुप्राणित कर रही है।

सर जार्ज ग्रियर्सन ने जो हिंदी का अच्छा विद्वान् था, रामायण के विषय में लिखा है कि, यह बड़ा उत्तम ग्रंथ है। इसमे विषय के साथ-साथ काव्य शैली बदलती जाती है। इसके कई स्थल करुण रस से सराबोर हैं। इस विद्वान् का कहना है कि भारतीय साहित्य मे तुलसीदास जी का स्थान सबसे ऊँचा है।

अकबर के समय मे फारसी साहित्य की ऐसी उन्नति नही हुई, जैसी हिंदी की। फारसी के विद्वानों ने या तो अकबर के आदेश से संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद किया, या उन्होने स्वतंत्र रूप से अकबर की तारीफ मे कविताएँ लिखी। फारसी के अनुवाद तो इसलिये लोकप्रिय नही हुए कि भारतवर्ष

---

१. हित्त चौरासी पद सख्या ७।

२. शरण विहारी गोस्वामी, कृष्ण भक्ति काव्य मे सखीभाव, पृ० २६।

३. राधा सुधानिधि श्लोक २४०।

फारसी भाषा के सरकारी दफ्तरों में काम आती थी या बड़े-बड़े लोग आपस मे हिंदू अमीरों के घर मे महाभारत और वाल्मिकि रामायण की कथाएँ हुआ करती थी। इसी प्रकार गाँव और कस्बों में भी लोग इन कथाओं से परिचित थे। मुसलमान किसी अन्य धर्म की वात सुनने और समझने के लिये उत्सुक नही थे। इसलिये वे इन अनुवादों को प्रायः पढते नही थे। दरबारी कविताएँ एक क्षण के लिये सुन ली जाती थी और फिर भुला दी जाती थीं लेकिन हिंदी का ज्यादा महत्व थी।

अकवर के काल मे हिंदी के मुसलमान कवि हुए है। इन मुसलमान कवियो मे से कुछ ने तो भारतीय संस्कृति की इतनी सफल व्याख्या की कि अगर उनकी रचनाओ से उनके नाम हटा दिए जायँ तो वे हिंदू विद्वानो और कवियो की रचनाओ से विभिन्न प्रतीत नही होंगी। ऐसे मुसलमान कवियो मे अब्दुर्रहीम खान-खाना का नाम सर्वोपरि है। वे फारसी, अरवी, तुर्की के समान विद्वान् होने के साथ ही सस्कृत के प्रथम श्रेणी के विद्वान् और हिंदी तथा राजस्थानी में श्रेष्ठ कवि थे। वास्तव मे हिंदी काव्य का कोई भी इतिहास सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी अब्दुर्रहीम खानखाना की देनो के उल्लेख के विना अधूरा ही रहेगा। वे तुलसीदास जी के मित्र भी थे। हिंदी के एक दूसरे मुसलमान कवि रसखान थे। वे कृष्ण भक्त थे और उन्होने वृंदावन के वन कुजो मे कृष्णलीला का वर्णन करते हुए वहुत से प्रथम श्रेणी के पद लिखे है। अकबर के और वहुत से दरवारी जैसे— बीरवल, मानसिंह, टोडरमल इत्यादि अन्य लोग हिंदी कवियों को संरक्षण देते थे। अकवर स्वय हिंदी कवियों का प्रेमी था और उसने कई हिंदी कवियो को सरक्षण भी दिया। उसने कुछ स्वय हिंदी में कविताएँ लिखी है (आईन-ए-अकवरी भाग १, पृ० ५२०)। अकवर के शासन काल मे हिंदी की उन्नति हुई।

इस युग की सवसे वडी महत्वपूर्ण वात यह थी कि साहित्यिक रचनाएँ दरवार और अमीरो तक ही सीमित नही रही। यह वास्तव मे हिंदी का प्रसार समाज के सभी वर्गों और क्षेत्रों मे हुआ। वडी संख्या मे हिंदी के विद्वान् और कवि हुए, जिन्हे मुख्य रूप से स्थानीय और धनी मानी लोगों का संरक्षण प्राप्त था।

एकादश अध्याय

लोक-कल्याण

लोक-कल्याण

स्टेनली लेनपुल के अनुसार—'राजाओ और राजदरबारों के विवरणों, की अपेक्षा जनसाधारण का इतिहास सामान्यतः अधिक प्रेरणात्मक और शिक्षाप्रद माना जाता है।[1] किंतु, सत्य होते हुए भी, केवल पाश्चात्य लोगो के लिये ही यह बात ग्राह्य समझी जानी चाहिए, वे लोग जो आगे बढने का प्रयत्न करते है, अथवा कम से कम परिवर्तनशील है। पूर्व मे लोग बदलते नही है, और वहाँ प्रगतिशील जातियो की अपेक्षा कही अधिक, 'गरीबो के सरल इतिवृत्ति' वे चाहे जितना मर्मस्पर्शी और कारुणिक क्यों न हों, उन अधिक भाग्यशालियो की जिंदगियो की तुलना मे जिन्हे अवसर, शक्ति और ज्ञान बहुत कुछ दिया जा चुका है, अवर्णनीय रूप से तुच्छ और नीरस है।

मुगल शासन के अतर्गत लोकहित कार्य एवं अन्य जनहितकारी योजनाओ का अनुष्ठान केंद्रीय शासन द्वारा होता था, और उसका व्यय भी वही वहन करता था। किंतु बहुत से कार्य स्थानीय अधिकारियों द्वारा पूरे किए जाते थे और कभी-कभी व्यय मे भी उन्हे भाग लेना पड़ता था। केंद्रीय शासन द्वारा प्रारंभ किए गए निर्माण कार्यो के अतिरिक्त अनेक परोपकारी और लोक हितकारी परियोजनाएँ न केवल स्थानीय निकायो की ओर से कार्यान्वित होती थी, वरन्, अधिकारी वर्ग और धनाढ्य नागरिक भी अपनी ओर से उन्हे चलाते थे। वस्तुत. सपन्न व्यक्तियों के लिये समाज सेवा के लिये दान देना एक धार्मिक कर्तव्य माना जाता था। यह तथ्य देश मे अनेक उद्यानो, प्याऊ, विश्रामालायों, धर्मशालाओ, कुओ, तालाबों और जलाशयो, स्नान और सिंचाई दोनो के लिये, के अस्तित्व से आज भी प्रकट होते है।[2]

---

१. लेनपुल, मिडविल इंडिया अंडर मोहम्डन रूल, १९०३, भूमिका, पृ० ५।

२. परमात्माशरण, पृ० ४०२-०३।

मुगल सम्राटों के लोक-हित कार्यो मे सबसे प्रमुख उनके भवन थे। मुगल सम्राट् भवन निर्माता थे। अपने कुछ महान् एवं उत्कृष्ट भवनों

मुगल सम्राट् प्रजा के हित के लिये वस्तुतः कल्याणकारी और उपयोगी सार्वजनिक निर्माण कार्य में भी कुछ कम उत्साही न थे। देश में उन्होंने अनगिनत कुएँ, तालाब, जलाशय, पुल, नहरे, बाग, बावली, बाँध, नौका-घाट, स्नान घाट, हम्माम, सराय, विश्राम घर, सार्वजनिक पाक-गृह, सडकें, औषधालय, मदिर विद्यालय तथा मस्जिदें, आदि का निर्माण कराए।[1]

शेरशाह कई सार्वदेशिक राजमार्ग (सड़कें) बनवाए थे, जो उसके साम्राज्य मे पूरब से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण तक दूरस्थ महत्वपूर्ण स्थानों को जोडती थी। इन मार्गों के किनारे उसने यात्रियों के आराम के लिये १७०० सराएँ बनवाई तथा फलदार वृक्ष लगवाए।[2]

उसी के समान ही मुगल शासकों ने भी सड़कें और सराएँ बनवाईं और उनके दोनो किनारे पर फलदार वृक्ष लगवाए। १९वे इलाही वर्ष में आगरा के यात्रियो के लिये पथ प्रदर्शनार्थ प्रत्येक कोश पर मीनार (स्तम्भ) बनवाने और उनको हिरन की सीगो से अलंकृत करने का आदेश दिया गया था।[3] २३वें वर्ष मे राजधानी के विभिन्न मुहल्लों मे सराय बना कर उदार और दानी सज्जनो के अधीन किए जाने की आज्ञा दी गई थी ताकि वे निर्धन और दरिद्र यात्रियो को आश्रय दे सकें।[4]

पेलसार्ट का कहना है कि 'मुगल सम्राटों के समान व्यापारियों की सुविधा तथा यात्रियो के आराम के लिये सराय अथवा विश्रामालय

के लिये, जो विश्व-वास्तु-कला क्षेत्र में अद्वितीय है। उनकी रुचि मुख्य रूप से मकबरे, मस्जिदे, दुर्ग प्रासाद, मीनारें और विशाल सभा भवनों को बनवाने में थी। उन्होंने इन दिव्य भवनों को अत्यंत मनोरंजक उपवनों और उत्कृष्ट चित्ताकर्षक नहरो से अलंकृत किया, जिससे उनके सौंदर्य मे अपार वृद्धि हुई।

(परमात्माशरण, पृ० ४०४)।

१. परमात्माशरण, पृ० ४०५।
२. डा० कानूनगो, शेरशाह, पृ० २९१।
३. अ० ना० ३, (अनु०), पृ० १५६।
४. वही, पृ० ३८१; आईन, १, (अनु० लासपेन), पृ० २२२।

और उपवन एवं महल निर्माण करवाते थे। किसी ने भी पहले कभी नही बनवाए थे।[1]

आगरा तक यात्रा करते समय विथिंग्टन नामक एक अंग्रेज यात्री सडक के दोनो ओर वृक्ष लगे देखकर सहसा कह उठा था—'ऐसा अतुलनीय दृश्य मेरी आँखों ने कभी न देखा था।[2]'

पीटर मंडी ने अपनी देखी कतिपय सरायो का उल्लेख किया है जिनमे से एक आगरा मे नदी के उस पार स्थित थी। यह इतनी विशाल थी कि उसमे ५०० घोड़ो और २-३ हजार यात्रियो के ठहर सकने के लिये पर्याप्त स्थान था। यह समूची पत्थर की बनी और दो उपवनो के बीच स्थित थी।[3] इन सरायो को योग्य अधीक्षको की देखरेख मे रखा जाता था और उन्हे गरीबो तथा साधारण यात्रियो को ठहरने के लिये बनाया गया था।[4] आगरा से लाहौर तक यात्रियो के लाभार्थ प्रत्येक कोस पर मीनारे और प्रत्येक तीन कोस पर कुओ के निर्माण का आदेश था।[5] थेविनों ने भी आगरा के पास मीनार, कुए और सरायो को देखा था।[6] बर्नियर ने भी सडको के किनारे सराय, मिनारे तथा कुएँ काफी संख्या मे देखा था। ये सिचाई और पीने दोनो के काम देते थे।[7]

१६०३ मे यह योजना साम्राज्य के सभी भागो मे लागू कर दी गई थी और जो भी यात्री इन सरायों मे रात काटने को ठहरते थे उनके लिये आश्रय और भोजन की व्यवस्था रहती थी। अबुल फजल ने लिखा है कि

---

१. पेल्सार्ट (मोरलैंडकृत अनु०), पृ० ५०।
२. विथिंग्टन, पृ० २४४; पीटर मंडी, पृ० ८३-८४।
३. १५८६ मे काबुल अभियान के समय खैबर के पूरे दर्रे मे सडक को समतलकर उसे पहियेदार सवारियो के लिये चौड़ा किया गया था। (अकबरनामा, ३, पृ० १११)।
४. अकबरनामा, ३, पृ० ११३; आईन, १, पृ० २२२।
उसी प्रकार की एक सराय उसने पटना मे देखी थी। (पीटरमंडी, पृ० ७६)।
५. रो० ऐंड वे० २, पृ० १००। ६. थेविनो, ३, पृ० ४२-४३।
७. बर्नियर (स्मिथ सं०), पृ० २८४।

'उदार सम्राट् ने यात्रियों के सुख पर नजर डाली और आदेश दिया कि राजपथों की सरायों में निवास-स्थान और रसोईघर स्थापित किए जायें और खाली हाथ यात्रियों के भोजन की वस्तुएँ तैयार रखी जायें ताकि वे जब यात्रा से थके-माँदे आए बैठकर सुस्ता लें तब वे बिना परेशानी के भोजन अपने मुँह में डाल सकें[1]।

कुंड, तालाब और कृत्रिम झीलें बनवाना भारत की एक अति प्राचीन सामाजिक प्रथा थी। यह सुंदरतम, सुगमतम और सर्वाधिक उपयोगी संस्था थी। हिंदू राजा और उनकी धनी और निर्धन प्रजा ने समान रूप से जहाँ कहीं भी संभव हुआ, कुएँ, कुंड, तालाब, जलाशय और झीलें बनाने में बड़े उत्साह से योग दिया और उनके इस उत्साह के प्रमाण स्वरूप संपूर्ण देश में बिखरे हुए इस वर्ग के असंख्य लोक हितकारी वास्तु के रूप में पाते हैं[2]। भारत में कोई ऐसा गाँव नहीं है, जहाँ कच्ची मिट्टी के बाँध का तालाब न हो अथवा कोई ग्राम समूह पक्के कुंड या बावली से रहित हो। स्त्री और पुरुषों के लिये अलग अलग घाट, ढोरों के लिये पीने के जलाशय, ईंटों अथवा पत्थर के चबूतरे, मंदिर, एक दो विश्रामालय, पाक गृह आदि इन कुंडों के सामान्य लक्षण हैं। बनारस जिले में शहर में सैकड़ों के अतिरिक्त, ग्रामों में एक एक आध आध मील पर ऐसे कुंड देखने को मिलेंगे[3]। उत्तर प्रदेश के अन्य भागों में उनकी संख्या कम अवश्य है, पर उनका अभाव कहीं भी नहीं है।

---

१. अकबरनामा, ३, (अनु०), पृ० ८१४ (अ० अनु०), ३, पृ० १२३६।

२. आगरा गवर्नमेंट गजे, खं० ११। अंक संख्या ६, दिसंबर २८-२-१८८४; लेफ्टिनेंट गवर्नर, नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज, ता० १० फरवरी, १८४८, पृ० ७२-७३।

३. बेडेन पावेल, लैंड रेवेन्यू इन ब्रिटिश इंडिया, (१९१३), पृ० १०-११।

१५७० ई० में पहली बार अकबर नागौर गया। इस समय तक वह राजस्थान के अधिकांश भू भागों को जीत चुका था। नागौर में पानी की कमी को सम्राट् ने देखा तथा वहाँ के तीन बड़े बाँधों में से एक को खोद कर गहरा करने के लिये तुरंत आदेश दिये और उसका नाम 'शुक्र तालाब' रखा। (अकबरनामा, ३, पृ० ३५७)।

प्रत्येक मुख्य स्थान में सूर्य कुंड अवश्य है। अन्य कुंडों के नाम भी इसी प्रकार प्रकृति की अन्य पवित्र सनातन शक्तियो के प्रतीक स्वरूप रखे गए हैं। इन कुडों का भारतीय जनता के लिये धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक तीनों का संयुक्त महत्व है[1]।

सम्राटो की देखा देखी वहुत से समृद्ध व्यक्तियो ने भी जन हित के लिये धर्मशालाएँ, कुएँ, झीले, तालाव, घाट आदि वनवाए। सपन्न व्यवित तीर्थों मे सार्वजनिक सुख के लिये धर्मशालाएँ वनवाना पुण्य कार्य समझते थे।[2] कई अन्य लोगो ने भी इसी प्रकार सार्वजनिक इमारतो का निर्माण करवाया।

इस प्रकार देश भर मे फैले हुए तालाव, कुड और झीले उस समय के अपूर्व चिह्न है और उस चिरकालीन सस्था के जीवित-जागृत-स्मारक हैं। इन कुडो मे से सम्राटो ने वहुत थोड़े से ही वनवाए थे, परंतु, अधिकाश प्राय: धनी वर्ग अथवा कभी कभी पूरी विरादरियो अथवा संपूर्ण ग्रामवासियो के सहयोगी प्रयासो से वने थे[3]।

उत्तर प्रदेश मे कृत्रिम झीले, जो सैकड़ो की संख्या मे अव भी विद्यमान है, सिंचाई का काम देती है। ये झीले घाटी के आस पास के पर्वतो के

१५६७ ई० मे मेडता के आस पास की कमी दूर करने के लिये, वहाँ के तालावो तथा कुओ की सफाई करवाई।

(अकवरनामा, ३. पृ० २२०)।

काश्मीर मे भी उसने सिंचाई के लिये नहरे वनवाई और फीरोज तुगलक के काल की पश्चिमी जमुना नहर की भी मरम्मत करवाई।

(जे० ए० सो० व्रि०, १८८६, पृ० २१३)।

१. परमात्मा शरण, पृ० ४०६।

२. अकवरनामा, ३, पृ० ५६६।

टोडरमल ने लाहौर मे एक सरोवर वनवाया था।

(अकबरनामा, ३, पृ० ५६०)।

शेख फरीद ने अहमदावाद मे, दिल्ली, फरीदावाद और लाहौर मे कई मस्जिदें, आवास गृह, सराये बनवाईं। छोटी छोटी वस्तियाँ वसाईं और तालाव खुदवाये।

(मआसिर-उल-उमरा, २, पृ० ६३६, (अनु०)।

३. परमात्मा शरण, पृ० ४१०।

भ्रमण क्षेत्रों के जल को एकत्रित करके तथा बरसाती पानी के विकास स्थान पर बाँध कर निर्मित की गई थी। प्राचीन काल से ही हिंदू राजा ऐसी झीले बनवाते आए है। धार नगरी के राजा भोज ने इसी प्रकार की एक झील भोपाल के निकट बनवाई थी, जिसका क्षेत्रफल २५० वर्गमील मुगल शासकों का इस ओर कुछ ध्यान गया था। फतेहपुर सीकरी मे अकबर इसी सिद्धात पर एक झील बनवाई थी, जिसका घेरा ७ कोस था।[१]

उन प्रदेशो मे जहाँ नदियों और नहरों की संख्या नगण्य थी, तालाबों और झीलो से सिचाई होती थी।[२]

ट्रेवर्नियर ने उत्तर प्रदेश मे इस प्रकार की अनेक झीलें देखी थी[३], जिसमे सिचाई के लिये पानी एकत्रित किया गया था।[४] टेरी का कथन है कि—'उन लोगो के बहुत-से तालाब है, जिन्हें कुंड कहते है, जिनमें से कुछ एक-दो मील से भी बड़े है, वे या तो गोल है या चौकोर और चारो ओर पत्थर के घाटों से घिरे हैं लोगो के नीचे जाने और पानी लाने के लिये सीढ़ियाँ बनी है। ये कुड बरसात के पानी से भरे जाते है और उन निवासियों के काम आते है जो झरने अथवा नदी से दूर रहते है। विश्व का यह प्राचीन पेय भारत का सामान्य पेय है। यह हमारे पानी से अधिक मधुर और उष्ण देश में अन्य किसी शराब की अपेक्षा, मानव-शरीर के अनुकूल पडता है।[५]

---

१. रो० ऐंड बे०, २, पृ० ६६।

२. अकबरनामा, ३, पृ० २२० (अनु०)।
अकबर के राज्य-काल के २२वे वर्ष में जब सम्राट् अजमेर से लौट रहा था तो मेड़ता मे उसे बताया गया कि जलाशयो की दुरावस्था के कारण भूमि की बरबादी हो रही है। सम्राट् ने उसके आसपास के स्थान का स्वतः निरीक्षण किया और जलाशय को तुरत साफ करवाया। अकबरनामा, ३, (अनु०), पृ० २२१)।

३. ट्रेवनियर, पृ० १२०। ४. उपर्युक्त, पृ० १२१।

५. टेरी, पृ० २९९-३००।
काश्मीर में अकबर ने ३० कोस के घेरे की एक झील देखी थी। जहाँ कही आवश्यकता हुई, सिचाई के लिय नहरे भी बनवाई गई थी। (ज० ए० सो०, बंगाल १८४६, पृ० २१३)।

फीरोज तुगलक अपने लोक निर्माण कार्यो के लिये प्रख्यात् है, इनमें यमुना और सतलज से निकलने वाली कई नहरें है। अकबर के समय में दिल्ली के सूबेदार शहाबुद्दीन अहमद ने फीरोज शाह की यमुना नहर की मरम्मत करवाई थी।[1]

कुओं और नहरों को बनवाने मे राज्य अधिक आनंद लेता था, क्योंकि इसमें जनता तथा राज्य दोनों का फायदा रहता था[2]। फीरोज शाह की नहर को मरंमत के रूप में तथा बढाये हुए रूप मे, 'विलियम फैंकलिम' ने १७९५ ई० मे देखा था। वह अपने मार्ग में पडने वाली ९० मील से अधिक लबी भूमि को उर्वरा और उसकी सीमा के अतर्गत निवासियो को सुखी और समृद्धशाली बना रही थी। यह २५ फीट गहरी तथा उतनी ही चौड़ी ठोस पत्थर की बनी थी। तथा दोनो ओर भी ठोस चट्टानों को काट कर बनाई गई थी। इन्ही चट्टानो से निकले पत्थरो से दोनो किनारो पर अधिकांश मकान बने है। जगह जगह पर उसके ऊपर छोटे छोटे पुल बने हैं जिनमे से कुछ रईसो के उपवनो एवं प्रासादो से लगे हुए है[3]।

सरकार के अलावा व्यक्तिगत प्रयासों ने अनेक लोक हितकारी इमारतें बनवाने मे अधिक योगदान दिया। सार्वजनिक दान से बने असख्य कार्यो, जैसे, विश्रामालय, सिचाई के साधन, ग्रीष्म काल मे प्याऊ स्थान आदि के प्रादुर्भाव का कारण जनता के इस विश्वास मे निहित है कि समाज के प्रत्येक अमीर गरीब व्यक्ति का सर्वसाधारण के कल्याणार्थ योगदान देना उसका धार्मिक कर्तव्य है, और इसी कारण देश मे दानो से बने असख्य लोक हितकारी कार्य विद्यमान है[4]।

स्मिथ के अनुसार—'सपूर्ण उत्तर प्रदेश मे सिचाई व्यवस्था मे कुओं और नहरो का अस्तित्व कुछ तो व्यक्तिगत दानियो द्वारा कुछ समाज के सामूहिक प्रयत्नो से हुआ था।[5]

---

१. ओरि०, १७५, पृ० १३९।
२. सरकार, मुगल ऐडमिनिस्ट्रेशन, पृ० २२७।
३. एशियाटिक रिसर्चेज, ४, पृ० ४२०।
४. परमात्माशरण, पृ० ४१३।
५ स्मिथ, १ पृ० ४२९।

ट्रेवर्नियर ने लिखा है कि—'महान् मुगलों के प्रदेशों मे खेती उत्तम रीति से होती थी, और खेतो के चारो ओर अच्छी खाइयाँ बनी थी, प्रत्येक खेत मे सिचाई के ि ये अपना तालाब या जलाशय था।'[1]

लार्ड रोनाल्डसे ने व्यक्तिगत प्रयत्नो से लोक निर्माण कार्य की प्राचीन परपरा के, जो आज भी विद्यमान है, संबध में लिखा है कि—'यह प्रायः स्मरण योग्य है कि भारत की ग्राम पंचायतो की प्राचीन प्रणाली के अंतर्गत लोक-निर्माण-कार्य के हेतु दान देने की प्रथा बहुत उदार थी[2]।'

राय गोवर्धन सूरज ध्वज ने अपने छोटे से कस्बे 'खारी' मे कई भवन बनवाने के अतिरिक्त दिल्ली से लाहौर तक सड़क पर कितनी ही सराएँ, बड़े बडे कुड एवं अन्य इमारते बनवाई थी। उन्होने मथुरा में विशाल कुड और मंदिर बनवाएँ[3]।

अकबरनामा में प्रसंगावशात् टोडरमल द्वारा लाहौर में बनवाए एक तालाब का उल्लेख है[4]। टेरी कहता है कि—'बहुत से धनवान लोग बड़ी घड़ी ज्यादा चलने वाली सडको के किनारे सराएँ, कुएँ अथवा कुड बनवाते है, ताकि यात्रियो को पीने का पानी मिले, इसके अलावा भी निर्धन व्यक्तियो को स्थायी रूप से मासिक वृत्ति (तनख्वाह) देते है, ताकि वे सड़क के किनारे बैठ कर यात्रियो को पानी पिलाएँ।'[5]

जौनपुर मे गोमती नदी के ऊपर अकबर द्वारा निर्मित पुल आज भी विद्यमान है। यह नदियो के ऊपर पुलो के निर्माण को और सिचाई के लिये बाँधो के निर्माण को भी कम महत्व नही देता था। अपने शासन काल के

---

१. ट्रेवेल्स, पृ० ३३।
२. इंडिया, एडवर्ड्स आई व्यू, पृ० १४६-४८।
३. शमशुद्दौला, मासिर-उल-उमरा, १ (अनु०), पृ० ५७४।
अकबर के शासन काल मे शेख फरीद ने कुंड, मस्जिद, विश्राम घर, सराय (छोटी बस्तियाँ) आदि के बहुत से निर्माण कार्य दिल्ली और फरीदाबाद में हुए थे।
(शमशुद्दौला, मासिर-उल-उमरा, १, (अनु०), पृ० ५२५।
४. अकबरनामा, ३, पृ० ५६६ (अ० अनु०), पृ० ८६२।
५. टे ी पृ० ३२३-२४।

२८वे वर्ष मे, उसने इलाहाबाद के नए शहर को वर्षो मे गंगा के बाढ से बचाने के लिये वहाँ एक दो मील लंबा, ४० गज चौड़ा और १४ फुट ऊँचा एक बांध बनवाया था[१]।

जौनपुर मे गोमती का सुप्रसिद्ध पुल अकबर के शासनकाल, उसके प्रधान मंत्री मुनीम खाँ ने (१५६४-६८) बनवाया था[२]

पशु चिकित्सालय

इनमे न केवल रोगी और वलात व निर्वल पक्षियो और पशुओ—बैल, गाय, कुत्ते, बिल्ली, भेड, घोड़े, बंदर, बकरी आदि की चिकित्सा बडे प्रेम और सावधानी से की जाती थी और वृद्ध तथा अंग भंग वाले पशुओ को भी आश्रय दिया जाता था[३]।

शेरशाह ने अपने शासन के चंद दिवसो मे काफी ध्यान दिया तथा कई जगहो पर बीमारी के इलाज के लिये चिकित्सालय की स्थापना करवाई।[४] शेरशाह प्रायः कहा करता था कि—'राजा का कर्तव्य जनता की रक्षा करना होता है न कि भक्षण करना[५]।'

---

१. अकबरनामा, ३, पृ० ४२० (अनु०)।
२. कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, ४, पृ० ५३।
३. श्रीराम शर्मा, पृ० १२६।
अनेक विदेशी यात्रियो ने पशु और पक्षियो के चिकित्सालयों को अहमदाबाद, खभात, पटना आदि बडे बड़े नगरो (शहरो) मे विद्वान् होने का उल्लेख किया है।
(श्रीराम शर्मा, पृ० १२७)।
फिच, (खभात के विषय मे बताते हुए सन् १४८३ ई० में) पृ० १४ तथा २५, थेविनो, ३, पृ० ११।
अहमदाबाद में ऐसे दो तीन चिकित्सालय थे।
(ट्रेवनियर, पृ० ६३; फ्रायर, १, पृ० १३८; लिंचोस्टेन, पृ० २५ ओविंग्टन, पृ० ३००)।
४. डा० कानूनगो, शेरशाह, पृ० ३६१।
५. श्रीराम शर्मा, पृ० १३१।

चिकित्सालय

रोगियों की चिकित्सा के लिये समाज के द्वारा चिकित्सालयो की स्थापना की गई थी। इनका सारा व्यय साम्राज्य के द्वारा वहन किया जाता था[१]। साम्राज्यिक सरकार ने रोगियो के तथा उन व्यक्तियों के चिकित्सार्थ जो चिकित्सा का व्यय वहन करने मे स्वयं असमर्थ हो, अस्पताल बनवाए थे[२]।

आगरा, इलाहाबाद, जौनपुर शासन द्वारा साम्राज्य के प्रमुख नगरों मे चिकित्सालय और दातव्य औषधालय स्थापित किए गए थे और उनके संचालन का खर्च सरकार वहन करती थी[३]।

अकबर ने पुरानी बीमारियो के इलाज के लिये कई हमाम (स्नानागार) भी बनवाए थे। इनके सिवाय उसने बहुत से सार्वजनिक स्नानागार बनवाए, फतेहपुर सीकरी मे एक बड़ा अस्पताल बनवाया और बहुत से छोटे छोटे अस्पताल सम्भवतः हर जिले मे एक एक बनवाए[४]। ये सभी राज्य के खर्च से बनते थे और राज्य ही की ओर से चलाये जाते थे। इनमे आयुर्वेदिक और यूनानी चिकित्सा प्रणालियो के जानकार कुशल वैद्य, हकीम और जर्राह रखे जाते थे[५]।

महामारी, व्यापक भुखमरी का एक व्यापक अनिवार्यतः परिणाम थी। सोलहवी शताब्दी की मृत्यु संख्या के वृहद् भाग का कारण था, हैजा जो समरूप परिस्थितियों मे सामान्यतः प्रकट होता है[६]।

सन् १५७५ ई० की घातक बिमारी जो बंगाल मे व्याप्त हुई थी और

---

१. मीरात, पृ० ७३१। इलियट, ५, पृ० ५१३।

२. परमात्माशरण, पृ० ४०६-१०।

३. परमात्माशरण, पृ० ४१५।

४. अकबरनामा, ३ (अनु), पृ० ३८०।

५. मीरात, पृ० १८६-८७।

६. जहाँगीर, तुजुक-ए-जहाँगीरी, १ (अनु० बेवरिज), पृ० ३३०, ४७२। टेरी, पृ० २२६-२८।

गौड़ में विशेष रूप से प्रचड थी, मलेरिया बुखार का कोई रूप होती है अथवा शायद उस बहुरूपी रोग का कोई प्रकार[1]।

बाँध, पुल, परकोटे और तोरण

जहाँ कही भी आवश्यक हुआ नदियों और झीलों पर बाँध एवं पुल एवं नगर की रक्षा के लिये परकोटे भी बनाए जाते थे। नगरों मे विभिन्न मुहल्लो और सडको की रक्षार्थ बड़े द्वार (फाटक) बनवाए जाते थे[2]। २८ वे इलाही वर्ष मे बरसात मे गगा की बाढ से इलाहाबाद नगर के रक्षार्थ अकबर ने एक बाँध बनवाया, जो एक कोस लंबा, ४० गज चौड़ा और १४ गज ऊँचा था, यह आज भी विद्यमान है[3]।

नदी और नहरों पर पुल बने थे जिसमे सबसे प्रसिद्ध पुल गोमती नदी में जौनपुर में बना है, जो दोनों किनारो पर बसे शहर को जोड़ता है, यह आज भी विद्यमान है[4]। इसके दोनो किनारे छतरियो से अलंकृत कर दिए गए है, जिससे यह साबित होता है कि उपयोगिता की वस्तुओं को भी कलात्मक तत्वो के समावेश से एक मनोरंजक कला कृति का रूप दिया जा सकता है[5]।

डा० परमात्मा शरण का कहना है कि—'स्मिथ ने मुगल वश के समय की हालतों की तुलना आधुनिक ब्रिटिश सरकार के जमाने की हालतो से की है, जो सर्वथा निराधार और असंबद्ध है, क्योकि यह प्रमाणित करने की आवश्यकता ही नही कि ब्रिटिश शासन के अंतर्गत देश के अधिकाश

---

१. स्मिथ, पृ० ४२६।

२. अकबरनामा, ३, पृ० ४१६, (अं० अनु०), पृ० ६२५।

३. वही, ३, पृ० ४२०।
इसी प्रकार एक दूसरा बाँध लगभग ४ मील लंबा रावी के कटाव से लाहौर के रक्षार्थ बनवाया था।
(मनूची, २, पृ० ११६)।

४. कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इडिया, ४, पृ० ५४।

५. वही, पृ० ५५।

ग्रामवासी प्रतिवर्ष अकालावस्था से पीड़ित रहते और उन्हें एक समय का पर्याप्त भोजन भी नसीब होना दुर्लभ था[1]।'

मुख्य मार्गों पर सरायों और कुओं का निर्माण या किसी प्रकार जनता की सहायता करना, इस प्रकार का कार्य जो था, वह प्राच्यकालीन हिंदू राजाओं द्वारा स्थापित परंपरा के अनुसार था[2]।

---

१. परमात्मा शरण, पृ० ३२० ।

२. स्मिथ, पृ० ४४६ ।

उपसंहार

उत्तर प्रदेश आधुनिक युग का नामकरण है। प्राचीन आर्य सभ्यता एवं संस्कृति के उद्भव तथा विकास मे इस क्षेत्र की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण रही है। मध्ययुगीन इतिहास मे यह भाग तत्कालीन शासको की राजनैतिक, प्रशासनिक तथा सांस्कृतिक कार्यो का केंद्र था। प्रशासनिक दृष्टिकोण से यह क्षेत्र मुगल शासन काल में एक प्रकार का प्रयोगशाला था जहाँ शासकों ने अपनी शासन नीति का परीक्षण करके उसे विशाल साम्राज्य के सभी भागो में कार्यान्वित किया।

मुगल काल में उत्तर प्रदेश की राजनैतिक भूमिका प्राय: नगण्य रही है। क्योकि यहाँ किसी स्वतंत्र राजवंश की स्थापना संभव नही हो सकी, इसका प्रमुख कारण मुगल शासकों की कडी दृष्टि इस क्षेत्र पर रही है। मुगल सम्राटों की राजनैतिक गतिविधियाँ केवल विद्रोहों के दमन तक ही सीमित थीं। चुनार तथा कालिंजर जैसे दुर्गो को सोलहवी सदी के शासकों ने सुरक्षा की दृष्टि से विशेष महत्व दिया था। चुनार को पूर्वी प्रदेश का मुख्य प्रवेश द्वार समझा जाता था तथा कालिंजर पर अधिकार करके मालवा तथा राजस्थान के शासको पर कड़ी दृष्टि रखना ही शासको का मुख्य उद्देश्य था। सामरिक तथा सुरक्षा की दृष्टि से सभी मुगल तथा अफगान शासको ने इस दुर्भेद्य दुर्गो पर अधिकार रखना अपनी शासन नीति का लक्ष्य बनाया। कालिंजर विजय मे शेरशाह को अपने प्राण की आहुति देनी पड़ी।

मुगल कालीन उत्तर प्रदेश केंद्रीय तथा प्रातीय शासन का केंद्र था। केंद्रीय तथा प्रातीय शासन का बीज यही अकुरित हुआ और एक विशाल वृक्ष की शाखाओ के रूप मे संपूर्ण साम्राज्य मे विकसित हुआ। इस कारण प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रकाश डालना आवश्यक समझा गया। शासन व्यवस्था की व्याख्या करते समय प्राचीन भारतीय तथा सल्तनत कालीन व्यवस्था का उचित स्थान पर तुलनात्मक चित्रण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

राजस्व व्यवस्था के क्षेत्र मे सोलहवी सदी का उत्तर प्रदेश एक प्रयोग शाला की भांति था। गंगा यमुना के इस विशाल क्षेत्र मे शासकों ने अपनी राजस्व नीति का परीक्षण किया। संतोषजनक सफलता के बाद शासकों ने इसका प्रयोग विशाल साम्राज्य के अन्य भागों मे किया। उत्तर प्रदेश के प्राचीन इतिहास ने शासको को प्राचीन हिंदू राजस्व व्यवस्था के परिवेश में नवीन नीति अपनाने के लिये बाध्य किया। सोलहवीं सदी के महान् इतिहासकार अबुल फजल ने तो स्पष्ट लिखा है कि अकबर की राजस्व व्यवस्था कौटिल्य की नीति पर आधारित थी। गंगा यमुना के दोआब की उर्वर भूमि ने कृषको के प्रति सौहार्दपूर्ण भू राजस्व नीति के लिये एक नवीन प्रेरणा प्रदान की।

मुगल कालीन उत्तर प्रदेश मे शासको की विधि तथा न्याय नीति संबंधी इस्लाम के सिद्धांतों पर आधारित थी। परंतु इस क्षेत्र मे उन शासकों की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उन्होंने प्राचीन काल से प्रचलित स्थानीय पंचायत व्यवस्था को समाप्त करना उचित नहीं समझा। न्याय के क्षेत्र मे गांव प्रमुख तथा अन्य पचो को भी अधिकार दिया। इस प्रकार इस्लामी सिद्धांतो का प्रयोग चिरकाल से प्रचलित न्याय व्यवस्था के परिवेश में किया गया। इस प्रदेश की जनता की सबसे बड़ी सुविधा यह थी कि न्याय की मांग सर्वोच्च न्यायालय मे कर सकते थे। सम्राट् को अपने कष्टो तथा कर्मचारियो के अत्याचार से अवगत करने मे जितनी सुविधा इस क्षेत्र की जनता को उपलब्ध थी, सुदूर प्रांतों की जनता को नही थी। यातायात के साधन की कमी के कारण साम्राज्य के अन्य भागो की जनता इन सुविधाओं से वंचित थी।

सैनिक संगठन के क्षेत्र मे भी इस क्षेत्र की महत्वपूर्ण भूमिका है। संपूर्ण साम्राज्य की अधिकांश, पैदल, हाथी तथा तोपखाना उत्तर प्रदेश के अधिकांश क्षेत्रों मे रखे जाते थे। आगरा, इलाहाबाद तथा चुनार का किला सबसे महत्वपूर्ण सैनिक अड्डे थे। आगरे मे आग्नेय अस्त्रों के निर्माण के लिए कारखाना था। यहां से आग्नेय अस्त्रो को साम्राज्य के सभी क्षेत्रो मे भेजा जाता था। सोलहवी सदी मे यद्यपि जल सेना का संचालन समुद्र में विकसित नहीं हुआ था। इसका तात्पर्य यह नही कि मुगल शासक इस व्यवस्था से अनभिज्ञ थे। मुगल सम्राटो की अभिरुचि नौ सेना संगठन मे विशेष थी। बंगाल अभियान के समय हुमायूं तथा अकबर ने बड़ी बड़ी

नौकाओ का प्रयोग गंगा यमुना में किया था। सभवत. उनकी दृष्टि मे स्थल मार्ग की अपेक्षा जल मार्ग अधिक सुगम था। बड़ी बडी नौकाओ का प्रयोग राजप्रासाद के रूप मे किया जाता था। हुमायूँ तथा अकबर ने राज परिवार के साथ बंगाल अभियान किया था। नौ सेना का प्रयोग सैनिक कार्यो तथा मनोरजन के लिये किया जाता था। हुमायूँ ने जल सेना की सहायता से चुनार के किले का घेरा डाला। सफी खाँ ने बडी बड़ी तोपों का उपयोग करके १५३८ मे चुनार के किले पर अद्‌भुत विजय प्राप्त की थी। उत्तर प्रदेश का विशाल क्षेत्र मनसबदारों मे बाँटा गया था। इस व्यवस्था की सफलता अथवा विफलता उत्तर प्रदेश पर निर्भर करता था। उत्तर प्रदेश के मनसबदारो पर कड़ी दृष्टि रख कर सोलहवी सदी के शासको ने मनसबदारी व्यवस्था को सफल बनाने मे महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

आतरिक शांति एवं सुव्यवस्था किसी भी सफल प्रशासन की कसौटी है। उत्तर प्रदेश के विशाल क्षेत्र मे प्राय. अशाति तथा विद्रोह के कम उदाहरण मिलते हैं। सोलहवी सदी मे मुहम्मद जमा तथा उजबेगो का विद्रोह हुआ, परंतु गुप्तचर विभाग की सतर्कता के कारण शासको ने इन विद्रोहो को दबाने मे सफलता प्राप्त की। पुलिस प्रशासन में भ्रष्टाचार के भी उदाहरण मिलते है। जेल अधीक्षक यादगार तगाई की लापरवाही के कारण मुहम्मद जमा मिर्जा को जेल से भागने में सफलता मिली थी।

सामाजिक दृष्टि कोण से मुगल कालीन उत्तर प्रदेश के इतिहास मे इस क्षेत्र की महत्वपूर्ण भूमिका है। सपूर्ण मुगल साम्राज्य की सामाजिक दशा को उत्तर प्रदेश प्रतिबिंबित करता है। इस क्षेत्र की हिंदू जनता का दृष्टि-कोण अत्यधिक समन्वयवादी रहा है। हिंदू तथा मुस्लिम समाज ने एक दूसरे की रीति रिवाज को अपनाकर समन्वयवाद का मार्ग प्रशस्त किया। मुगलो के प्रभाव के कारण यहाँ के उच्च कुलीन वर्ग ने पर्दा प्रथा, वस्त्रा-भूषण, तथा सौंदर्य प्रसाधन को अपनाया। परतु साधारण वर्ग अपने आर्थिक सीमाओ के कारण उसे अपना न सका। जहाँ तक शिक्षा का प्रश्न है— वह केवल राज दरबार तक ही सीमित थी। तत्कालीन समाज मे शासक वर्ग के मनोविनोद का साधन शिकार, क्रीड़ा, नौका विहार था। परंतु

साधारण वर्ग के लोग पर्व तथा त्योहारों को ही मनोरंजन का साधन मानते थे।

सोलहवी सदी के पूर्व में उत्तर प्रदेश का धार्मिक वातावरण रूढिवादिता, तथा धर्मांधता का युग माना जाता है। परंतु रामानंद, कबीर जैसे सतत् प्रयास के फलस्वरूप उत्तर प्रदेश धार्मिक तत्वो मे एकत्व स्थापित करना था। इस दिशा मे सूफी संतों का प्रयास अत्यधिक प्रशंसनीय रहा है। परिणाम स्वरूप सोलहवी सदी के शासको का धार्मिक दृष्टि कोण परिवर्तित हो उठा। सोलहवी सदी के पूर्व जहाँ सुलतानो ने रूढ़िवादिता, धर्मांधता, के परिवेश में हिंदुओ पर अनेक प्रकार का अत्याचार किया, वही मुगल शासकों ने धर्म के क्षेत्र मे सौहार्दपूर्ण धार्मिक नीति को अपना कर हिंदू-मुस्लिम समन्वयवाद का मार्ग प्रशस्त किया। अकबर जैसे महान् मुगल सम्राट् ने दीन इलाही के माध्यम से सपूर्ण प्रजा के लिये एक राष्ट्रीय धर्म चलाने का प्रयास किया। इस प्रकार सौहार्दपूर्ण धार्मिक वातावरण के सृजन में उत्तर प्रदेश की भूमिका क्रांतिकारी रही है।

धर्म तथा समाज के क्षेत्र मे जहाँ उत्तर प्रदेश का योगदान प्रशंसनीय रहा है, वहाँ मुगल साम्राज्य के वैभव की अभिवृद्धि में इस क्षेत्र की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण थी। इस क्षेत्र के अधिकाश भागों में कारखानो, तथा लघु उद्योग को विकसित करने मे जनता तथा शासकों का प्रयास सफल रहा। मुगल साम्राज्य की आर्थिक प्रगति, वैभव अभिवृद्धि उत्तर प्रदेश पर ही निर्भर करती थी। समुद्र मार्ग से दूरस्थ होकर भी इस क्षेत्र ने स्थल मार्ग द्वारा व्यापार को बढाया तथा साम्राज्य की आर्थिक प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

सोलहवी सदी का उत्तर प्रदेश शिक्षा एवं साहित्य का प्रमुख केंद्र रहा है। भाग्यवश इस दिशा मे मुगल शासको की व्यक्तिगत अभिरुचि के कारण शिक्षा एव साहित्य के क्षेत्र मे अद्भुत विकास हुआ। बाबर, हुमायूँ तथा अकबर विद्वानो के आश्रयदाता थे। फारसी तथा हिंदी साहित्य का विकास इस युग मे अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था। फारसी साहित्य के विकास को दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है—ऐतिहासिक ग्रंथों की रचना तथा साहित्यिक ग्रंथ। अबुल फजल निजामुद्दीन अहमद, फरिश्ता, अब्दुल कादिर बदायूँनी प्रसिद्ध इतिहासकार थे। अबुल फजल,

फैजी सरहिंदी तथा अब्दुल कादिर वदायूँनी का योगदान फारसी साहित्य के विकास में विशेष है। ज्योतिष की पुस्तक तजक तथा बाबर की आत्मकथा तुजुक-ए-बाबरी का अनुवाद फारसी मे किया गया। रामायण, महाभारत, अथर्ववेद, हरिवंश, पंचतंत्र, कालियादमन, नल-दमयंती, सिंहासनबत्तीसी का अनुवाद फारसी भाषा मे किया गया। इसके अतिरिक्त महेश, महानंद, किसान जोशी तथा गंगाधर का अनुवाद अबुल फजल ने फारसी मे किया। महाभारत का नाम रज्मनामा रखा गया। इन पुस्तको के अनुवाद का श्रेय अबुल फजल, अब्दुल कादिर वदायूँनी, अब्दुर्रहीम खानखाना, तथा मौलाना शाह मुहम्मद शाहवादी, नसरूल्ला, मुस्तफा एवं मौलाना हुसैनी वैज को है। इसके अतिरिक्त सम्राट अकबर ने किस्सा हमजा, चगेज नामा, जफर नामा, इकबाल नामा, रज्म नामा, रामायण तथा महाभारत को चित्रित कराकर पाठको मे इन पुस्तको के अध्ययन के प्रति अभिरुचि पैदा करने का प्रयास किया।

बाबर हुमायूँ के शासन काल में हिंदी साहित्य को राज्याश्रय प्राप्त नही हो सका। परंतु अकबर का शासन काल, हिंदी साहित्य का स्वर्ण-युग माना जाता है। अकबर की धार्मिक सहिष्णुता हिंदी साहित्यकारों को उत्साहवर्द्धक वातावरण प्रदान किया। इस युग के महान साहित्यकारों सूरदास, तुलसीदास, अब्दुर्रहीम खानखाना, रसखान तथा बीरबल का नाम विशेष उल्लेखनीय है। सम्राट अकबर के दरबारियो मे टोडरमल, भगवान-दास, मानसिंह, बीरबल, करण, हरिनाथ तथा नरहरि प्रसिद्ध कवि थे।

शिक्षा का प्रमुख केंद्र धार्मिक संस्थाएँ थी। इसके अतिरिक्त पाठ-शाला तथा मकतब के माध्यम से सर्व साधारण को शिक्षा प्रदान की जाती थी राजकुमारों की शिक्षा के लिये अकबर की विशेष रुचि थी। राजकुमार सलीम का शिक्षक अब्दुर्रहीम खानखाना था। स्त्री शिक्षा की भी समुचित व्यवस्था थी। गुलबदन बेगम द्वारा लिखित हुमायूँनामा इसका अकाट्य प्रमाण है। उत्तर प्रदेश मे आगरा, इलाहाबाद तथा जौनपुर शिक्षा के प्रमुख केंद्र थे। इस प्रकार मुगल कालीन शिक्षा एव साहित्य के क्षेत्र में भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

उत्तर प्रदेश की जनता की भलाई को ध्यान मे रखकर सोलहवी सदी के शासकों ने लोक कल्याण में विशेप अभिरुचि दिखाई। शेरशाह ने सड़कों

संदर्भ ग्रंथ सूची

मूल स्रोत

अब्दुल बाकी निहावदी . मासिर-इ-रहीमी, भाग १-३, कलकत्ता, १९२४।

अबुल फजल : आईने अकबरी, अग्रेजी अनुवाद, भाग १ (एच० ब्लोचमेन), द्वितीय सस्करण (डी० सी० फिलोट), १९२७, भाग २ (एच० एस० जैरेट) पुनर्संपादित (सर यदुनाथ सरकार), कलकत्ता, १९५०, भाग ३ (जैरेट और सरकार), कलकत्ता १९४८। अकबरनामा (बिबलोथिका इंडिका), भाग १-३, कलकत्ता, अंग्रेजी अनुवाद, एच० बेवरिज कलकत्ता १९४८। मक्तूबात, नवल किशोर प्रेस लखनऊ १९१३।

अब्दुल्ला : तारीखे दाऊदी (उदयपुर हस्तलिखित प्रति)।

अबू तालिब-अल-हुसैनी : मल्फूजाते तिमूरी, अंग्रेजी अनुवाद मेजर सी० स्टेवार्ट, लंदन, १८३०।

अफीफ, शम्स-ए-सिराज : तारीखे फिरोजशाही, कलकत्ता, १८९०।

अली मुहम्मद खाँ : मीरात-ए-अहमदी भाग १-३, बडौदा, १९२७-३०।

अलमावर्दी, अली इब्न मुहम्मद : अहकाम अल सुल्तानिया, काहिरा १८८१, फ्रेंच अनुवाद, ई० कृत अलजियर्स १९१५।

बाबर : तुजुक-ए-बाबरी (तुर्की), अंग्रेजी अनुवाद (भाग १-३), ए० बेवरिज, लदन, १९३१।

बदायूँनी, अब्दुल कादिर : मुतखब-उत-तवारिख, भाग १-३, अहमद अली, द्वारा सपादित, कलकत्ता १८६८-६९, भाग २, अग्रेजी अनुवाद डब्ल्यू० एच० लो० भाग ३, डब्ल्यू० हेग द्वारा अनूदित।

बरनी : तारीखे फिरोज शाही, कलकत्ता १८६२। फतवाये जहाँदारी (१३५८-५९ ई०) अंग्रेजी अनुवाद मुहम्मद हबीब और श्रीमती अफसर उमर खाँ द्वारा 'दि पालिटिकल थ्योरी आफ दि देहली सल्तनत'।

बयाजिद बयात : तजकिराये हुमायूँ वा अकबर, कलकत्ता, १९४१।

फ़खरुद्दीन मुबारक शाह : तारीख, ई० डेनिसन रास द्वारा संपादित, लंदन १९२७।

फिरिश्ता, मुहम्मद अबुल कासिम : तारीखे, फिरिश्ता, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, १९०५।

फीरोज तुगलक : फतूहाते फिरोज शाही, शेख अब्दुर्रशीद द्वारा संपादित, अलीगढ, १९५४।

बेगम, गुलबदन बानू : हुमायूँनामा, ए० बेवरिज द्वारा अनूदित और संपादित, लंदन, १९०२।

हिदाया : अंग्रेजी अनुवाद, हैमिल्टन, चार्ल्स और एस० जी० ग्रेडी, लंदन, १८७०।

जहाँगीर : तुजुक-ए-जहाँगीरी, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, ए० राजर्स और बेवरिज कृत अंग्रेजी अनुवाद, लंदन १९०९, बृजरत्नदास द्वारा हिंदी अनुवाद, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०१४ संवत्।

जुजानी, मिनहाज-उल-सिराज : तबाकत-ए-नासिरी, कलकत्ता, १८६३, एच० जी० रावर्टी द्वारा अंग्रेजी अनुवाद, कलकत्ता, १८९७।

खुसरो, अमीर : खजान-उल-फुतूह, एम० हबीब कृत अंग्रेजी अनुवाद, मद्रास, १९३१।

नूहसिफिर, सपादक वाहि मिर्जा, कलकत्ता, १९५०।

मुहम्मद अली बिन हमीद तिनअबी बक कूफी : चचनामा, दाऊद पोता द्वारा सपादित, हैदराबाद, १९३९ अंग्रेजी अनुवाद, मिर्जा कालिच बेग, फरीदुन बेग, कराची, १९००।

मुहम्मद आरिफ कन्धारी : तारीखे अकबर शाही (इलाहाबाद युनिवर्सिटी हस्तलिखित शर्त), १५८०।

मुहसिन फानी : दबिस्ताने मजाहिब, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १९०४, अँग्रेजी अनुवाद, डी० शी० और ए० ट्रायल पेरिस, १८४३।

मोतमिद खाँ : इकबाल नामा-ए-जहाँगीरी, भाग १-२, कलकत्ता १८६५।

निजामुद्दीन अहमद : तबकाते अकबरी, भाग १-३, कलकत्ता १९२७-३५, श्री बी० डे० द्वारा अंग्रेजी अनुवाद, भाग २ तथा ३, कलकत्ता १९३६-४०।

सनाय मुहमग्दी : (रामपुर हस्तलिखित प्रति), जियाउद्दीन वरनी कृत ।

सरवानी अब्बास खाँ : तारीखे शेरशाही उर्फ-ए-अकवर शाही (उदयपुर हस्तलिखित प्रति)

अब्दुल्ला मुहम्मद : हाजी-उद-दबीर जफरूल वालेह, संपादित डेनिसन रास ।

ख्वन्दमीर : कानूने हुमायूँनी, डा० वेनीप्रसाद द्वारा अंग्रेजी अनुवाद, लंदन, १६०२ ।

जौहर : तजकिरतुल वाकेआत अर्थात् जौहर का सम्राट हुमायूँ से संवधित संस्करण, मेजर चार्ल्स स्टुअर्ट का अग्रेजी अनुवाद, कलकत्ता, १६०४ ।

वायजीत व्यूताह : तारीखे हुमायूँ व अकवर, डा० बनारसीप्रसाद सक्सेना का अंग्रेजी अनुवाद इलाहावाद यूनिवर्सिटी स्टडीज़, जिल्द ४, भाग १, १६३० ।

सहायक ग्रंथ अंग्रेजी

वेले, इ० सी० : हिस्ट्री आफ गुजरात (दि लोकल मोहम्मडन डाइने-स्टीज़ आफ गुजरात), मीराते सिकदरी का अंग्रेजी अनुवाद, लंदन, १८८६ ।

मिर्जा हैदर : तारीखे रशीदी, एलियस तथा डेनिशन रास द्वारा अग्रेजी अनुवाद ।

डिलाइट जास : द इम्पीरिओ मैग्नी मोगोलिस, सिव इंडिया कमेटैं-रियस आक्टोत्रस कन्जीटिस (लैटिन), अग्रेजी अनुवाद, जे० एस० होमलैंड और एस० एन० वनर्जी द्वारा 'दि एम्पायर आफ दि ग्रेट मुगल' ।

मांसरेट, फादर ऐंथन : मंगोलिस लिगेशनिस कमेटैरियस (लैटिन), अंग्रेजी अनु० जे० एस० हो१लैंड और एस० एन० वनर्जी, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, १६२२ ।

नोअर, काउंट वान : कैसर अकवर (जर्मन) भाग १-२, १८८०-८५, अं० अनु०, ए० एस० वेवरिज़ द्वारा दि एम्परर अकवर के शीर्षक से ।

पियरे टु जैरिक : हिस्टायर डे चोजज प्लमेमोरोविल्स एडवेन्यूस आदि, भाग १-३, अ० अनु०, सी० एच० पेन द्वारा 'अकबर एंड दि जेसुइट्स' शीर्षक से लंदन, १९२६। ट्रेवेल्स आफ राल्फ फिच (१५८३-९१) एड मिल्डन हाल (१५९९-१६०६), अर्ली ट्रेवेल्स इन इंडिया मे प्रकाशित, संपादक डब्ल्यू फास्टर, लंदन, १९२१।

वान डेन ब्रोक : हिंदुस्तान क्रानिकिल्स (डच), अं० अनु०, ब्रिजनारायण और श्रीराम शर्मा, कलकत्ता, १९५७।

अगनाइड्स निकोल्स पी० : मुहम्मडन थ्योरिज आफ फायनेंस विद एन इंट्रोडक्शन टु मुहम्मडन ला एंड ए बिब्लियोग्राफी न्यूयार्क, १९१६।

अहमद मुहम्मद वशीर : दि एडमिनिस्ट्रेशन आफ जस्टिस इन मिडिवल इंडिया अलीगढ, १९४१।

अली सैयद अमीर : ए शार्ट हिस्ट्री आफ दि सेरासेस, लंदन, १९२१।

अब्दुल अजीज : दि मनसबदारी सिस्टम एंड दि मुगल आर्मी, लाहौर, १९४५।

अजीज अहमद : स्टडीज़ इन इस्लामिक कल्चर इन दि इंडियन एनवायरनमेंट, आक्सफार्ड, १९६४।

अर्सकिन विलियम : हिस्ट्री आफ इडिया, अडर दि फर्स्ट टु सावरेंस आफ दि हाउस तैमूर, बाबर एंड हुमायूं, भाग १-२, १८५४।

आगस्टस, फ्रेडरिक : इम्परर अकबर, ए० एस० बेवरिज द्वारा काउन्ट आफ नोअर अं अनु०, कलकत्ता, १८९०।

सैयद अतहर अब्बास रिजवी : आदि तुर्ककालीन भारत, अलीगढ यूनिवर्सिटी अलीगढ, सं० १९५८।

इलियट एंड डाउसन : हिस्ट्री आफ इडिया एज टोल्ड बाई इट्स ओन-हिस्टोरियंस, भाग १-६, लंदन, १८६६-७७।

घोषाल, यू० एन० : कंट्रीब्यूसंस टु दि हिस्ट्री आफ हिंदू रेवेन्यू सिस्टम, कलकत्ता, १९२९।

दि एग्रेरियन सिस्टम इन एंसियेंट इंडिया कलकत्ता, १९३० ।

हवीव, हर्फान : दि एग्रेरियन सिस्टम आफ मुगल इंडिया, न्यूयार्क, १९६३ ।

इब्न हसन : दि सेंट्रल स्ट्रक्चर आफ दि मुगल एम्पायर, लंदन, १९३६ ।

हिट्टी, फिलिप के० : हिस्ट्री आफ दि अरब्स, तृतीय संस्करण, १९५१ ।

होडीवाला, एस०एच० : स्टडीज इन इण्डो-मुस्लिम हिस्ट्री, वंबई १९३९ ।

हुसैन, वाहिद : एडमिनिस्ट्रेशन आस जस्टिस ड्यूरिंग दि मुस्लिम रूल इन इंडिया, कलकत्ता, १९३४ ।

हेग, सर उल्सले : दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, तृतीय भाग, कैम्ब्रिज, १९२८ ।

हेग, सर उलसले तथा हेवैट, इ० वी० हवेल : इंडियन आर्किट्रेक्चर, लंदन, १९३७, आर्यन रूल इन इंडिया ।

इर्विन विलियम : आर्मी आफ दि इंडियन मुगल्स, लंदन, १९०३ ।
लेटर मुगल्स, भाग १-२, कलकत्ता १९२१ ।

ईश्वरीप्रसाद : दि लाइफ एंड टाइम्स आफ हुमायूं, ओरियन्ट लांगमैंस, १९५५ ।

मैकडानल्ड, डंकन वी : डेवलपमेंट आफ मुस्लिम थियोलाजी, ज्यूरिस्प्रूडेंस एंड कांस्टीट्यूशनल थ्योरी, न्यूयार्क, १९२६ ।

मजूमदार, आर० सी० : एंसिएंट इंडिया, द्वितीय संस्करण, बनारस, १९५२ ।

मजूमदार, आर० सी०, संपा : दि क्लासीकल एज, भाग ३, वंबई, १९५४ ।
दि एज आफ इम्पीरियल यूनिटी, भाग २, वंबई १९५१ ।

दि एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, वंबई, १९५५ ।
दि स्ट्रगल फार एम्पायर भाग ५, वंबई, १९६० ।
दि दिल्ली सल्तनत, भाग ६, वंबई, १९६० ।

मोरलैंड, डब्ल्यू० एच० : एग्रेरियन सिस्टम आफ मुस्लिम इंडिया, इलाहाबाद, १९२९ ।

मैलिसन, जी० बी० : अकबर, आक्सफोर्ड, १६०८ ।

नाजिम एम० : दि लाइफ एंड टाइम्स आफ सुल्तान महमूद आफ गजना, कैंब्रिज, १६३१ ।

निजामी, के० ए० : रिलीजन एंड पोलिटिक्स इन इंडिया दि थर्टींथ सेंचुरी, अलीगढ, १६६१ ।

प्रधान, एम० सी० : पालिटिकल सिस्टम आफ दि जाट्स आफ नार्दर्न इंडिया, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, १६६६ ।

कानूनगो, के० आर० : शेरशाह, कलकत्ता, १६२१, द्वितीय संस्करण १६६५ ।

कुरैशी, आई० एच० : दि एडमिनिस्ट्रेशन आफ दि सल्तनत आफ देहली, द्वितीय संस्करण, लाहौर १६४४ ।

राय, एच० सी० : दि डायनेस्टिस हिस्ट्री आफ नार्दर्न इंडिया, भाग १-२, कलकत्ता, १६३१, १६३६ ।

राय चौधरी, एम० एल० : दि दीने इलाही, कलकत्ता, १६४१ । दि स्टेट एंड रिलीजन इन मुगल इंडिया ।

सरन, पी० : दि प्राविंसियल गवर्नमेंट आफ दि मुगल्स, इलाहाबाद, १६४१ । ५६८, स्टडीज् इन मिडीवल इंडियन हिस्ट्री, दिल्ली, १६५२ ।

सरकार, जे० एन० : औरंगजेब, भाग ३, तृतीय संस्करण, कलकत्ता, १६२८ ।

सरकार, जे० एन० : मिलिट्री हिस्ट्री आफ इंडिया, कलकत्ता, १६६० । मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, चतुर्थ संस्करण, कलकत्ता, १६५२ ।

स्टुअर्ट, सी० एम० विलियर्स : गार्डेन्स आफ दि ग्रेट मुगल्स, लंदन, १६१३ ।

स्मिथ, वी० ए० : अकबर दि ग्रेट मुगल, आक्सफोर्ड, १६१६ । ए हिस्ट्री आफ फाइन आर्ट इंडियन एंड सीलोन, बंबई, तृतीय संस्करण, दि आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इंडिया, आक्सफोर्ड, १६२८ ।

सचाट जे० : ओरिजिन आफ मुहम्मडन ज्यूरिस्प्रूडेंस, आक्सफोर्ड, १९५० ।

शर्मा, दशरथ : अली चौहान डायनेस्टीज, दिल्ली, १९५२ ।

शर्मा, श्रीराम : मुगल गवर्नमेंट ऐंड एडमिनिस्ट्रेशन, बंबई, १९५१ ।
रिलीजस पालिसी आफ दि मुगल्स एंपररर्स, द्वितीय सस्करण, १९६२ ।
ए बिब्लियोग्राफी आफ मुगल इंडिया, बंबई,
स्टडीज् एन मेडिवल इंडियन हिस्ट्री (शोलापुर, १९५६) ।
मुगल एंपायर इन इंडिया, बंबई, १९४० ।

थामस, एडवर्ड : रेवेयू रिसोर्सेज आफ दि मुगल एंपायर फ्राम १९५३ टू १७०७ ए० डी० लंदन, १८७१ ।

त्रिपाठी, आर० पी० : सम आस्पेक्ट्स आफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन, इलाहाबाद, १९३६ ।

वेवेरी, ए० : ए हिस्ट्री आफ बुखारा, लंदन, १८७३ ।

आजाद मुहम्मद हुसैन : दरबारे अकबरी, लाहौर, १८९८ ।

जकाउल्लाह : हिस्ट्री आफ हिंदुस्तान, अलीगढ, १९१५ ।

वम वेरी ए : ट्रेवेल्स एंड एडवेंचर्स आफ दि टर्किश ऐडमिरल सी दी अली रेहस ।

रिज़्वी, अतहर अब्बास : मुगल कालीन भारत हुमायूँ, भाग २, अलीगढ़ १९६१ तथा भाग २, अलीगढ़, १९६२ ।

आगस्टस. फ्रेडरिक : एपरर अकबर, ए० एस० वेवरिज द्वारा ।

काउंट आफ नोअर : अंग्रेजी अनुवाद, कलकत्ता १८९० ।

एल्फिस्टन : हिस्ट्री आफ इंडिया, लदन, १८५७ ।

गेनार्ड, फरनेड : बाबर : फर्स्ट आफ दि मुगल्स, लदन, १९३१ ।

ताराचंद : इफ्लूएस आफ इस्लाम आन इडियन कल्चर, इलाहाबाद, १९३६ ।

त्रिपाठी, राम प्रसाद : राइज् एंड फाल दि मुगल एपायर इलाहाबाद, १९५६ ।

डा० बेनी प्रसाद : हिस्ट्री आफ जहाँगीर, तृतीय संस्करण, इलाहाबाद, १९४० ।

वनर्जी एस० के० : हुमायूँ बादशाह भाग १, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, १९३८, भाग २, लखनऊ, १९४१ ।

अर्नाल्ड, वी० डब्ल्यू : प्रीचिंग आफ इस्लाम, लंदन, १९१३ ।

बर्न, सर रिचर्ड : कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग ४, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, १९३७ ।

डे० एन० एन० : ज्योग्राफियल डिक्सनरी एंसियेंट एंड मेडिवल इंडिया, लंदन, १९२७ ।

डफ, सी० एम० : क्रोनोलाजी आफ इंडिया, वेस्टमीस्टर, १८९९ ।

कीन, एच० जी० : ओरियंटल वाईग्राफिकल डिक्शनरी लंदन, १८९४ ।

खरे, जी० एच० : पर्सियन सोर्सेज आफ इंडियन हिस्ट्री, पूना, १९३७ ।

मार्शल, डी० एन० : मुगल्स इन इंडिया, ए विविलियोग्राफिकल सर्वे आफ वाबे, १९६७ ।

कादिरी हकीम, एस० एस० : विबलियोग्राफिकल स्टडीज् इन इंडो मुस्लिम हिस्ट्री, लंदन, १९३४ ।

रे, सुकुमार : हुमायूँ इन पर्शिया, कलकत्ता, १९४८ ।

रेनेल, जे० : मेमायर आफ मैप आफ हिंदुस्तान, लंदन, १९७३ ।

रिजवी, सैय्यद अतहर अब्बास : मुस्लिम रिवावलिस्ट मूवमेंट इन नार्दर्न इंडिया, आगरा, १९६५ ।

परमात्मा शरण : डिस्ट्रिक्ट कैटलाग आफ पर्सियन सोर्सेज इन मेडिवल इंडिया. वाबे, १९६५ ।

थियोडोर, डी० वेरी : सोर्सेज आफ इंडियन ट्रेडिशन, वाराणसी '६३ ।

टोपाईश्वर : पालिटिक्स इन प्रीमुवल टाइम, इलाहाबाद '३६ ।

श्रीवास्तव, हरिशंकर : मुगल सम्राट् हुमायूँ, श्रीराम मेहरा एंड कं०, आगरा, १९६७ ।

ब्राऊन, पर्सी : इंडियन आर्किटेक्चर, इस्लामिक पीरीयड, तृतीय संस्करण, बंबई ।

मैलिसन, जी० बी० : अकबर, आक्सफोर्ड, १९०८ ।

लेनपूल, स्टैनली : मेडिवल इंडिया, लंदन, १९१६ । बाबर, दिल्ली, १९५७ ।

विलियम्स, एल० एफ० रशब्रुक : ऐन एंपायर बिल्डर आफ दि सिक्सटीय सेंचुरी—जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर, लांग मैन ग्रीन एंड कंपनी, १९१८ ।

परमात्माशरण : स्टडीज इन मेडिवल इंडियन हिस्ट्री, दिल्ली, १९५२।
दि प्राविंशियल गवर्नमेंट आफ दि मुगल्स इलाहाबाद, १९४१।

श्रीवास्तव, आशीर्वादीलाल : शेरशाह एंड हिज एक्सेयर्स, आगरा, १९५०,
अकबर दि ग्रेट, आगरा, १९६२।
मुगल एंपायर, आगरा।

अहमद यादगार : तारीखे शाही, कलकत्ता, १९३६।

बायजीद ब्यात : तारीखे हुमायूं, कलकत्ता १९४१।

सहायक ग्रंथ हिंदी

असदमाजदा : रसखान काव्य।

उपाध्याय, देवेंद्र प्रताप: रसखान : जीवन और कृतित्व, आनंद पुस्तक भवन, वाराणसी, १९६२।

ओझा, गौरीशंकर हीराचंद : मध्य कालीन भारतीय संस्कृति, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, १९५१।

गुरु नानक : आदि ग्रंथ।

गौड़, रामदास : हिंदुत्व, ज्ञान मंडल लि०, काशी, सं० १९९० वि०।

चतुर्वेदी, परशुराम : उत्तरी भारत की संत परंपरा, भारतीय भंडार इलाहाबाद, द्वितीय सं०, २०२१ वि०।

त्रिगुणायत, गोविंद : कबीर की विचारधारा, सं० २००९ वि०।

त्रिपाठी, आर० बी० : प्राचीन भारत का इतिहास, जवाहर नगर दिल्ली, मोतीलाल बनारसी दास, छठवां संस्करण, १९७१।

दीक्षित, राजपति : तुलसी और उनका युग, ज्ञानमंडल लि० वाराणसी, प्रथम संस्करण, सं० २००९ वि०।

द्विवेदी, हजारी प्रसाद : कबीर, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, दिल्ली, सं० १९९२ वि०।
मध्यकालीन धर्म साधना, साहित्य भवन लि०, इलाहाबाद, १९५२।

द्विवेदी, हजारी प्रसाद : सूर साहित्य, सरयू प्रसाद ग्रंथमाला, पुष्प ३, सं० १९९३ वि० ।
हिंदी साहित्य : उद्भव तथा विकास, यू० सी० कपूर एंड सन्स, दिल्ली, १९६९ ।
हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, आठवाँ सं०, १९६९ ।

नाहर, रतिभानु सिंह : भक्ति आंदोलन का अध्ययन, किताब महल प्रा० लि०, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण ।

परमात्माशरण : मध्यकालीन भारत, नंदकिशोर एंड ब्रदर्स, वाराणसी, द्वितीय संस्करण ।

पांडेय, राजबली : तुलसीदास, शक्ति कार्यालय, प्रयाग, सं० २००५ वि० ।

पांडेय, राम खेलावन : मध्यकालीन संत साहित्य, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, १९६५ ।

पांडेय, श्याममनोहर : सूफी काव्य विमर्श, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, १९६६ ।

ब्रजरत्नदास : हुमायूँनामा, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, द्वितीय संस्करण, सं० २००८ वि० ।
भक्ति काल : सगुण भक्ति, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी ।
भक्ति भावना, साहित्य सदन, देहरादून, १९६८ ।

भारद्वाज, रामदत्त : गोस्वामी तुलसीदास, भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली, १९६२ ।

जायसी, मलिक मोहम्मद : भक्ति आंदोलन के प्रेरणा स्रोत, रंजन प्रकाशन, बाँके विलास, आगरा, १९७१ ।

मिश्र, शिवशंकर : भारत का सांस्कृतिक विकास, लखनऊ विश्व विद्यालय, लखनऊ, स० २०१० वि० ।
रामायण, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, पूना ।

वर्मा, रामकुमार : कबीर का रहस्यवाद, साहित्य भवन लि०, इलाहाबाद, १९४१ ।

वर्मा, राजकुमार : हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, राम नरायन बेनीमाधव, वाराणसी छठवाँ सं० १९७१।

वार्ष्णेय लक्ष्मीसागर : हिंदी साहित्य का इतिहास, महामना प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, छठवाँ संस्करण, १९६४।

शबनम, पद्मावती : मीरा: एक अध्ययन, लोकसेवा प्रकाशन, बनारस, सं० २००७ वि०।

शर्मा, एस० आर० : भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास, लक्ष्मी नारायण, आगरा, १९५४।

शर्मा, ओमप्रकाश : संत साहित्य की लौकिक पृष्ठभूमि, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, '६५।

शर्मा, मुंशीराम : भक्ति का विकास, चौखभा, विद्या भवन, वाराणसी, १९५८ ई०।

शर्मा, वासुदेव : संत कवि दादू और उनका पंथ, शोधप्रबंध प्रकाशन, दिल्ली, सं० १९६९।

शर्मा, सत्यनारायण : रामचरित मानस में भक्ति, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा, सं० २०२६ वि०।

शुक्ल, रामचंद्र : गोस्वामी तुलसीदास, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं० २०१९ वि०।

भारतीय साधना और सूर साहित्य, साधना सदन, कानपुर, स० १९९९ वि०।

सूरदास, सरस्वती मंदिर, बनारस, तृतीय संस्करण।

हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, सोलहवाँ संस्करण, २०१५ वि०।

शुक्ल, सावित्री : संत साहित्य की सामाजिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि, विश्वविद्यालय हिंदी प्रकाशन, लखनऊ, १९६३।

सत्यकेतु : भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, सरस्वती सदन, मसूरी, चतुर्थ सं०, १९६८।

सत्येंद्र : मध्ययुगीन हिंदी साहित्य, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, १९६०।

सिंह, सरनाम : कबीर : एक विवेचन, हिंदी साहित्य संसार दिल्ली, १९६० ।

सेन, राजेंद्र : गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय साधना, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी, द्वितीय संस्करण, २०२६ वि० ।

पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख

अवस्थी, आर० एस० : दि डिले इन हुमायूँज एक्सेशन, जनरल, यू० पी० हिस्टारिकल सोसा०, १९४१ ।

निजामी, के० एच० : दी संचारी सेनट्स एंड देयर एटीट्यूड टुवर्ड्स दि स्टेट, मेडिवल इंडिया, क्वार्टर्ली, जिल्द १, नवंबर, १९५० ।

बनर्जी, एस० के० : दि वर्थ आफ अकबर, प्रोसिडिंग्स आफ दि इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, कलकत्ता, १९३९ ।

बेवरिज, ए० : मेहदी ख्वाजा, एपीग्रेफिका इंडो मुसलेमिका, १९१५-१६ ।

रहीम, ए० : मुगल रिलेशंस विथ पर्शिया, इस्लामिक कल्चर, १९३७ ।

रे, सुकुमार : ए लेटर आफ दि मुगल इंपरर हुमायूँ टू हिज ब्रदर कामरान, प्रोसिडिंग्स आफ दि ट्वेंटी फर्स्ट सेशन आफ दि इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, १९५८, पृ० ३१८-१९ ।

श्याम लाल कविराज : बर्थ डेट आफ अकबर, जनरल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, १८८६ ।

श्रीवास्तव, ए० एल : दी डेट आफ अकबर्स बर्थ, हिस्ट्री एंड पोलिटिकल साइंस जनरल, आगरा, कालेज आगरा, जनवरी, १९५५ ।

सक्सेना, हजारी प्रसाद : मेमायर्स आफ बायजीद, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज़, जिल्द ६, भाग १, १९३० ।

स्मिथ, वी० ए० : वर्थ आफ अकबर, इंडियन एंटीक्वेरी, १९१५ ।

हरिशंकर : सम्राट् अकबर की जन्म तिथि, सरस्वती इलाहाबाद, अप्रैल, १९४६ ।

जनरल में प्रकाशित

इंडियन एंटिक्वेरी, बंबई ।
इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली, कलकत्ता ।
इस्लामिक कल्चर, हैदराबाद, डेकन ।
इंडियन एंटीक्वेरी ।
आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इंडियन रिपोर्ट ।
एपीग्राफिका, इंडिका ।
एपीग्राफिका इंडो-मोसलेमिका ।
जनरल आफ इंडियन हिस्ट्री ।
जनरल आफ इंडियन हिस्ट्री, त्रिवेंद्रम ।
जनरल आफ दि एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल।
जनरल आफ दि न्यूमिस्मेटिक सोसाइटी आफ इंडिया ।
जनरल आफ बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी ।
जनरल आफ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़ ।
जनरल आफ यूनाइटेड प्राविंसेस हिस्टोरिकल सोसाइटी ।
जनरल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ ग्रेट ब्रिटेन एंड आयरलेंड, लंडन ।
दि इन्वेस्टीगेटर, जयपुर ।
दि उत्तर भारती, ए जनरल आफ रिसर्च आफ दि यूनिवर्सिटीज आफ उत्तर प्रदेश, आगरा ।
प्रोसिडिंग आफ दि इडियन हिस्ट्री काग्रेस ।
मेडिवल इंडिया क्वार्टर्ली, अलीगढ़ ।
इनसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, लंदन, १९१३-१७ ।
डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स आफ इंडिया ।
दि इंपीरियल गजेटियर्स आफ इंडिया ।